[श्री व. स्था. जैन श्रमण संघ के प्रथमाचार्य
आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज के जन्मशताब्दी-वर्ष का विशेष उपहार]

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाण संवत् २५०९
विक्रम सं. २०४० चैत्र
ई. सन् १९८३

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय, केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य [illegible] रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

FOURTH UPĀNGA

PANNAVANĀ SUTTAM

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

Proximity
Up-pravartaka Shasansevi Rev. Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Shri Jnan muni

Sub-Editor
Shrichand Surana 'Saras'

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

Jinagâm Granthmala Publication No. 16

□ **Board of Editors**

Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachandra Bharill

□ **Managing Editor**

Srichand Surana 'Saras'

□ **Promotor**

Munisri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

□ **Date of Publication**

Vir-nirvana Samvat 2509
Vikram Samvat 2040, April. 1983

□ **Publishers**

Sri Agam Prakashan Samiti,
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305901

□ **Printer**

Satishchandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer—305001

□ **Price** [illegible] 45/-

समर्पण

जिन्होंने
जैनागमों पर हिन्दी भाषा में
टीकाएँ लिखकर
तथा
आगम-संपादन की आधुनिक शैली का
प्रथम प्रवर्तन कर
महान्, ऐतिहासिक श्रुत-सेवा की
उन
परमश्रद्धेय आगम-रहस्यविज्ञ
जैनधर्मदिवाकर
श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य
पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज
की पावन स्मृति में
उन्हीं के जन्म-शताब्दी वर्ष के
पावन-प्रसंग पर
सविनय सभक्ति समर्पित

—मधुकर मुनि

प्रस्तुत आगम प्रकाशन के विशिष्ट अर्थ-सहयोगी

श्रीमान् सेठ एस. सायरचंदजी चोरडिया, मद्रास

[जीवन परिचय]

धर्मनिष्ठ समाजसेवी चोरडिया परिवार के कारण प्रसिद्ध नोखा (चांदावतों का, जिला नागौर, राजस्थान) आपका जन्मस्थान है। आपका जन्म सं. १९८४ वि. आषाढ़ कृष्णा १३ को स्वर्गीय श्रीमान् सिमरथमलजी चोरडिया की धर्मपत्नी स्व. श्रीमती गट्टूबाई की कुक्षि से हुआ। आपका बाल्यकाल ग्राम में बीता। साधारण शिक्षण के बाद आपकी शिक्षा आगरा में सम्पन्न हुई और वहीं अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान् रतनचंदजी चोरडिया की देखरेख में व्यापार-व्यवसाय प्रारंभ किया। अपनी प्रतिभा और कुशलता से व्यापारिक क्षेत्र में अच्छी प्रतिष्ठा उपार्जित की।

तत्पश्चात् आपने सं. २००८ में दक्षिण भारत के प्रमुख व्यवसाय-केन्द्र मद्रास में फाइनेन्स का कार्य प्रारम्भ किया। आज तो वहां के इने-गिने फाइनेन्स व्यवसाइयों में से आप एक हैं।

आपकी तरह ही धार्मिक सामाजिक कार्यों में सोत्साह सहयोग देने वाले युवक आपके सुपुत्र श्री किशोरचंदजी भी उदीयमान व्यवसायियों में गणनीय माने जाते हैं।

व्यावसायिक क्षेत्र में जैसे-जैसे ख्याति फैलती गई, वैसे-वैसे आपने धार्मिक और सामाजिक कार्यों में तन-मन-धन से योग देने की कीर्ति भी उपार्जित की है। शुभ कार्यों में सदैव अर्जित अर्थ को विनियोजित करते रहते हैं। संग्रह नहीं अपितु संविभाग करने की दृष्टि से मद्रास जैसे महानगर की प्रत्येक जनोपयोगी प्रवृत्ति से आप संवद्ध हैं। अनेक सार्वजनिक संस्थाओं को एक साथ पुष्कल अर्थ प्रदान कर स्थायी बना दिया है।

आप मद्रास एवं अन्य स्थानों की जैन संस्थाओं से किसी न किसी रूप में संबन्धित हैं। अध्यक्ष, मंत्री आदि आदि अधिकारी होने के साथ ऐसी भी संस्थायें है, जिनके प्रबन्ध-मंडल के सदस्य न होते हुए भी प्रमुख संचालक हैं। कतिपय संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं, जिनके साथ आपका निकटतम सम्बन्ध है—

- ☐ श्री एस. एस. जैन एज्यूकेशन सोसायटी, मद्रास
- ☐ श्री राजस्थानी एसोशियेशन, मद्रास
- ☐ श्री राजस्थानी श्वे. स्था. जैन सेवासंघ, मद्रास
- ☐ श्री वर्धमान सेवासमिति, नोखा
- ☐ श्री भगवान महावीर अहिंसा-प्रचार-संघ
- ☐ स्वामीजी श्री हजारीमलजी म. जैन ट्रस्ट, नोखा

सदैव संत-सतियांजी की सेवा करना भी आपके जीवन का ध्येय है। आपकी धर्मपत्नी भी धर्मश्रद्धा की प्रतिमूर्ति एवं तपस्विनी हैं।

आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री रतनचंदजी और बादलचंदजी भी धार्मिक वृत्ति के हैं। वे भी प्रत्येक सत्कार्य में अपना सहयोग प्रदान करते हैं।

आपका परिवार स्वामीजी श्री व्रजलालजी म. सा., पूज्य युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म. सा. 'मधुकर' का अनन्य भक्त है। आपने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री आगम प्रकाशन समिति को अपना महत्त्व पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। एतदर्थ समिति आपकी आभारी है एवं अपेक्षा रखती है कि भविष्य में भी समिति को आपका संपूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

मंत्री
श्री आगम-प्रकाशन-समिति, ब्यावर

प्रकाशकीय

पाठकों के कर-कमलों में चतुर्थ उपांग श्रीप्रज्ञापनासूत्र समर्पित करते अतीव प्रमोद का अनुभव हो रहा है। प्रज्ञापनासूत्र विशालकाय आगम है और तत्त्वज्ञान की विवेचना से भरपूर है। इसे समझने के लिए विस्तृत विवेचन की परमावश्यकता है। इस कारण इसे एक जिल्द में प्रकाशित कर सकना संभव नहीं है। अतएव प्रथम खण्ड ही प्रकाशित किया जा रहा है। द्वितीय भाग के अधिकांश का मुद्रण हो चुका है। उसके भी शीघ्र ही तैयार हो जाने की संभावना है।

प्रस्तुत आगम की विस्तृत प्रस्तावना विख्यात विद्वान् श्री देवेन्द्र मुनिजी म. शास्त्री लिख रहे हैं, किन्तु अस्वस्थता के कारण मुनिश्री उसे पूर्ण नहीं कर सके हैं। अतएव वह प्रस्तावना अन्तिम खण्ड में दी जाएगी और मुद्रित हो रहा है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र प्रेस में दिया जा चुका है और मुद्रित हो रहा है।

प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद और सम्पादन जैनभूषण पंजावकेसरी पं. र. मुनिश्री ज्ञानमुनिजी महाराज ने किया है। इसके सम्पादन और अनुवाद में जो अर्थव्यय हुआ है, उसका भार जिन साहित्यप्रेमी सज्जनों ने वहन किया है, उनकी सूची साभार अन्यत्र प्रकाशित की जा रही है। श्रीमान् धर्मप्रेमी सेठ एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास के विशिष्ट आर्थिक सहयोग से यह आगम प्रकाशित किया जा रहा है, अतएव उनके प्रति भी हम आभारी हैं।

श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य परमपूज्य श्री आत्मारामजी महाराज की जन्मशताब्दी-वर्ष के सुअवसर पर प्रज्ञापनासूत्र का प्रकाशन हो रहा है। अतएव स्व. आचार्यसम्राट् के महान् उपकारों को लक्ष्य में रख कर उन्हीं के कर-कमलों में यह समर्पित किया जा रहा है। आचार्यश्री का परिचय भी संक्षेप में प्रकाशित कर रहे हैं।

अन्त में जिन-जिन महानुभावों का समिति को प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में सहयोग प्राप्त हुआ या हो रहा है, उन सभी के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

रतनचन्द मोदी	जतनराज महता	चांदमल विनायकिया
कार्यवाहक अध्यक्ष	प्रधान मंत्री	मंत्री

श्री आगम-प्रकाशन-समिति, ब्यावर

सम्पादन-सहयोगी सत्कार

प्रस्तुत आगम के अनुवाद तथा सम्पादन कार्य में जिन उदार सद्गृहस्थों तथा संस्थाओं ने श्री शालिग्राम जैन प्रकाशन समिति खरड़ (रोपड़) के संयोजन में आर्थिक सहयोग प्रदान किया, उनकी शुभ नामावली इस प्रकार है—

- ☐ **सेठ शोरीलालजी जैन**
  (सुपुत्र—ला. वालमुकुन्दलाल जैन सर्राफ, रावलपिंडी वाले)
- ☐ **धर्मशीला श्रीमती जसवंती देवी जैन**
  [धर्मपत्नी—श्री प्रेमचन्दजी जैन, मोगा (पंजाव)]
- ☐ **श्री छज्जूराम एण्ड सन्स**
  जी. टी. रोड, मण्डी गोविन्दगढ़ (पंजाव)
- ☐ **धर्मशीला श्रीमती कौशल्यादेवी अग्रवाल**
  धर्मपत्नी—ला. नत्थूरामजी, मंडी गोविन्दगढ़
- ☐ **धर्मशीला श्रीमती वीणादेवी**
  धर्मपत्नी—श्री ओमप्रकाशजी जी. टी. रोड, मंडी गोविन्दगढ़
- ☐ **सेठ नरेन्द्रकुमार प्रेमनाथ अग्रवाल**
  सहारनपुर (उ. प्र.)
- ☐ **धर्मशीला श्रीमती लेखा जैन**
  धर्मपत्नी—ला. शादीरामजी जैन, वजाज, होशियारपुर (पंजाव)
- ☐ **शालिग्राम जैन प्रकाशन समिति**
  खरड़ (रोपड़) पंजाव
- ☐ **ला. शान्तिलालजी जैन**
  जैन ट्रेडिंग कम्पनी, B. 34, जी. टी. करनाल रोड, दिल्ली 53

आशा है दानी सज्जनों का भविष्य में भी इसी प्रकार श्रुत-सेवा कार्य में सत्सहयोग मिलता रहेगा।

आदि वचन

विश्व के जिन दार्शनिकों—दृष्टाओं/चिन्तकों, ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होंने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनों तथा पद्धतियों पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामों से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारों—राग द्वेष आदि को, साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णतः निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तियाँ ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप में उद्घाटित-उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियों का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यतः सर्वज्ञ के वचनों/वाणी का संकलन नहीं किया जाता, वह बिखरे सुमनों की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, संघीय जीवन-पद्धति में धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्म प्रवर्तक/अरिहंत या तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्हीं के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर संकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते हैं अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनों की मुक्त वृष्टि जब मालारूप में ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा में "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहंतों के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशांग में समाहित होते हैं और द्वादशांग/आचारांग-सूत्रकृतांग आदि के अंग-उपांग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशांगी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशांगी में भी बारहवां अंग विशाल एवं समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एवं श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यतः एकादशांग का अध्ययन साधकों के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नहीं थी, लिखने के साधनों का विकास भी अल्पतम था, तब आगमों/शास्त्रों/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कंठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवतः इसलिए आगमज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दों का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमों का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणों से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणों के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ

चिन्तन की तत्परता एवं जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के संरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एवं संजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमों को लिपि-बद्ध किया गया। जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुतः आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। संस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) में आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमों की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी; पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रों का अन्तिम स्वरूप-संस्कार इसी वाचना में सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमों का स्वरूप मूल रूप में तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-संघों के आन्तरिक मतभेद, स्मृतिदुर्बलता, प्रमाद एवं भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणों के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारों का विध्वंस आदि अनेकानेक कारणों से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एवं विलुप्त होने से नहीं रुकी। आगमों के अनेक महत्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव में, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नहीं होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणों से आगम की पावन धारा संकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी में वीर लोंकाशाह ने इस दिशा में क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमों के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुनः चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमें भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धांतिक विग्रह, तथा लिपिकारों का अत्यल्प ज्ञान आगमों की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध में बहुत बड़ा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियों को शुद्ध प्रतियां मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठकों को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासों से आगमों की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकायें आदि प्रकाश में आई और उनके आधार पर आगमों का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा में प्रकाशित हुआ। इसमें आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनों को सुविधा हुई। फलतः आगमों के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढ़ी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कहीं अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ी है, जनता में आगमों में प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण में अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानों तथा भारतीय जैनेतर विद्वानों की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते हैं।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय श्रुत सेवा में अनेक समर्थ श्रमणों, पुरुषार्थी विद्वानों का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नींव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हों, पर विस्मरणीय तो कदापि नहीं, स्पष्ट व पर्याप्त साधनों के अभाव में हम अधिक विस्तृत रूप में उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो हैं ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट आगम श्रुत-सेवी मुनिवरों का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेंगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रों का प्राकृत से खड़ी बोली में अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन में पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एवं आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय में प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापंथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्रीजोरावरमलजी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रातःस्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमल जी म० के सान्निध्य में आगमों का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलांक की टीकाओं से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्हीं के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह संस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध संस्करणों में प्रायः शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठों में व वृत्ति में कहीं-कहीं अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो हैं ही। चूंकि गुरुदेवश्री स्वयं आगमों के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हें आगमों के अनेक गूढ़ार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अतः वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमों का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञानवाले श्रमण-श्रमणी एवं जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तड़प कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थियों के कारण उनका यह स्वप्न-संकल्प साकार नहीं हो सका, फिर भी मेरे मन में प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल में आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरों ने आगमों की हिन्दी, संस्कृत, गुजराती आदि में सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान में लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा में बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानों ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस में व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान में आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्च-कोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान में तेरापंथी सम्प्रदाय में आचार्य श्री तुलसी एवं युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व में आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हें देखकर विद्वानों को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठनिर्णय में काफी मतभेद की गुंजाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व हैं। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. "कमल" आगमों की वक्तव्यता को अनुयोगों में वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमों में उनकी कार्यशैली की विशदता एवं मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् पं. श्री बेचरदासजी दोशी ने आगमसम्पादन के क्षेत्र में बहुमूल्य योग प्रदान किया। खेद है कि वे अब हमारे बीच नहीं रहे। विश्रुत-मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमों के आधुनिक सम्पादन की दिशा में स्वयं भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानों का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहंगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन में एक संकल्प उठा। आज प्रायः सभी विद्वानों की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कहीं आगमों का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कहीं आगमों की विशाल व्याख्यायें की जा रही हैं। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमों का एक ऐसा संस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, संक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही आगम-संस्करण चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य में रखकर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि. सं. २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय में गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री ब्रजलाल जी म. की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरों तथा सद्गृहस्थों का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये विना मन सन्तुष्ट नहीं होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म. "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म. शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म. के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म. एवं प्रवचनभूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्-रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म.; स्व. विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुंवरजी म. की सुशिष्याएं महासती दिव्यप्रभाजी, एम. ए., पी-एच. डी.; महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमराव-कुंवरजी म. 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् पं. श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, स्व. पं. श्री हीरालालजी शास्त्री, डा. छगनलालजी शास्त्री एवं श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियों का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल वना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एवं महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुंवरजी, महासती श्री झणकारकुंवरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसंग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व. श्रावक चिमनसिंहजी लोढ़ा, स्व. श्री पुखराजजो सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप में हो आता है जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नों से आगमसमिति अपने कार्य में इतनी शीघ्र सफल हो रही है। अल्पकाल में ही पन्द्रह आगम ग्रन्थों का मुद्रण तथा करीव १५-२० आगमों का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियों की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ़ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओं के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसंघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-संत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म. आदि मुनिजनों के सद्भाव-सहकार के वल पर यह संकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,.

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

आचार्यसम्राट् श्री आत्मारामजी महाराज

[जीवन और साधना की एक संक्षिप्त झांकी]

हजारों जीव प्रतिक्षण जन्म लेते हैं और मनुष्य का शरीर धारण करके इस धरातल पर अवतरित होते रहते हैं, परन्तु, सबकी जयन्तियाँ नहीं मनाई जातीं। ना ही सबको श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। आदर उन्हीं को सम्प्राप्त होता है जो अपने लिये नहीं, समाज के लिये जीते हैं। जन-जीवन के उत्थान, निर्माण एवं कल्याण के लिए जो अपनी समस्त जीवन-शक्तियां समर्पित कर देते हैं। वे स्वयं जहां आत्म-कल्याण में जागरूक रहते हैं, वहां वे दूसरों की हित-साधना का भी पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं।

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज उन महापुरुषों में से एक थे जिनका जीवन सदा लोकोपकारी जीवन रहा है। जीवन के ७८ वर्षों तक वे अहिंसा, संयम और तप के दीप जगाते रहे। इनकी जीवन-सरिता जिधर से गुजर गई वहीं पर एक अद्भुत सुषमा छा गई। आज भी उनकी वाणी तथा साहित्य जन-जीवन के लिये प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रही है।

जन्मकाल

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज वि. सं. १९३९ भादों सुदी द्वादशी को पंजाब-प्रान्तीय राहों के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ मंशारामजी चोपड़ा के घर पैदा हुए। माताजी का नाम परमेश्वरी देवी था। सोने जैसे सुन्दर लाल को पाकर माता-पिता फूले नहीं समा रहे थे। पुण्यवान सन्तति भी जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से ही प्राप्त हुआ करती है।

संकट की घड़ियाँ

आचार्य श्री का बचपन बड़ा ही संकटमय रहा। असातावेदनीय कर्म के प्रहारों ने इन्हें बुरी तरह से परेशान कर दिया था। दो वर्ष की स्वल्प आयु में आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। आठ वर्ष की आयु में पिता परलोकवासी हो गए। मात्र एक दादी थी जिसकी देख-रेख में आपका शैशव काल गुजर रहा था। दो वर्षों के अनन्तर उनका भी देहान्त हो गया। इस तरह आचार्य देव का बचपन संकटों की भीषणता ने बुरी तरह से आक्रान्त कर लिया था। कर्म बड़े बलवान होते हैं। इनसे कौन बच सकता है?

संयम-साधना की राह पर

माता-पिता और दादी के वियोग ने आचार्य-देव के मानस को संसार से बिल्कुल उपरत कर दिया था। संसार की अनित्यता साकार हो कर आपके सामने नाचने लगी थी। फलतः आत्म-साधना और प्रभु-भक्ति का महापथ ही आपको सच्चिदानन्ददायी अनुभव हुआ था। अन्त में ११ वर्ष की स्वल्प आयु में आप संवत् १९५१ को बनूड में महामहिम गुरुदेव पूज्य श्री स्वामी शालिगरामजी महाराज के चरणों में दीक्षित हो गए।

साहित्यसेवा

आपका शास्त्र-स्वाध्याय बड़ा ही व्यापक और तलस्पर्शी था। जैन शास्त्रों के महासागर में कौनसा मोती कहां पड़ा है, यह आपके ज्ञान-नेत्रों से ओझल नहीं था। आपके शास्त्रीय वैदुष्य की विलक्षणता के कारण ही जैन समाज ने आप को पंजाब सम्प्रदाय के उपाध्याय पद से विभूषित किया। आपने ६० के लगभग ग्रन्थ लिखे, बड़े-बड़े शास्त्रों का भाषानुवाद किया। **'तत्त्वार्थसूत्र जैनागम-समन्वय'** आप की अपूर्व रचना है। जर्मन, फ्रान्स, अमरीका तथा कनाडा के विद्वानों ने भी इस रचना का हार्दिक अभिनन्दन किया था। जैन, बौद्ध और वैदिक शास्त्रों के आप अधिकारी विद्वान् थे। आपकी साहित्य-सेवा जैन-जगत् के साहित्य-गगन पर सूर्य की तरह सदा चमचमाती रहेगी।

सहिष्णुता के महासागर

वीरता, धीरता तथा सहिष्णुता के आपश्री महासागर थे। भयंकर से भयंकर संकटकाल में भी आपको किसी ने परेशान नहीं देखा। एक बार लुधियाना में आप की जांघ की हड्डी टूट गयी, उसके तीन टुकड़े हो गये। लुधियाना के क्रिश्चियन हॉस्पीटल में डा. वर्जन ने आपका आपरेशन किया। ऑपरेशन-काल में आपको वेहोश नहीं किया गया था, तथापि आप इतने शान्त और गम्भीर रहे कि डा. वर्जन दंग रह गये। बरबस उनकी जवान से निकला कि ईसा की शान्ति की कहानियाँ सुना करते थे, परन्तु इस महापुरुष के जीवन में उस शान्ति के साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ।

जीवन के संध्याकाल में आपको कैंसर के रोग ने आक्रान्त कर लिया था। तथापि आप सदा शान्त रहते थे। भयंकर वेदना होने पर भी आपके चेहरे पर कभी उदासीनता या व्याकुलता नहीं देखी। लुधियाना जैन विरादरी के लोग जव डाक्टर को लाए और डाक्टर ने जव पूछा—महाराज, आप को क्या तकलीफ है? तब आप ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। आप बोले—डाक्टर साहव! मुझे तो कोई तकलीफ नहीं, जो लोग आप को लाए है, उनको अवश्य तकलीफ है। उनका ध्यान करें। महाराजश्री जी की सहिष्णुता देखकर सभी लोग विस्मित हो रहे थे, और कह रहे थे कि कैंसर-जैसे भयंकर रोग के होने पर भी गुरुदेव बिल्कुल शान्त हैं, जैसे कोई वात ही नहीं है।

प्रधानाचार्य पद

वि. सं. २००३ लुधियाना में आप पंजाब के स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के आचार्य बनाए गए और वि. सं. २००९ में सादड़ी में आपको श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधानाचार्य पद से विभूषित किया गया। सचमुच आप का वैदुष्यपूर्ण व्यक्तित्व यत्र, तत्र और सर्वत्र ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है। क्या जैन, क्या अजैन, सभी आपकी आचार तथा विचार सम्बन्धी गरिमा की महिमा को गाते नहीं थकते थे। आज भी लोग जब आपके अगाध शास्त्रीय ज्ञान की चर्चा करते हैं तो श्रद्धा से झूम उठते हैं।

सफल प्रवचनकार

आचार्य-प्रवर अपने युग के एक सफल प्रवक्ता एवं प्रवचनकार रहे हैं। शास्त्रीय तथ्य एवं सत्य ही आपके प्रवचनों का आधार होते थे। उनसे हृदयस्पर्शी ठोस तत्त्व श्रोता को प्राप्त होता था। पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार-पटेल, श्री प्रतापसिंह कैंरो, श्री भीमसेन सच्चर प्रभृति राष्ट्र के

महान् नेताओं ने भी आपके प्रवचनों का लाभ लिया था। सचमुच आपकी वाणी में निराला माधुर्य था, सरलता इतनी कि साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी उसे अच्छी तरह समझ लेता था। आपके मंगलमय उपदेश आज भी जनजीवन को नवजागरण का सन्देश दे रहे हैं।

आत्म-शताब्दी वर्ष

वि. सं. २०३९ आपका जन्म-शताब्दी वर्ष है। यह पावन वर्ष है। ऐतिहासिक है। यह वर्ष विशेषरूप से पूज्य गुरुदेव के चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित करने का है।

स्व. गुरुदेव की जीवन की महान्तम उपलब्धि थी—जैन आगम साहित्य का विद्वानों तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी संस्करण। यही उनकी हार्दिक भावना थी कि जैनआगमज्ञान का यथार्थ प्रसार हो, जन-जन के हाथों में आगमज्ञान की मूल्यवान् मणियां पहुँचे। गुरुदेव श्री की इसी भावना को साकार रूप देने हेतु मैंने प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद-विवेचन करने का दायित्व लिया है। अपने श्रद्धेय गुरुदेव के प्रति यही मेरी श्रद्धाञ्जलि है।

—ज्ञान मुनि

सम्पादकीय

नामकरण

'पण्णवणा' अथवा 'प्रज्ञापना'[1] जैन आगमसाहित्य का चतुर्थ उपांग है। प्रस्तुत उपांग के संकलयिता श्री श्यामाचार्य ने इसका नाम[2] 'अध्ययन' दिया है, जो इसका सामान्य नाम है, इसका विशिष्ट और प्रचलित नाम 'प्रज्ञापना' है। आचार्यश्री ने स्वयं 'प्रज्ञापना' का परिचय देते हुए कहा है—'चूंकि भगवान् महावीर ने सर्वभावों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) उपदिष्ट की है; उसी प्रकार मैं भी (प्रज्ञापना) करने वाला हूँ।'[3] अतएव इसका विशेष नाम प्रज्ञापना है। 'उत्तराध्ययनसूत्र' की भांति प्रस्तुत आगम का पूर्ण और सार्थक नाम भी 'प्रज्ञापनाध्ययन' हो सकता है।

प्रज्ञापना-शब्द का उल्लेख

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा दी गई देशनाओं का वास्तविक नाम 'पन्नवेति, परूवेति' आदि क्रियाओं के आधार पर 'प्रज्ञापना' या 'प्ररूपणा' है। उन्हीं देशनाओं का आधार लेकर प्रस्तुत उपांग की रचना होने से इसका नाम 'प्रज्ञापना'[4] रखा हो, ऐसा ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त इसी उपांग में तथा अन्य अंगशास्त्रों में यत्र-तत्र प्रश्नोत्तरों में, अतिदेश में, तथा संवादों में **पण्णत्ते, पण्णत्तं, पण्णत्ता**[5] आदि शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। भगवतीसूत्र में आर्यस्कन्धक के प्रश्नों का समाधान करते हुए स्वयं भगवान् महावीर ने कहा है—[6]**एवं खलु मए खंधया ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते;** इन सब पर से भगवान् महावीर के उपदेशों के लिए 'प्रज्ञापना' शब्द का प्रयोग स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

---

१. 'नन्दीसूत्र' अंगबाह्यसूची

२. **अज्झयणमिणं चित्तं**—प्रज्ञापना. गा. ३

३. उवदंसिया भगवया पण्णवणा सव्वभावाणं....
जह वण्णियं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि ॥ —प्रज्ञापना. गाथा २-३

४. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्र १ (ख) भगवती. श. १६ उ. ६

५. यथा—**'कति णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ'**—प्रज्ञापना पद २२, सू. १५६७ इत्यादि सूत्रों में यत्रतत्र **'पण्णत्ते', पण्णत्तं या पण्णत्ता-पण्णत्ताओ'** पद मिलते हैं।

६. भगवतीसूत्र २।१।९०

प्रज्ञापना की महत्ता और विशेषता

सम्पूर्ण जैन-आगमसाहित्य में जो स्थान पंचम अंगशास्त्र—भगवती-व्याख्याप्रज्ञप्ति का है, वही उपांगशास्त्रों में प्रज्ञापना का है।[7] बल्कि भगवतीसूत्र में यत्र-तत्र अनेक स्थलों में **'जहा पण्णवणाए'** कह कर प्रज्ञापनासूत्र के १, २, ५, ६, ११, १५, १७, २४, २५, २६, और २७ वें पद से प्रस्तुत विषय की पूर्ति करने हेतु सूचना दी गई है। यह प्रज्ञापना की विशेषता है। इसके अतिरिक्त प्रज्ञापना उपांग होने पर भी भगवती आदि का सूचन इसमें क्वचित् ही किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रज्ञापना में जिन विषयों की चर्चा की गई है, उन विषयों का इसमें सांगोपांग वर्णन है। इस पर से प्रज्ञापनासूत्र की गहनता और व्यापक सिद्धान्त-प्ररूपणा स्पष्टतः परिलक्षित होती है।[8]

इसके अतिरिक्त पंचम अंगशास्त्र व्याख्याप्रज्ञप्ति का 'भगवती' विशेषण है, इसी प्रकार प्रस्तुत उपांगशास्त्र के प्रत्येक पद की समाप्ति पर [9]**'पण्णवणाए भगवईए'** कह कर प्रज्ञापना के लिए भी 'भगवती' विशेषण प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण 'प्रज्ञापना' की महत्ता का सूचक है। कहा जाता है कि भगवान् महावीर के पश्चात् २३ वें पट्टधर भगवान् आर्यश्याम पूर्वश्रुत में निष्णात थे।[10]उन्होंने प्रज्ञापना की रचना में अपनी विशिष्ट कलाकुशलता प्रदर्शित की, जिसके कारण अंग और उपांग में उन विषयों की विशेष जानकारी के लिए 'प्रज्ञापना' के अवलोकन का सूचन किया गया है।

प्रज्ञापना का अर्थ

'प्रज्ञापना' क्या है? इसके उत्तर में स्वयं शास्त्रकार ने बताया है[11]—'जीव और अजीव के सम्बन्ध में जो प्ररूपणा है, वह 'प्रज्ञापना' है।'

प्रस्तुत आगम के प्रसिद्ध वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि के अनुसार 'प्रज्ञापना' शब्द के प्रारम्भ में जो 'प्र' उपसर्ग है, वह भगवान् महावीर के उपदेश की विशेषता सूचित करता है। अर्थात्—[12]जीव, अजीव आदि तत्त्वों का जो सूक्ष्म विश्लेषण सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने किया है, उतना सूक्ष्म विश्लेषण उस युग के किन्हीं अन्यतीर्थिक धर्माचार्यों के उपदेश में उपलब्ध नहीं होता।

प्रज्ञापना का आधार

आचार्य मलयगिरि ने इस आगम को समवायांगसूत्र का उपांग[13] बताया है। उसका कारण यह प्रतीत होता है कि समवायांग में जीव, अजीव आदि तत्त्वों का मुख्यरूप से निरूपण है और

७. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भा. २ पृ. ८४

८. जैन आगम-साहित्य, मनन और मीमांसा पृ. २३०-२३१

९. 'पण्णवणासुत्तं' भा. २ प्रस्तावना

१०. (क) जैन-आगमसाहित्य मनन और मीमांसा पृ. २३१
(ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ७२, ४७, ३८५
(ग) सर्वेषामपि प्रावचनिकसूरीणां मतानि भगवान् आर्यश्याम उपदिष्टवान्—प्रज्ञापना, पृ. ३८५

११. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) पृ. १

१२. प्रज्ञापना, मलयवृत्ति पत्रांक १-२

१३. इदं च समवायाख्यस्य चतुर्थांगस्योपांगम् तदुक्तार्थप्रतिपादनात्। —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प. १

प्रज्ञापना में भी जीव, अजीव आदि तत्त्वों से सम्बन्धित वर्णन है। अतः इसे समवायांग का उपांग मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है।

प्रज्ञापनासूत्र के संकलयिता श्री श्यामाचार्य ने प्रज्ञापना को दृष्टिवाद का निष्कर्ष[14] बताया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दृष्टिवाद के विस्तृत वर्णन में से सारभूत वर्णन प्रज्ञापना में लिया गया है। दृष्टिवाद आज हमारे सामने उपलब्ध नहीं है, किन्तु सम्भव है, दृष्टिवाद में दृष्टि-दर्शन से सम्बन्धित वर्णन हो; तथापि इतना तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञापना में वर्णित विषयवस्तु का ज्ञानप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद आदि के साथ मेल खाता है।[15] षट्खण्डागम और प्रज्ञापना दोनों का विषय प्रायः मिलता जुलता है। षट्खण्डागम की धवलाटीका में षट्खण्डागम का सम्बन्ध अग्रायणीपूर्व के साथ जोड़ा गया है।[16] अतः प्रज्ञापना का सम्बन्ध भी अग्रायणीपूर्व के साथ संगत हो सकता है।

विषयवस्तु की गहनता एवं दुरूहता

दृष्टिवाद एवं पूर्वों का विषय कितना गहन और दुरूह है, यह जैनागम के अभ्यासी विद्वान् जानते हैं। उन्हीं में से साररूप में उद्धृत करना अथवा भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट सर्वभावों की प्रज्ञापना के सदृश प्रज्ञापना करना कितना कठिन और दुरूह है, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

इस पर से प्रज्ञापनासूत्र की विषयवस्तु की गहनता एवं दुरूहता का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि प्रज्ञापनासूत्र की विषयबद्ध संकलना करने में और उसे छत्तीस पदों में विभक्त करने में श्री श्यामाचार्य ने बहुत ही कुशलता का परिचय दिया है; तथापि कहीं-कहीं भंगजाल इतना जटिल है अथवा विषयवस्तु की प्ररूपणा इतनी गूढ है कि पाठक जरा-सा अनवधान-युक्त रहा कि वह विषयवस्तु के तथ्य—सत्य से दूर चला जाएगा, और वस्तुतत्त्व को नहीं पकड़ सकेगा।

प्रज्ञापना के छत्तीस पदों में से कई पद बहुत ही विस्तृत हैं, और कई पद अत्यन्त संक्षिप्त हैं। ये छत्तीस पद एक प्रकार से छत्तीस प्रतिपाद्य विषय के[17] प्रकरण हैं, जिनके लिए प्रत्येक प्रकरण के अन्त में पदशब्द का प्रयोग किया गया है।

रचनाशैली

प्रस्तुत सम्पूर्ण उपांगशास्त्र की रचना प्रश्नोत्तरशैली में हुई है। प्रारम्भ से ८१ वें सूत्र तक प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता का कोई परिचय नहीं मिलता। इसके पश्चात् गणधर गौतम और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तररूप में वर्णन किया गया है। कहीं कहीं बीच-बीच में सामान्य प्रश्नोत्तर हैं।

---

१४. अज्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं। —प्रज्ञापना. गा. ३

१५. पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना पृ. ९

१६. षट्खण्डागम १, प्रस्तावना पृ. ७२

१७. 'पदं प्रकरणमर्थाधिकारः' इति पर्यायाः—प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्र ६

जिस प्रकार प्रारम्भ में समग्रशास्त्र की अधिकारगाथाएँ दी गई है, उसी प्रकार कितने ही पदों के प्रारम्भ में विषय-संग्रहणी गाथाएँ भी प्रस्तुत की गई हैं। जैसे ३, १८, २०, एवं २३ वें पद के प्रारम्भ और उपसंहार में गाथाएँ दी गई हैं, इसी प्रकार १० वें पद के[१८] अन्त में और ग्रन्थ के मध्य में, यथावश्यक गाथाएँ दी गई हैं। इसमें प्रक्षिप्त गाथाओं को छोड़कर कुल २३१ गाथाएँ हैं और शेष गद्यपाठ है। प्रज्ञापनासूत्र में जो संग्रहणी गाथाएँ हैं, उनके रचयिता कौन हैं? इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रस्तुत संपूर्ण आगम का श्लोकप्रमाण ७८८७ है।[१९]

इसमें कहीं-कहीं सूत्रपाठ बहुत लम्बे-लम्बे हैं, कहीं अतिदेश युक्त अतिसंक्षिप्त हैं। कहीं-कहीं एक ही विषय की पुनरावृत्ति भी हुई है। प्रायः क्रमबद्ध संकलना है, परन्तु कहीं-कहीं व्युत्क्रम से भी संकलना की गई है।

प्रज्ञापना के समग्र पदों का विषय जैन सिद्धान्त से सम्मत है। भगवतीसूत्र में जैसे कई उद्देशकों या प्रकरणों के प्रारम्भ में कहीं-कहीं अन्यतीर्थिकमत देकर तदनन्तर स्वसिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, वैसे प्रस्तुत प्रज्ञापनासूत्र में नहीं दिया गया है। इसमें सर्वत्र प्रायः प्रश्नोत्तरशैली में स्वसिद्धान्तविषयक प्रश्न एवं उत्तर अंकित किये गए हैं।

आचार्यश्री मलयगिरि ने प्रज्ञापना में प्ररूपित विषयों का सम्बन्ध जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों के निरूपण के साथ इस प्रकार संयोजित किया है—

१-२	जीव-अजीव	=	पद १,३,५,१० और १३ में
३	आस्रव	=	पद १६ और २२ में
४	बन्ध	=	पद २३ में
५-६-७	संवर, निर्जरा और मोक्ष	=	पद ३६ में

इन पदों के सिवाय शेष पदों में कहीं-कहीं किसी न किसी तत्त्व का निरूपण है। आचार्य मलयगिरि ने जैन दृष्टि से द्रव्य का समावेश प्रथम पद में, क्षेत्र का द्वितीय पद में, काल का चतुर्थ पद में और भाव का शेष पदों में समावेश किया है।[२०] इस ग्रन्थ में विषयों का निरूपण पहले लक्षण बना कर नहीं किया गया, अपितु विभाग-उपविभाग द्वारा बताया गया है। अतः यह ग्रन्थ विभाग-प्रधान है। लक्षणप्रधान नहीं।[२१]

प्रज्ञापना-उपांग आर्य श्यामाचार्य की संकलना है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसमें अंकित सभी बातें उन्होंने स्वयं विचार करके प्रस्तुत की हैं। उनका प्रयोजन तो श्रुतपरम्परा में से तथ्यों का संग्रह करना और उनकी संकलना अमुक प्रकार से करना था। जैसे—प्रथम पद में जीव के जो भेद बताए हैं, उन्हीं भेदों को लेकर द्वितीय 'स्थान' आदि द्वारों को घटित करके प्रस्तुत नहीं किया बल्कि स्थान आदि द्वारों का जो विचार जिन विविध रूपों में पूर्वाचार्यों द्वारा उनके समक्ष विद्यमान था, उन्होंने उन-उन द्वारों एवं पदों में उन-उन विचारों का संग्रह एवं संकलन किया। इसलिए यह

---

१८. पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना पृ. १०-११

१९. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १ पृ. ४४६

२०. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्रांक ५

२१. पण्णवणासुत्तं भा. २ प्रस्तावना पृ. १३

कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न काल में जो विचार किया, और परम्परा से श्यामाचार्य को जो प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने संगृहीत-संकलित किया। इस दृष्टि से विचार करें तो प्रज्ञापना उस काल की विचार-परम्परा का व्यवस्थित संग्रह है। यही कारण है कि जब आगम लिपिबद्ध किये गए, तब उस-उस विषय की समग्र विचारणा के लिए प्रज्ञापनासूत्र का अतिदेश किया गया।

जैनागमों के मुख्य दो विषय हैं—जीव और कर्म। एक विचारणा जीव को केन्द्र में रखकर उसके अनेक विषयों की—(जैसे कि उसके कितने प्रकार हैं, वे कहाँ-कहाँ रहते हैं? उनका आयुष्य कितना है? वे मर कर कहाँ-कहाँ जाते हैं? कहाँ-कहाँ से किस गति या योनि में आते हैं? उनकी इन्द्रियाँ कितनी? वेद कितने? ज्ञान कितने? उनके कर्म कौन-कौन से बंधते हैं? आदि) की जाती है। दूसरी विचारणा कर्म को केन्द्र में रख कर की जाती है। जैसे कि—कर्म कितने प्रकार के हैं? विविध प्रकार के जीवों के विकास और ह्रास में उनका कितना हिस्सा है? आदि।[२२]

प्रज्ञापना में प्रथम प्रकार से विचारणा की गई है।

प्रस्तुत सम्पादन

स्थानकवासी जैनसमाज जागरूक रह कर आगमों एवं जैनसिद्धान्तों के प्रति पूर्ण श्रद्धाशील रहा है। समय-समय पर आगमों के गूढ़भावों को समझाने के लिए स्थानकवासी समाज के अनेक आगम-वेत्ताओं ने अपने युग की भाषा में उनका अनुवाद एवं विवेचन किया है। जिस समय टव्वा युग आया, उस समय आचार्य श्री धर्मसिंहजी ने सत्ताईस आगमों पर बालावबोध टव्वे लिखे, जो मूलस्पर्शी एवं शब्दार्थ को स्पष्ट करने वाले हैं। अनुवादयुग में शास्त्रोद्धारक आचार्यश्री अमोलकऋषिजी म. ने बत्तीस आगमों का हिन्दी-अनुवाद किया। पूज्य गुरुदेव श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर श्री आत्मारामजी महाराज ने अनेक आगमों का हिन्दी-अनुवाद एवं विस्तृत व्याख्या लिखी। तत्पश्चात् पूज्य श्री घासीलालजी महाराज ने संस्कृत में विस्तृत टीका हिन्दी-गुजराती-अनुवादसहित लिखी। और भी अनेक स्थलों से आगम-साहित्य प्रकाशित हुआ। किन्तु जनसाधारण को तथा वर्तमान-तर्कप्रधानयुग की जनता को संतुष्ट कर सके, ऐसे न अतिविस्तृत और न अतिसंक्षिप्त संस्करण की मांग निरन्तर बनी रही।

अतः आगममर्मज्ञ बहुश्रुत विद्वान् श्रमणसंघ के युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर' के प्रधानसम्पादन-निर्देशन में तथा पं. कन्हैयालालजी म. 'कमल' पं. देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री श्री रतन मुनि जी म. एवं पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल जैसे विद्वद्वर्य सम्पादकमण्डल के तत्त्वावधान में प्रज्ञापनासूत्र का प्रस्तुत अभिनव संस्करण अनुवादित एवं सम्पादित किया गया है।

प्रज्ञापनासूत्र के इस संस्करण की यह विशेषता है कि इसमें श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से प्रकाशित 'पण्णवणासुत्तं' के शुद्ध मूलपाठ का अनुसरण किया गया है। इससे यह लाभ हुआ कि सूत्र संख्या छत्तीस पदों की क्रमशः दी गई है। प्रत्येक सूत्र में प्रश्न को अलग पंक्ति में रखा-गया है, उत्तर अलग पंक्ति में। तथा प्रत्येक प्रकरण के शीर्षक-उपशीर्षक पृथक्-पृथक् दिये गए हैं, जिससे

---

२२. पण्णवणासुत्तं भा. २ प्रस्तावना, पृ. २०-२१

पाठक को प्रतिपाद्य विषय को ग्रहण करने में आसानी रहे। प्रत्येक परिच्छेद का मूलपाठ देने के पश्चात् सूत्र-संख्या के क्रम से उसका भाववाही अनुवाद दिया गया है। जहाँ कठिन शब्द हैं या मूल में संक्षिप्त शब्द हैं, वहाँ कोष्ठक में उनका सरल अर्थ तथा पूरा भावार्थ भी दिया गया है, ताकि पाठक को पिछले स्थलों को टटोलना न पड़े। शब्दार्थ के पश्चात् विवेच्यस्थलों का विवेचन दिया गया है। विवेचन प्रायः आचार्य मलयगिरि रचित वृत्ति को ध्यान में रख कर किया गया है। वृत्ति का पूरा का पूरा अनुसरण नहीं किया गया है। जहाँ वृत्ति में अतिविस्तार है, या प्रासंगिक विषय से हट कर चर्चा की गई है, वहाँ उसे छोड़ दिया गया है। मूल के शब्दार्थ में जो बात स्पष्ट हो गई है या स्पष्ट है, उसका विवेचन में पिष्टपेषण नहीं किया गया है। जहाँ मूलपाठ अतिविस्तृत एवं पुनरुक्त हैं, वहाँ विवेचन में उसका निष्कर्षमात्र दे दिया गया है। कहीं-कहीं मूलपाठ में उक्त विषयवस्तु को विवेचन में युक्ति-हेतुपूर्वक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। विवेचन में प्रतिपादित विषय एवं उद्धृत प्रमाणों के सन्दर्भस्थलों का उल्लेख टिप्पण में कर दिया गया है। कहीं-कहीं तत्त्वार्थसूत्र, जीवाभिगम, भगवती, कर्मग्रन्थ आदि तथा बौद्ध एवं वैदिक ग्रन्थों के तुलनात्मक टिप्पण भी दिये गए हैं।

प्रत्येक पद के प्रारम्भ में प्राथमिक अर्थ देकर पद में प्रतिपादित समस्त विषयों की समीक्षा की गई है, जिससे पाठक को समग्र पद का हार्द मालूम हो सके। पुनरुक्ति से बचने के लिए जहाँ 'जाव' 'जहा' 'एवं' आदि आगमिक पाठों के संक्षेपसूचक शब्द हैं, उनका स्पष्टीकरण प्रायः शब्दार्थ में ही दे दिया गया है। कहीं-कहीं मूलपाठ के नीचे टिप्पण में स्पष्टीकरण कर दिया गया है। प्रज्ञापना विशालकाय शास्त्र होने से हमने इसे तीन खण्डों में विभाजित कर दिया है। अन्त में, तीन परिशिष्ट देने का विचार है। एक परिशिष्ट में सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची, दूसरे परिशिष्ट में विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की सूची और तीसरे में स्थलविशेष की सूची होगी।

कृतज्ञता-प्रकाश

प्रस्तुत सम्पादन में मूलपाठ के निर्धारण एवं प्राथमिक-लेखन में आगम-प्रभाकर स्व. पुण्यविजयजी म., पं. दलसुखभाई मालवणिया एवं पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा सम्पादित पण्णवणासुत्तं भाग १-२ का उपयोग किया गया है तथा अर्थ एवं विवेचन में प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति एवं प्रमेयबोधिनी टीका का प्रायः अनुसरण किया गया है। इसकी प्रति उपलब्ध कराने में सौजन्य-मूर्ति श्री कृष्णचन्द्राचार्यजी (पंचकूला) का सहयोग स्मरणीय रहेगा। एतदर्थ उनके प्रति हम आभारी हैं। इसके अतिरिक्त अनेक आगमों, जैन-बौद्ध ग्रन्थों, पन्नवणासूत्र के थोकड़ों आदि से सहायता ली गई है, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा कर्त्तव्य है।

हम यहाँ प्रसंगवश श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य जैनागमरत्नाकर स्व. गुरुदेव पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज का पुण्यस्मरण किये बिना नहीं रह सकते; जो आजीवन आगमोद्धार के पुनीत कार्य में संलग्न रहे थे और अन्तिम समय में भी उनके आगम-निष्ठापूर्ण हृदयोद्‌गार थे—'मेरे पीछे भी श्रमणसंघीय आचार्यश्री, युवाचार्यश्री इस भगीरथ श्रुतसेवा को चलाते रहें, यही मेरी परमकृपालु शासनदेव से मंगलमयी हार्दिक प्रार्थना है।"

उनके ही द्वारा परिष्कृत आगमोद्धार के पुण्यपथ पर चल कर श्रमणसंघीय युवाचार्य पंडितरत्न मिश्रीमलजी म. सा. के नेतृत्व में हमने प्रज्ञापना जैसे दुरूह एवं गहन आगम के सम्पादन का कार्य हाथ में लिया। इस सम्पादनकार्य में मैं अपने सहयोगीजनों को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ?

आगमतत्त्वमनीषी प्रवचनप्रभाकर श्री सुमेरमुनिजी, विद्वद्वर्य पं. रत्न मुनिश्री नेमिचन्द्रजी के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने निष्ठापूर्वक इस आगमकार्य के सम्पादन में सहयोग दिया है। आगममर्मज्ञ पं. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल एवं संपादनकलाविशारद साहित्यमहारथी श्री श्रीचन्दजी सुराना की श्रुतसेवाओं को कैसे भुलाया जा सकता है? जिन्होंने इस शास्त्रराज को संशोधित-परिष्कृत करके मुद्रित करने तक का दायित्व सफलतापूर्वक निभाया है। साथ ही, मैं अपने ज्ञात-अज्ञात सहयोगियों का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर योग्य परामर्श देकर मुझे उत्साहित किया है।

अपने सम्पादन के विषय में क्या कहूँ? जैसा भी, जितना भी अच्छा से अच्छा बन सकता था, 'यावद्बुद्धिबलोदयम्' प्रज्ञापना का सम्पादन करने का मैंने प्रयत्न किया है। मैं दावा तो नहीं करता, सर्वज्ञ महापुरुषों के पुनीत सिद्धान्त-रहस्यों को खोलने का! मुझ जैसे अल्पज्ञ की भी आखिर एक सीमा है। फिर भी मुझे सात्त्विक सन्तोष अवश्य है कि आगमों के सुधी पाठकों को तथा शोधकर्त्ताओं को इस सम्पादन से अवश्य सन्तोष होगा।

जैनस्थानक
वनूड

—ज्ञान मुनि

विषयानुक्रमणिका

प्रथम प्रज्ञापनापद-पृष्ठ १-११६

द्वितीय स्थानपद : ११७-२००

तृतीय बहुवक्तव्यता (अल्प-बहुत्व) पद : १९८-२९३

चतुर्थ स्थितिपद : २९४-३५३

पंचम विशेषपद (पर्यायपद) : ३५४-४३९

अजीव-पर्याय

छठा व्युत्क्रान्तिपद : ४४०-४९४

सप्तम उच्छ्वासपद : ४९५-५०४

अष्टम संज्ञापद : ५०५-५१२

नवम योनिपद : ५१४-५२५

सिरिसामज्जवायग-विरइयं
चउत्थं उवंगं

पण्णवणासुत्तं

श्रीमत्-श्यामार्य वाचक-विरचित
चतुर्थ उपांग

प्रज्ञापनासूत्र

ॐ नमो वीतरागाय

श्रीमत्-श्यामार्य-वाचक-विरचित

चतुर्थ उपांग

पण्णवणा सुत्तं : प्रज्ञापनासूत्र

विषय-परिचय

※ प्रज्ञापना जैन आगम वाङ्मय का चतुर्थ उपांग एवं अंगवाह्यश्रुत है। इसमें ३६ पद हैं। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

※ प्रज्ञापना का प्रथम पद 'प्रज्ञापना' है। इस पद में सर्वप्रथम प्रज्ञापना के दो भेद वतला कर अजीव-प्रज्ञापना का सर्वप्रथम निरूपण किया है, तदनन्तर जीव-प्रज्ञापना का। अजीव-प्रज्ञापना में अरूपी अजीव और रूपी अजीव के भेद-प्रभेद वताए हैं। जीव-प्रज्ञापना में जीव के दो भेद संसारी और सिद्ध वताकर सिद्धों के १५ प्रकार और समय की अपेक्षा से भेद वताए हैं। फिर संसारी जीवों के भेद-प्रभेद वताए हैं। इन्द्रियों के क्रम के अनुसार एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक में सव संसारी जीवों का समावेश करके निरूपण किया है। यहाँ जीव के भेदों का नियामक तत्त्व इन्द्रियों की क्रमशः वृद्धि है।

※ दूसरे स्थानपद में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यंच, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक और सिद्ध जीवों के वासस्थान का वर्णन किया गया है। जीवों के निवासस्थान दो प्रकार के हैं—(१) जीव जहाँ जन्म लेकर मरणपर्यन्त रहता है, वह स्वस्थान और (२) प्रासंगिक वासस्थान (उपपात और समुद्घात)।

※ तृतीय अल्पवहुत्वपद है। इसमें दिशा, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, संयत, उपयोग, आहार, भाषक, परीत, पर्याप्त, सूक्ष्म, संज्ञी, भव, अस्तिकाय, चरम, जीव, क्षेत्र, वन्ध, पुद्गल और महादण्डक, इन २७ द्वारों की अपेक्षा से जीवों के अल्प-वहुत्व का विचार किया गया है।

※ चतुर्थ स्थितिपद में नैरयिक, भवनवासी, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वि-त्रि-चतुः-पंचेन्द्रिय, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जीवों की स्थिति का वर्णन है।

※ पंचम विशेषपद या पर्यायपद में चौवीस दण्डकों के क्रम से प्रथम जीवों के नैरयिक आदि विभिन्न भेद-प्रभेदों को लेकर वैमानिक देवों तक के पर्यायों की विचारणा की गई है। तत्पश्चात् अजीव-पर्याय के भेद-प्रभेद तथा अरूपी अजीव एवं रूपी अजीव के भेद-प्रभेदों की अपेक्षा से पर्यायों की संख्या की विचारणा की गई है।

※ छठे व्युत्क्रान्तिपद में बारह मुहूर्त्त और चौबीस मुहूर्त्त का उपपात और उद्वर्तन (मरण) सम्बन्धी विरहकाल क्या है ? कहाँ जीव सान्तर उत्पन्न होता है, कहाँ निरन्तर ?, एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते और मरते हैं ?, कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?, मर कर कहाँ जाते हैं ?, परभव की आयु कब बन्धती है ?, आयुबन्ध सम्बन्धी आठ आकर्ष कौन-से हैं ?, इन आठ द्वारों से जीव की प्ररूपणा की गई है।

※ सातवें उच्छ्वासपद में नैरयिक आदि के उच्छ्वास ग्रहण करने और छोड़ने के काल का वर्णन है।

※ आठवें संज्ञापद में जीव की आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ इन १० संज्ञाओं का २४ दण्डकों की अपेक्षा से निरूपण किया गया है।

※ नौवें योनिपद में जीव की शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सचित्त, अचित्त, मिश्र, संवृत, विवृत, संवृत-विवृत, कूर्मोन्नत, शंखावर्त और वंशीपत्र, इन योनियों के आश्रय से समग्र जीवों का विचार किया गया है।

※ दसवें चरम-अचरम पद में—चरम है ?, अचरम है, चरम हैं, अचरम हैं, चरमान्तप्रदेश हैं, अचरमान्त-प्रदेश हैं, इन ६ विकल्पों को लेकर २४ दण्डकों के जीवों का गत्यादि की दृष्टि से तथा विभिन्न द्रव्यों का लोक-अलोक आदि की अपेक्षा से विचार किया गया है।

※ ग्यारहवें भाषापद में भाषासम्बन्धी विचारणा करते हुए बताया है कि भाषा किस प्रकार उत्पन्न होती है ?, कहाँ पर रहती है ? उसकी आकृति किस प्रकार की है ? उसका स्वरूप तथा बोलने वाले व्यक्ति आदि प्रश्नों पर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही सत्यभाषा, मृषाभाषा, तथा सत्यामृषा और असत्यामृषा भाषा के क्रमशः दस, दस, दस और सोलह प्रकार बताए हैं। अन्त में १६ प्रकार के वचनों का उल्लेख किया है।

※ बारहवें शरीरपद में पांच शरीरों की अपेक्षा से चौबीस दण्डकों में से किसके कितने शरीर हैं ? तथा इन सभी में बद्ध-मुक्त कितने-कितने और कौन-से शरीर होते हैं ? इत्यादि सांगोपांग विवरण प्रस्तुत किया गया है।

※ तेरहवें परिणामपद में—जीव के गति आदि दस परिणामों और अजीव के बन्धन आदि दस परिणामों पर विचार किया गया है।

※ चौदहवें कषायपद में क्रोधादि चार कषाय, उनकी प्रतिष्ठा, उत्पत्ति, प्रभेद तथा उनके द्वारा कर्म-प्रकृतियों के चयोपचय एवं बन्ध की प्ररूपणा की गई है।

※ पन्द्रहवें इन्द्रियपद में दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में पांचों इन्द्रियों की संस्थान, बाहल्य आदि २४ द्वारों के माध्यम से विचारणा की गई है। दूसरे उद्देशक में इन्द्रियोपचय, इन्द्रियनिर्वर्तना, निर्वर्तनासमय, इन्द्रियलब्धि, इन्द्रिय-उपयोग आदि तथा इन्द्रियों की अवगाहना, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा आदि १२ द्वारों के माध्यम से चर्चा की गई है। अन्त में इन्द्रियों के भेद-प्रभेद का विचार प्रस्तुत किया गया है।

※ सोलहवें प्रयोगपद में सत्यमन:प्रयोग आदि १५ प्रकार के प्रयोगों का चौबीस दण्डकवर्ती जीवों की अपेक्षा से विचार किया गया है। अन्त में ५ प्रकार के गतिप्रपात के स्वरूप का चिन्तन किया गया है।

※ सत्रहवें लेश्यापद में छह उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में समकर्म, समवर्ण, समलेश्या, समवेदना, समक्रिया और समआयु नामक अधिकार हैं। दूसरे में कृष्णादि ६ लेश्याओं के आश्रय से जीवों का निरूपण किया गया है। तीसरे उद्देशक में लेश्यासम्बन्धी कतिपय प्रश्नोत्तर हैं। चतुर्थ उद्देशक में परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध, शुद्ध, अप्रशस्त, संक्लिष्ट, उष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाढ़, वर्गणा, स्थान और अल्प-बहुत्व नामक अधिकार हैं। लेश्याओं के वर्ण और स्वाद (रस) का भी वर्णन है। पांचवें में लेश्याओं के परिणाम बताए हैं और छठे उद्देशक में किस जीव के कितनी लेश्याएँ होती हैं ? इसका निरूपण है।

※ अठारहवें पद का नाम कायस्थिति है। इसमें जीव और अजीव दोनों अपनी-अपनी पर्याय में कितने काल तक रहते हैं, इसका चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। स्थितिपद और कायस्थितिपद में अन्तर यह है कि स्थितिपद में तो २४ दण्डकवर्ती जीवों की भवस्थिति—एक भव की अपेक्षा से आयुष्य का विचार है, जबकि कायस्थितिपद में जीव मर कर उसी भव में जन्म लेता रहे तो ऐसे सब भवों की परम्परा की कालमर्यादा यानी सब भवों के आयुष्य का कुल जोड़ कितना होगा ?, इसका विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त कायस्थितिपद में 'काय' शब्द से निरूपित धर्मास्तिकाय आदि का उस-उस रूप में रहने के काल (स्थिति) का भी विचार किया है। अत: इसमें जीव, गति, इन्द्रिय, योग, वेद आदि से लेकर अस्तिकाय और चरम इन द्वारों के माध्यम से विचार प्रस्तुत किया गया है।

※ उन्नीसवें सम्यक्त्वपद में २४ दण्डकवर्ती जीवों के क्रम से सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि का विचार किया गया है।

※ बीसवें अन्तक्रियापद में बताया गया है कि कौन-सा जीव अन्तक्रिया (कर्मनाश द्वारा मोक्षप्राप्ति) कर सकता है, और क्यों ? साथ ही अन्तक्रिया शब्द वर्तमान भव का अन्त करके नवीन भवप्राप्ति, (अथवा मृत्यु) के अर्थ में भी यहाँ प्रयुक्त किया गया है। और इस प्रकार की अन्तक्रिया का विचार चौबीस दण्डकवर्ती जीवों से सम्बन्धित किया गया है। कर्मों की अन्तरूप अन्तक्रिया तो एकमात्र मनुष्य ही कर सकते हैं; इसका वर्णन ६ द्वारों के माध्यम से किया गया है।

※ इक्कीसवें अवगाहना-संस्थान (या शरीर) पद में शरीर के विधि (भेद), संस्थान, प्रमाण, पुद्गलों के चय, शरीरों के पारस्परिक सम्बन्ध, उनके द्रव्य, प्रदेश, द्रव्यप्रदेशों तथा अवगाहना के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

※ बाईसवें क्रियापद में कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी व प्राणातिपातिकी, इन ५ क्रियाओं तथा इनके भेदों की अपेक्षा से समस्त संसारी जीवों का विचार किया गया है।

※ तेईसवें कर्मप्रकृतिपद में दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों में से कौन जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ? इसका विचार है। द्वितीय उद्देशक में कर्मों की उत्तरप्रकृतियों और उनके बन्ध का वर्णन है।

* चौवीसवें कर्मबन्ध पद में यह चिन्तन प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि में से किस कर्म को बांधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ?

* पच्चीसवें कर्मवेदपद में ज्ञानावरणीयादि कर्मों को बांधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ? इसका विचार किया गया है ।

* छव्वीसवें कर्मवेदबन्धपद में यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियों को बांधता है ?

* सत्ताईसवें कर्मवेदपद में—ज्ञानावरणीय आदि का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ? इसका विचार किया है ।

* अट्ठाईसवें आहारपद में दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में—सचित्ताहारी आहारार्थी कितने काल तक, किसका आहार करता है ? क्या वह सर्वात्मप्रदेशों द्वारा आहार करता है, या अमुक भाग से आहार करता है ? क्या सर्वपुद्गलों का आहार करता है ? किस रूप में उसका परिणमन होता है ? लोमाहार आदि क्या हैं ?, इसका विचार है । दूसरे उद्देशक में आहार, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि आदि तेरह अधिकार हैं ।

* उनतीसवें उपयोगपद में दो उपयोगों के प्रकार बताकर किस जीव में कितने उपयोग पाए जाते हैं ? इसका वर्णन किया है ।

* तीसवें पश्यत्तापद में भी पूर्ववत् साकारपश्यत्ता (ज्ञान) और अनाकारपश्यत्ता (दर्शन) ये दो भेद बताकर इनके प्रभेदों की अपेक्षा से जीवों का विचार किया गया है ।

* इकतीसवें संज्ञीपद में संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी की अपेक्षा से जीवों का विचार किया है ।

* बत्तीसवें संयतपद में संयत, असंयत और संयतासंयत की दृष्टि से जीवों का विचार किया गया है ।

* तेतीसवें अवधिपद में विषय, संस्थान, अभ्यन्तरावधि, वाह्यावधि, देशावधि, सर्वावधि, वृद्धि-अवधि, प्रतिपाती और अप्रतिपाती, इन द्वारों के माध्यम से विचारणा की गई है ।

* चौतीसवें प्रविचारणा (या परिचारणा) पद में अनन्तरागत आहारक, आहारविषयक आभोग-अनाभोग, आहाररूप से गृहीत पुद्गलों की अज्ञानता, अध्यवसायकथन, सम्यक्त्वप्राप्ति तथा कायस्पर्श, रूप, शब्द और मन से सम्बन्धित प्रविचारणा (विषयभोग-परिचारणा) एवं उनके अल्पबहुत्व का विचार है ।

* पैंतीसवें वेदनापद में—शीत, उष्ण, शीतोष्ण, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, शारीरिक, मानसिक, शारीरिक-मानसिक साता, असाता, साता-असाता, दुःखा, सुखा, अदुःखसुखा, आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी, निदा (चित्त की संलग्नता) एवं अनिदा नामक वेदनाओं की अपेक्षा से जीवों का विचार किया गया है ।

* छत्तीसवें समुद्घातपद के वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय, तैजस, आहारक और केवलि समुद्घात की अपेक्षा से जीवों की विचारणा की गई है । इसमें केवलिसमुद्घात का विस्तृत वर्णन है ।

□

पण्णवणासुत्तं : प्रज्ञापनासूत्र

पढमं पण्णवणापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्राथमिक

※ प्रज्ञापनासूत्र का यह प्रथम पद है, इसका नाम प्रज्ञापनापद है।

※ इसमें जैनदर्शनसम्मत जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व की प्रज्ञापना—प्रकर्षरूपेण प्ररूपणा—भेद-प्रभेद बता कर की गई है।

※ जीव-प्रज्ञापना से पूर्व अजीव-प्रज्ञापना इसलिए की गई है कि इसमें जीवतत्त्व की अपेक्षा वक्तव्य अल्प है। अजीवों के निरूपण में रूपी और अरूपी, ये भेद और इनके प्रभेद प्रस्तुत किये गए हैं। रूपी में पुद्गल द्रव्य का और अरूपी में धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्यों का समावेश हो जाता है। तथा 'अद्धासमय' के साथ 'अस्तिकाय' शब्द जुड़ा हुआ न होने पर भी वह एक स्वतन्त्र अरूपी अजीव कालद्रव्य का द्योतक तो है ही। प्रस्तुत अरूपी अजीव का प्रतिपादन करने के साथ ही यहाँ धर्मास्तिकायादि तीन को देश और प्रदेश के भेदों में विभक्त किया गया है। तत्पश्चात् रूपी अजीव के स्कन्ध से लेकर परमाणु पुद्गल तक मुख्य ४ भेद बता कर उनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के रूप में परिणत होने पर अनेक प्रभेदों का कथन किया है। साथ ही वर्णादि के परस्पर सम्बन्ध से कुल ५३० भंग होते हैं, उनका निरूपण भी यहाँ किया गया है। शास्त्रकार का आशय यही हैं कि यों प्रत्येक वर्ण आदि के अनन्त-अनन्त भेद हो सकते हैं। यहाँ मौलिक भेदों का निर्देश करके आगे शास्त्रकार ने इसी शास्त्र के पंचम विशेषपद में अजीव के पर्यायों तथा तेरहवें परिणामपद में परिणामों का विस्तृत वर्णन किया है।[1]

※ जीव-प्रज्ञापना में जीव के दो मुख्य भेदों—सिद्ध और संसारी का असंसारसमापन्न और संसारसमापन्न नाम से निर्देश किया है। तत्पश्चात् सिद्धों के १५ प्रकार तथा समय की अपेक्षा से सिद्धों का परस्पर अन्तर बताकर मुक्त होने के बाद आत्मा के परमात्मा में विलीन हो जाने के सिद्धान्त का निराकरण एवं प्रत्येक मुक्तात्मा के पृथक् अस्तित्व के सिद्धान्त का मण्डन ध्वनित किया है। इसके पश्चात् एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक प्रत्येक संसारी जीव के भेद-प्रभेदों का निरूपण करके जीव को ईश्वर का अंश न मान कर प्रत्येक जीव का अपने-आप में स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध किया है। अगर ब्रह्मैकत्व—(आत्मैकत्ववाद) माना जाए तो प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व, शुभाशुभकर्मबन्ध तथा उसके फल की एवं कर्मबन्ध से मुक्ति की व्यवस्था घटित नहीं हो सकती। यही कारण है कि शास्त्रकार ने पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय से लेकर देवयोनि तक के समस्त संसारी—संसारसमापन्न जीवों का पृथक्-पृथक् कथन किया है। इस पर से यह भी ध्वनित किया है कि चार गतियों और ८४ लक्ष योनियों या २४ दण्डकों में जब तक

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा.-१, पृ. ३ से ४५ तक (ख) पण्णवणासुत्तं भा-२, प्रथम पद की प्रस्तावना, पृ. २९ से ३६ तक।

परिभ्रमण एवं आवागमन है, तब तक संसारसमापन्नता मिट नहीं सकती। किसी देवी-देव या ईश्वर अथवा अवतार (भगवान्) के द्वारा किसी की संसार-समापन्नता मिटाई नहीं जा सकती, वह तो स्वयं की रत्नत्रय-साधना से ही मिटाई जा सकती है। मनुष्य के ज्ञानार्य दर्शनार्य एवं चारित्रार्य-रूप भेद बताकर यह स्पष्ट कर दिया है कि उपशान्तकषायत्व, क्षीणकषायत्व, सूक्ष्मसम्परायत्व, वीतरागत्व तथा केवलित्व आदि से युक्त आर्यता प्राप्त करना मनुष्य के अपने अधिकार में है, स्वकीय-पुरुषार्थ के द्वारा ही वह उच्चकोटि का आर्यत्व और सिद्धत्व प्राप्त कर सकता है।

※ पंचेन्द्रिय जीवों में नारकों और देवों की प्रज्ञापना तो अन्यत्र विस्तृतरूप में ही है, किन्तु मनुष्यों की प्रज्ञापना अन्यत्र इतनी विस्तृत रूप से नहीं है, अतएव प्रथम पद में मनुष्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो जैनदर्शन के सिद्धान्त को स्पष्ट करने में उपयोगी है।

□□

पण्णवणासुत्तं

प्रज्ञापना-सूत्र

मंगलाचरण और शास्त्रसम्बन्धी चार अनुबन्ध—

[नमो अरिहंताणं। नमो सिद्धाणं। नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं। नमो लोए सव्वसाहूणं॥]

१. ववगयजर-मरणभए सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेणं।
वंदामि जिणवरिंदं तेलोक्कगुरुं महावीरं ॥१॥

सुयरयणनिहाणं जिणवरेण भवियजणणिव्वुइकरेण।
उवदंसिया भयवया पण्णवणा सव्वभावाण ॥२॥

अज्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं।
जह वण्णियं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि ॥३॥

अरिहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में (विद्यमान) सर्व-साधुओं को नमस्कार हो।

[१. गाथाओं का अर्थ—] जरा, मृत्यु, और भय से रहित सिद्धों को त्रिविध (मन, वचन और काय से) अभिवन्दन करके त्रैलोक्यगुरु जिनवरेन्द्र श्री भगवान् महावीर को वन्दन करता हूँ ॥ १ ॥

भव्यजनों को निर्वृत्ति (निर्वाण या उसके कारणरूप रत्नत्रय का उपदेश) करने वाले जिनेश्वर भगवान् ने श्रुतरत्ननिधिरूप सर्वभावों की प्रज्ञापना का उपदेश दिया है ॥ २ ॥

दृष्टिवाद के निःस्यन्द-(निष्कर्ष=निचोड़) रूप विचित्र श्रुतरत्नरूप इस प्रज्ञापना-अध्ययन का श्रीतीर्थंकर भगवान् ने जैसा वर्णन किया है, मैं (श्यामार्य) भी उसी प्रकार वर्णन करूंगा ॥३॥

विवेचन—मंगलाचरण और शास्त्रसम्बन्धी चार अनुबन्ध—प्रस्तुत सूत्र में तीन गाथाओं द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के रचयिता श्री श्यामार्यवाचक शास्त्र के प्रारम्भ में विघ्नशान्ति-हेतु मंगलाचरण तथा प्रस्तुत शास्त्र से सम्बन्धित अनुबन्धचतुष्टय प्रस्तुत करते हैं।

मंगलाचरण का औचित्य—यह उपांग समस्त जीव, अजीव आदि पदार्थों की शिक्षा (ज्ञान) देने वाला होने से शास्त्र है और शास्त्र के प्रारम्भ में विचारक को शास्त्र में प्रवृत्त करने तथा विघ्नोपशान्ति के हेतु तीन प्रयोजनों की दृष्टि से तीन मंगलाचरण करने चाहिए। शिष्टजनों का यह आचार है कि निर्विघ्नता से शास्त्र के पारगमन के लिए आदिमंगल, ग्रहण किये हुए शास्त्रीय पदार्थ (प्ररूपण) को स्थिर करने के लिये मध्यमंगल तथा शिष्यपरम्परा से शास्त्र की विचारधारा

को सतत चालू रखने के लिए अन्तिम मंगलाचार करना चाहिए। तदनुसार प्रस्तुत में **'ववगयजरा-मरणभए०'** आदि तीन गाथाओं द्वारा शास्त्रकार ने आदिमंगल, **'कइविहे णं उवओगे पन्नत्ते?'** इत्यादि ज्ञानात्मक सूत्रपाठ द्वारा मध्यमंगल एवं....**'सुही सुहं पत्ता'** इत्यादि सिद्धाधिकारात्मक सूत्र-पाठ द्वारा अन्तमंगल प्रस्तुत किया है।[1]

अनुबन्ध चतुष्टय—शास्त्र के प्रारम्भ में समस्त भव्यों एवं बुद्धिमानों को शास्त्र में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से चार अनुबन्ध अवश्य बताने चाहिए। वे चार अनुबन्ध इस प्रकार हैं—(१) विषय, (२) अधिकारी, (३) सम्बन्ध और (४) प्रयोजन। मंगलाचरणीय गाथात्रय से ही प्रस्तुत शास्त्र के पूर्वोक्त चारों अनुबन्ध ध्वनित होते हैं।[2]

अभिधेय विषय—प्रस्तुत शास्त्र का अभिधेय विषय—श्रुतनिधिरूप सर्वभावों की प्रज्ञापना-प्ररूपणा करना है। 'प्रज्ञापना' शब्द का अर्थ ही स्पष्ट रूप से यह प्रकट कर रहा है कि 'जिसके द्वारा जीव, अजीव आदि तत्त्व प्रकर्ष रूप से ज्ञापित किये जाएँ' उसे **प्रज्ञापना** कहते हैं। यहाँ 'प्रकर्षरूप से' का तात्पर्य है—समस्त कुतीर्थिकों के प्रवर्त्तक जैसी प्ररूपणा करने में असमर्थ हैं, ऐसे वस्तुस्वरूप का यथावस्थितरूप से निरूपण करना। ज्ञापित करने का अर्थ है—शिष्य की बुद्धि में आरोपित कर देना—जमा देना।[3]

अधिकारी—इस शास्त्र के पठन-पाठन का अधिकारी वह है, जो सर्वज्ञवचनों पर श्रद्धा रखता हो, शास्त्रज्ञान में जिसकी रुचि हो, जिसे शास्त्रज्ञान एवं तत्त्वज्ञान के द्वारा अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो। ऐसा अधिकारी महाव्रती भी हो सकता है, अणुव्रती भी और सम्यग्दृष्टिसम्पन्न भी। जैसे कि कहा गया है—जो मध्यस्थ हो, बुद्धिमान् हो और तत्त्वज्ञानार्थी हो, वह श्रोता (वक्ता) पात्र है।[4]

सम्बन्ध—सम्बन्ध प्रस्तुत शास्त्र में दो प्रकार का है—(१) उपायोपेयभाव-सम्बन्ध और (२) गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध। पहला सम्बन्ध तर्क का अनुसरण करने वालों की अपेक्षा से है। वचनरूप से प्राप्त प्रकरण उपाय है और उसका परिज्ञान उपेय है। गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध केवल

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलयगिरिवृत्ति, पत्रांक २
(ख) प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं, फलादित्रितयं स्फुटम्।
मंगलं चैव शास्त्रादौ, वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥१॥
(ग) तं मंगलमाईए मज्झे पज्जंतए य सत्थस्स।
पढमं सत्थत्थाविग्घपारगमणाय निद्दिट्ठं ॥१॥
तस्सेव य थेज्जत्थं मज्झिमयं अंतिमंपि तस्सेव।
अव्वोच्छित्तिनिमित्तं सिस्सपसिस्साइवंसस्स ॥२॥

२. (क) 'प्रवृत्तिप्रयोजकज्ञानविषयत्वमनुबन्धत्वम्, विषयश्चाधिकारी च सम्बन्धश्च प्रयोजनमिति अनुबन्धचतुष्टयम्।'
(ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक. १-२

३. प्रकर्षेण-निःशेषकुतीर्थितीर्थंकरासाध्येन यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञाप्यन्ते—शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था अनयेति प्रज्ञापना। —प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १

४. मध्यस्थो बुद्धिमानर्थी श्रोता पात्रमिति स्मृतः। —प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक ७

श्रद्धानुसारी जनों की अपेक्षा से है, जिसे शास्त्रकार स्वयं आगे बताएँगे।

प्रयोजन—प्रस्तुत शास्त्र का प्रयोजन दो प्रकार का है—पर (अनन्तर) प्रयोजन और अपर (परम्पर) प्रयोजन। ये दोनों प्रयोजन भी दो-दो प्रकार के हैं—(१) शास्त्रकर्ता का पर-अपर-प्रयोजन और (२) श्रोता का पर-अपर-प्रयोजन।

शास्त्रकर्ता का प्रयोजन—द्रव्यास्तिकनय की दृष्टि से विचार करने पर 'आगम' नित्य होने से उसका कोई कर्ता है ही नहीं। जैसा कि कहा गया है[1]—'**यह द्वादशांगी कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और कभी नहीं होगी, ऐसा भी नहीं है। यह ध्रुव, नित्य और शाश्वत है**' इत्यादि। पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से विचार करने पर आगम अनित्य है, अतएव उसका कर्ता भी अवश्य होता है। वस्तुतः तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर आगम सूत्र, अर्थ और तदुभयरूप है। अतः अर्थ की अपेक्षा से नित्य और सूत्र की अपेक्षा से अनित्य होने से शास्त्र का कर्ता कथंचित् सिद्ध होता है। शास्त्रकर्ता का इस शास्त्रप्ररूपणा से अनन्तर प्रयोजन है—प्राणियों पर अनुग्रह करना और परम्परप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति। कहा भी है—'**जो व्यक्ति सर्वज्ञोक्त उपदेश द्वारा दुःखसंतप्त जीवों पर अनुग्रह करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है।**' कोई कह सकता है कि अर्थरूप आगम के प्रतिपादक अर्हत् (तीर्थंकर) भगवान् तो कृतकृत्य हो चुके हैं, उन्हें शास्त्र-प्रतिपादन से क्या प्रयोजन है? विना प्रयोजन के अर्थरूप आगम का प्रतिपादन करना वृथा है। इस शंका का समाधान यह है कि ऐसी बात नहीं है। तीर्थंकर भगवान् तीर्थंकरनामकर्म के विपाकोदय-वश अर्थागम का प्रतिपादन करते हैं। आवश्यकनिर्युक्ति में इस विषय में एक प्रश्नोत्तरी द्वारा प्रकाश डाला गया है—(प्र.) '**वह (तीर्थंकर नामकर्म) किस प्रकार से वेदन किया (भोगा) जाता है?**' (उ.) '**अग्लान भाव से धर्मदेशना देने से (उसका वेदन होता है)।**'[2] **श्रोताओं का प्रयोजन**—श्रोताओं का साक्षात् (अनन्तर) प्रयोजन है—विवक्षित अध्ययन के अर्थ का परिज्ञान होना। अर्थात् आगम श्रवण करते ही उसके अभीष्ट अर्थ का ज्ञान श्रोता को हो जाता है। परम्पराप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति। जब श्रोता विवक्षित अध्ययन का अर्थ समीचीनरूप से जान लेता है, हृदयंगम कर लेता है, तो संसार से उसे विरक्ति हो जाती है। विरक्त होकर भवभ्रमण से छुटकारा पाने हेतु वह आगमानुसार संयममार्ग में सम्यक् प्रवृत्ति करता है। संयम में प्रकर्षरूप से प्रवृत्ति और संसार से विरक्ति के कारण श्रोता के समस्त कर्मो का क्षय हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। कहा भी है—वस्तुस्वरूप के यथार्थ परिज्ञान से संसार से विरक्त जन (मोक्षानुसारी) क्रिया में संलग्न होकर निर्विघ्नता से परमगति (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं।[3]

कतिपय विशिष्ट शब्दों की व्याख्या—'**ववगय-जरमरणभए**'=जो जरा, मरण और भय से सदा के लिए मुक्त हो चुके हैं। यह सिद्धों का विशेषण है। जरा का अर्थ है—वय की हानिरूप वृद्धा-वस्था, मरण का अर्थ प्राणत्याग, और भय का अर्थ है—इहलोकभय, परलोकभय आदि सात प्रकार की भीति। सिद्ध भगवान् इनसे सर्वथा रहित हो चुके हैं। **सिद्ध**—जिन्होंने सित यानी बद्ध अष्टविध-

---

१. नन्दीसूत्र, श्रुतज्ञान-प्रकरण

२. 'तं च कहं वेइज्जइ ? अगिलाए धम्मदेसणाए उ'। —आव० निर्युक्ति

३. सम्यग्भावपरिज्ञानाद् विरक्ता भवतो जनाः।
क्रियासक्ता ह्यविघ्नेन गच्छन्ति परमां गतिम्॥

कर्मेन्धन को जाज्वल्यमान शुक्लध्यानाग्नि से ध्मात यानी दग्ध (भस्म) कर डाला है, वे सिद्ध हैं। अथवा जो सिद्ध –निष्ठितार्थ (कृतकृत्य) हो चुके हैं, वे सिद्ध हैं। या 'षिध्' धातु शास्त्र और मांगल्य अर्थ में होने से इसके दो अर्थ और निकलते हैं—(१) जो शास्ता हो चुके हैं, अथवा (२) मंगलरूपता का अनुभव कर चुके हैं वे सिद्ध हैं।[1] **जिणवरिंदं**=जो रागादि शत्रुओं को जीतते हैं, वे जिन हैं। वे चार प्रकार के हैं—श्रुतजिन, अवधिजिन, मनःपर्यायजिन और केवलिजिन। यहाँ केवलिजिन को सूचित करने के लिए 'वर' शब्द प्रयुक्त किया गया है। जिनों में जो वर यानी श्रेष्ठ हो तथा अतीत-अनागत-वर्तमानकाल के समस्त पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले केवलज्ञान से युक्त हो, वह जिनवर कहलाता है। परन्तु ऐसा जिनवर तो सामान्यकेवली भी होता है, अतः तीर्थंकरत्वसूचक पद बतलाने के लिए जिनवर के साथ 'इन्द्र' विशेषण लगाया है, जिसका अर्थ होता है—'जिनवरों के इन्द्र'। यहाँ ऋषभदेव आदि अन्य तीर्थंकरों को वन्दन न करके तीर्थंकर महावीर को ही वन्दन किया गया है, इसका कारण है—महावीर वर्तमान जिनशासन (धर्मतीर्थ) के अधिपति होने से आसन्न उपकारी हैं। **महावीरं**—जो महान् वीर हो, वह महावीर है। आध्यात्मिक क्षेत्र में वीर का अर्थ है—जो कषायादि शत्रुओं के प्रति वीरत्व=पराक्रम दिखलाता है। महावीर का 'महावीर' यह नाम परीषहों और उपसर्गों को जीतने में महावीर द्वारा प्रकट की गई असाधारण वीरता की अपेक्षा से सुरों और असुरों द्वारा दिया गया है।[2] **तेलोक्कगुरु**—भगवान् महावीर का यह विशेषण है—**तीनों लोकों के गुरु**। गुरु उसे कहते हैं, जो यथार्थरूप से प्रवचन के अर्थ का प्रतिपादन करता है। भगवान् महावीर तीनों लोकों के गुरु इसलिए थे कि उन्होंने अधोलोकनिवासी असुरकुमार आदि भवनपति देवों को, मध्यलोकवासी मनुष्यों, पशुओं, विद्याधरों, वाणव्यन्तर एवं ज्योतिष्कदेवों को, तथा ऊर्ध्वलोकवासी सौधर्म आदि वैमानिक देवों, इन्द्रों आदि को धर्मोपदेश दिया।

भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त 'जिनवरेन्द्र' 'महावीर' और 'त्रैलोक्यगुरु' ये तीनों शब्द क्रमशः उनके ज्ञानातिशय, पूजातिशय, अपायापगमातिशय एवं वचनातिशय को प्रकट करते हैं।

जिणवरेणं भगवया—सामान्य केवली भी जिन कहलाते हैं किन्तु इसके 'वर' शब्द जोड़ने से सामान्य केवलियों से भी वर—उत्तम तीर्थंकर सूचित हो सकते हैं, किन्तु छद्मस्थ-क्षीणमोह-जिन की अपेक्षा से सामान्यकेवली भी 'जिनवर' कहला सकते हैं, अतः तीर्थंकर अर्थ द्योतित करने हेतु 'भगवया' विशेषण लगाया गया। भगवान् महावीर में समग्र ऐश्वर्य (अष्ट महाप्रातिहार्य, त्रैलोक्याधिपतित्व आदि), धर्म, यश, श्री, वैराग्य एवं प्रयत्न ये[3] ६ भगवत्तत्व थे, इसलिए यहाँ 'तीर्थंकर भगवान् महावीर ने' यही अर्थ स्पष्टतः सूचित होता है।

---

१. **सितं—बद्धमष्टप्रकारं कर्मेन्धनं, ध्मातं—दग्धं जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते सिद्धाः।** यदि वा 'षिध संराद्धौ'—सिध्यन्तिस्म निष्ठितार्था भवन्तिस्म; यद्वा 'षिधु शास्त्रे मांगल्ये च'—सेधन्तेस्म—शासितारोऽभवन्, मांगल्यरूपतां वाऽनुभवन्तिस्मेति सिद्धाः।
"ध्मातं सितं येन पुराणकर्म, यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमंगलो मे॥
—प्रज्ञापना. म० वृत्ति, पत्रांक २-३

२. **अयले भयभेरवाणं खंतिखमे परीसहोवसग्गाणं। देवेहिं कए महावीर' इति।**

३. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
वैराग्यस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इतीङ्गना॥ —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक ३-४

भवियजणणिव्वुइकरेणं—इसके दो अर्थ फलित होते हैं—तथाविध अनादिपारिणामिकभाव के कारण जो सिद्धिगमनयोग्य हो, वह भव्य कहलाता है। ऐसे भव्यजनों को जो निर्वृति—निर्वाण, शान्ति या निर्वाण के कारणभूत सम्यग्दर्शनादि प्रदान करने वाले हैं। निर्वाण का एक अर्थ है—समस्त कर्ममल के दूर होने से स्वस्वरूप के लाभ से परम स्वास्थ्य। प्रश्न यह है कि ऐसे निर्वाण के हेतुभूत सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय भी केवल भव्यजनों को ही भगवान् देते हैं, यह तो एक प्रकार का पक्षपात हुआ भव्यों के प्रति। इसका समाधान यह है कि सूर्य सभी को समानभाव से प्रकाश देता है, किन्तु उस प्रकार के योग्य चक्षुष्मान् प्राणी ही उससे लाभ उठा पाते हैं, तामस खगपक्षी (उल्लू आदि) को उसका प्रकाश उपकारक नहीं होता, वैसे ही भगवान् सभी प्राणियोंको समानभाव से उपदेश देते हैं, किन्तु अभव्य जीवों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे भगवान् के उपदेश से लाभ नहीं उठा पाते। **उवदंसिया**—जैसे श्रोताओं को झटपट यथार्थवस्तुतत्त्वबोध समीप से होता है, वैसे ही भगवान् ने स्पष्ट प्रवचनों से श्रोताओं के लिए यह (प्रज्ञापना) श्रवणगोचर कर दी, उपदिष्ट की। **पण्णवणा=प्रज्ञापना**—जीवादि भाव जिस शब्दसंहति द्वारा प्रज्ञापित-प्ररूपित किये जाते हैं।[1]

प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीस पदों के नाम—

२. पण्णवणा १ ठाणाइं २ बहुवत्तव्वं ३ ठिई ४ विसेसा य ५।
वक्कंती ६ उस्सासो ७ सण्णा ८ जोणी य ९ चरिमाइं १० ॥४॥
भासा ११ सरीर १२ परिणाम १३ कसाए १४ इंदिए १५ पओगे य १६।
लेसा १७ कायठिई या १८ सम्मत्ते १९ अंतकिरिया य २० ॥५॥
ओगाहणसंठाणे २१ किरिया २२ कम्मे त्ति यावरे २३।
कम्मस्स बंधए २४ कम्मवेदए २५ वेदस्स बंधए २६ वेयवेयए २७ ॥६॥
आहारे २८ उवओगे २९ पासणया ३० सण्णि ३१ संजमे ३२ चेव।
ओही ३३ पवियारण ३४ वेयणा य ३५ तत्तो समुग्घाए ३६ ॥७॥

२. [अर्थाधिकार-संग्रहिणी गाथाओं का अर्थ—] (प्रज्ञापनासूत्र में छत्तीस पद हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—) १. प्रज्ञापना, २. स्थान, ३. बहुवक्तव्य, ४. स्थिति, ५. विशेष, ६. व्युत्क्रान्ति (उपपात-उद्वर्त्तनादि), ७. उच्छ्वास, ८. संज्ञा, ९. योनि, १०. चरम ॥४॥

११. भाषा, १२. शरीर, १३. परिणाम, १४. कषाय, १५. इन्द्रिय, १६. प्रयोग, १७. लेश्या, १८. कायस्थिति, १९. सम्यक्त्व और २०. अन्तक्रिया ॥५॥

२१. अवगाहना-संस्थान, २२. क्रिया, २३. कर्म और इसके पश्चात् २४. कर्म का बन्धक, २५. कर्म का वेदक, २६. वेद का बन्धक, २७. वेद-वेदक ॥६॥

२८. आहार, २९. उपयोग, ३०. पश्यत्ता, ४१. संज्ञी और ३२. संयम, ३३. अवधि, ३४. प्रविचारणा, ३५. तथा वेदना, एवं इसके अनन्तर ३६. समुद्घात ॥७॥

(इन सबके अंत में 'पद' शब्द जोड़ देना चाहिए।)

---

१. प्रज्ञापना. मलयवृत्ति, पत्रांक २

पढमं पण्णवणापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

३. से किं तं पण्णवणा ?

पण्णवणा दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—जीवपण्णवणा य १ अजीवपण्णवणा य २ ।

[३-प्र.] वह (पूर्वोक्त) प्रज्ञापना (का अर्थ) क्या है ?

[३-उ.] प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—जीवप्रज्ञापना और अजीव-प्रज्ञापना ।

अजीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

४. से किं तं अजीवपण्णवणा ?

अजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—रूविअजीवपण्णवणा य १ अरूविअजीवपण्णवणा य २ ।

[४-प्र.] वह अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[४-उ.] अजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—१. रूपी-अजीव-प्रज्ञापना और २. अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना ।

अरूपी-अजीव प्रज्ञापना—

५. से किं तं अरूविअजीवपण्णवणा ?

अरूविअजीवपण्णवणा दसविहा पन्नत्ता । तं जहा—धम्मत्थिकाए १ धम्मत्थिकायस्स देसे २ धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मत्थिकाए ४ अधम्मत्थिकायस्स देसे ५ अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ६, आगासत्थिकाए ७ आगासत्थिकायस्स देसे ८ आगासत्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १० । से त्तं अरूविअजीवपण्णवणा ।

[५-प्र.] वह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[५-उ.] अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना दस प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—१. धर्मास्तिकाय, २. धर्मास्तिकाय का देश, ३. धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४. अधर्मास्तिकाय, ५. अधर्मास्तिकाय का देश, ६. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ७. आकाशास्तिकाय, ८. आकाशास्तिकाय का देश, ९. आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १०. अद्धाकाल । यह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना है ।

रूपी-अजीव-प्रज्ञापना—

६. से किं तं रूविअजीवपण्णवणा ?

रूविअजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—खंधा १ खंधदेसा २ खंधप्पएसा ३ परमाणुपोग्गला ४।

[६-प्र.] वह रूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[६-उ.] रूपी-अजीव-प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१. स्कन्ध, २. स्कन्धदेश, ३. स्कन्धप्रदेश और ४. परमाणुपुद्गल।

७. ते समासतो पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा— वण्णपरिणया १ गंधपरिणया २ रसपरिणया ३ फासपरिणया ४ संठाणपरिणया ५।

७. वे (चारों) संक्षेप से पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) वर्णपरिणत, (२) गन्धपरिणत, (३) रसपरिणत, (४) स्पर्शपरिणत और (५) संस्थानपरिणत।

८. [१] जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—कालवण्णपरिणया १ नीलवण्णपरिणया २ लोहियवण्णपरिणया ३ हालिद्दवण्णपरिणया ४ सुक्किलवण्णपरिणया ५।

[८-१] जो वर्णपरिणत होते हैं, वे पांच प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) काले वर्ण के रूप में परिणत, (२) नीले वर्ण के रूप में परिणत, (३) लाल वर्ण के रूप में परिणत, (४) पीले (हारिद्र) वर्ण के रूप में परिणत, और (५) शुक्ल (श्वेत) वर्ण के रूप में परिणत।

[२] जे गंधपरिणता ते दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सुब्भिगंधपरिणता य १ दुब्भिगंधपरिणता य २।

[८-२] जो गन्धपरिणत होते हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं—(१) सुगन्ध के रूप में परिणत और (२) दुर्गन्ध के रूप में परिणत।

[३] जे रसपरिणता ते पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—तित्तरसपरिणता १ कडुयरसपरिणता २ कसायरसपरिणता ३ अंबिलरसपरिणता ४ महुररसपरिणता ५।

[८-३] जो रसपरिणत होते हैं, वे पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) तिक्त (तीखे) रस के रूप में परिणत, (२) कटु (कड़वे) रस के रूप में परिणत, (३) कषाय—(कसैले) रस के रूप में परिणत, (४) अम्ल (खट्टे) रस के रूप में परिणत और (५) मधुर (मीठे) रस के रूप परिणत।

[४] जे फासपरिणता ते अट्ठविहा पण्णत्ता। तं जहा—कक्खडफासपरिणता १ मउयफासपरिणता २ गरुयफासपरिणता ३ लहुयफासपरिणता ४ सीयफासपरिणता ५ उसिणफासपरिणता ६ निद्धफासपरिणता ७ लुक्खफासपरिणता ८।

[८-४] जो स्पर्शपरिणत होते हैं, वे आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) कर्कश (कठोर) स्पर्श के रूप में परिणत, (२) मृदु (कोमल) स्पर्श के रूप में परिणत, (३) गुरु (भारी)

स्पर्श के रूप में परिणत, (४) लघु (हलके) स्पर्श के रूप में परिणत, (५) शीत (ठंडे) स्पर्श के रूप में परिणत, (६) उष्ण (गर्म) स्पर्श के रूप में परिणत, (७) स्निग्ध (चिकने) स्पर्श के रूप में परिणत, और (८) रूक्ष (रूखे) स्पर्श के रूप में परिणत।

[५] जे संठाणपरिणता ते पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—परिमंडलसंठाणपरिणता १ वट्ट-संठाणपरिणता २ तंससंठाणपरिणता ३ चउरंससंठाणपरिणता ४ आयतसंठाणपरिणता ५। २५।

[८-५] जो संस्थानपरिणत होते हैं, वे पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) परिमण्डल-संस्थान के रूप में परिणत, (२) वृत्त (गोल) चूड़ी के संस्थान के रूप में परिणत, (३) त्र्यस्र (तिकोन) संस्थान के रूप में परिणत, (४) चतुरस्र (चोकोन) संस्थान के रूप में परिणत और (५) आयत (लम्बे) संस्थान (आकार) के रूप में परिणत। २५।

९. [१] जे वण्णओ कालवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-रसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-१] जो वर्ण से काले वर्ण के रूप में परिणत हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा से सुरभि-गन्ध-परिणत भी होते हैं, दुरभिगन्ध-परिणत भी। रस से कोई तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कोई कटुरस-परिणत भी, इसी प्रकार कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। उनमें से कोई स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत भी एवं गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्ध स्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। वे संस्थान से (आकार से) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र (त्रिकोण) संस्थान-परिणत भी, चतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं॥ २०॥

[२] जे वण्णओ नीलवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-२] जो वर्ण से नीले वर्ण में परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी; रस से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। (वे) स्पर्श से कर्कश-

स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीत-स्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। (वे) संस्थान से परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र (त्रिकोण) संस्थान-परिणत भी चतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं। २०॥

[३] जे वण्णओ लोहियवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठापरिणता वि तंससंठाणणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-३] जो वर्ण से रक्तवर्ण-परिणत हैं, उनमें से कोई गन्ध से सुगन्धपरिणत होते हैं, कोई दुर्गन्धपरिणत। (वे) रस से तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदु-स्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से—परिमण्डल संस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ॥२०॥

[४] जे वण्णओ हालिद्दवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-रसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २०।

[९-४] जो वर्ण से हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध से सुगन्ध-परिणत भी होते हैं, कोई दुर्गन्ध-परिणत भी हो सकते हैं। रस से कोई तिक्तरस-परिणत होते हैं, कोई कटुरस-परिणत भी, कोई कषायरस-परिणत भी, कोई अम्लरस-परिणत और मधुररसपरिणत भी होते हैं। स्पर्श से उनमें से कोई कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, कोई मृदुस्पर्श-परिणत एवं गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्शपरिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से कोई परिमण्डल संस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत, भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ॥ २० ॥

[५] जे वण्णओ सुक्किलवण्णपरिणता ते गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-

रसपरिणता वि, फासओो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणओो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयपसंठाणपरिणता वि २० । १०० । १ ।

[९-५] जो वर्ण से शुक्लवर्ण-परिणत होते हैं, उनमें से कोई गन्ध की अपेक्षा से सुगन्ध-परिणत भी होते हैं कोई दुर्गन्ध-परिणत भी । इसी प्रकार रस से—तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघु-स्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, और रूक्षपर्श-परिणत भी । संस्थान से—परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं । ॥ २०-१००-१ ॥

१०. [१] जे गंधओो सुब्भिगंधपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, रसओो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफास-परिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओो परिमंडल-संठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयपसंठाण-परिणता वि २३ ।

[१०-१] जो गन्ध से सुगन्ध-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं । वे रस से—तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निधस्पर्श-परिणत भी होते हैं, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी । (वे) संस्थान से—परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ॥ २३ ॥

[२] जे गंधओो दुब्भिगंधपरिणया ते वण्णओो कालवण्णपरिणया वि नीलवण्णपरिणया वि लोहियवण्णपरिणया वि हालिद्दवण्णपरिणया वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, रसतो तित्तरसपरिणया वि कडयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफास-परिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओो परिमंडल-

संठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाण-परिणया वि । २३।४६।२।

[१०-२] जो गन्ध से—दुर्गन्धपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी रक्तवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं । रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं । संस्थान से—(वे) परिमण्डल-संस्थान-परिणत होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ।। २३-४६ । २

११. [१] जे रसओ तित्तरसपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्ख-फासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणया वि चउरंससंठाणपरिणया वि आययसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-१] जो रस से तिक्तरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं । गन्ध से (वे) सुगन्ध-परिणत भी और दुर्गन्ध-परिणत भी होते हैं । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी । संस्थान से—वे परिमण्डलसंस्थानपरिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्र-संस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ।। २० ।।

[२] जे रसओ कडुयरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्ख-फासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-२] जो रस से—कटुरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी होते हैं और शुक्लवर्ण-परिणत भी । गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी । स्पर्श से—कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी

उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र-संस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी एवं आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ॥ २० ॥

[३] जे रसओ कसायरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २०।

[११-३] जो रस से कषायरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील वर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं, दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से—कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से—परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी त्र्यसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी एवं आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ॥ २० ॥

[४] जे रसओ अंबिलरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि, चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २०।

[११-४] जो रस से अम्लरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत भी तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। वे गन्ध से सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से-कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थानसंस्थित भी होते हैं, वृत्तसंस्थानसंस्थित भी, त्र्यस्रसंस्थानसंस्थित भी, चतुरस्रसंस्थानसंस्थित भी एवं आयतसंस्थानसंस्थित भी होते हैं।

[५] जे रसओ महुररसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवणपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि

लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणश्रो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि श्राययसंठाणपरिणता वि २०।१००।३।

[११-५] जो रस से मधुररसपरिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी होते हैं, तथा पीतवर्ण-परिणत भी श्रोर शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं श्रोर दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते हैं; मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी हैं, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी तथैव स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत होते हैं वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थानपरिणत भी श्रोर आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं। २०। १००। ३।

१२. [१] जे फासतो कक्खडफासपरिणता ते वण्णश्रो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्ण-परिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधश्रो सुब्भि-गंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसश्रो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरस-परिणता वि श्रंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणश्रो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि श्राययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-१] जो स्पर्श से कर्कशस्पर्शपरिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी, श्रोर शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, काषायरसपरिणत भी, श्रम्लरस-परिणत भी श्रोर मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श (वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी श्रोर उष्णस्पर्श-परिणत भी, एवं स्निग्धस्पर्श-परिणत भी तथा रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी श्रोर चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं, तथा श्रायतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ।।२३।।

[२] जे फासतो मउयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसश्रो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि श्रंबिलरस परिणता वि महुररसपरिणता वि, फासश्रो गरुयफासपरिणया वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणश्रो परिमंडलसंठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि श्राययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-२] जो स्पर्श से मृदु (कोमल)-स्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी एवं शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। (वे) गन्ध से—सुगन्धपरिणत भी और दुर्गन्धपरिणत भी होते हैं। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, काषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श से—(वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान से—परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते हैं, तथा आयतसंस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[३] जे फासतो गरुयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणया वि २३ ।

[१२-३] जो स्पर्श से गुरुस्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से—सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्ण-स्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत, तथा चतुरस्रसंस्थानपरिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[४] जे फासतो लहुयफासपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणया वि सीयफास-परिणया वि उसिणफासपरिणया वि णिद्धफासपरिणया वि लुक्खफासपरिणया वि, संठाणतो परिमंडल-संठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणया वि चउरंससंठाणपरिणया वि आययसंठाण-परिणया वि २३ ।

[१२-४] जो स्पर्श की अपेक्षा से—लघु (हलके) स्पर्श से परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं; नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी एवं शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और

दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वें) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी और स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और चतुरस्र-संस्थान-परिणत भी होते हैं तथा आयतसंस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[५] जे फासतो सीयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-५] जो स्पर्श की अपेक्षा से—शीतस्पर्शपरिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं, और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—वे तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी और अम्लरस-परिणत भी तथा मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी तथा आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ।।२३।।

[६] जे फासतो उसिणफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणया वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-६] जो स्पर्श से उष्णस्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी, होते हैं, तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी

तथा अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। तथा संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्र-संस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसंस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[७] जे फासतो णिद्धफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-७] जो स्पर्श से स्निग्धस्पर्श-परिणत हैं, वर्ण की अपेक्षा से वे—कृष्णवर्ण-परिणत भी, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, काषायरस-परिणत भी एवं अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—वे कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी और आयातसंस्थान-परिणत भी होते हैं ।।२३।।

[८] जे फासतो लुक्खफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणया वि चउरंससंठाणपरिणया वि आययसंठाणपरिणता वि २३।१८४।८।।

[१२-८] जो स्पर्श से रूक्षस्पर्शपरिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी होते हैं तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस की अपेक्षा से—वे तिक्तरस-परिणत भी होते हैं; कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुरस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी होते हैं तथा शीतस्पर्श-परिणत

भी होते हैं और उष्णस्पर्शपरिणत भी। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थानपरिणत भी होते हैं, वृत्त-संस्थानपरिणत भी, त्र्यस्रसंस्थानपरिणत भी होते हैं और चतुरस्रसंस्थानपरिणत भी, तथा आयत-संस्थानपरिणत भी होते हैं ।।२३।१८४।८।।

१३. [१] जे संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्ण-परिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भि-गंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरस-परिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफास-परिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-१] जो संस्थान की अपेक्षा से—परिमण्डलसंस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्ण-वर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीत-वर्णपरिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से— (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं ।।२०।।

[२] जे संठाणओ वट्टसंठाणपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-२] जो संस्थान की अपेक्षा से—वृत्तसंस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्णपरिणत भी होते हैं, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी, और शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। (वे) रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कश-स्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदु-स्पर्शपरिणत भी, गुरु-स्पर्शपरिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी ।।२०।।

[३] जे संठाणतो तंससंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि

अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-३] जो संस्थान की अपेक्षा से—त्र्यस्रसंस्थान-परिणत हैं, वे वर्णतः—कृष्णवर्णपरिणत हैं, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीववर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते हैं। गन्धतः (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रसतः (वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी होते हैं और मधुररसपरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते है, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी, लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी और उष्णस्पर्शपरिणत भी तथा स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्शपरिणत भी ॥२०॥

[४] जे संठाणओ चउरंससंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंध-परिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-४] जो संस्थान से चतुरस्रसंस्थानपरिणत हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्णपरिणत भी होते हैं, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी होते हैं और मधुररसपरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी, लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी और स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा रूक्षस्पर्शपरिणत भी ॥२०॥

[५] जे संठाणतो आयतसंठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।१००।५। से त्तं रूविअजीवपण्णवणा । से त्तं अजीवपण्णवणा ।

[१३-५] जो संस्थान की अपेक्षा से आयतसंस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरसपरिणत भी,

अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं ॥२०॥१००। ५॥

यह हुई वह (पूर्वोक्त) रूपी-अजीव-प्रज्ञापना। इस प्रकार अजीव-प्रज्ञापना का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रज्ञापना : दो प्रकार तथा द्विविध अजीव-प्रज्ञापना का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ३ से १३ तक) में प्रज्ञापना के जीव-अजीव सम्बन्धी मुख्य दो प्रकार, तत्पश्चात् अजीव-प्रज्ञापना के अरूपी और रूपी के भेद से दो प्रकार और उनके विविध विकल्पों (भंगों) का निरूपण किया गया है।

प्रथम प्रज्ञापनापद : प्रश्नकर्ता कौन, उत्तरदाता कौन ? प्रज्ञापनासूत्र के रचयिता श्री श्यामार्य-(श्यामाचार्य) वाचक हैं, उन्होंने प्रारम्भ में सामान्यरूप से किसी अनाग्रही, मध्यस्थ, बुद्धिमान् एवं तत्त्वज्ञानार्थी श्रोता या जिज्ञासु की ओर से स्वयं प्रश्न उठाए हैं और आगे अनेक स्थलों या पदों में श्री गौतम गणधर द्वारा प्रश्न उठाए हैं, तथा उत्तर भगवान् महावीर की ओर से प्रस्तुत किये हैं। यद्यपि साक्षात् गौतम गणधर या कोई मध्यस्थ प्रश्नकर्त्ता तथा भगवान् महावीर जैसे उत्तरदाता यहाँ नहीं है, किन्तु '**अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं**' (शास्त्रोक्त अर्थ का कथन अर्हन्त करते हैं और गणधर सूत्ररूप में उसका कुशलतापूर्वक ग्रथन (रचना) करते हैं।) इस न्याय से परम्परागत शास्त्रप्रतिपादित अर्थ तीर्थंकर भगवान् महावीर और गौतमादि गणधरों से ही आयात है, इसलिए तथा सारा शास्त्रीयज्ञान तीर्थंकरों और गणधरों का है, मैं तो उसकी केवल संकलना करने वाला हूँ, इस प्रकार अपनी नम्रता प्रदर्शित करने के लिए, तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों की प्रश्नोत्तर-रूप में प्ररूपणा करना युक्तियुक्त ही है। यह शास्त्र कहाँ से उद्धृत किया गया है? इसमें प्रतिपादित अर्थ किन-किन के द्वारा वर्णित है? यह दूसरी, तीसरी मंगलाचरणगाथा में स्पष्ट कह दिया है।

प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप—प्रज्ञापना क्या है ? यह प्रश्न या इस प्रकार के शास्त्रीय-शैली के प्रश्नों का फलितार्थ यह है कि प्रज्ञापना या अन्य विवक्षित तत्त्वों का प्रकारात्मक स्वरूप क्या है? प्रज्ञापना का व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ या स्वरूप तो पहले प्रतिपादित किया जा चुका है। वास्तव में जीव और अजीव से सम्बन्धित समस्त पदार्थों या तत्त्वों को शिष्य या तत्त्वजिज्ञासु की बुद्धि में स्थापित कर देना ही प्रज्ञापना का अर्थ या स्वरूप है।[1]

जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना—समस्त चेतनाशील एवं उपयोग वाले जीव कहलाते हैं, जिनमें चेतना नहीं होती, उपयोग नहीं होता, वे सब अजीव कहलाते हैं। जीवों की प्रज्ञापना में इन्द्रियों तथा विभिन्न गतियों एवं योनियों की दृष्टि से जीवों का वर्गीकरण करके उनके

---

१. (क) '**मध्यस्थो बुद्धिमानर्थी, श्रोता पात्रमिति स्मृतः।**'

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७

(ग) '**प्रकर्षेण यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञाप्यन्ते-शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था अनयेति प्रज्ञापना।**' —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प. १

भेद-प्रभेद प्रस्तुत किये गए हैं तथा अजीवप्रज्ञापना में अरूपी और रूपी अजीवों के भेद-प्रभेदों का वर्गीकरण तथा विविध वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान के एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होने से होने वाले विकल्प (भंग) भी प्रस्तुत किये गए हैं। वैसे देखा जाए तो जीव और अजीव इन दोनों के निमित्त से होने वाले विभिन्न तत्त्वों या पदार्थों का ही विश्लेषण समग्र प्रज्ञापनासूत्र में है। **जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना** ये दो ही प्रस्तुत शास्त्र के समस्त पदों (अध्ययनों) की मूल आधारभूमि हैं।[1]

रूपी अजीव की परिभाषा—जिनमें रूप हो, वे रूपी कहलाते हैं। यहाँ रूप के ग्रहण से, उपलक्षण से शेष रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान का भी ग्रहण कर लेना चाहिए; क्योंकि रस-गन्धादि के बिना अकेले रूप का अस्तित्व सम्भव नहीं है। प्रत्येक परमाणु रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाला होता है। केवल परमाणु को ही लीजिए, वह भी कारण ही है, कार्य नहीं तथा वह अन्तिम, सूक्ष्म, और द्रव्य रूप से नित्य तथा पर्यायरूप से अनित्य तथा उसमें एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श होते हैं। वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष से ज्ञात नहीं होता, केवल स्कन्धरूप कार्य से उसका अनुमान होता है। अथवा रूप का अर्थ है—स्पर्श, रूप आदिमय मूर्ति, वह जिनमें हो, वे मूर्तिक या रूपी कहलाते हैं। संसार में जितनी भी रूपादिमान् अजीव वस्तुएँ हैं, वे सब रूपी अजीव में परिगणित हैं।

अरूपी अजीव की परिभाषा—जिनमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि न हों, वे सब अचेतन पदार्थ अरूपी अजीव कहलाते हैं। अरूपी अजीव के मुख्य दस भेद होने से उसकी प्रज्ञापना—प्ररूपणा भी दस प्रकार की कही गई है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीनों के स्कन्ध, देश और प्रदेश तथा अद्धाकाल, यों कुल १० भेद होते हैं।[2]

धर्मास्तिकाय आदि की परिभाषा—धर्मास्तिकाय—स्वयं गतिपरिणाम में परिणत जीवों और पुद्गलों की गति में जो निमित्त कारण हो, जीवों-पुद्गलों के गतिरूपस्वभाव का जो धारण-पोषण करता हो, वह धर्म कहलाता है। अस्ति का अर्थ यहाँ प्रदेश है, उन (अस्तियों) का काय अर्थात् संघात (प्रदेशों का समूह) अस्तिकाय है। धर्मरूप अस्तिकाय **धर्मास्तिकाय** कहलाता है। धर्मास्तिकाय कहने से असंख्यातप्रदेशी धर्मास्तिकाय रूप अवयवी द्रव्य का बोध होता है। अवयवी अवयवों के तथारूप-संघातपरिणाम विशेषरूप होता है, किन्तु अवयवों से पृथक् अर्थान्तर द्रव्य नहीं होता। **धर्मास्तिकाय का देश**—उसी धर्मास्तिकाय का बुद्धि द्वारा कल्पित दो, तीन आदि प्रदेशात्मक विभाग। **धर्मास्तिकाय का प्रदेश**—धर्मास्तिकाय का बुद्धिकल्पित प्रकृष्ट देश, प्रदेश—जिसका फिर विभाग न हो सके, ऐसा निर्विभाग विभाग।

अधर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय का प्रतिपक्षभूत अधर्मास्तिकाय है। अर्थात्—स्थितिपरिणाम में परिणत जीवों और पुद्गलों की स्थित में जो सहायक हो, ऐसा अमूर्त्त, असंख्यातप्रदेशसंघातात्मक द्रव्य **अधर्मास्तिकाय** है। **अधर्मास्तिकाय का देश, प्रदेश**—अधर्मास्तिकाय का बुद्धिकल्पित द्विप्रदेशात्मक आदि खण्ड अधर्मास्तिकायदेश, एवं उसका सबसे सूक्ष्म विभाग, जिसका फिर दूसरा विभाग न हो सके वह अधर्मास्तिकाय-प्रदेश है। धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असंख्यात हैं, लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं।

---

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. १२ से ४५ तक

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ८

आकाशास्तिकाय—जिसमें अवस्थित पदार्थ (आ=मर्यादा से) अपने स्वभाव का परित्याग किये विना (प्र)काशित स्वरूप से प्रतिभासित होते हैं, वह आकाश है; अथवा जो सब पदार्थों में अभिव्याप्त होकर प्रकाशित होता (रहता) है, वह आकाश है। अस्तिकाय का अर्थ—प्रदेशों का संघात है। आकाशरूप अस्तिकाय को **आकाशास्तिकाय** कहते हैं। आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश का अर्थ पूर्ववत् है। यद्यपि लोकाकाश असंख्यातप्रदेशात्मक है, किन्तु अलोकाकाश अनन्त है, इस दृष्टि से आकाशास्तिकाय के प्रदेश अनन्त हैं।

अद्धासमय—अद्धा कहते हैं—काल को। अद्धारूप समय अद्धासमय है। अथवा अद्धा (काल) का समय अर्थात् निर्विभाग भाग (अंश) 'अद्धासमय' कहलाता है। परमार्थ दृष्टि से वर्त्तमान काल का एक ही समय 'सत्' होता है; अतीत और अनागत काल के समय नहीं; क्योंकि अतीतकाल के समय नष्ट हो चुके हैं और अनागतकाल के समय अभी उत्पन्न ही नहीं हुए। अतएव काल में देश-प्रदेशों के संघात की कल्पना नहीं हो सकती। असंख्यात समयों के समूहरूप आवलिका आदि की कल्पना केवल व्यवहार के लिए की गई है।

स्कन्ध आदि की व्याख्या—स्कन्ध—व्युत्पत्ति के अनुसार स्कन्ध का अर्थ होता है—जो पुद्गल अन्य पुद्गलों के मिलने से पुष्ट होते हैं—बढ़ जाते हैं, तथा विघटन हो जाने—हट जाने या पृथक् हो जाने से घट जाते हैं, वे स्कन्ध हैं। 'स्कन्ध' शब्द में बहुवचन का प्रयोग पुद्गल-स्कन्धों की अनन्तता बताने के लिए है, क्योंकि आगमों में स्कन्ध अनन्त बताए गए हैं। **स्कन्धदेश**—स्कन्धरूप परिणाम को नहीं त्यागने वाले स्कन्धों के ही बुद्धिकल्पित द्विप्रदेशी आदि (द्विप्रदेश से लेकर अनन्तप्रदेश तक) विभाग स्कन्धदेश कहलाते हैं। यहाँ भी स्कन्धदेश के लिए बहुवचनान्त प्रयोग तथाविध अनन्तानन्त-प्रदेशी स्कन्धों में, अनन्त स्कन्धदेश भी हो सकते हैं, इसे सूचित करने हेतु है।

स्कन्ध-प्रदेश—स्कन्धों के बुद्धिकल्पित प्रकृष्ट देश को अर्थात्—स्कन्ध में मिले हुए निर्विभाग अंश (परमाणु) को स्कन्धप्रदेश कहते हैं। **परमाणु-पुद्गल**—निर्विभागद्रव्य (जिनके विभाग न हो सकें, ऐसे पुद्गलद्रव्य) रूप परम अणु, परमाणु-पुद्गल कहलाते हैं। परमाणु स्कन्ध में मिले हुए नहीं होते, वे स्वतन्त्र पुद्गल होते हैं।[1]

वर्णादिपरिणत स्कन्धादि चार—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुपुद्गल ये चारों रूपी-अजीव संक्षेपतः प्रत्येक पांच-पांच प्रकार के कहे गए हैं। यथा—जो वर्णरूप में परिणत हों वे वर्णपरिणत कहलाते हैं। इसी प्रकार गन्धपरिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और संस्थानपरिणत भी समझ लेना चाहिए। 'परिणत' शब्द अतीतकाल का निर्देशक होते हुए भी उपलक्षण से वर्तमान और भविष्यत्काल का भी सूचक है, क्योंकि वर्तमान और अनागत के विना अतीतत्व सम्भव नहीं है। जो वर्तमानत्व का अतिक्रमण कर जाता है, वही अतीत होता है, और वर्तमानत्व का वही अनुभव करता है, जो अभी अनागत भी है—जो अभी वर्तमानत्व को प्राप्त है, वही अतीत होता है, और जो वर्तमानत्व को प्राप्त करेगा, वही अनागत है। इस दृष्टि से **वर्णपरिणत** का अर्थ है—वर्णरूप में जो परिणत हो चुके हैं, परिणत होते हैं, और परिणत होंगे। इसी प्रकार गन्धपरिणत आदि का त्रिकालसूचक अर्थ समझ लेना चाहिए।

वर्णपरिणत आदि पुद्गलों के भेद तथा उनकी व्याख्या—वर्णपरिणत के ५ प्रकार—वर्णरूप में परिणत, जो पुद्गल हैं, वे ५ प्रकार के हैं—(१) कोई काजल आदि के समान काले होते हैं, वे

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ८-९-१०

कृष्णवर्णपरिणत, (२) कोई नील या मोर की गर्दन आदि के समान नीले रंग के होते हैं, वे **नीलवर्ण-परिणत,** (३) कोई हींगलू आदि के समान लाल रंग के होते हैं, वे **लोहित (रक्त) वर्णपरिणत,** (४) कोई हलदी आदि के समान पीले रंग के होते हैं, वे **हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत,** (५) शंख आदि के समान कोई पुद्गल श्वेत रंग के होते हैं, वे **शुक्लवर्णपरिणत** हैं।

गन्धपरिणत के दो प्रकार—कोई पुद्गल चन्दनादि अनुकूल सामग्री मिलने से सुगन्ध वाले हो जाते हैं, वे **सुगन्धपरिणत** और कोई लहसुन आदि के समान सामग्री मिलने से दुर्गन्ध वाले हो जाते हैं, वे **दुर्गन्धपरिणत** हो जाते हैं।

रसपरिणत पुद्गलों के पांच प्रकार—(१) कोई मिर्च आदि के समान तिक्त (तीखे या चटपटे) रस वाले होते हैं, (२) कोई नीम, चिरायता आदि के समान कटुरस वाले होते हैं, (३) कोई हरड आदि के समान कसैले (कषाय) रस वाले होते हैं, (४) कोई इमली आदि के समान खट्टे (अम्ल) रस वाले होते हैं और (५) कोई शक्कर आदि के समान मधुर (मीठे) रस वाले होते हैं।

स्पर्शपरिणत पुद्गलों के आठ प्रकार—(१) कोई पाषाण आदि के समान कठोरस्पर्श वाले, (२) कोई आक की रुई या रेशम के समान कोमल स्पर्श वाले, (३) कोई वज्र या लोह आदि के समान भारी (गुरु स्पर्श वाले) होते हैं, तो (४) कोई पुद्गल सेमल की रुई आदि के समान हलके (लघुस्पर्श वाले) होते हैं। (५) कोई मृणाल, कदलीवृक्ष आदि के समान ठण्डे (शीतस्पर्श वाले) होते हैं, तो कोई (६) अग्नि आदि के समान गर्म (उष्णस्पर्श वाले) होते हैं। (७) कोई घी आदि के समान चिकने (स्निग्धस्पर्श वाले) होते हैं तो (८) कोई राख आदि के समान रूखे (रूक्षस्पर्श वाले) होते हैं।

संस्थानपरिणत के पांच प्रकार—(१) कोई पुद्गल वलय (कड़ा-चूड़ी) आदि के समान परिमण्डलसंस्थान (आकार) के होते हैं, जैसे—○। (२) कोई चाक, थाली आदि के समान वृत्त (गोल) संस्थान वाले होते हैं, यथा कोई सिंघाड़े के समान तिकोने (त्र्यस्र) आकार के होते हैं, यथा—△। (४) कोई कुम्भिका आदि के समान चौकोर आकार के (चतुरस्रसंस्थान के) होते हैं, यथा—□। और कोई पुद्गल दण्ड आदि के समान आयत संस्थान के होते हैं, यथा—▭।

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थानों के पारस्परिक सम्बन्ध से समुत्पन्न भंगजाल—अब शास्त्रकार पूर्वोक्त वर्णादि से युक्त स्कन्धादिचतुष्टय के पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले भंग-जाल की प्ररूपणा करते हैं। अर्थात्—प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से परिणत स्कन्धादि पुद्गलों के साथ जब अन्य वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थानों की अपेक्षा से यथायोग्य सम्बन्ध होता है तब जो भंग (विकल्प) होते हैं, उन्हीं का निरूपण यहाँ किया गया है।

(१) जो पांच वर्णों में से किसी भी एक वर्ण के रूप में परिणत है, वे ही यदि दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श एवं पांच संस्थानों में से किसी एक के स्वरूप में परिणत हों तो पांचों वर्णो के २०+२०+२०+२०+२०=१०० भंग हो जाते हैं।

(२) दो गन्धों में प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पांच वर्ण, पांच रस, आठ स्पर्श और पांच संस्थानों की अपेक्षा से परिणत हों तो उन दोनों गन्धों के २३+२३=४६ भंग हो जाते हैं।

(३) पांच रसों में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श और पांच संस्थानों के रूप से परिणत हों तो उन पांचों के २०+२०+२०+२०+२० = १०० भंग हो जाते हैं।

(४) आठ स्पर्शों में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, छह स्पर्श (प्रतिपक्षी और स्व स्पर्श को छोड़कर) तथा पांच संस्थानों के रूप से परिणत हों, तो उनके २३+२३+२३+२३+२३+२३+२३+२३ = १८४ भंग हो जाते हैं।

(५) पांच संस्थानों में से प्रत्येक के रूप में परिणत पुद्गल, यदि पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस तथा आठ स्पर्शों के रूप से परिणत हों तो उनके २०+२०+२०+२०+२० = १०० भंग होते हैं। इस प्रकार वर्णादि पांचों के पारस्परिक सम्बन्ध की अपेक्षा से १००+४६+१००+१८४ +१०० = कुल ५३० भंग (विकल्प) निष्पन्न होते हैं।

इसे स्पष्टरूप से समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—मान लो, कुछ स्कन्धरूप पुद्गल काले वर्ण वाले हैं, यानी कृष्णवर्ण के रूप में परिणत हैं, उनमें से गन्ध की अपेक्षा से कोई सुगन्धवाले होते हैं, कोई दुर्गन्ध वाले भी होते हैं। रस की अपेक्षा से—वे तिक्त रस वाले भी हो सकते हैं, कटुरस वाले भी, कषायरस वाले भी, अम्लरस वाले भी और मधुररस वाले भी—होने संभव हैं। स्पर्श की दृष्टि से सोचें तो वे कर्कश आदि आठों ही स्पर्शों में से कोई न कोई किसी न किसी स्पर्श के हो सकते हैं। संस्थान की अपेक्षा से विचार किया जाए तो वे कृष्णवर्ण-परिणत पुद्गल परिमण्डल भी होते हैं, वृत्त भी, त्रिकोण भी, चतुष्कोण भी और आयत आकार के भी होते हैं। इस प्रकार एक कृष्णवर्णीय पुद्गल के साथ प्रत्येक गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से २० भंग हो जाते हैं। इसी तरह पूर्वोक्त सभी भंगों का विचार कर लेना चाहिए।

विकल्पों की संख्या स्थूल दृष्टि से, सूक्ष्मदृष्टि से नहीं—यद्यपि वादरस्कन्धों में पांचों वर्ण, दोनों गन्ध, पांचों रस पाए जाते हैं, अतएव अधिकृत वर्ण आदि के सिवाय शेष वर्ण आदि से भी भंग (विकल्प) हो सकते हैं, तथापि उन्हीं वादर स्कन्धों में जो व्यावहारिक दृष्टि से केवल कृष्णवर्णादि से युक्त बीच के स्कन्ध हैं, जैसे—देहस्कन्ध में ही एक नेत्रस्कन्ध काला है, तदन्तर्गत ही कोई लाल है, दूसरा अन्तर्गत ही शुक्ल है, उन्हीं की यहाँ विवक्षा की गई है। उनमें दूसरे वर्णादि संभव नहीं हैं। स्पर्श की प्ररूपणा में, प्रतिपक्षी स्पर्श को छोड़कर किसी एक स्पर्श के साथ अन्य स्पर्श भी देखे जाते हैं। अतएव यहां जो भंगों की संख्या बताई गई है, वह युक्तियुक्त है। किन्तु यह विकल्पसंख्या स्थूलदृष्टि से ही समझनी चाहिए। सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाए तो तरतमता की अपेक्षा से इनमें से प्रत्येक के अनन्त-अनन्त भेद होने के कारण अनन्त विकल्प हो सकते हैं।

वर्णादि परिणामों का अवस्थान जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक रहता है।[1]

जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

१४. से किं तं जीवपण्णवणा ?

जीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—संसारसमावण्णजीवपण्णवणा य १ असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य २।

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १०, १७-१८

[१४ प्र] वह (पूर्वोक्त) जीवप्रज्ञापना क्या है ?

[१४ उ.] जीवप्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) संसार-समापन्न (संसारी) जीवों की प्रज्ञापना और (२) असंसार-समापन्न (मुक्त) जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—प्रस्तुत सूत्र १४ से जीवों की प्रज्ञापना प्रारम्भ होती है, जो सू. १४७ में पूर्ण होती है। इस सूत्र में जीव-प्रज्ञापना का उपक्रम और उसके दो प्रकार बताए गए हैं।

जीव की परिभाषा—जो जीते हैं, प्राणों को धारण करते हैं, वे जीव कहलाते हैं। प्राण दो प्रकार के हैं—द्रव्यप्राण और भावप्राण। द्रव्यप्राण १० हैं—पांच इन्द्रियां, तीन बल—मन-वचन-काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्यबल प्राण। भावप्राण चार हैं—ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य। संसार-समापन्न समस्त जीव यथायोग्य भावप्राणों से तथा द्रव्यप्राणों से युक्त होते हैं। जो असंसारसमापन्न—सिद्ध होते हैं, वे केवल भावप्राणों से युक्त हैं।[1]

संसारसमापन्न और असंसारसमापन्न की व्याख्या—संसार का अर्थ है संसार-परिभ्रमण, जो कि नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवभवानुभवरूप है, उक्त संसार को जो प्राप्त हैं, वे जीव संसारसमापन्न हैं, अर्थात्—संसारवर्ती जीव हैं। जो संसार-भवभ्रमण से रहित हैं, वे जीव असंसारसमापन्न हैं।[2]

असंसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और भेद-प्रभेद—

१५. से किं तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य १ परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य २ ?

[१५ प्र.] वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१५ उ.] असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१—अनन्तरसिद्ध-असंसार-समापन्नजीव-प्रज्ञापना और २-परम्परासिद्ध-असंसार-समापन्नजीव-प्रज्ञापना।

१६. से किं तं अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा पन्नरसविहा पन्नत्ता। तं जहा—तित्थसिद्धा १ अतित्थसिद्धा २ तित्थगरसिद्धा ३ अतित्थगरसिद्धा ४ सयंबुद्धसिद्धा ५ पत्तेयबुद्धसिद्धा ६ बुद्धबोहियसिद्धा ७ इत्थीलिंगसिद्धा ८ पुरिसलिंगसिद्धा ९ नपुंसकलिंगसिद्धा १० सलिंगसिद्धा ११ अण्णलिंगसिद्धा १२ गिहिलिंगसिद्धा १३ एगसिद्धा १४ अणेगसिद्धा १५। से त्तं अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[१६ प्र.] वह अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१६ उ.] अनन्तर-सिद्ध-असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना पन्द्रह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) तीर्थसिद्ध, (२) अतीर्थसिद्ध, (३) तीर्थंकरसिद्ध, (४) अतीर्थंकरसिद्ध, (५) स्वयं-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १८

बुद्धसिद्ध, (६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध, (७) बुद्धबोधितसिद्ध, (८) स्त्रीलिंगसिद्ध, (९) पुरुषलिंगसिद्ध, (१०) नपुंसकलिंगसिद्ध, (११) स्वलिंगसिद्ध, (१२) अन्यलिंगसिद्ध, (१३) गृहस्थलिंगसिद्ध, (१४) एकसिद्ध और (१५) अनेकसिद्ध । यह है—अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) ।

१७. से किं तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—अपढमसमयसिद्धा दुसमयसिद्धा तिसमयसिद्धा चउसमयसिद्धा जाव संखेज्जसमयसिद्धा असंखेज्जसमयसिद्धा अणंतसमयसिद्धा । से त्तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा । से त्तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ।

[१७ प्र.] वह (पूर्वोक्त) परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१७ उ.] परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार है—अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध, यावत्—संख्यातसमयसिद्ध, असंख्यात समयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध । यह हुई—परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना ।

इस प्रकार वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) पूर्ण हुई ।

विवेचन—असंसार-समापन्न-जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और भेद-प्रभेद—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५ से १७ तक) में असंसार-समापन्नजीवों की प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप तथा उसके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है ।

असंसारसमापन्नजीवों का स्वरूप—असंसार का अर्थ है—जहाँ जन्ममरणरूप चातुर्गतिक संसारपरिभ्रमण न हो, अर्थात्—मोक्ष । उस मोक्ष को प्राप्त, समस्त कर्मों से मुक्त, सिद्धिप्राप्त जीव असंसारसमापन्न जीव कहलाते हैं ।[1]

अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्नजीव—जिन मुक्त जीवों के सिद्ध होने में अन्तर अर्थात् समय का व्यवधान न हो, वे अनन्तरसिद्ध होते हैं, अर्थात्—सिद्धत्व के प्रथम समय में विद्यमान । जिन जीवों को सिद्ध हुए प्रथम ही समय हो, वे अनन्तरसिद्ध हैं ।

अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीवों के १५ भेदों की व्याख्या—(१) **तीर्थसिद्ध**—जिसके आश्रय से संसार-सागर को तिरा जाए—पार किया जाय, उसे तीर्थ कहते हैं । ऐसा तीर्थ वह प्रवचन है, जो समस्त जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थरूप से प्ररूपक है और परमगुरु—सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत (प्रतिपादित) है । वह तीर्थ निराधार नहीं होता । अतः चतुर्विध संघ अथवा प्रथम गणधर को भी तीर्थ समझना चाहिए । आगम में कहा है—[2] '(प्र.) भगवन् ! तीर्थ को तीर्थ कहते हैं या तीर्थंकर को तीर्थ कहते हैं ? (उ.) गौतम ! अरिहन्त भगवान् (नियम से) तीर्थंकर होते हैं; तीर्थ तो चातुर्वर्ण्य श्रमणसंघ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविक रूप) अथवा प्रथम गणधर है ।' इस प्रकार के तीर्थ की स्थापना होने पर जो जीव सिद्ध होते हैं, वे तीर्थसिद्ध कहलाते हैं ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १८

२. '(प्र.) तित्थं भंते ! तित्थं, तित्थकरे तित्थं ? (उ.) गोयमा ! अरिहा ताव (नियमा) तित्थकरे, तित्थं पुण चाउवण्णो समणसंघो पढमगणहरो वा ।'

(२) अतीर्थसिद्ध—तीर्थ का अभाव अतीर्थ कहलाता है। तीर्थ का अभाव दो प्रकार से होता है—या तो तीर्थ की स्थापना ही न हुई हो, अथवा स्थापना होने के पश्चात् कालान्तर में उसका विच्छेद हो गया हो। ऐसे अतीर्थकाल में जिन्होंने सिद्धि प्राप्त की हो, वे अतीर्थसिद्ध कहलाते हैं। तीर्थ की स्थापना के अभाव में (पूर्व ही) मरुदेवी आदि सिद्ध हुई हैं। मरुदेवी आदि के सिद्धिगमनकाल में तीर्थ की स्थापना नहीं हुई थी। तथा सुविधिनाथ आदि तीर्थंकरों के बीच के समय में तीर्थ का विच्छेद हो गया था। उस समय जातिस्मरणादि ज्ञान से मोक्षमार्ग उपलब्ध करके जो सिद्ध हुए वे तीर्थव्यवच्छेद-सिद्ध कहलाए। ये दोनों ही प्रकार के सिद्ध अतीर्थसिद्ध हैं।

(३) तीर्थकरसिद्ध—जो तीर्थकर होकर सिद्ध होते हैं, वे तीर्थकरसिद्ध कहलाते हैं। जैसे—इस अवसर्पिणीकाल में ऋषभदेव से लेकर श्री वर्द्धमान स्वामी तक चौबीस तीर्थकर, तीर्थकर होकर सिद्ध हुए।

(४) अतीर्थंकरसिद्ध—जो सामान्य केवली होकर सिद्ध होते हैं, वे अतीर्थकरसिद्ध कहलाते हैं।

(५) स्वयंबुद्धसिद्ध—जो परोपदेश के विना, स्वयं ही सम्बुद्ध हो (संसारस्वरूप समझ) कर सिद्ध होते हैं।

(६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध—जो प्रत्येकबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं। यद्यपि स्वयंबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध दोनों ही परोपदेश के विना ही सिद्ध होते हैं, तथापि इन दोनों में अन्तर यह है कि स्वयम्बुद्ध बाह्य-निमित्तों के विना ही, अपने जातिस्मरणादि ज्ञान से ही सम्बुद्ध हो जाते (बोध प्राप्त कर लेते) हैं, जबकि प्रत्येकबुद्ध वे कहलाते हैं, जो वृषभ, वृक्ष, बादल आदि किसी भी बाह्य निमित्तकारण से प्रबुद्ध होते हैं। सुना जाता है कि करकण्डू आदि को वृषभादि बाह्यनिमित्त की प्रेक्षा से बोधि प्राप्त हुई थी। ये प्रत्येकबुद्ध बोधि प्राप्त करके नियमतः एकाकी (प्रत्येक) ही विचरते हैं, गच्छ (गण)-वासी साधुओं की तरह समूहबद्ध हो कर नहीं विचरण करते।

नन्दी-अध्ययन की चूर्णि में कहा है—स्वयंबुद्ध दो प्रकार के होते हैं—तीर्थकर और तीर्थंकर-भिन्न। तीर्थकर तो तीर्थंकरसिद्ध की कोटि में सम्मिलित हैं। अतएव यहाँ तीर्थकर-भिन्न स्वयम्बुद्ध ही समझना चाहिए।[1] स्वयम्बुद्धों के पात्रादि के भेद से बारह प्रकार की उपधि (उपकरण) होती है, जबकि प्रत्येकबुद्धों की जघन्य दो प्रकार की और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) नौ प्रकार की उपधि प्रावरण (वस्त्र) को छोड़ कर होती है। स्वयंबुद्धों के श्रुत (शास्त्र) पूर्वाधीत (पूर्वजन्मपठित) होता भी है, नहीं भी होता। अगर होता है तो देवता उन्हें लिंग (वेष) प्रदान करता है, अथवा वे गुरु के सान्निध्य में जा कर मुनिलिंग स्वीकार कर लेते हैं। यदि वे एकाकी विचरण करने में समर्थ हों और उनकी एकाकी-विचरण की इच्छा हो तो एकाकी विचरण करते हैं, नहीं तो गच्छवासी हो कर रहते हैं। यदि उनके श्रुत पूर्वाधीत न हो तो वे नियम से गुरु के निकट जा कर ही मुनिलिंग स्वीकार करते हैं और गच्छवासी हो कर ही रहते हैं। प्रत्येकबुद्धों के नियमतः श्रुत पूर्वाधीत होता है। वे जघन्यतः ग्यारह अंग और उत्कृष्टतः दस पूर्व से किञ्चित् कम पहले पढ़े हुए होते हैं। उन्हें देवता मुनिलिंग देता है, अथवा कदाचित् वे लिंगरहित भी

---

१. ते दुविहा सयंबुद्धा—तित्थयरा तित्थयरवइरित्ता य, इह वइरित्तेहि अहिगारो। —नन्दी.-अध्ययन चूर्णि

विचरते हैं ।[1]

(७) बुद्धबोधितसिद्ध—बुद्ध अर्थात्—बोधप्राप्त आचार्य, उनके द्वारा बोधित हो कर जो सिद्ध होते हैं वे बुद्धबोधितसिद्ध हैं ।

(८) स्त्रीलिंगसिद्ध—इन पूर्वोक्त प्रकार के सिद्धों में से कई स्त्रीलिंगसिद्ध होते हैं । जिससे स्त्री की पहिचान हो वह स्त्री का लिंग-चिह्न स्त्रीलिंग कहलाता है । उपलक्षण से स्त्रीत्वद्योतक होने से वह तीन प्रकार का हो सकता है—वेद, शरीर की निष्पत्ति (रचना) और वेशभूषा ।[2] इन तीन प्रकार के लिंगों में से यहाँ स्त्री-शरीररचना से प्रयोजन है; स्त्रीवेद या स्त्रीवेशरूप स्त्रीलिंग से नहीं, क्योंकि स्त्रीवेद की विद्यमानता में सिद्धत्व प्राप्त नहीं हो सकता और वेश अप्रामाणिक है । अतः ऐसे स्त्रीलिंग में विद्यमान होते हुए जो जीव सिद्ध होते हैं, वे स्त्रीलिंगसिद्ध हैं । इस शास्त्रीय कथन से 'स्त्रियों को निर्वाण नहीं होता'; इस उक्ति का खण्डन हो जाता है । वास्तव में मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप है । यह रत्नत्रय पुरुषों की तरह स्त्रियों में भी हो सकता है । इस की साधना में तथा प्रवचनार्थ में रुचि एवं श्रद्धा रखने में स्त्रीलिंग बाधक नहीं है ।[3]

(९) पुरुषलिंगसिद्ध—पुरुष-शरीररचनारूप पुल्लिंग में स्थित हो कर सिद्ध होते हैं, वे पुरुषलिंगसिद्ध कहलाते हैं ।

(१०) नपुंसकलिंगसिद्ध—जो जीव न तो स्त्री के और न ही पुरुष के, किन्तु नपुंसक के शरीर से सिद्ध होते हैं, वे नपुंसकलिंगसिद्ध कहलाते हैं ।

(११) स्वलिंगसिद्ध—जो स्वलिंग से, अर्थात्—रजोहरणादिरूप वेष में रहते हुए सिद्ध होते हैं ।

(१२) अन्यलिंगसिद्ध—जो अन्यलिंग से, अर्थात्—परिव्राजक आदि से सम्बन्धित वल्कल (छाल) या काषायादि रंग के वस्त्र वाले द्रव्यलिंग में रहते हुए सिद्ध होते हैं ।

(१३) गृहिलिंगसिद्ध—जो गृहस्थ के लिंग (वेष) में रहते हुए सिद्ध होते हैं । वे गृहिलिंगसिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी आदि ।

---

१. "पत्तेयं—बाह्यं वृषभादिकं कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धाः, बहिष्प्रत्ययं प्रति बुद्धानां च पत्तेयं नियमा विहारो जम्हा तम्हा ते पत्तेयबुद्धा ।"

"पत्तेयबुद्धाणं जहन्नेणं दुविहो, उक्कोसेणं नवविहो नियमा उवही पाउरणवज्जो भवइ ।'

"सयंबुद्धस्य पुव्वाहीयं सुयं से हवइ वा न वा, जइ से नत्थि तो लिंगं नियमा गुरुसन्निहे पडिवज्जइ, जइ य एगविहार-विहरणसमत्थो इच्छा वा से तो एक्को चेव विहरइ, अन्यथा गच्छे विहरइ ।"

पत्तेयबुद्धाणं पुव्वाहीयं सुयं नियमा हवइ, जहन्नेणं इक्कारस अंगा, उक्कोसेणं भिन्नदसपुव्वा । लिंगं च से देवया पयच्छइ, लिंगवज्जिओ वा हवइ ।

२. इत्थीए लिंगं इत्थिलिंगं उवलक्खणं ति वुत्तं भवइ । तं च तिविहं—वेदो सरीरनिव्वित्ती नेवत्थं च । इह सरीरनिव्वत्तीए अहिगारो, न वेय-नेवत्थेहिं ।' —नन्दी.-अध्ययन चूर्णि

३. स्त्रीमुक्ति की विशेष चर्चा के लिए देखिये—प्रज्ञापना. म० वृत्ति, पत्रांक २० से २२ तक

दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रकृत गोमट्टसार में देखिये—अडयाला पुंवेया, इत्थीवेया हवंति चालीसा । वीस नपुंसकवेया, समएणेगेण सिज्झंति ॥

(१४) **एकसिद्ध**—जो एक समय में अकेले ही सिद्ध होते हैं, वे एकसिद्ध हैं।

(१५) **अनेकसिद्ध**—जो एक ही समय में एक से अधिक—अनेक सिद्ध होते हैं, वे अनेकसिद्ध कहलाते हैं।[1] सिद्धान्तानुसार एक समय में अधिक से अधिक १०८ जीव सिद्ध होते हैं।[2] अनन्तर सिद्धों के उपाधि के भेद से ये १५ प्रकार कहे हैं।

परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्नजीवों के प्रकार—इनके अनेक प्रकार हैं, इसलिए शास्त्रकार ने इनके प्रकारों की निश्चित संख्या नहीं दी है। अप्रथमसमयसिद्ध से लेकर अनन्तसमयसिद्ध तक के जीव परम्परासिद्ध की कोटि में हैं। **अप्रथमसमयसिद्ध**—जिन्हें सिद्ध हुए प्रथम समय न हो, अर्थात् जिन्हें सिद्ध हुए एक से अधिक समय हो चुके हों, वे अप्रथमसमयसिद्ध कहलाते हैं। अथवा जो परम्परसिद्धों में प्रथमसमयवर्ती हों वे प्रथमसमयसिद्ध होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयों में **द्वितीयसमयसिद्ध** आदि कहलाते हैं। अथवा 'अप्रथमसमयसिद्ध' का कथन सामान्यरूप से किया गया है, आगे इसी के विषय में विशेषतः कहा गया है—द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध आदि यावत् अनन्त समयसिद्ध तक अप्रथमसमयसिद्ध—**परंपरासिद्ध** समझने चाहिए।

अथवा परम्परसिद्ध का अर्थ इस प्रकार से है—जो किसी भी प्रथम समय में सिद्ध है, उससे एक समय पहले सिद्ध होने वाला 'पर' कहलाता है। उससे भी एक समय पहले सिद्ध होने वाला 'पर' कहलाता है। परम्परसिद्ध का आशय यह है कि जिस समय में कोई जीव सिद्ध हुआ है, उससे पूर्ववर्ती समयों में जो जीव सिद्ध हुए हैं, वे सब उसकी अपेक्षा परम्परसिद्ध हैं। अनन्त अतीतकाल से सिद्ध होते आ रहे हैं, वे सब किसी भी विवक्षित प्रथम समय में सिद्ध होने वाले की अपेक्षा से परम्परसिद्ध हैं। ऐसे मुक्तात्मा परम्परसिद्ध असंसारसमापन्न जीव हैं।[3]

संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार—

१८. से किं तं संसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

संसारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—एगिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा १ बेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा २ तेंदियसंसारसमावन्नजीवपण्णवणा ३ चउरेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ४ पंचेंदियसंसारसमावन्नजीवपण्णवणा ५।

[१८ प्र.] वह (पूर्वोक्त) संसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१८ उ.] संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना पांच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) एकेन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (२) द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (३) त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (४) चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना और (५) पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना।

---

१. 'अनेकसिद्ध' का विस्तृत वर्णन देखें—प्रज्ञापना० म०वृत्ति, पत्रांक २२
   'बत्तीसा अडयाला सट्ठी बावत्तरी य बोद्धव्वा।
   चुलसीइ छउन्नइ उ दुरहियं अट्ठुत्तरसयं च॥

२. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १९ से २२ तक

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २३ तथा १८

विवेचन—संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार—संसारी जीवों की प्रज्ञापना के एकेन्द्रियादि पांच प्रकार क्रमशः इस सूत्र (सू. १८) में प्रतिपादित किये गए हैं ।

संसारी जीवों के पांच मुख्य प्रकारों की व्याख्या—(१) **एकेन्द्रिय**—पृथ्वीकायादि स्पर्शनेन्द्रिय वाले जीव एकेन्द्रिय कहलाते हैं । (२) **द्वीन्द्रिय**—जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय, ये दो इन्द्रियां होती हैं, वे द्वीन्द्रिय होते हैं । जैसे—शंख, सीप, लट, गिंडोला आदि । (३) **त्रीन्द्रिय**—जिन जीवों के स्पर्शन, रसन और घ्राणेन्द्रिय हों, वे त्रीन्द्रिय कहलाते हैं । जैसे—जूं, खटमल, चींटी आदि । (४) **चतुरिन्द्रिय**—जिन जीवों के स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षुरिन्द्रिय हों, वे चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं । जैसे—टिड्डी, पतंगा, मक्खी, मच्छर आदि । (५) **पंचेन्द्रिय**—जिनके स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पांचों इन्द्रियां हों, वे पंचेन्द्रिय कहलाते हैं । जैसे—नारक, तिर्यञ्च (मत्स्य, गाय, हंस, सर्प), मनुष्य और देव । इन्द्रियां दो प्रकार की हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय । द्रव्येन्द्रिय के दो रूप—निर्वृ त्तिरूप और उपकरणरूप । इन्द्रियों की रचना को निर्वृ त्ति-इन्द्रिय कहते हैं और निर्वृ त्ति-इन्द्रिय की शक्तिविशेष को उपकरणेन्द्रिय कहते हैं । भावेन्द्रिय लब्धि (क्षयोपशम) तथा उपयोग रूप है । एकेन्द्रिय जीवों में भी क्षयोपशम एवं उपयोगरूप भावेन्द्रिय पांचों ही सम्भव हैं; क्योंकि उनमें से कई एकेन्द्रिय जीवों में उनका कार्य दिखाई देता है ।[1] जैसे—जीवविज्ञानविशेषज्ञ डॉ. जगदीशचन्द्र बोस ने एकेन्द्रिय वनस्पति में भी निन्दा-प्रशंसा आदि भावों को समझने की शक्ति (लब्धि=क्षयोपशम) सिद्ध करके बताई है ।

एकेन्द्रिय संसारी जीवों की प्रज्ञापना—

१९. से किं तं एगेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

एगेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचविहा पण्णत्ता । तं जहा—पुढविकाइया १ आउकाइया २ तेउकाइया ३ वाउकाइया ४ वणस्सइकाइया ५ ।

[१९ प्र.] वह (पूर्वोक्त) एकेन्द्रिय-संसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१९ उ.] एकेन्द्रिय-संसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना पांच प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार है—१-पृथ्वीकायिक, २-अप्कायिक, ३-तेजस्कायिक, ४-वायुकायिक और ५-वनस्पतिकायिक ।

विवेचन—एकेन्द्रियसंसारी जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिक आदि पांच प्रकार के एकेन्द्रियजीवों की प्ररूपणा की गई है ।

एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार और लक्षण—(१) **पृथ्वीकायिक**—पृथ्वी ही जिनका काय=शरीर है, वे पृथ्वीकाय या पृथ्वीकायिक कहलाते हैं । (२) **अप्कायिक**—अप्—प्रसिद्ध जल ही जिनका काय=शरीर है, वे अप्काय या अप्कायिक कहलाते हैं । (३) **तेजस्कायिक**—तेज यानी अग्नि ही जिनका काय=शरीर है, वे तेजस्काय या तेजस्कायिक कहलाते हैं । (४) **वायुकायिक**—वायु=हवा ही जिनका काय-शरीर है, वे वायुकाय या वायुकायिक हैं । (५) **वनस्पतिकायिक**—लतादिरूप वनस्पति ही जिनका शरीर (काय) है, वे वनस्पतिकाय या वनस्पतिकायिक कहलाते हैं ।

---

१. प्रज्ञापना० मलय० वृत्ति, पत्रांक २३-२४

पृथ्वी समस्त प्राणियों की आधारभूत होने से सर्वप्रथम पृथ्वीकायिकों का ग्रहण किया गया। अप्कायिक पृथ्वी के आश्रित हैं, इसलिए तदनन्तर अप्कायिकों का ग्रहण किया गया। तत्पश्चात् उनके प्रतिपक्षी अग्निकायिकों का, अग्नि वायु के सम्पर्क से बढ़ती है, इसलिए उसके बाद वायुकायिकों का और वायु दूरस्थ लतादि के कम्पन से उपलक्षित होता है, इसलिए तत्पश्चात् वनस्पतिकायिकों का ग्रहण किया गया।[1]

पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना—

२०. से किं तं पुढविक्काइया ?

पुढविक्काइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सुहुमपुढविक्काइया य बादरपुढविक्काइया य।

[२० प्र.] वे पृथ्वीकायिक जीव कौन-से हैं ?

[२० उ.] पृथ्वीकायिक (मुख्यतया) दो प्रकार के कहे गए हैं—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक।

२१. से किं तं सुहुमपुढविकाइया ?

सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तसुहुमपुढविकाइया य अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइया य। से त्तं सुहुमपुढविकाइया।

[२१ प्र.] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

[२२ उ.] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक। यह सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का वर्णन हुआ।

२२. से किं तं बादरपुढविकाइया ?

बादरपुढविकाइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सण्हबादरपुढविकाइया य खरबादरपुढविकाइया य।

[२२ प्र.] बादरपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

[२२ उ.] बादरपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—श्लक्ष्ण (चिकने) बादरपृथ्वीकायिक और खरबादरपृथ्वीकायिक।

२३. से किं तं सण्हबादरपुढविकाइया ?

सण्हबादरपुढविकाइया सत्तविहा पन्नत्ता। तं जहा—किण्हमत्तिया १ नीलमत्तिया २ लोहियमत्तिया ३ हालिद्दमत्तिया ४ सुक्किल्लमत्तिया ५ पंडुमत्तिया ६ पणगमत्तिया ७। से तं सण्हबादरपुढविकाइया।

[२१ प्र.] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

[२३ उ.] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक सात प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) कृष्ण-

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २४

मृत्तिका (काली मिट्टी), (२) नीलमृत्तिका (नीले रंग की मिट्टी), (३) लोहितमृत्तिका (लाल रंग की मिट्टी), (४) हारिद्रमृत्तिका (पीली मिट्टी), (५) शुक्लमृत्तिका (सफेद मिट्टी), (६) पाण्डुमृत्तिका (पाण्डु—मटमैले रंग की मिट्टी) और (७) पनकमृत्तिका (काई-सी हरे रंग की मिट्टी)।

२४. से किं तं खरवादरपुढविकाइया ?

खरवादरपुढविकाइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

पुढवी य १ सक्करा २ वालुया य ३ उवले ४ सिला य ५ लोणूसे ६-७।
अय ८ तंव ९ तउय १० सीसय ११ रुप्प १२ सुवण्णे य १३ वइरे य १४ ॥८॥
हरियाले १५ हिंगुलुए १६ मणोसिला १७ सासगंऽजण १८-१९ पवाले २०।
अब्भपडल २१ ऽब्भवालुय २२ वादरकाए मणिविहाणा ॥९॥
[1]गोमेज्जए य २३ रुयए २४ अंके २५ फलिहे य २६ लोहियक्खे य २७।
मरगय २८ मसारगल्ले २९ भुयमोयग ३० इंदनीले य ३१ ॥१०॥
चंदण ३२ गेरुय ३३ हंसे ३४ पुलए ३५ सोगंधिए य ३६ वोद्धव्वे।
चंदप्पभ ३७ वेरुलिए ३८ जलकंते ३९ सूरकंते य ४० ॥११॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[२४-प्र.] खर वादरपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के हैं ?

[२४ उ.] खर वादरपृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) पृथ्वी, (२) शर्करा (कंकर), (३) वालुका (वालू-रेत), (४) उपल (पाषाण=पत्थर), (५) शिला (चट्टान), (६) लवण (सामुद्र, सैंचल आदि नमक), (७) ऊष (ऊपर—क्षार वाली जमीन, वंजरभूमि), (८) अयस् (लोहा), (९) ताम्वा, (१०) त्रपुप् (रांगा), (११) सीसा, (१२) रौप्य (चांदी), (१३) सुवर्ण (सोना), (१४) वज्र (हीरा), (१५) हड़ताल, (१६) हींगलू (१७) मैनसिल, (१८) सासग (पारद-पारा), (१९) अंजन (सौवीर आदि), (२०) प्रवाल (मूंगा), (२१) अभ्रपटल (अभ्रक-भोड़ल) (२२) अभ्रवालुका (अभ्रक-मिश्रित वालू), वादरकाय में मणियों के प्रकार—(२३) गोमेज्जक (गोमेदरत्न), (२४) रुचकरत्न, (२५) अंकरत्न, (२६) स्फटिकरत्न, (२७) लोहिताक्षरत्न, (२८) मरकतरत्न, (२९) मसारगल्लरत्न, (३०) भुजमोचकरत्न, (३१) इन्द्रनीलमणि, (३२) चन्दनरत्न, (३३) गैरिकरत्न, (३४) हंसरत्न (हंसगर्भरत्न), (३५) पुलकरत्न, (३६) सौगन्धिकरत्न, (३७) चन्द्रप्रभरत्न, (३८) वैडूर्यरत्न, (३९) जलकान्तमणि और (४०) सूर्यकान्तमणि ॥८-९-१०-११॥

---

१. 'गोमेज्जए य २३ रुयगे २४ अंके २५ फलिहे य २६ लोहियक्खे य २७। चंदण २८ गेरुय २९ हंसग ३० भुयमोय ३१ मसारगल्ले य ३२ ॥७५॥ चंदप्पह ३३ वेरुलिए ३४ जलकंते ३५ चेव सूरकंते य ३६। एए खरपुढवीए नामं छत्तीसयं होइ ॥७६॥'

इस प्रकार आचारांग वृत्तिकार शीलांकाचार्य ने आचारांगनिर्युक्ति की गाथाओं द्वारा खरपृथ्वीकाय के ३६ भेद गिनाए हैं, जवकि प्रज्ञापना में ४० भेद वर्णित हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में प्रज्ञापना के समान ही गाथाएँ हैं। —सं.

इनके अतिरिक्त जो अन्य भी तथाप्रकार के (वैसे) (पद्मराग आदि मणिभेद हैं, वे भी खर वादरपृथ्वीकायिक समझने चाहिए ।)

२५. [१] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[२५-१] वे (पूर्वोक्त सामान्य वादरपृथ्वीकायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[२] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[२५-२] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे (स्वयोग्य पर्याप्तियों को) असम्प्राप्त होते हैं ।

[३] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं,:संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसतसहस्साइं । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कंमति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखिज्जा । से त्तं खरवादरपुढविकाइया । से त्तं वादरपुढविकाइया । से त्तं पुढविकाइया ।

[२५-३] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, इनके वर्णादेश (वर्ण की अपेक्षा) से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों (सहस्रशः) भेद (विधान) हैं । (उनके) संख्यात लाख योनिप्रमुख (योनिद्वार) हैं । पर्याप्तकों के निश्राय (आश्रय) में, अपर्याप्तक (आकर) उत्पन्न होते हैं । जहाँ एक (पर्याप्तक) होता है, वहाँ (उसके आश्रय से) नियम से असंख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं ।) यह हुआ—वह (पूर्वोक्त) खर वादरपृथ्वीकायिकों का निरूपण । (उसके साथ ही) वादरपृथ्वीकायिकों का वर्णन पूर्ण हुआ । (इसके पूर्ण होते ही) पृथ्वीकायिकों की प्ररूपणा समाप्त हुई ।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत छह सूत्रों (सू. २० से २५ तक) में पृथ्वीकायिक जीवों के मुख्य दो भेदों तथा उनके अवान्तर भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और वादर पृथ्वीकायिक की व्याख्या—जिन जीवों को सूक्ष्मनामकर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म कहलाते हैं । ऐसे पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्मपृथ्वीकायिक हैं । जिनको वादरनामकर्म का उदय हो, उन्हें वादर कहते हैं । ऐसे पृथ्वीकायिक वादरपृथ्वीकायिक कहलाते हैं । बेर और आंवले में जैसी सापेक्ष सूक्ष्मता और वादरता है, वैसी सूक्ष्मता और वादरता यहाँ नहीं समझनी चाहिए । यहाँ तो (नाम-) कर्मोदय के निमित्त से ही सूक्ष्म और वादर समझना चाहिए । मूल में 'च' शब्द सूक्ष्म और बादर के अनेक अवान्तरभेदों, जैसे—पर्याप्त और अपर्याप्त आदि भेदों तथा शर्करा, बालुका आदि उपभेदों को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है ।

'सूक्ष्म सर्वलोक में हैं' उत्तराध्ययन सूत्र की इस उक्ति के अनुसार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समग्र लोक में ऐसे ठसाठस भरे हुए हैं, जैसे किसी पेटी में सुगन्धित पदार्थ डाल देने पर उसकी महक उसमें सर्वत्र व्याप्त हो जाती है । वादरपृथ्वीकायिक नियत-नियत स्थानों पर लोकाकाश में होते हैं । यह द्वितीयपद में बताया जाएगा ।[1]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय० वृत्ति, पत्रांक २४-२५
(ख) उत्तराध्ययनसूत्र, अ. ३६—'सुहुमा सव्वलोगंमि ।'

सूक्ष्मपृथ्वीकायिकों के पर्याप्त-अपर्याप्तक की व्याख्या—जिन जीवों की पर्याप्तियां पूर्ण हो चुकी हों, वे पर्याप्त या पर्याप्तक कहलाते हैं। जो जीव अपने योग्य पर्याप्तियां पूर्ण न कर चुके हों, वे अपर्याप्त या अपर्याप्तक कहलाते हैं। पर्याप्त और अपर्याप्त के प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं—लब्धि-पर्याप्त और करण-पर्याप्त, तथा लब्धि-अपर्याप्तक और करण-अपर्याप्त। जो जीव अपर्याप्त रह क रही मर जाते हैं, वे लब्धि-अपर्याप्त और जिनकी पर्याप्तियां अभी पूरी नहीं हुई हैं, किन्तु पूरी होंगी, वे करण-अपर्याप्त कहलाते हैं। **पर्याप्ति**—पर्याप्ति आत्मा की एक विशिष्ट शक्ति की परिपूर्णता है, जिसके द्वारा आत्मा आहार, शरीर आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है और उन्हें आहार, शरीर आदि के रूप में परिणत करता है। वह पर्याप्तिरूप शक्ति पुद्गलों के उपचय से उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि उत्पत्तिदेश में आए हुए नवीन आत्मा ने पहले जिन पुद्गलों को ग्रहण किया, उनको तथा प्रतिसमय ग्रहण किये जा रहे अन्य पुद्गलों को, एवं उनके सम्पर्क से जो तद्रूप परिणत हो गए हैं, उनको आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप में जिस शक्ति के द्वारा परिणत किया जाता है, उस शक्ति की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है।

पर्याप्ति छह हैं—(१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीरपर्याप्ति, (३) इन्द्रियपर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, (५) भाषापर्याप्ति और (६) मनःपर्याप्ति। जिस शक्ति द्वारा जीव बाह्य आहार (आहारयोग्य पुद्गलों) को लेकर खल और रस के रूप में परिणत करता है, वह **आहार-पर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा रसीभूत (रसरूप-परिणत) आहार (आहारयोग्य पुद्गलों) को रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र, इन सात धातुओं के रूप में परिणत किया जाता है, वह **शरीरपर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा धातुरूप में परिणमित आहार पुद्गलों को इन्द्रियरूप में परिणत किया जाता है, वह **इन्द्रियपर्याप्ति** है। इसे दूसरी तरह से यों भी समझा जा सकता है—पांचों इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके अनाभोगनिर्वतित (अनजाने ही निष्पन्न) वीर्य के द्वारा इन्द्रियरूप में परिणत करने वाली शक्ति **इन्द्रियपर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा (श्वास तथा) उच्छ्वास के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके, उन्हें (श्वास एवं) उच्छ्वासरूप परिणत करके और फिर उनका आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह **(श्वास-) उच्छ्वास-पर्याप्ति** है। जिस शक्ति से भाषा-योग्य (भाषावर्गणा के) पुद्गलों को ग्रहण करके, उन्हें भाषारूप में परिणत करके, वचनयोग का आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह **भाषापर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा मन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके मन के रूप में परिणत करके, मनोयोग का आलम्बन लेकर छोड़ा जाता है, वह **मनःपर्याप्ति** है। इन छह पर्याप्तियों में से एकेन्द्रिय में चार, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय में पांच और संज्ञीपंचेन्द्रिय में छहों पर्याप्तियां होती हैं।

जीव अपनी उत्पत्ति (जन्म) के प्रथम समय में ही, अपने योग्य सम्भावित पर्याप्तियों को एक साथ निष्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है। किन्तु वे (पर्याप्तियां) क्रमशः पूर्ण होती हैं। जैसे—सर्वप्रथम आहारपर्याप्ति, तत्पश्चात् शरीरपर्याप्ति, फिर इन्द्रियपर्याप्ति, तदनन्तर श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, उसके बाद भाषापर्याप्ति और सबसे अन्त में मनःपर्याप्ति पूर्ण होती है। आहारपर्याप्ति प्रथम समय में ही निष्पन्न हो जाती है, शेष पर्याप्तियों के पूर्ण होने में प्रत्येक को अन्तर्मुहूर्त्त समय लग जाता है। किन्तु समस्त पर्याप्तियों के पूर्ण होने में भी अन्तर्मुहूर्त्तकाल ही लगता है। क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त के अनेक विकल्प हैं। इस पर से सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक दोनों के

पर्याप्तक और अपर्याप्तक का स्वरूप समझ लेना चाहिए ।[1]

श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक—पीसे हुए आटे के समान मृदु (मुलायम) पृथ्वी श्लक्ष्ण कहलाती है। श्लक्ष्ण पृथिव्यात्मक जीव भी उपचार से श्लक्ष्ण कहलाते हैं। जिन बादरपृथ्वी के जीवों का शरीर श्लक्ष्ण—मृदु है, वे श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक हैं। यह मुख्यतया सात प्रकार की होती है। उनमें से **पाण्डुमृत्तिका** का अर्थ यह भी है कि किसी देश में मिट्टी धूलिरूप में हो कर भी 'पाण्डु' नाम से प्रसिद्ध है। पनकमृत्तिका का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—नदी आदि में बाढ़ से डूबे हुए प्रदेश में नदी आदि के पूर के चले जाने के बाद भूमि पर जो श्लक्ष्णमृदुरूप पंक शेष रह जाता है, जिसे 'जलमल' भी कहते हैं, वही पनकमृत्तिका है।[2]

खर बादरपृथ्वीकायिकों की व्याख्या—प्रस्तुत गाथाओं में खर बादरपृथ्वीकायिकों के ४० भेद बताए हैं। अन्त में यह भी कहा है कि ये और इसी प्रकार के अन्य जो भी पद्मरागादि रत्न हैं, वे सब इसी के अन्तर्गत समझने चाहिए। **अपर्याप्तकों का स्वरूप**—खर बादरपृथ्वीकायिक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जो दो भेद हैं, उनमें से अपर्याप्तक या तो अपनी पर्याप्तियों को पूर्णतया असंप्राप्त हैं अथवा उन्हें विशिष्ट वर्ण आदि प्राप्त नहीं हुए हैं। इस दृष्टि से उनके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे कृष्ण आदि वर्ण वाले हैं। शरीर आदि पर्याप्तियां पूर्ण हो जाने पर ही बादर जीवों में वर्ण आदि विभाग प्रकट होता है, अपूर्ण होने की स्थिति में नहीं। तथा वे अपर्याप्तक उच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त रह कर ही मर जाते हैं, इसी कारण उनमें स्पष्टतर वर्णादि का विभाग सम्भव नहीं। इसी दृष्टि से उन्हें 'असम्प्राप्त' कहा है। **पर्याप्तकों के वर्णादि के भेद से हजारों भेद**—इनमें से जो पर्याप्तक हैं, जिनकी अपने योग्य चार पर्याप्तियां पूर्ण हो चुकी हैं, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के भेद से हजारों भेद होते हैं। जैसे—वर्ण के ५, गन्ध के २, रस के ५ और स्पर्श के ८ भेद होते हैं। फिर प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में अनेक प्रकार की तरतमता होती है। जैसे—भ्रमर, कोयल और कज्जल आदि में कालेपन की न्यूनाधिकता होती है। अतः कृष्ण, कृष्णतर और कृष्णतम आदि अनेक कृष्णवर्णीय भेद हो गए। इसी प्रकार नील आदि वर्ण के विषय में समझना चाहिए। गन्ध, रस और स्पर्श से सम्बन्धित भी ऐसे ही अनेक भेद होते हैं। इसी प्रकार वर्णों के परस्पर मिश्रण से धूसरवर्ण, कर्बुर (चितकबरा) वर्ण आदि अगणित वर्ण निष्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार एक गन्ध में दूसरी गन्ध के मिलने से, एक रस में दूसरा रस मिश्रण करने से, एक स्पर्श के साथ दूसरे स्पर्श के संयोग से हजारों भेद गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हो जाते हैं। **ऐसे पृथ्वीकायिकों की लाखों योनियां**—उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीवों की लाखों योनियां हैं। यही बात मूलपाठ में कही गई है—**'संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं'**—अर्थात् 'संख्यातलाख योनिप्रमुख-योनिद्वार हैं।' जैसे कि एक-एक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में पृथ्वीकायिकों की संवृता योनि होती है। वह तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। इनके प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। इन शीत आदि प्रत्येक के भी तारतम्य के कारण अनेक भेद हो जाते हैं। यद्यपि इस प्रकार से स्वस्थान में विशिष्ट वर्णादि से युक्त योनियां व्यक्ति के भेद से संख्यातीत हो जाती हैं, तथापि वे सब जाति (सामान्य) की अपेक्षा एक ही योनि में परिगणित होती हैं। इस दृष्टि से पृथ्वीकायिक जीवों की

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २५-२६

(ख) आहारपर्याप्ति के सम्बन्ध में सूक्ष्मचर्चा देखिये—प्रज्ञापना. २८ वां आहारपद।

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक २६

संख्यात लाख योनियां होती हैं। और वे सूक्ष्म और वादर सवकी सव मिलकर सात लाख योनियां समझनी चाहिए।[1]

अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—

२६. से किं तं आउक्काइया ?

आउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सुहुमआउक्काइया य वादरआउक्काइया य।

[२६ प्र.] वे (पूर्वोक्त) अप्कायिक जीव किस (कितने) प्रकार के हैं ?

[२६ उ.] अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—सूक्ष्म अप्कायिक और वादर अप्कायिक।

२७. से किं तं सुहुमआउक्काइया ?

सुहुमआउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तसुहुमआउक्काइया य अपज्जत्तसुहुम-आउक्काइया य। से त्तं सुहुमआउक्काइया।

[२७ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म अप्कायिक किस प्रकार के हैं ?

[२७ उ.] सूक्ष्म अप्कायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पर्याप्त सूक्ष्म-अप्कायिक और अपर्याप्त सूक्ष्म-अप्कायिक। (इस प्रकार) यह सूक्ष्म-अप्कायिक की प्ररूपणा हुई।

२८. [१] से किं तं वादरआउक्काइया ?

वादरआउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—[2]ओसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए सीतोदए उसिणोदए खारोदए खट्टोदए अंबिलोदए लवणोदए वारुणोदए खीरोदए घओदए खोतोदए रसोदए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[२८-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) वादर-अप्कायिक क्या (कैसे) हैं ?

[२८-१ उ.] वादर-अप्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—ओस, हिम (वर्फ), महिका (गर्भमासों में होने वाली सूक्ष्म वर्षा—धुम्मस या कोहरा), ओले, हरतनु (भूमि को फोड़ कर अंकुरित होने वाले गेहूँ घास आदि के अग्रभाग पर जमा होने वाले जलविन्दु), शुद्धोदक (आकाश में उत्पन्न होने वाला तथा नदी आदि का पानी), शीतोदक (नदी आदि का शीतस्पर्शपरिणत जल), उष्णोदक (कहीं झरने आदि से स्वाभाविकरूप से उष्णस्पर्शपरिणत जल), क्षारोदक (खारा पानी), खट्टोदक (कुछ खट्टा पानी), अम्लोदक (स्वाभाविकरूप से कांजी-सा खट्टा पानी), लवणोदक (लवण समुद्र का पानी), वारुणोदक (वरुणसमुद्र का या मदिरा जैसे स्वादवाला जल), क्षीरोदक (क्षीरसमुद्र

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २७-२८

२. आचारांगसूत्रनिर्युक्तिकार ने वादर-अप्काय के—"सुद्धोदए य १ उस्सा २ हिमे य ३ महिया य ४ हरतणू चेव ५। वायरआउविहाणा पंचविहा वण्णिया एए ॥१०८॥" इस गाथानुसार ५ ही भेदों का निर्देश किया है। तथा उत्तराध्ययनसूत्र अ. ३६, गाथा ८६ में भी ये ही पांच भेद गिनाए हैं, जवकि यहाँ अनेक भेद वताए हैं। —सं.

का पानी), घृतोदक (घृतवरसमुद्र का जल), क्षोदोदक (इक्षुसमुद्र का जल) और रसोदक (पुष्करवर समुद्र का जल)। ये और तथाप्रकार के और भी (रस-स्पर्शादि के भेद से) जितने प्रकार हों, (वे सब बादर-अप्कायिक समझने चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

[२८-२] वे (ओस आदि बादर अप्कायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता।

[२८-३] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाए) हैं।

[४] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणीपमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा। से त्तं बादरआउक्काइया। से त्तं आउक्काइया।

[२८-४] उनमें से जो अपर्याप्तक है, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों (सहस्रशः) भेद (विधान) होते हैं। उनके संख्यात लाख योनिप्रमुख हैं। पर्याप्तक जीवों के आश्रय से अपर्याप्तक आकर उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक पर्याप्तक है, वहाँ नियम से (उसके आश्रय से) असंख्यात (अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं।)

यह हुआ, बादर अप्कायिकों (का वर्णन।) (और साथ ही) अप्कायिक जीवों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई।)

विवेचन—अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. २६ से २८ तक) में अप्कायिक जीवों के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—

२९. से किं तं तेउक्काइया ?

तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य।

[२९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[२९ उ.] तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सूक्ष्म तेजस्कायिक और बादर तेजस्कायिक।

३०. से किं तं सुहुमतेउक्काइया ?

सुहुमतेउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं सुहुमतेउक्काइया।

[३० प्र.] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३० उ.] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ पूर्वोक्त सूक्ष्म तेजस्कायिक का वर्णन।

३१. [१] से किं तं बादरतेउक्काइया?

बादरतेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—इंगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विज्जू असणी णिग्घाए संघरिससमुट्ठिए सूरकंतमणिणिस्सिए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[३१-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) बादर तेजस्कायिक किस प्रकार के हैं?

[३१-१ उ.] बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—अंगार, ज्वाला, (जाज्वल्यमान खैर आदि की ज्वाला अथवा अग्नि से सम्बद्ध दीपक की लौ), मुर्मुर (राख में मिले हुए अग्निकण या भोभर), अर्चि (अग्नि से पृथक् हुई ज्वाला या लपट), अलात (जलती हुई मशाल या जलती लकड़ी), शुद्ध अग्नि (लोहे के गोले की अग्नि), उल्का, विद्युत् (आकाशीय विद्युत्), अशनि (आकाश से गिरने वाले अग्निकण), निर्घात (वैक्रिय सम्बन्धित अशनिपात या विद्युत्पात), संघर्ष-समुत्थित (अरणि आदि की लकड़ी की रगड़ से पैदा होने वाली अग्नि), और सूर्यकान्तमणि-निःसृत (सूर्य की प्रखर किरणों के सम्पर्क से सूर्यकान्तमणि से उत्पन्न होने वाली अग्नि)। इसी प्रकार की अन्य जो भी (अग्नियां) हैं (उन्हें बादर तेजस्कायिकों के रूप में समझना चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

[३१-२] ये (उपर्युक्त बादर तेजस्कायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता।

[३१-३] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे (पूर्ववत्) असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्णतया अप्राप्त) हैं।

[४] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा। से त्तं बादरतेउक्काइया। से त्तं तेउक्काइया।

[३१-४] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों (सहस्रशः) भेद होते हैं। उनके संख्यात लाख योनि-प्रमुख हैं। पर्याप्तक (तेजस्कायिकों) के आश्रय से अपर्याप्त (तेजस्कायिक) उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक पर्याप्तक होता है, वहाँ नियम से असंख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं।)

यह हुई बादर तेजस्कायिक जीवों की प्ररूपणा। (साथ ही) तेजस्कायिक जीवों की भी प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. २९ से ३१ तक) में तेजस्कायिक जीवों के मुख्य दो प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना—

३२. से किं तं वाउक्काइया ?

वाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सुहुमवाउक्काइया य बादरवाउक्काइया य ।

[३२ प्र.] वायुकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३३ उ.] वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—सूक्ष्म वायुकायिक और बादर वायुकायिक ।

३३. से किं तं सुहुमवाउक्काइया ?

सुहुमवाउक्काइया दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पज्जत्तगसुहुमवाउक्काइया य अपज्जत्तगसुहुम-वाउक्काइया य । से त्तं सुहुमवाउक्काइया ।

[३३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिक कैसे हैं ?

[३३ उ.] सूक्ष्म वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक ।

यह हुआ, वह (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिकों का वर्णन ।

३४. [१] से किं तं बादरवाउक्काइया ?

बादरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—पाईणवाए पडीणवाए दाहिणवाए उदीण-वाए उड्ढवाए अहोवाए तिरियवाए विदिसीवाए वाउब्भामे वाउक्कलिया वायमंडलिया उक्कलियावाए मंडलियावाए गुंजावाए झंझावाए संवट्टगवाए घणवाए तणुवाए सुद्धवाए, जे यावऽण्णे तहप्पगारे ।

[३४-१ प्र.] वे बादर वायुकायिक किस प्रकार के हैं ?

[३४-१ उ.] बादर वायुकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—पूर्वी वात (पूर्वदिशा से बहती हुई वायु), पश्चिमी वायु, दक्षिणी वायु, उत्तरी वायु, ऊर्ध्ववायु, अधोवायु, तिर्यग्वायु (तिरछी चलती हुई हवा), विदिग्वायु (विदिशा से आती हुई हवा), वातोद्भ्राम (अनियत-अनवस्थित वायु), वातोत्कलिका (समुद्र के समान प्रचण्ड गति से बहती हुई तूफानी हवा), वात-मण्डलिका (वातोली), उत्कलिकावात (प्रचुरतर उत्कलिकाओं—आंधियों से मिश्रित हवा), मण्डलि-कावात (मूलतः प्रचुर मण्डलिकाओं—गोल-गोल चक्करदार हवाओं से प्रारम्भ होकर उठने वाली वायु), गुंजावात (गूंजती हुई—सनसनाती हुई—चलने वाली हवा), झंझावात (वृष्टि के साथ चलने वाला अंधड़), संवर्त्तकवात (खण्ड-प्रलयकाल में चलने वाली वायु अथवा तिनके आदि उड़ाकर ले जाने वाली आंधी), घनवात (रत्नप्रभादि पृथ्वियों के नीचे रही हुई सघन—ठोस वायु), तनुवात (घनवात के नीचे रही हुई पतली वायु) और शुद्धवात (मशक आदि में भरी हुई या धीमी-धीमी बहने वाली हवा) ।

अन्य जितनी भी इस प्रकार की हवाएँ हैं, (उन्हें भी बादर वायुकायिक ही समझना चाहिए ।)

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[३४-२] वे (पूर्वोक्त बादर वायुकायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं । यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[३] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[३४-३] इनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं किये हुए) हैं ।

[४] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमंति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा । से त्तं बादरवाउक्काइया । से त्तं वाउक्काइया ।

[३४-४] इनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार (विधान) होते हैं । इनके संख्यात लाख योनिप्रमुख होते हैं । (सूक्ष्म और बादर वायुकायिक की मिला कर ७ लाख योनियाँ हैं ।) पर्याप्तक वायुकायिक के आश्रय से, अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं । जहाँ एक (पर्याप्तक वायुकायिक) होता है वहाँ नियम से असंख्यात (अपर्याप्तक वायुकायिक) होते हैं । यह हुआ—बादर वायुकायिक (का वर्णन ।) (साथ ही), वायुकायिक जीवों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई ।)

विवेचन—वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ३२ से ३४ तक) में वायुकायिक जीवों के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है ।

वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना—

३५. से किं तं वणस्सइकाइया ?

वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सुहुमवणस्सइकाइया य बादरवणस्सतिकाइया य ।

[३५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिक जीव कैसे हैं ?

[३५ उ.] वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक ।

३६ से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया ?

सुहुमवणस्सइकाइया दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य अपज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य । से त्तं सुहुमवणस्सइकाइया ।

[३६ प्र.] वे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३६ उ.] सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—पर्याप्तकसूक्ष्मवनस्पतिकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्मवनस्पतिकायिक । यह हुआ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक (का निरूपण) ।

३७. से किं तं बादरवणस्सइकाइया ?

बादरवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया य साहारणसरीरबादरवणप्फइकाइया य ।

[३७ प्र.] अब प्रश्न है—बादर वनस्पतिकायिक कैसे हैं ?

[३७ उ.] बादर वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिक और साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक ।

३८ से किं तं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया ?

पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया दुवालसविहा पन्नत्ता । तं जहा—

रुक्खा १ गुच्छा २ गुम्मा ३ लता य ४ वल्ली य ५ पव्वगा चेव ६ ।
तण ७ वलय ८ हरिय ९ ओसहि १० जलरुह ११ कुहणा य १२ बोद्धव्वा ।।१२।।

[३८ प्र] वे प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३८ उ.] प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिक जीव बारह प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार से हैं—(१) वृक्ष (आम, नीम आदि), (२) गुच्छ (बैंगन आदि के पौधे), (३) गुल्म (नवमालिका आदि), (४) लता (चम्पकलता आदि), (५) वल्ली (कूष्माण्डी त्रपुषी आदि बेलें), (६) पर्वग (इक्षु आदि पर्व-पोर-गांठ वाली वनस्पति), (७) तृण (कुश, कास, दूब आदि हरी घास), (८) वलय (जिनकी छाल वलय के आकार की गोल होती है, ऐसे केतकी, कदली आदि), (९) हरित (बथुआ आदि हरी लिलोती), (१०) औषधि (गेहूँ आदि धान्य, जो फल (फसल) पकने पर सूख जाते हैं ।), (११) जलरुह (पानी में उगने वाली कमल, सिंघाड़ा, उदकावक आदि वनस्पति) और (१२) कुहण (भूमि को फोड़ कर उगने वाली वनस्पति), (ये बारह प्रकार के प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव) समझने चाहिए ।

३९. से किं तं रुक्खा ?

रुक्खा दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य ।

[३९ प्र.] वे वृक्ष किस प्रकार के हैं ?

[३९ उ.] वृक्ष दो प्रकार के कहे गए हैं—एकास्थिक (प्रत्येक फल में एक गुठली या बीज वाले) और बहुबीजक (जिनके फल में बहुत बीज हों) ।

४०. से किं तं एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—

णिबंब जंबु कोसंब साल अंकोल्ल पीलु सेलू य ।
सल्लइ मोयइ मालुय बउल पलासे करंजे य ।।१३।।
पुत्तंजीवयऽरिट्ठे बिभेलए हरडए य भल्लाए ।
उंबेभरिया खीरिणि बोधव्वे धायइ पियाले ।।१४।।

पूई करंज सेण्हा (सण्हा) तह सीसवा य असणे य ।
पुण्णाग णागरुक्खे सोवण्णि तहा असोगे य ॥१५॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

एतेसि णं मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि । पत्ता पत्तेयजीविया । पुप्फा अणेगजीविया । फला एगट्ठिया । से त्तं एगट्ठिया ।

[४० प्र] एकास्थिक (प्रत्येक फल में एक वीज-गुठली वाले) वृक्ष किस प्रकार के होते हैं ?

[४० उ.] एकास्थिकवृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] नीम, आम, जामुन, कोशम्ब (कोशाम्र=जंगली आम), शाल, अंकोल्ल (अखरोट या पिश्ते का पेड़), पीलू, शेलु (लिसोड़ा), सल्लकी (हाथी को प्रिय), मोचकी, मालुक, वकुल, (मौलसरी), पलाश (खाखरा या ढाक), करंज (नक्तमाल) ॥१३॥

पुत्रजीवक (पितौंझिया), अरिष्ट (अरीठा), विभीतक (वहेड़ा), हरड या जियापोता, भल्लातक (भिलावा), उम्बेभरिया, खीरणि (खिरनी), धातकी और प्रियाल ॥१४॥

पूतिक (निम्ब—निम्बौली), करञ्ज, श्लक्ष्ण (या प्लक्ष) तथा शींशपा, अशन और पुन्नाग (नागकेसर), नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक; (ये एकास्थिक वृक्ष हैं ।)

इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हों, (जो विभिन्न देशों में उत्पन्न होते हैं तथा जिनके फल में एक ही गुठली हो; उन सबको एकास्थिक ही समझना चाहिए ।) ॥१५॥

इन (एकास्थिक वृक्षों) के मूल असंख्यात जीवों वाले होते हैं, तथा कन्द भी, स्कन्ध भी, त्वचा (छाल) भी, शाखा (साल) भी और प्रवाल (कोंपल) भी (असंख्यात जीवों वाले होते हैं), किन्तु इनके पत्ते प्रत्येक जीव (एक-एक पत्ते में एक-एक जीव) वाले होते हैं । इनके फल एकास्थिक (एक ही गुठली वाले) होते हैं । यह हुआ—उस (पूर्वोक्त) एकास्थिक वृक्ष का वर्णन ।

४१. से किं तं वहुवीयगा ?

वहुवीयगा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—

अत्थिय तिंदु कविट्ठे अंबाडग माउलिंग विल्ले य ।
आमलग फणस दाडिम आसोत्थे उंवर वडे य ॥१६॥
णग्गोह णंदिरुक्खे पिप्परि सयरी पिलुक्खरुक्खे य ।
काउंवरि कुत्थुंभरि वोधव्वा देवदाली य ॥१७॥
तिलए लउए छत्तोह सिरीसे सत्तिवण्ण दहिवन्ने ।
लोद्ध धव चंदणऽज्जुण णीमे कुडए कयंवे य ॥१८॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । एएसि णं मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि । पत्ता पत्तेयजीविया । पुप्फा अणेगजीविया । फला वहुवीया । से त्तं वहुवीयगा । से त्तं रुक्खा ।

[४१-प्र.] और वे (पूर्वोक्त) वहुवीजक वृक्ष किस प्रकार के हैं ?

[४१-उ.] बहुबीजक वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार से हैं—

[गाथार्थ—] अस्थिक, तेन्दु (तिन्दुक), कपित्थ (कवीठ), अम्वाडग, मातुलिंग (बिजौरा), बिल्व (बेल), आमलक (आँवला), पनस (अनन्नास), दाड़िम (अनार), अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर (गुल्लर), वट (बड़), न्यग्रोध (बड़ा बड़), ॥१६॥

नन्दिवृक्ष, पिप्पली (पींपल), शतरी (शतावरी), प्लक्षवृक्ष, कादुम्बरी, कस्तुम्भरी और देवदाली (इन्हें बहुबीजक) जानना चाहिए ॥१७॥

तिलक लवक (लकुच—लीची), छत्रोपक, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुरज (कुटक) और कदम्ब ॥१८॥

इसी प्रकार के और भी जितने वृक्ष हैं, (जिनके फल में बहुत बीज हों; वे सब बहुबीजक वृक्ष समझने चाहिए।)

इन (बहुबीजक वृक्षों) के मूल असंख्यात जीवों वाले होते हैं। इनके कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा और प्रवाल भी (असंख्यात जीवात्मक होते हैं।) इनके पत्ते प्रत्येक जीवात्मक (प्रत्येक पत्ते में एक-एक जीव वाले) होते हैं। पुष्प अनेक जीवरूप (होते हैं) और फल बहुत बीजों वाले (हैं।) यह हुआ बहुबीजक (वृक्षों का वर्णन।) (साथ ही) वृक्षों की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई।)

४२. से किं तं गुच्छा ?

गुच्छा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

वाइंगण सल्लई[1] बोंडई य तह कच्छुरी[2] य जासुमणा।
रूवी आढइ नीली तुलसी तह माउलिंगी य ॥१६॥
कत्थुंभरि[3] पिप्पलिया अतसी बिल्ली य कायमाई या।
चुच्चु[4] पडोल।[5] कंदलि बाउच्चा[6] वत्थुले वदरे ॥२०॥
पत्तउर सीयउरए हवति तहा जवसए य बोधव्वे।
णिग्गुंडि[7] अक्क तूवरि अट्टइ चेव तलऊडा ॥२१॥
सण वाण[8] कास मद्दग[9] अग्घाडग साम सिंदुवारे य।
करमद्द अद्दरूसग करीर एरावण महित्थे ॥२२॥
जाउलग माल[10] परिली गयमारिणि कुच्चकारिया[11] भंडी[12]।
जावइ[13] केयइ तह गंज पाडला दासी अंकोल्ले[14] ॥२३॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं गुच्छा।

[४२ प्र.] वे (पूर्वोक्त) गुच्छ किस प्रकार के होते हैं ?

पाठान्तर—१ थुंडई। २ कत्थुरी य जीभुमणा। ३ कच्छुंभरी। ४ वुच्चू। ५ पडोलकंदे। ६ विउव्वा वत्थलंदेरे। ७ णिग्गु मियंगं तवरि, अत्थइ चेव तलउदाडा। ८ पाण। ९ मुद्दग। १० मोल। ११ कुव्वकारिया। १२ भंडा। १३ जीवइ। १४ अकोले।

[४२ उ.] गुच्छ अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—वैंगन, शल्यकी, वोंडी (अथवा थुण्डकी) तथा कच्छुरी, जासुमना, रूपी, आढकी, नीली, तुलसी तथा मातुलिंगी ॥१९॥ कस्तुम्भरी (धनिया), पिप्पलिका, अलसी, बिल्वी, कायमादिका, चुच्चू (वुच्चु), पटोला, कन्दली, वाउच्चा (विकुर्वा), बस्तुल तथा वादर ॥२०॥ पत्रपूर, शीतपूरक तथा जवसक, एवं निर्गुण्डी (निल्गु), अर्क (मृगांक), तूवरी (तवरी), अट्टकी (अस्तकी) और तलपुटा (तलउडादा) भी समझना चाहिए ॥२१॥ तथा सण (शण), वाण (पाण), काश (कास), मद्रक (मुद्रक), आघ्रातक, श्याम, सिन्दुवार और करमर्द, आर्द्रडूसक (अडूसा) करीर (कैर), ऐरावण तथा महित्थ ॥२२॥ जातुलक, मोल, परिली, गजमारिणी, कुर्च्चकारिका (कुर्व्वकारिका), भंडी (भंड), जावकी (जीवकी), केतकी तथा गंज, पाटला, दासी और अंकोल्ल ॥२३॥

अन्य जो भी इसी प्रकार के (इन जैसे) हैं, (वे सब गुच्छ समझने चाहिए।) यह हुआ गुच्छ का वर्णन।

४३. से किं तं गुम्मा ?

गुम्मा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

सेरियए[1] णोमालिय कोरंटय बंधुजीवग मणोज्जे।
पीईय पाण कणइर कुज्जय तह सिंदुवारे य ॥२४॥
जाई मोग्गर तह जूहिया य तह मल्लिया य वासंती।
वत्थुल कच्छुल[2] सेवाल गंठि मगदंतिया चेव ॥२५॥
चंपगजीती णवणीइया[3] य कुंदो तहा महाजाई।
एवमणेगागारा हवंति गुम्मा मुणेयव्वा ॥२६॥

से त्तं गुम्मा।

[४३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) गुल्म किस प्रकार के हैं ?

[४३ उ.] गुल्म अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—"सेरितक (सेनतक), नवमालती, कोरण्टक, वन्धुजीवक, मनोद्य, पीतिक (पितिक), पान, कनेर (कर्णिकार), कुर्जक (कुंजक), तथा सिन्दुवार ॥२४॥ जाती (जाई), मोगरा, जूही (यूथिका), तथा मल्लिका और वासन्ती, वस्तुल, कच्छुल (कस्थुल), शैवाल, ग्रन्थि एवं मृगदन्तिका ॥२५॥ चम्पक, जीती, नवनीतिका, कुन्द, तथा महाजाति; इस प्रकार अनेक आकार-प्रकार के होते हैं, (उन सबको) गुल्म समझना चाहिए ॥२६॥ यह हुई गुल्मों की प्ररूपणा।

४४. से किं तं लयाओ ?

लयाओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

पउमलता नागलता असोग-चंपयलता य चूतलता।
वणलय वासंतिलया अइमुत्तय-कुंद-सामलता ॥२७॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं लयाओ।

पाठान्तर—१ सेणयए। २ कत्थुल। ३ णीइया।

[४४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) लताएँ किस प्रकार की होती हैं ?

[४४ उ.] लताएँ अनेक प्रकार की कही गई हैं। यथा—पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता, और चूतलता, वनलता, वासन्तीलता, अतिमुक्तकलता, कुन्दलता और श्यामलता ॥२७॥

और जितनी भी इस प्रकार की हैं, (उन्हें लता समझना चाहिए।) यह हुआ उन लताओं का वर्णन।

४५. से किं तं वल्लीओ ?

वल्लीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

पूसफली कालिंगी तुंबी तउसी य एलवालुंकी।
घोसाडई[1] पडोला पंचंगुलिया य णालीया[2] ॥२८॥
कंगूया कद्दुइया[3] कक्कोडइ कारियल्लई सुभगा।
कुवधा(या)[4] य वागली पाववल्लि तह देवदारू[5] य ॥२९॥
अप्फोया[6] अइमुत्तय णागलया कण्ह-सूरवल्ली य।
संघट्ट सुमणसा वि य जासुवण कुविंदवल्ली य ॥३०॥
मुद्दिय अप्पा[7] भल्ली छीरविराली[8] जियंति[9] गोवाली।
पाणी मासावल्ली गुंजावल्ली[10] य वच्छाणी[11] ॥३१॥
ससबिंदु गोत्तफुसिया[12] गिरिकण्णइ मालुया य अंजणई।
दहफुल्लइ[13] कागणि[14] मोगली य तह अक्कबोंदी य ॥ ३२॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं वल्लीओ।

[४५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) वल्लियां किस प्रकार की होती हैं ?

[४५ उ.] वल्लियां अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] पूसफली, कालिंगी (जंगली तरबूज की वेल) तुम्वी, त्रपुषी (ककड़ी), एलवालुकी (एक प्रकार की ककड़ी), घोषातकी, पटोला, पंचांगुलिका और नालीका (आयनीली) ॥२८॥ कंगूका, कुद्दकिका (कण्डकिका), कर्कोटकी (कंकोड़ी या ककड़ी), कारवेल्लकी (कारेली), सुभगा, कुवधा (कुवया -कुयवाया) और वागली, पापवल्ली, तथा देवदारु (देवदाली) ॥२९॥ अप्फोया (अप्फेया), अतिमुक्तका, नागलता और कृष्णसूरवल्ली, संघट्टा और सुमनसा भी तथा जासुवन और कुविन्दवल्ली ॥३०॥ मुद्वीका, अप्पा, भल्ली (अम्बावली), क्षीरविराली (कृष्णक्षीराली), जीयंती (जयन्ती), गोपाली, पाणी, मासावल्ली, गुंजावल्ली, (गुजीवल्ली) और वच्छाणी(विच्छाणी) ॥३१॥ शशबिन्दु, गोत्रस्पृष्टा (ससिवी, द्विगोत्रस्पृष्टा), गिरिकर्णकी, मालुका और अंजनकी, दहस्फोटकी (दधिस्फोटकी), काकणी (काकली) और मोकली तथा अर्कवोन्दी ॥३२॥

पाठान्तर—१ घोसाडइ पंडोला, घोसाई य पडोला। २ आयणीली य। ३ कंडुइया। ४ कुवया, कुयवाया। ५ देवदाली य। ६ अप्फेया। ७ अम्बावल्ली। ८ किण्हछीराली। ९ जयंती। १० गुजीवल्ली। ११ विच्छाणी। १२ ससिवी दुगोत्तफुसिया। १३ दहिफोल्लइ। १४ काकली।

इसी प्रकार की अन्य जितनी भी (वनस्पतियां हैं, उन सबको वल्लियां समझना चाहिए।) यह हुई, वल्लियों की प्ररूपणा।

४६. से किं तं पव्वगा ?

पव्वगा अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा—

इक्खू य इक्खुवाडी वीरण तह एक्कडे[1] भमासे य।
सुंठे (सुंवे) सरे य वेत्ते तिमिरे सतपोरग णले य ॥३३॥
वंसे वेलू[2] कणए कंकावंसे य चाववंसे य।
उदए कुडए विमए[3] कंडावेलू य कल्लाणे ॥३४॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं पव्वगा।

[४६ प्र] वे पर्वक (वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[४६ उ.] पर्वक वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] इक्षु और इक्षुवाटी, वीरण (वीरुणी) तथा एक्कड़, भमास (माष), सूंठ (सुम्व), शर और वेत्र (वेंत), तिमिर, शतपर्वक और नल ॥३३॥ वंश (वांस), वेलू (वेच्छू), कनक, कंकावंश और चापवंश, उदक, कुटज, विमक (विसक), कण्डा, वेलू (वेल्ल) और कल्याण ॥३४॥

और भी जो इसी प्रकार की वनस्पतियां हैं, (उन्हें पर्वक में ही समझनी चाहिए।) यह हुई, उन पर्वकों की प्ररूपणा।

४७. से किं तं तणा ?

तणा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

सेडिय भत्तिय[4] होत्तिय डब्भ कुसे पव्वए य पोडइला।
अज्जुण असाढए रोहियंसे सुयवेय खीरतुसे[5] ॥३५॥
एरंडे कुरुविंदे कक्खड[6] सुंठे तहा विभंगू य।
महुरतण लुणय सिप्पिय वोधव्वे सुंकलितणा य ॥३६॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं तणा।

[४७-प्र.] वे (पूर्वोक्त) तृण कितने प्रकार के हैं ?

[४६-उ.] तृण अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—

[गाथार्थ—] सेटिक (सेंडिक), भक्तिक (मांत्रिक), होत्रिक, दर्भ, कुश और पर्वक, पोटकिला (पाटकिला—पोटलिका), अर्जुन, आपाढ़क, रोहितांश, शुकवेद और क्षीरतुप (क्षीरभुसा) ॥३५॥ एरण्ड, कुरुविन्द, कक्षट (करकर), सूंठ (मुट्ठ), विभंगू और मधुरतृण, लवणक (क्षुरक), शिल्पिक (शुक्तिक)

पाठान्तर—१ एक्कडे य मासे। २ वेच्छू। ३ विसए, कंडावेल्ले।
४ मंतिय। ५ खीरभुसे। ६ कस्कर।

और सुंकलीतृण (सुकलीवृण), (इन्हें) तृण जानना चाहिए ।।३६।। जो अन्य इसी प्रकार के हैं (उन्हें भी तृण समझना चाहिए ।) यह हुई उन (पूर्वकथित) तृणों की प्ररूपणा ।

४८. से किं तं वलया ?

वलया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—

ताल तमाले तक्कलि तेयलि[1] सारे य सारकल्लाणे ।
सरले जावति केयइ कदली[2] तह धम्मरुक्खे य ।।३७।।

भुयरुक्ख हिंगुरुक्खे लवंगरुक्खे य होति बोधव्वे ।
पूयफली खज्जूरी बोधव्वा नालिएरी य ।।३८।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं वलया ।

[४८ प्र.] वे वलय (जाति की वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ।

[४८ उ.] वलय-वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] ताल (ताड़), तमाल, तर्कली (तक्कली), तेतली (तोतली), सार (शाली), सार-कल्याण (सारकत्राण), सरल, जावती (जावित्री), केतकी (केवड़ा), कदली (केला) और धर्मवृक्ष (चर्मवृक्ष) ।।३७।। भुजवृक्ष (मुचवृक्ष), हिंगुवृक्ष, और (जो) लवंगवृक्ष होता है, (इसे वलय) समझना चाहिए । पूगफली (सुपारी), खजूर और नालिकेरी (नारियल), (इन्हें भी वलय) समझना चाहिए ।।३८।।

४९. से किं तं हरिया ?

हरिया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—

अज्जोरुह बोडाणे हरितग तह तंदुलेज्जग तणे य ।
वत्थुल पारग[3] मज्जार पाइ बिल्ली य पालक्का ।।३९।।
दगपिप्पली य दव्वी सोत्थियसाए तहेव मंडुक्की ।
मूलग सरिसव अंबिलसाए य जियंतए चेव ।।४०।।
तुलसी कण्ह उराले फणिज्जए अज्जए य भूयणए ।
चोरग दमणग मरुयग सयपुप्फिदीवरे य तहा ।।४१।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं हरिया ।

[४९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) हरित (वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[४९ उ.] हरित वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] अद्यावरोह, व्युदान, हरितक तथा तान्दुलेयक (चन्दलिया), तृण, वस्तुल (बथुआ), पारक (पर्वक), मार्जार, पाती, बिल्वी और पाल्यक (पालक) ।।३९।। दकपिप्पली और दर्वी,

---

पाठान्तर—१ तोयली साली य सारकत्ताणे । २ कयली तह चम्मरुक्खे य । ३ पोरग मज्जार याइ ।

स्वस्तिक शाक (सौत्रिक शाक), तथा माण्डुकी, मूलक, सर्पप (सरसों का साग), अम्लशाक (अम्ल साकेत) और जीवान्तक ॥४०॥ तुलसी, कृष्ण, उदार, फानेयक और आर्यक (आर्षक), भुजनक (भूसनक), चोरक (वारक), दमनक, मरुचक, शतपुष्पी तथा इन्दीवर ॥४१॥

अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हैं, (वे सब हरित (हरी या लिलौती) के अन्तर्गत समझनी चाहिए।)

यह हुई उन हरित (वनस्पतियों की) प्ररूपणा।

५०. से किं तं ओसहीओ ?

ओसहीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—

साली १ वीही २ गोधूम ३ [1]जवजवा ४ कल ५ मसूर ६ तिल ७ मुग्गा ८।

मास ९ निप्फाव १० कुलत्थ ११ अलिसंद १२ सतीण १३ पलिमंथा १४ ॥४२॥

अयसी १५ कुसुंभ १६ कोद्दव १७ कंगू १८ रालग १९ [2]वरसामग २० कोदूसा २१।

सण २२ सरिसव २३ मूलग २४ बीय २५ जा यावऽण्णा तहप्पगारा ॥४३॥

[५० प्र.] वे ओषधियां किस प्रकार की होती हैं ?

[५० उ.] ओषधियां अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १. शाली (धान), २. व्रीहि (चावल), ३. गोधूम (गेहूँ), ४. जौ (यवयव), ५. कलाय, ६. मसूर, ७. तिल, ८. मूंग, ९. माष (उड़द), १०. निष्पाव, ११. कुलत्थ (कुलथ), ११. अलिसन्द, १३. सतीण, १४. पलिमन्थ ॥४२॥ १५. अलसी, १६. कुसुम्भ, १७. कोदों (कोद्रव), १८. कंगू, १९. राल (रालक), २०. वरश्यामाक (सांवा धान) और २१. कोदूस (कोद्दंश), २२. शण-सन, २३. सरसों (दाने), २४. मूलक बीज; ये और इसी प्रकार की अन्य जो भी (वनस्पतियां) हैं, (उन्हें भी ओषधियों में गिनना चाहिए।) ॥४३॥

यह हुआ ओषधियों का वर्णन।

५१. से किं तं जलरुहा ?

जलरुहा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—उदए अवए पणए सेवाले कलंबुया हढे कसेरुया कच्छा भाणी उप्पले पउमे कुमुदे नलिणे सुभए सोगंधिए पोंडरीए महापोंडरीए सयपत्ते सहस्सपत्ते कल्हारे कोकणदे अरविंदे तामरसे भिसे भिसमुणाले पोक्खले पोक्खलत्थिभए,[3] जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं जलरुहा।

[५१ प्र.] वे जलरुह (रूप वनस्पतियां) किस प्रकार की हैं ?

[५१ उ.] जल में उत्पन्न होने वाली (जलरुह) वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—उदक, अवक, पनक, शैवाल, कलम्बुका, हढ (हठ), कसेरुका (कसेरू), कच्छा, भाणी, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र,

पाठान्तर—१ जव जवजवा। २ वरट्ट साम। ३ पोक्खलत्थिभुए।

कल्हार, कोकनद, अरविन्द, तामरस कमल, भिस, भिसमृणाल, पुष्कर और पुष्करास्तिभज (पुष्करा-स्तिभुक्) । इसी प्रकार की और भी (जल में उत्पन्न होने वाली जो वनस्पतियां हैं, उन्हें जलरुह के अन्तर्गत समझना चाहिए ।) यह हुआ, जलरुहों का निरूपण ।

५२. से किं तं कुहणा ?

कुहणा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—आए काए कुहणे कुणक्के दव्वहलिया सप्फाए [1]सज्जाए सित्ताए [2]वंसी णहिया कुरए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं कुहणा ।

[५२ प्र.] वे कुहण वनस्पतियां किस प्रकार की हैं ?

[५२ उ] कुहण वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं । वे इस प्रकार—आय, काय, कुहण, कुनक्क, द्रव्यहलिका, शफाय, सद्यात (स्वाध्याय ?), सित्राक (छत्रोक) और वंशी, नहिता, कुरक (वशीन, हिताकुरक) । इसी प्रकार की जो अन्य वनस्पतियां उन सबको कुहण के अन्तर्गत समझना चाहिए । यह हुआ कुहण वनस्पतियों का वर्णन ।

५३. णाणाविहसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता ।
खंधो वि एगजीवो ताल-सरल-नालिएरीणं ।।४४।।
जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी ।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया ।।४५।।
जह वा तिलपप्पडिया बहुएहि तिलेहि संहता संती ।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया ।।४६।।

से त्तं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया ।

[५३ गाथार्थ—] वृक्षों (उपलक्षण से गुच्छ, गुल्म आदि) की आकृतियां नाना प्रकार की होती हैं । इनके पत्ते एकजीवक (एक जीव से अधिष्ठित) होते हैं, और स्कन्ध भी एक जीव वाला होता है । (यथा—) ताल, सरल, नारिकेल वृक्षों के पत्ते और स्कन्ध एक-एक जीव वाले होते हैं ।।३१।। 'जैसे श्लेष द्रव्य से मिश्रित किये हुए समस्त सर्षपों (सरसों के दोनों) की वट्टी (में सरसों के दाने पृथक्-पृथक् होते हुए भी) एकरूप प्रतीत होती है, वैसे ही (रागद्वेष से उपचित विशिष्टकर्मश्लेष से) एकत्र हुए प्रत्येकशरीरी जीवों के (शरीर भिन्न होते हुए भी) शरीरसंघात रूप होते हैं ।।४५।। जैसे तिलपपड़ी (तिलपट्टी) में (प्रत्येक तिल अलग-अलग प्रतीत होते हुए भी) वहुत-से तिलों के संहत (एकत्र) होने पर होती है, वैसे ही प्रत्येकशरीरी जीवों के शरीरसंघात होते हैं ।।४६।।

इस प्रकार उन (पूर्वोक्त) प्रत्येकशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीवों की प्रज्ञापना पूर्ण हुई ।

५४. [१] से किं तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया ?

साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—

अवए पणए सेवाले लोहिणी [3]मिहू त्थिहू त्थिभगा ।
असकण्णी सीहकण्णी सिउंढि तत्तो मुसुंढी य ।।४७।।

पाठान्तर—१ सज्झाए छत्तोए । २ वंसीण हिताकुरए । ३ मिहुत्थु हुत्थिभागा य ।

रुरु कंडुरिया [1]जारू छीरविराली तहेव किट्टीया[2]।
हलिद्दा सिंगवेरे य आलूगा मूलए इ य ।।४८।।
[3]कंवू य कण्हकडवू महुओ वलई तहेव महुसिंगी।
णिरुहा सप्पसुयंधा छिण्णरुहा चेव वीयरुहा ।।४९।।
पाढा [4]मियवालुंकी महुररसा चेव [5]रायवल्ली य।
पउमा य माढरी दंती चंडी किट्टि त्ति यावरा ।।५०।।
मासपण्णी मुग्गपण्णी जीवियरसभेय रेणुया चेव।
काओली खीरकाओली तहा भंगी णही इ य ।।५१।।
किमिरासि भद्दमुत्था णंगलई [6]पलुगा इय।
किण्हे पउले य हढे हरतणुया चेव लोयाणी ।।५२।।
कण्हे कंदे वज्जे सूरणकंदे तहेव खल्लूडे।
एए अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।५३।।

[५४-१ प्र] वे (पूर्वोक्त) साधारणशरीर वादरवनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[५४-१ उ.] साधारणशरीर वादरवनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—

[गाथार्थ—] अवक, पनक, शैवाल, लोहिनी, स्निहूपुष्प(थोहर का फूल), मिहू स्तिहू (मिहूत्थु), हस्तिभागा और अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिउण्डी (शितुण्डी), तदनन्तर मुसुण्ढी ।।४७।। रुरु, कण्डुरिका (कुण्डरिका या कुन्दरिका), जीरु (जारु), क्षीरविरा(डा)ली; तथा किट्टिका, हरिद्रा (हल्दी), शृंगवेर (आदा या अदरक) और आलू एवं मूला ।।४८।। कम्वू (काम्वोज) और कृष्णकटवू (कर्णोत्कट), मधुक (सुमात्रक), वलकी तथा मधुशृंगी, नीरूह, सर्पसुगन्धा, छिन्नरुह, और वीजरुह ।।४९।। पाढा, मृगवालुंकी, मधुररसा और राजपत्री, तथा पद्मा, माठरी, दन्ती, इसी प्रकार चण्डी और इसके वाद किट्टी (कृष्टि) ।।५०।। मापपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवित, रसभेद, (जीवितरसह) और रेणुका, काकोली (काचोली), क्षीरकाकोली, तथा भृंगी, (भंगी), इसी प्रकार नखी ।।५१।। कृमिराशि, भद्रमुस्ता (भद्रमुक्ता), नांगलकी, पलुका (पेलुका), इसी प्रकार कृष्णप्रकुल, और हड, हरतनुका तथा लोयाणी ।।५२।। कृष्णकन्द, वज्रकन्द, सूरणकन्द, तथा खल्लूर, ये (पूर्वोक्त) अनन्तजीव वाले हैं। इनके अतिरिक्त और जितने भी इसी प्रकार के हैं, (वे सब अनन्त जीवात्मक हैं।) ।।५३।।

[२] तणमूल कंदमूले वंसमूले त्ति यावरे।
संखेज्जमसंखेज्जा वोधव्वाऽणंतजीवा य ।।५४।।
सिंघाडगस्स गुच्छो अणेगजीवो उ होति नायव्वो।
पत्ता पत्तेयजिया, दोण्णि य जीवा फले भणिता ।।५५।।

---

१ जीरु। २ किट्टीया। ३ कंवूयं कन्नुक्कड़ मुमत्तओ। ४ मियमालुकी। ५ रायवत्ती। ६ वेलुगा इय।

[५४-२] तृणमूल, कन्दमूल और वंशीमूल, ये और इसी प्रकार के दूसरे संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए। सिंघाड़े का गुच्छ अनेक जीव वाला होता है, यह जानना चाहिए और इसके पत्ते प्रत्येक जीव वाले होते हैं। इसके फल में दो-दो जीव कहे गए हैं ॥५५॥

[३] जस्स मूलस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसए।
अणंतजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५६॥

जस्स कंदस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसए।
अणंतजीवे उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५७॥

जस्स खंधस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५८॥

जीसे तयाए भग्गाए समो भंगो पदीसए।
अणंतजीवा तया सा उ, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥५९॥

जस्स सालस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६०॥

जस्स पवालस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे पवाले से, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६१॥

जस्स पत्तस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६२॥

जस्स पुप्फस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से पुप्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६३॥

जस्स फलस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसती।
अणंतजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६४॥

जस्स बीयस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से बीए, यावऽण्णे तहाविहा ॥६५॥

[५४-३] जिस मूल को भंग करने (तोड़ने) पर समान (चक्राकार) दिखाई दे, वह मूल अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी मूल हों, उन्हें भी अनन्तजीव समझना चाहिए। ॥५६॥ जिस टूटे या तोड़े हुए कन्द का भंग समान दिखाई दे, वह कन्द अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी कन्द हों, उन्हें अनन्तजीव समझना चाहिए ॥५७॥ जिस टूटे हुए स्कन्ध का भंग समान दिखाई दे, वह स्कन्ध (भी) अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे स्कन्धों को (भी अनन्तजीव समझना चाहिए) ॥५८॥ जिस छाल (त्वचा) के टूटने पर उसका भंग सम दिखाई दे, वह छाल भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य छाल भी (अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए) ॥५९॥ जिस टूटी हुई शाखा (साल)का भंग समान दृष्टिगोचर हो, वह शाखा भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की जो अन्य (शाखाएँ) हों, (उन्हें भी अनन्तजीव वाली समझो) ॥ ६० ॥

टूटे हुए जिस प्रवाल (कोंपल) का भंग समान दीखे, वह प्रवाल भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्रवाल) हों, (उन्हें अनन्तजीव वाले समझो) ॥६१॥ टूटे हुए जिस पत्ते का भंग समान दिखाई दे, वह पत्ता (पत्र) भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार जितने भी अन्य पत्र हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६२॥ टूटे हुए जिस फूल (पुष्प) का भंग समान दिखाई दे, वह भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी पुष्प हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६३॥ जिस टूटे हुए फल का भंग सम दिखाई दे, वह फल भी अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी फल हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६४॥ जिस टूटे हुए बीज का भंग समान दिखाई दे, वह बीज भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी बीज हों, उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६५॥

[४] जस्स मूलस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६६॥
जस्स कंदस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६७॥
जस्स खंधस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६८॥
जीसे तयाए भग्गाए हीरो भंगे पदीसई।
परित्तजीवा तया सा उ, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥६९॥
जस्स सालस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसती।
परित्तजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७०॥
जस्स पवालस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे पवाले उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७१॥
जस्स पत्तस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७२॥
जस्स पुप्फस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से पुप्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७३॥
जस्स फलस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७४॥
जस्स बीयस्स भग्गस्स हीरो भंगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से बीए, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७५॥

[५४-४] टूटे हुए जिस मूल का भंग(-प्रदेश) हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह मूल प्रत्येक (परित्त) जीव वाला है।, इसी प्रकार के अन्य जितने भी मूल हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए) ॥६६॥ टूटे हुए जिस कन्द के भंग-प्रदेश में हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह कन्द

प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी (कन्द हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाले समझो) ।।६७।। टूटे हुए जिस स्कन्ध के भंगप्रदेश में हीर दिखाई दे, वह स्कन्ध प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने स्कन्ध हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझो।) ।।६८।। जिस छाल के टूटने पर उसके भंग (प्रदेश) में हीर दिखाई दे, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छालें (त्वचाएँ) हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझो।) ।।६९।। जिस शाखा के टूटने पर उसके भंग (प्रदेश) में विषम छेद दीखे, वह शाखा प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी शाखाएँ हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाली समझनी चाहिए।) ।।७०।। जिस प्रवाल के टूटने पर उसके भंगप्रदेश में विषमछेद दिखाई दे, वह प्रवाल भी प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने प्रवाल हों, (उन्हें प्रत्येकजीव वाले समझो।) ।।७१।। जिस टूटे हुए पत्ते के भंग-प्रदेश में विषमछेद दिखाई दे, वह पत्ता प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने पत्ते हों, (उन्हें भी प्रत्येकजीव वाले समझो।) ।।७२।। जिस पुष्प के टूटने पर उसके भंगप्रदेश में विषम-छेद दिखाई दे, वह पुष्प प्रत्येकजीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने (पुष्प हों, उन्हें प्रत्येक-जीवी समझना चाहिए) ।।७३।। जिस फल के टूटने पर उसके भंगप्रदेश में विषमछेद दृष्टिगोचर हो, वह फल भी प्रत्येकजीव वाला है। ऐसे और भी जितने (फल हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए।) ।।७४।। जिस बीच के टूटने पर उसके भंग में विषमछेद दिखाई दे, वह बीज प्रत्येकजीव वाला है। ऐसे अन्य जितने भी बीज हों, (वे भी प्रत्येकजीव वाले जानने चाहिए) ।।७५।।

[५] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७६।।
जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा तु सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७७।।
जस्स खंधस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७८।।
जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७९।।

[५४-५] जिस मूल के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा छल्ली (छाल) अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इस प्रकार की जो भी अन्य छालें हों, उन्हें अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए ।।७६।। जिस कन्द के काष्ठ से छाल अधिक मोटी हो, वह अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की जो भी अन्य छालें हों, उन्हें अनन्तजीव वाली समझना चाहिए ।।७७।। जिस स्कन्ध के काष्ठ से छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छालें हों, (उन सबको अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।) ।।७८।। जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इस प्रकार जितनी भी छालें हों, उन सबको अनन्तजीव वाली समझना चाहिए ।।७९।।

[६] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।८०।।

जस्स कंदस्स कट्ठाश्रो छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।८१।।

जस्स खंधस्स कट्ठाश्रो छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।८२।।

जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।८३।।

[५४-६] जिस मूल के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येक-जीव वाली है। इस प्रकार जितनी भी अन्य छालें हों, (उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझो।) ।।८०।। जिस कन्द के काष्ठ से उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की जितनी भी अन्य छालें हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए।।८१।। जिस स्कन्ध के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हों, उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ।।८२।। जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हों, उन्हें, प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ।।८३।।

[७] चक्कागं भज्जमाणस्स गंठी चुण्णघणो भवे।
पुढविसरिसेण भेएण अणंतजीवं वियाणाहि ।।८४।।

गूढछिरागं पत्तं सच्छीरं जं च होति णिच्छीरं।
जं पि य पणट्ठसंधि अणंतजीवं वियाणाहि ।।७५।।

[५४-७] जिस (मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि) को तोड़ने पर (उसका भंगस्थान) चक्राकार अर्थात् सम हो, तथा जिसकी गांठ (पर्व, गांठ या भंगस्थान) चूर्ण (रज) से सघन (व्याप्त) हो, उसे पृथ्वी के समान भेद से अनन्तजीवों वाला जानो ।।८४।। जिस (मूल-कन्दादि) की शिराएँ गूढ़ (प्रच्छन्न या अदृश्य) हों, जो (मूलादि) दूध वाला हो अथवा जो दूध-रहित हो तथा जिस (मूलादि) की सन्धि नष्ट (अदृश्य) हो, उसे अनन्तजीवों वाला जानो ।।८५।।

[८] पुप्फा जलया थलया य वेंटबद्धा य णालबद्धा य।
संखेज्जमसंखेज्जा बोधव्वाऽणंतजीवा य ।।८६।।

जे केइ नालियाबद्धा पुप्फा संखेज्जजीविया भणिता।
णिहुया अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।८७।।

पउमुप्पलिणीकंदे अंतरकंदे तहेव झिल्ली य।
एते अणंतजीवा एगो जीवो भिस-मुणाले ।।८८।।

पलंडू-ल्हसणकंदे य कंदली य कुसुंबए।
एए परित्तजीवा जे यावऽण्णे तहाविहा ।।८९।।

पउमुप्पल-नलिणाणं सुभग-सोगंधियाण य ।
अरविंद-कोकणाणं सतवत्त-सहस्सवत्ताणं ॥९०॥
वेंटं वाहिरपत्ता य कण्णिया चेव एगजीवस्स ।
अब्भिंतरगा पत्ता पत्तेयं केसरा मिंजा ॥९१॥
वेणु णल इक्खुवाडियमसमासइक्खू य इक्कडेरंडे ।
करकर सुंठि विहुंगुं तणाण तह पव्वगाणं च ॥९२॥
अच्छि पव्वं वलिमोडओ य एगस्स होंति जीवस्स ।
पत्तेयं पत्ताइं पुप्फाइं अणेगजीवाइं ॥९३॥
पुस्सफलं कालिंगं तुंबं तउसेलवालु वालुंकं ।
घोसाडगं पडोलं तिंदूयं चेव तेंदूसं ॥९४॥
विंटं गिरं कडाहं एयाहं होंति एगजीवस्स ।
पत्तेयं पत्ताइं सकेसरमकेसरं मिंजा ॥९५॥
सप्फाए सज्जाए उव्वेहलिया य कुहण कंदुक्के ।
एए अणंतजीवा कंडुक्के होति भयणा उ ॥९६॥

[५४-८] पुष्प जलज (जल में उत्पन्न होने वाले) और स्थलज हों, वृन्तवद्ध हों या नालवद्ध, संख्यात जीवों वाले, असंख्यात जीवों वाले और कोई-कोई अनन्त जीवों वाले समझने चाहिए ॥८६॥ जो कोई नालिकावद्ध पुष्प हों, वे संख्यात जीव वाले कहे गए हैं। थूहर (स्निहका) के फूल अनन्त जीवों वाले हैं। इसी प्रकार के (थूहर के फूलों के सदृश) जो अन्य फूल हों, (उन्हें भी अनन्त जीवों वाले समझने चाहिए।) ॥८७॥ पद्मकन्द, उत्पलिनीकन्द और अन्तरकन्द, इसी प्रकार झिल्ली (नामक वनस्पति), ये सव अनन्त जीवों वाले हैं; किन्तु (इनके) भिस और मृणाल में एक-एक जीव है ॥८८॥ पलाण्डुकन्द (प्याज), लहसुनकन्द, कन्दली नामक कन्द और कुसुम्वक (कुस्तुम्वक या कुटुम्वक) (नामक वनस्पति) ये प्रत्येकजीवाश्रित हैं। अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हैं, (उन्हें प्रत्येकजीव वाली समझो।) ॥८९॥ पद्म, उत्पल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, अरविन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र—कमलों के वृत्त (डंठल), वाहर के पत्ते और कर्णिका, ये सव एकजीवरूप हैं। इनके भीतरी पत्ते, केसर और मिंजा (अर्थात् –फल) भी प्रत्येक-जीव वाले होते हैं ॥९०-९१॥ वेणु (वांस), नल (नड), इक्षुवाटिक, समासेक्षु और इक्कड़, रंड, करकर, सुंठी (सोंठ), विहुंगु (विहंगु) एवं दूव आदि तृणों तथा पर्व (पोर=गांठ) वाली वनस्पतियों के जो अक्षि, पर्व तथा वलिमोटक (गाठों को परिवेष्टन करने वाला चक्राकार भाग) हों, वे सव एकजीवात्मक हैं। इनके पत्र (पत्ते) प्रत्येकजीवात्मक होते हैं, और इनके पुष्प अनेकजीवात्मक होते हैं ॥९२-९३॥ पुष्यफल, कालिंग, तुम्व, त्रपुष, एलवालुक (चिर्भट-चीभड़ा-ककड़ी), वालुक (चिर्भट-ककड़ी), तथा घोषाटक (घोषातक), पटोल, तिन्दूक, तिन्दूस फल, इनके सव पत्ते प्रत्येक जीव से (पृथक्-पृथक्) अधिष्ठित होते हैं। तथा वृन्त (डंठल), गुद्दा और गिर (कटाह) के सहित तथा केसर (जटा) सहित या अकेसर (जटारहित) मिंजा (वीज), ये सव एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं ॥९४-९५॥ सप्फाक, सद्यात (सध्यात), उव्वेहलिया और कुहण तथा कन्दुक्य

ये सब वनस्पतियां अनन्तजीवात्मक होती हैं; किन्तु कन्दुक्य वनस्पति में भजना (विकल्प) है, (अर्थात्—कोई कन्दुक्य अनन्तजीवात्मक और कोई असंख्यातजीवात्मक होती है ।) ॥९६॥

[९] जोणिब्भूए बीए जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा ।
जो वि य मूले जीवो सो वि य पत्ते पढमताए ॥९७॥
सव्वो वि किसलओ खलु उग्गममाणो अणंतओ भणिओ ।
सो चेव विवड्ढंतो होइ परित्तो अणंतो वा ॥९८॥

[५४-९] योनिभूत बीज में जीव उत्पन्न होता है, वह जीव वही (पहले वाला बीज का जीव हो सकता है,) अथवा अन्य कोई जीव (भी वहाँ आकर उत्पन्न हो सकता है ।) जो जीव मूल (रूप) में (परिणत) होता है, वही जीव प्रथम पत्र के रूप में भी (परिणत होता) है । (अतः मूल और वह प्रथमपत्र दोनों एकजीवकर्तृक भी होते हैं ।) ॥९७॥ सभी किसलय (कोंपल) ऊगता हुआ अवश्य ही अनन्तकाय कहा गया है । वही (किसलयरूप अनन्तकायिक) वृद्धि पाता हुआ प्रत्येकशरीरी या अनन्तकायिक हो जाता है ॥९८॥

[१०] समयं वक्कंताणं समयं तेसिं सरीरनिव्वत्ती ।
समयं आणुग्गहणं समयं ऊसास-नीसासे ॥९९॥
एक्कस्स उ जं गहणं बहूण साहारणाण तं चेव ।
जं बहुयाणं गहणं समासओ तं पि एगस्स ॥१००॥
साहारणमाहारो साहारणमाणुपाणगहणं च ।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं एयं ॥१०१॥
जह अयगोलो धंतो जाओ तत्ततवणिज्जसंकासो ।
सव्वो अगणिपरिणतो निगोयजीवे तहा जाण ॥१०२॥
एगस्स दोण्ह तिण्ह व संखेज्जाण व न पासिउं सक्का ।
दीसंति सरीराइं णिओयजीवाणऽणंताणं ॥१०३॥

[५४-१०] एक साथ उत्पन्न (जन्मे) हुए उन (साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की शरीर-निष्पत्ति (शरीररचना) एक ही काल में होती (तथा) एक साथ ही (उनके द्वारा) प्राणापान-(के योग्य पुद्गलों का) ग्रहण होता है, (तत्पश्चात्) एक काल में ही (उनका) उच्छ्वास और निःश्वास होना है ॥९९॥ एक जीव का जो (आहारादि पुद्गलों का) ग्रहण करना है, वही बहुत-से (साधारण) जीवों का ग्रहण करना (समझना चाहिए ।) और जो (आहारादि पुद्गलों का) ग्रहण बहुत-से (साधारण) जीवों का होता है, वही एक का ग्रहण होता है ॥१००॥ (एक शरीर में आश्रित) साधारण जीवों का आहार भी साधारण (एक) ही होता है, प्राणापान (के योग्य पुद्गलों) का ग्रहण (एवं श्वासोच्छ्वास भी) साधारण होता है । यह (साधारण जीवों का) साधारण लक्षण (समझना चाहिए ।) ॥१०१॥ जैसे (अग्नि में) अत्यन्त तपाया हुआ लोहे का गोला, तपे हुए (सोने) के समान सारा का सारा अग्नि में परिणत (अग्निमय) हो जाता है, उसी प्रकार (अनन्त) निगोद जीवों का निगोदरूप एक शरीर में परिणमन होना समझ लो ॥१०२॥ एक, दो, तीन, संख्यात अथवा

(असंख्यात) निगोदों (के पृथक्-पृथक् शरीरों) का देखना शक्य नहीं है। (केवल) (अनन्त-) निगोद-जीवों के शरीर ही दिखाई देते हैं ॥१०३॥

[११] लोगागासपएसे णिओयजीवं ठवेहि एक्केक्कं ।
एवं मवेज्जमाणा हवंति लोया अणंता उ ॥१०४॥
लोगागासपएसे परित्तजीवं ठवेहि एक्केक्कं ।
एवं मविज्जमाणा हवंति लोया असंखेज्जा ॥१०५॥
पत्तेया पज्जत्ता पयरस्स असंखेभागमेत्ता उ ।
लोगाऽसंखाऽपज्जत्तगाण साहारणमणंता ॥१०६॥
[एएहिं सरीरेहिं पच्चक्खं ते परूविया जीवा ।
सुहुमा आणागेज्झा चक्खुप्फासं ण ते एंति ॥१॥] [पक्खित्ता गाहा]

जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[५४-११] लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में यदि एक-एक निगोदजीव को स्थापित किया जाए और उनका माप किया जाए तो ऐसे-ऐसे अनन्त लोकाकाश हो जाते हैं, (किन्तु लोकाकाश तो एक ही है, वह भी असंख्यातप्रदेशी है।) ॥१०४॥ एक-एक लोकाकाश-प्रदेश में, प्रत्येक वनस्पति काय के, एक-एक जीव को स्थापित किया जाए और उन्हें मापा जाए तो ऐसे-ऐसे असंख्यात-लोकाकाश हो जाते हैं ॥१०५॥ प्रत्येक वनस्पतिकाय के पर्याप्तक जीव घनीकृत प्रतर के असंख्यात-भाग मात्र (अर्थात्—लोक के असंख्यातवें भाग में जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने) होते हैं। तथा अपर्याप्तक प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवों का प्रमाण असंख्यात लोक के बराबर है; और साधारण जीवों का परिमाण अनन्तलोक के बराबर है ॥१०६॥

[प्रक्षिप्त गाथार्थ] "इन (पूर्वोक्त) शरीरों के द्वारा स्पष्टरूप से उन बादरनिगोद जीवों की प्ररूपणा की गई है। सूक्ष्म निगोदजीव केवल आज्ञाग्राह्य (तीर्थंकरवचनों द्वारा ही ज्ञेय) हैं। क्योंकि ये (सूक्ष्मनिगोद जीव) आंखों से दिखाई नहीं देते ॥१॥" अन्य जो भी इस प्रकार की (न कही गई) वनस्पतियां हों, (उन्हें साधारण या प्रत्येक वनस्पतिकाय में लक्षणानुसार यथायोग्य समझ लेनी चाहिए।)

५५. [१] ते समासओ दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[५५-१] वे (पूर्वोक्त सभी प्रकार के वनस्पतिकायिक जीव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[२] तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता ।

[५५-२] उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं किये हुए) हैं।

[३] तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा तेसिं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति—जत्थ

एगो तत्थ सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता। एएसि णं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ। तं जहा—

कंदा य १ कंदमूला य २ रुक्खमूला इ ३ यावरे।
गुच्छा य ४ गुम्म ५ वल्ली य ६ वेणुयाणि ७ तणाणि य ८ ॥१०७॥
पउमुप्पल ९-१० संघाडे ११ हढे य १२ सेवाल १३ किण्हए १४ पणए १५।
अवए य १६ कच्छ १७ भाणी १८ कंडुक्केक्कूणवीसइमे १९ ॥१०८॥
तय-छल्लि-पवालेसु य पत्त-पुप्फ-फलेसु य।
मूलऽग्ग-मज्झ-बीएसु जोणी कस्स य कित्तिया ॥१०९॥

से त्तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया। से त्तं बादरवणस्सइकाइया। से त्तं वणस्सइकाइया। से त्तं एगिंदिया।

[५५-३] उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार (विधान) हो जाते हैं। उनके संख्यात लाख योनिप्रमुख होते हैं। पर्याप्तकों के आश्रय से अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक (बादर) पर्याप्तक जीव होता है, वहाँ (नियम से उसके आश्रय से) कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त (प्रत्येक) अपर्याप्तक जीव उत्पन्न होते हैं। (साधारण जीव तो नियम से अनन्त ही उत्पन्न होते हैं।)

इन (साधारण और प्रत्येक वनस्पति-विशेष) के विषय में विशेष जानने के लिए इन (आगे कही जाने वाली) गाथाओं का अनुसरण करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १. कन्द (सूरण आदि कन्द), २. कन्दमूल और ३. वृक्षमूल (ये साधारण वनस्पति-विशेष हैं।) ४. गुच्छ, ५. गुल्म, ६. वल्ली और ७. वेणु (बांस) और ८. तृण (अर्जुन आदि हरी घास), ९. पद्म, १०. उत्पल, ११. शृंगाटक (सिंघाड़ा), १२. हढ (जलज वनस्पति), १३. शैवाल, १४. कृष्णक, १५. पनक, १६. अवक, १७. कच्छ, १८. भाणी, और १९. कन्दक्य (नामक साधारण वनस्पति) ॥१०८॥

इन उपर्युक्त उन्नीस प्रकार की वनस्पतियों की त्वचा, छल्ली (छाल), प्रवाल (कोंपल), पत्र, पुष्प, फल, मूल, अग्र, मध्य और बीज (इन) में से किसी की योनि कुछ और किसी की कुछ कही गई है ॥१०९॥ यह हुआ साधारणशरीर वनस्पतिकायिक का स्वरूप। (इसके साथ ही) उस (पूर्वोक्त) बादर वनस्पतिकायिक का वक्तव्य पूर्ण हुआ। (साथ ही) वह (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिकों का वर्णन भी समाप्त हुआ; और इस प्रकार उन एकेन्द्रियसंसारसमापन्न जीवों की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—समस्त वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रों (सू. ३५ से ५५ तक) में वनस्पतिकायिक जीवों के भेद-प्रभेदों तथा प्रत्येकशरीर बादरवनस्पतिकायिकों के वृक्ष, गुच्छ आदि सविवरण बारह भेदों तथा साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिकों की विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

क्रम—सर्वप्रथम वनस्पतिकाय के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद, तदनन्तर सूक्ष्म के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये दो प्रकार, फिर बादर के दो भेद—प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर, तत्पश्चात् प्रत्येकशरीर के वृक्ष, गुच्छ आदि १२ भेद, क्रमशः प्रत्येक भेद के अन्तर्गत विविध वनस्पतियों के नामों का उल्लेख, तदनन्तर साधारणवनस्पतिकायिकों के अन्तर्गत अनेक नामों का उल्लेख तथा लक्षण एवं अन्त में उनके पर्याप्तक-अपर्याप्तक भेदों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[1]

वृक्षादि बारह भेदों की व्याख्या—**वृक्ष**—जिसके आश्रित मूल, पत्ते, फूल, फल, शाखा-प्रशाखा, स्कन्ध, त्वचा आदि अनेक हों, ऐसे आम, नीम, जामुन, आदि वृक्ष कहलाते हैं। वृक्ष दो प्रकार के होते हैं—एकास्थिक (जिसके फल में एक ही बीज या गुठली हो) और बहुबीजक (जिसके फल में अनेक बीज हों)। आम, नीम आदि वृक्ष एकास्थिक के उदाहरण हैं तथा बिजौरा, वट, दाड़िम, उदुम्बर आदि बहुबीजक वृक्ष हैं। ये दोनों प्रकार के वृक्ष तो प्रत्येकशरीरी होते हैं, लेकिन इन दोनों प्रकार के वृक्षों के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा और प्रवाल, असंख्यात जीवों वाले तथा पत्ते प्रत्येक जीव वाले और पुष्प अनेक जीवों वाले होते हैं। **गुच्छ**—वर्तमान युग की भाषा में इसका अर्थ है—पौधा। इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं—वृन्ताकी (बैंगन), तुलसी, मातुलिंगी आदि पौधे। **गुल्म**—विशेषतः फूलों के पौधों को गुल्म कहते हैं। जैसे—चम्पा, जाई, जूही, कुन्द, मोगरा, मल्लिका आदि पुष्पों के पौधे। **लता**—ऐसी बेलें जो प्रायः वृक्षों पर चढ़ जाती हैं, वे लताएँ होती हैं। जैसे—चम्पकलता, नागलता, अशोकलता आदि। **वल्ली**—ऐसी बेलें जो विशेषतः जमीन पर ही फैलती हैं, वे वल्लियां कहलाती हैं। उदाहरणार्थ—कालिंगी (तरबूज की बेल), तुम्बी (तूम्बे की बेल), कर्कटिकी (ककड़ी की बेल), एला (इलायची की बेल) आदि। **पर्वक**—जिन वनस्पतियों में बीच-बीच में पर्व—पोर या गांठे हों, वे पर्वक वनस्पतियां कहलाती हैं। जैसे—इक्षु, सूंठ, वेंत, आदि। **तृण**—हरी घास आदि को तृण कहते हैं, जैसे—कुश, अर्जुन, दूब आदि। **वलय**—वलय के आकार की गोल-गोल पत्तों वाली वनस्पति 'वलय' कहलाती है। जैसे—ताल (ताड़), कदली (केले) आदि के पौधे। **ओषधि**—जो वनस्पति फल (फसल) के पक जाने पर दानों के रूप में होती है, वह ओषधि कहलाती है। जैसे—गेहूँ, चावल, मसूर, तिल, मूंग आदि। **हरित**—विशेषतः हरी सागभाजी को हरित कहते हैं—जैसे—चन्दलिया, बथुआ, पालक आदि। **जलरुह**—जल में उत्पन्न होने वाली वनस्पति जलरुह कहलाती है। जैसे—पनक, शैवाल, पद्म, कुमुद, कमल आदि। **कुहण**—भूमि को फोड़ कर निकलने वाली वनस्पतियां कुहण कहलाती हैं। जैसे—छत्राक (कुकुरमुत्ता) आदि।[2]

प्रत्येकशरीरी अनेक जीवों का एक शरीराकार कैसे? प्रथम दृष्टान्त जैसे—पूर्ण सरसों के दानों को किसी श्लेषद्रव्य से मिश्रित कर देने पर वे बट्टी के रूप में एकरूप—एकाकार हो जाते हैं। यद्यपि वे सब सरसों के दाने परिपूर्ण शरीर वाले होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी अवगाहना में रहते हैं; तथापि श्लेषद्रव्य से परस्पर चिपक जाने पर वे एकरूप प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीरसंघात भी परिपूर्ण शरीर होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी

---

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भाग-१, पृ. १६ से २७ तक

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३० से ३२ तक

अवगाहना में रहते हैं, परन्तु विशिष्ट कर्मरूपी श्लेषद्रव्य से मिश्रित होने के कारण वे जीव भी एक-शरीरात्मक, एकरूप एवं एकशरीराकार प्रतीत होते हैं।

द्वितीय दृष्टान्त—जैसे तिलपपड़ी बहुत-से तिलों के एकमेक होने से (गुड़ आदि श्लेषद्रव्य से मिश्रित करने से) बनती है। उस तिलपपड़ी में तिल अपनी-अपनी अवगाहना में स्थित हो कर अलग-अलग रहते हैं, फिर भी वह तिलपट्टी एकरूप प्रतीत होती है। इसी प्रकार प्रत्येक शरीरीजीवों के शरीरसंघात पृथक्-पृथक् होने पर भी एकरूप प्रतीत होते हैं।[1]

अनन्तजीवों वाली वनस्पति के लक्षण—(१) टूटे हुए या तोड़े हुए जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पुष्प, फल, बीज का भंगप्रदेश समान अर्थात्—चक्राकार दिखाई दे, उन मूल आदि को अनन्तजीवों वाले समझने चाहिए। (२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध और शाखा के काष्ठ यानी मध्यवर्ती सारभाग की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, उस छाल को अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए। (३) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोड़े जाने पर उसका भंगस्थान चक्र के आकार का एकदम सम हो, वह मूल, कन्द आदि अनन्तजीव वाला समझना चाहिए। (४) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोड़े जाने पर पर्व—गांठ या भंगस्थान रज से व्याप्त होता है, अथवा जिस पत्र आदि को तोड़ने पर चक्राकार का भंग नहीं दिखता और भंग (ग्रन्थि-) स्थान भी रज से व्याप्त नहीं होता, किन्तु भंगस्थान का पृथ्वीसदृश भेद हो जाता है। अर्थात् सूर्य की किरणों से अत्यन्त तपे हुए खेत की क्यारियों के प्रतरखण्ड का-सा समान भंग हो जाता है, तो उसे अनन्तजीवों वाला समझना चाहिए। (५) क्षीरसहित (दूधवाले) या क्षीर-रहित (बिना दूध के) जिस पत्र की शिराएँ दिखती न हों उसे, अथवा जिस पत्र की (पत्र के दोनों भागों को जोड़ने वाली) सन्धि सर्वथा दिखाई न दे, उसे भी अनन्तजीवों वाला समझना चाहिए। (६) पुष्प दो प्रकार के होते हैं—जलज और स्थलज। ये दोनों भी प्रत्येक दो-दो प्रकार के होते हैं—वृन्तबद्ध (अतिमुक्तक आदि) और नालबद्ध (जाई के फूल आदि), इन-पुष्पों में से पत्रगत जीवों की अपेक्षा से कोई-कोई संख्यात जीवों वाले, कोई-कोई असंख्यात जीवों वाले और कोई-कोई अनन्त जीवों वाले भी होते हैं। आगम के अनुसार उन्हें जान लेना चाहिए। विशेष यह है कि जो जाई आदि नालबद्ध पुष्प होते हैं, उन सभी को तीर्थंकरों तथा गणधरों ने संख्यातजीवों वाले कहे हैं; किन्तु स्निहूपुष्प अर्थात्—थोहर के फूल या थोहर के जैसे अन्य फूल भी अनन्तजीवों वाले समझने चाहिए। (७) पद्मिनीकन्द, उत्पलिनीकन्द, अन्तरकन्द (जलज वनस्पतिविशेषकन्द) एवं झिल्लिका नामक वनस्पति, ये सब अनन्तजीवों वाले होते हैं। विशेष यह है कि पद्मिनीकन्द आदि के बिस (भिस) और मृणाल में एक जीव होता है। (८) सप्फाक, सज्जाय, उव्वेहलिया, कूहन और कन्दूका (देशभेद से) अनन्तजीवात्मक होती हैं। (९) सभी किसलय (कोंपल) ऊगते समय अनन्तकायिक होते हैं। प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चाहे वह प्रत्येकशरीरी हो या साधारण, जब किसलय अवस्था को प्राप्त होता है, तब तीर्थंकरों और गणधरों द्वारा उसे अनन्तकायिक कहा गया है। किन्तु वही किसलय बढ़ता-बढ़ता, बाद में पत्र रूप धारण कर लेता है तब साधारणशरीर या अनन्तकाय अथवा प्रत्येकशरीरी जीव हो जाता है।

प्रत्येकशरीर जीव वाली वनस्पति के लक्षण—(१) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प अथवा फल या बीज को तोड़ने पर उसके टूटे हुए (भंग) प्रदेश (स्थान) में हीर

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ३३

दिखाई दे, अर्थात्—उसके टुकड़े समरूप न हों, विषम हों, दंतीले हों, उस मूल, कन्द या स्कन्ध आदि को प्रत्येक(शरीरी)जीव समझना चाहिए । (२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध या शाखा के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकशरीर जीव वाली समझनी चाहिए । (३) पलाण्डुकन्द, लहसुनकन्द, कदलीकन्द और कुस्तुम्ब नामक वनस्पति, ये सब प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझने चाहिए। इस प्रकार की सभी अनन्त जीवात्मकलक्षण से रहित वनस्पतियां प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझनी चाहिए । (४) पद्म, उत्पल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, अरविन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र, इन सब प्रकार के कमलों के वृन्त (डण्ठल), बाह्य पत्र और पत्तों की आधारभूत कर्णिका, ये तीनों एकजीवात्मक हैं । इनके भीतरी पत्ते, केसर (जटा) और मिंजा भी एकजीवात्मक हैं। (५) बांस, नड नामक घास, इक्षुवाटिका, समासेक्षु, इक्कड घास, करकर, सूंठि, विहंगु और दूब आदि तृणों तथा पर्ववाली वनस्पतियों की अक्षि, पर्व, बलिमोटक (पर्व को परिवेष्ठित करने वाला चक्राकार भाग) ये सब एकजीवात्मक हैं। इनके पत्ते भी एक जीवाधिष्ठित होते हैं । किन्तु इनके पुष्प अनेक जीवों वाले होते हैं । (६) पुष्यफल, कालिंग आदि फलों का प्रत्येक पत्ता (पृथक्-पृथक्), वृन्त, गिरि और गूदा और जटावाले या बिना जटा के बीज एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं ।[1]

बीज का जीव मूलादि का जीव बन सकता है या नहीं ?—बीज की दो अवस्थाएँ होती हैं—योनि-अवस्था और अयोनि-अवस्था । जब बीज योनि-अवस्था का परित्याग नहीं करता किन्तु जीव के द्वारा त्याग दिया जाता है, तब वह बीज योनिभूत कहलाता है । जीव के द्वारा बीज त्याग दिया गया है, यह छद्मस्थ के द्वारा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता । अत: आजकल चेतन या अचेतन, जो अविध्वस्तयोनि है, उसे योनिभूत कहते हैं । जो विध्वस्तयोनि है, वह नियमत: अचेतन होने से अयोनिभूत बीज है । ऐसा बीज उगने में समर्थ नहीं रहता । तात्पर्य यह है कि योनि कहते हैं—जीव के उत्पत्तिस्थान को । अविध्वस्तशक्ति-सम्पन्न बीज ही योनिभूत होता है, उसी में जीव उत्पन्न होता है । प्रश्न यह है कि ऐसे योनिभूत बीज में वही पहले के बीज वाला जीव आकर उत्पन्न होता है अथवा दूसरा कोई जीव आकर उत्पन्न होता है ? उत्तर है—दोनों ही विकल्प हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि बीज में जो जीव था, उसने अपनी आयु का क्षय होने पर बीज का परित्याग कर दिया । वह बीज निर्जीव हो गया किन्तु उस बीज को पुन: पानी, काल और जमीन के संयोगरूप सामग्री मिले तो कदाचित् वही पहले वाला बीज मूल आदि का नाम-गोत्र बांध कर उसी पूर्व-बीज में आ कर उत्पन्न हो जाता है, और कभी कोई अन्य पृथ्वीकायिक आदि नया जीव भी उस बीज में उत्पन्न हो जाता है ।[2]

साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिकजीवों का लक्षण—साधारण वनस्पतिकायिक जीव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, एक साथ ही उनका शरीर बनता है, एक साथ ही वे प्राणापान के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं और एक साथ ही उनका श्वासोच्छ्वास होता है । एक जीव का आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण करना ही (उस शरीर के आश्रित) बहुत-से जीवों का ग्रहण करना है, इसी प्रकार बहुत-से जीवों का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण करना भी एक जीव का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. १, पृ. ३०० से ३२५ तक

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३५-३६-३७

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३८

करना है; क्योंकि वे सब जीव एक ही शरीर में आश्रित होते हैं। एक शरीर में आश्रित साधारण जीवों का आहार, प्राणापानयोग्य पुद्गलग्रहण एवं श्वासोच्छ्वास साधारण ही होता है। यही साधारणजीवों का साधारणरूप लक्षण है। एक निगोदशरीर में अनन्तजीवों का परिणमन कैसे होता है? इसका समाधान यह है—अग्नि में प्रतप्त लोहे का गोला जैसे सारा-का-सारा अग्निमय बन जाता है, वैसे ही निगोदरूप एकशरीर में अनन्त जीवों का परिणमन समझ लेना चाहिए। एक, दो, तीन, संख्यात या असंख्यात निगोद जीवों के शरीर हमें नहीं दिखाई दे सकते, क्योंकि उनके पृथक्-पृथक् शरीर ही नहीं हैं, वे तो अनन्तजीवों के पिण्डरूप ही होते हैं। अर्थात् अनन्तजीवों का एक ही शरीर होता है। हमें केवल अनन्तजीवों के शरीर ही दिखाई देते हैं, वे भी बादर निगोदजीवों के ही; सूक्ष्म निगोदजीवों के नहीं; क्योंकि सूक्ष्म निगोदजीवों के शरीर अनन्त जीवात्मक होने पर भी वे अदृश्य (दृष्टि से अगोचर) ही होते हैं। स्वाभाविकरूप से उसी प्रकार के सूक्ष्मपरिणामों से परिणत उनके शरीर होते हैं। अनन्त निगोदजीवों का एक ही शरीर होता है, इस विषय में वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान् के वचन ही प्रमाणभूत हैं। भगवान् का कथन है—'**सूई की नोंक के बराबर निगोदकाय में असंख्यात गोले होते हैं, एक-एक गोले में असंख्यात-असंख्यात निगोद होते हैं और एक-एक निगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं।**'[1]

अनन्त निगोदिया जीवों का शरीर एक ही होता है, यह कथन औदारिकशरीर की अपेक्षा जानना चाहिए। उन सब के तैजस और कार्मण शरीर भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—

५६. [१] **से किं तं बेंदिया? बेंदिया (से किं तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा? बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा) अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा—पुलाकिमिया कुच्छिकिमिया गंडूयलगा गोलोमा णेउरा सोमंगलगा वंसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया जलोउया संख संखणगा घुल्ला खुल्ला गुलया खंधा वराडा सोत्तिया मोत्तिया कलुयावासा एगओवत्ता दुहओवत्ता णंदियावत्ता संबुक्का माईवाहा सिप्पिसंपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिमा नपुंसगा।**

[५६-१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) द्वीन्द्रिय जीव किस प्रकार के हैं? [वह द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना क्या है?]

[५६-१ उ.] द्वीन्द्रिय (द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीव-प्रज्ञापना) अनेक प्रकार के कहे गए हैं। (अनेक प्रकार की कही गई है।) वह इस प्रकार—पुलाकृमिक, कुक्षिकृमिक, गण्डूयलग, गोलोम, नूपर, सौमंगलक, वंशीमुख, सूचीमुख, गौजलोका, जलोका, जलोयुक (जालायुष्क), शंख, शंखनक, घुल्ला, खुल्ला, गुडज, स्कन्ध, वराटा (वराटिका=कौडी), सौक्तिक, मौक्तिक (सौत्रिक मूत्रिक), कलुकावास, एकतोवृत्त, द्विधातोवृत्त, नन्दिकावर्त्त, शम्बूक, मातृवाह, शुक्तिसम्पुट, चन्दनक, समुद्र-

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ३९-४०

(ख) 'गोला य असंखेज्जा होंति निगोगा असंखया गोले।
एक्केको य निगोओ अणंत जीवो मुणेयव्वो॥'

लिक्षा। अन्य जितने भी इस प्रकार के हैं, (उन्हें द्वीन्द्रिय समझना चाहिए।) ये (उपर्युक्त प्रकार के) सभी (द्वीन्द्रिय) सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं।

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एएसि णं एवमादियाणं बेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं सत्त जाइकुलकोडिजोणीपमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। से त्तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५६-२] ये (द्वीन्द्रिय) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रियों के सात लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा गया है। यह हुई द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५६) में द्वीन्द्रिय जीवों की विविध जातियों के नामों का उल्लेख है तथा उनके दो प्रकारों एवं उनकी जीवयोनियों की संख्या का निरूपण किया गया है।

कुछ शब्दों के विशेष अर्थ—'पुलाकिमिया' = पुलाकृमिक एक प्रकार के कृमि होते हैं, जो मलद्वार (गुदाद्वार) में उत्पन्न होते हैं। कुच्छिकिमिया—कुक्षिकृमिक एक प्रकार के कृमि, जो उदर-प्रदेश में उत्पन्न होते हैं। संखणगा = शंखनक—छोटे शंख, शंखनी। चंदणा - चन्दनक—अक्ष। गंडूयलगा = गिंडोला। संवुक्का = शम्बूक = घोंघा। घुल्ला = घोंघरी। खुल्ला = समुद्री शंख के आकार के छोटे शंख। सिप्पिसंपुटा = शुक्तिसंपुट—संपुटाकार सीप। जलोया = जोंक।[1]

सव्वेते सम्मुच्छिमा—इसी प्रकार के मृतकलेवर में पैदा होने वाले कृमि, कीट आदि सब द्वीन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम समझने चाहिए। क्योंकि सभी अशुचिस्थानों में पैदा होने वाले कीड़े सम्मूर्च्छिम ही होते हैं, गर्भज नहीं। और तत्त्वार्थसूत्र के 'नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि' इस सूत्रानुसार सभी सम्मूर्च्छिम जीव नपुंसक ही होते हैं।[2]

जाति, कुलकोटि एवं योनि शब्द की व्याख्या—पूर्वाचार्यों ने इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—जातिपद से तिर्यञ्चगति समझनी चाहिए। उसके कुल हैं—कृमि, कीट, वृश्चिक आदि। ये कुल योनि-प्रमुख होते हैं, अर्थात्—एक ही योनि में अनेक कुल होते हैं। जैसे—एक ही छगण (गोबर या कंडे) की योनि में कृमिकुल, कीटकुल और वृश्चिककुल आदि होते हैं। इसी प्रकार एक ही योनि में अवान्तर जातिभेद होने से अनेक जातिकुल के योनिप्रवाह होते हैं। द्वीन्द्रियों के सात लाख जातिकुलकोटिरूप योनियां हैं।[3]

त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—

५७. [१] से किं तं तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा? तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पन्नत्ता। तं जहा—ओवइया रोहिणीया कुंथू पिपीलिया उद्दंसगा उद्देहिया उक्कलिया

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. १, पृ-३४८-३४९

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१

(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ. २, सू. ५०

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४१

उप्पाया उक्कडा उप्पडा तणाहारा कट्ठाहारा मालुया पत्ताहारा तणविंटिया पत्तविंटिया पुप्फविंटिया फलविंटिया बीयविंटिया तेंदुरणमज्जिया[1] तउसमिंजिया कप्पासट्ठिसमिंजिया हिल्लिया झिल्लिया झिंगिरा किंगिरिडा[2] पाहुया सुभगा सोवच्छिया सुयविंटा इंदिकाइया इंदगोवया उरुलुंचगा[3] कोत्थलवाहगा जूया हालाहला पिसुया सतवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिम-णपुंसगा।

[५७-१ प्र.] वह (पूर्वोक्त) त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५७-१ उ.] त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—औपयिक, रोहिणीक, कंथु (कुंथुआ), पिपीलिका (चींटी, कीड़ी), उद्दंशक, उद्देहिका (उदई—दीमक), उत्कलिक, उत्पाद, उत्कट, उत्पट, तृणाहार, काष्ठाहार (घुन), मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पुष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेदुरणमज्जिक (तेवुरणमिंजिक या तम्वुरुण-उमज्जिक), त्रपुपमिंजिक, कार्पासास्थिमिंजिक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिरा (झींगूर), किंगिरिट, वाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृन्त, इन्द्रिकायिक (इन्द्रकायिक), इन्द्रगोपक (इन्द्रगोप—बीरबहूटी), उरुलुंचक (तुरुतुम्बक), कुस्थलवाहक, यूका (जूं), हालाहल, पिशुक (पिस्सू—खटमल), शतपादिका (गजाई), गोम्ही (गोम्मयी), और हस्तिशौण्ड। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (जीव हों, उन्हें त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न समझना चाहिए।) ये (उपर्युक्त) सब सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एएसि णं एवमाइयाणं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं अट्ठ जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खायं। से त्तं तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५७-२] ये (पूर्वोक्त त्रीन्द्रिय जीव) संक्षेप में, दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रियजीवों के सात लाख जाति कुल-कोटि-योनिप्रमुख (योनिद्वार) होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई उन त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५७) में तीन इन्द्रियों वाले अनेक जाति के जीवों का निरूपण किया गया है।

गोम्ही का अर्थ—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—'कर्णसियालिया' किया है। हिन्दी भाषा में इसे कनसला या कानखजूरा भी कहते हैं।[4]

चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—

५८. [१] से किं तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

पाठान्तर—१. तंबुरुणुमज्जिया, तिवुरणमज्जिया, तेवुरणमिंजिया। २. झिंगिरिडा वाहुया। ३. उरुतुंभुगा, तुरुतुंवगा।
४. प्रज्ञापनासूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक ४२

अंधिय णेत्तिय[1] मच्छिय मगमिगकीडे[2] तहा पयंगे य ।
ढिंकुण कुक्कुड कुक्कुह णंदावत्ते य सिंगिरिडे ।।११०।।

किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हलिद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओभंजलिया जलचारिया गंभीरा णीणिया तंतवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारंगा णेउला दोला भमरा भरिली जरुला तोट्टा विच्छुता पत्तविच्छुया छाणविच्छुया जलविच्छुया पियंगाला कणगा गोमयकीडगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । सव्वेते सम्मुच्छिमा नपुंसगा ।

[५८-१ प्र.] वह (पूर्वोक्त) चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५८-१ उ.] चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है— [गाथार्थ] अंधिक, नेत्रिक (या पत्रिक), मक्खी, मगमृगकीट (मशक—मच्छर, कीड़ा अथवा टिड्डी) तथा पतंगा, ढिंकुण (ढंकुण), कुक्कुड (कुर्कुट), कुक्कुह, नन्द्यावर्त और शृंगिरिट (शृंगिरट) ।। ११० ।।

कृष्णपत्र (कृष्णपक्ष), नीलपत्र (नीलपक्ष), लोहितपत्र (लोहितपक्ष), हारिद्रपत्र (हारिद्रपक्ष), शुक्लपत्र (शुक्लपक्ष), चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष, अवभांजलिक (ओहांजलिक), जलचारिक, गम्भीर, नीनिक (नीतिक), तन्तव, अक्षिरोट, अक्षिवेध, सारंग, नेवल (नूपुर), दोला, भ्रमर, भरिली, जरुला, तोट्ट, बिच्छू, पत्रवृश्चिक, छाणवृश्चिक (गोबर का बिच्छू), जलवृश्चिक, (जल का बिच्छू), प्रियंगाल, कनक और गोमयकीट (गोबर का कीड़ा) । इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्राणी) हैं, (उन्हें भी चतुरिन्द्रिय समझना चाहिए । ये (पूर्वोक्त) सभी चतुरिन्द्रिय सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । एतेसि णं एवमाइयाणं चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं णव जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं । से त्तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ।

[५८-२] वे दो प्रकार के कहे गए हैं । यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । इस प्रकार के चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा (तीर्थंकरों ने) कहा है । यह हुई उन चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना ।

विवेचन—चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५८) में चतुरिन्द्रिय जीवों के अनेक प्रकारों और उनकी जातिकुलकोटि-योनियों की संख्या का निरूपण किया गया है ।

चतुर्विध पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना—

५९. से किं तं पंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

पंचिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—नेरइयपंचिंदियसंसार-

---

१. पोत्तिय । २. मसगाकीडे, मगसिरकीडे, मगासकीडे ।

समावण्णजीवपण्णवणा १ तिरिक्खजोणियपंचिदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा २ मणूस्सपंचिदिय-संसारसमावण्णजीवपण्णवणा ३ देवपंचिदियसंसारसामावण्णजीवपण्णवणा ४ ।

[५९ प्र.] वह पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५९ उ.] पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) नैरयिक-पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (२) तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (३) मनुष्य-पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना और (४) देव-पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना ।

विवेचन—चतुर्विध पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५९) में नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव; इन चतुर्विध पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों का निरूपण किया गया है ।

नैरयिकजीवों की प्रज्ञापना—

६०. से किं तं नेरइया ?

नेरइया सत्तविहा पण्णत्ता । तं जहा—रयणप्पभापुढविनेरइया १ सक्करप्पभापुढविनेरइया २ वालुयप्पभापुढविनेरइया ३ पंकप्पभापुढविनेरइया ४ धूमप्पभापुढविनेरइया ५ तमप्पभापुढविनेरइया ६ तमतमप्पभापुढविनेरइया ७ ।

ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । से त्तं नेरइया ।

[६० प्र.] वे (पूर्वोक्त) नैरयिक किस (कितने) प्रकार के हैं ?

[६० उ.] नैरयिक सात प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (२) शर्कराप्रभापृथ्वी-नैरयिक (३) वालुकाप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (४) पंकप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (५) धूमप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (६) तमःप्रभापृथ्वी-नैरयिक और (७) तमस्तमःप्रभापृथ्वी-नैरयिक । वे (उपर्युक्त सातों प्रकार के नैरयिक) संक्षेप से दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । यह नैरयिकों की प्ररूपणा हुई ।

विवेचन—नैरयिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ६०) में नैरयिक और उनके सात प्रकारों की प्ररूपणा की गई है ।

'नैरयिक' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ—निर्+अय का अर्थ है—जिससे अय अर्थात् इष्टफल देने वाला (शुभ कर्म) निर् अर्थात् निर्गत हो गया हो—निकल गया हो, जहाँ इष्टफल की प्राप्ति न होती हो, वह निरय अर्थात् नारकावास है। निरय में उत्पन्न होने वाले जीव नैरयिक कहलाते हैं। ये नैरयिक (नारक) जीव संसारसमापन्न अर्थात्—जन्ममरण को प्राप्त हैं तथा पांचों इन्द्रियों से युक्त होते हैं, अतएव पंचेन्द्रिय-संसारसमापन्न कहलाते हैं ।[1]

समग्र पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की प्रज्ञापना—

६१. से किं तं पंचिदियतिरिक्खजोणिया ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४३

पंचिदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—जलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिया १ थलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिया २ खहयरपंचिदियतिरिक्खजोणिया ३।

[६१ प्र.] वे पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[६१ उ.] पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, (२) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और (३) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

६२. से किं तं जलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिया ?

जलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—मच्छा १ कच्छभा २ गाहा ३ मगरा ४ सुंसुमारा ५।

[६२ प्र.] वे जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कैसे हैं ?

[६२ उ.] जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (कछुए), (३) ग्राह, (४) मगर और (५) सुंसुमार।

६३. से किं तं मच्छा ?

मच्छा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—सण्हमच्छा खवल्लमच्छा[1] जुगमच्छा विज्झिडियमच्छा हलिमच्छा मग्गरिमच्छा रोहियमच्छा हलीसागरा गागरा वडा वडगरा[2] तिमी तिमिंगिला णक्का तंदुलमच्छा कणिक्कामच्छा सालिसत्थियामच्छा लंभणमच्छा पडागा पडागातिपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं मच्छा।

[६३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) मत्स्य कितने प्रकार के हैं ?

[६३ उ.] मत्स्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—श्लक्ष्णमत्स्य, खवल्लमत्स्य, युगमत्स्य (जुंगमत्स्य), विज्झिडिय (विज्झडिय) मत्स्य, हलिमत्स्य, मकरीमत्स्य, रोहितमत्स्य, हलीसागर, गागर, वट, वटकर, (तथा गर्भज उसगार), तिमि, तिमिंगल, नक्र, तन्दुलमत्स्य, कणिक्कामत्स्य, शालिशस्त्रिक मत्स्य, लंभनमत्स्य, पताका और पताकातिपताका। इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हैं, वे सब मत्स्यों के अन्तर्गत समझने चाहिए। यह मत्स्यों की प्ररूपणा हुई।

६४. से किं तं कच्छभा ?

कच्छभा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—अट्ठिकच्छभा य मंसकच्छभा य। से त्तं कच्छभा।

[६४ प्र.] वे (पूर्वोक्त) कच्छप किस प्रकार के हैं ?

[६४ उ.] कच्छप दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—अस्थिकच्छप (जिनके शरीर में हड्डियां अधिक हों, वे) और मांसकच्छप (जिनके शरीर में मांस की बहुलता हो, वे)। इस प्रकार कच्छप की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

पाठान्तर—१. जुंगमच्छा। २. 'गब्भया उसगारा' यह अधिक पाठ है।

६५. से किं तं गाहा ?

गाहा पंचविहा पण्णत्ता । तं जहा—दिली १ वेढला[1] २ मुद्धया ३ पुलगा ४ सीमागारा ५ । से त्तं गाहा ।

[६५ प्र.] वे (पूर्वोक्त) ग्राह कितने प्रकार के हैं ?

[६५ उ.] ग्राह (घड़ियाल) पांच प्रकार के होते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) दिली, (२) वेढल या (वेटक), (३) मूर्धज, (४) पुलक और (५) सीमाकार । यह हुई ग्राह की वक्तव्यता ।

६६. से किं तं मगरा ?

मगरा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सोंडमगरा य मट्ठमगरा य । से त्तं मगरा ।

[६६ प्र.] वे मगर किस प्रकार के होते हैं ?

[६६ उ.] मगर (मगरमच्छ) दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—शौण्डमकर और मृष्टमकर । यह हुई (पूर्वोक्त) मकर की प्ररूपणा ।

६७. से किं तं सुंसुमारा ?

सुंसुमारा एगागारा पण्णत्ता । से त्तं सुंसुमारा । जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[६७ प्र.] वे सुंसुमार (शिशुमार) किस प्रकार के हैं ?

[६७ उ.] सुंसुमार (शिशुमार) एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं । यह हुआ (पूर्वोक्त) सुंसुमार का निरूपण । अन्य जो इस प्रकार के हों ।

६८. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य ।

[६८-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के जलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय) संक्षेप में दो प्रकार के हैं । यथा—सम्मूर्च्छिम और गर्भज (गर्भव्युत्क्रान्तिक) ।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा ।

[६८-२] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सब नपुंसक होते हैं ।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३ ।

[६४-३] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक ।

[४] एतेसि णं एवमाइयाणं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं अद्धतेरस जाइकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं । से त्तं जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[६८-४] इस प्रकार (मत्स्य) इत्यादि इन (पांचों प्रकार के) पर्याप्तक और अपर्याप्तक

पाठान्तर—१. वेढगा ।

जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के साढ़े बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों की प्ररूपणा।

६९. से किं तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[६९ प्र.] वे (पूर्वोक्त) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[६९ उ.] स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७०. से किं तं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—एगखुरा १ दुखुरा २ गंडीपदा ३ सणप्फदा ४।

[७० प्र.] वे (पूर्वोक्त) चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[७० उ.] चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. एकखुरा (एक खुर वाले), २. द्विखुरा (दो खुर वाले), ३. गण्डीपद (सुनार की एरण जैसे पैर वाले) और ४. सनखपद (नखसहित पैरों वाले)।

७१. से किं तं एगखुरा ?

एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—अस्सा अस्सतरा घोडगा गद्दभा गोरक्खरा कंदलगा सिरिकंदलगा आवत्ता, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं एगखुरा।

[७१ प्र.] वे एकखुरा किस प्रकार के हैं ?

[७१ उ.] एकखुरा अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं, जैसे कि—अश्व, अश्वतर, (खच्चर), घोटक (घोड़ा), गधा (गर्दभ), गोरक्षर, कन्दलक, श्रीकन्दलक और आवर्त (आवर्त्तक)। इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं, (उन्हें एकखुर-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च के अन्तर्गत समझना चाहिए।) यह हुआ एकखुरों का प्ररूपण।

७२. से किं तं दुखुरा ?

दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—उट्टा गोणा गवया रोज्झा पसुया महिसा मिया संवरा वराहा अय-एलग-रुरु-सरभ-चमर-कुरंग-गोकण्णमादी। से त्तं दुखुरा।

[७२ प्र.] वे द्विखुर किस प्रकार के कहे गए हैं ?

[७२ उ.] द्विखुर (दो खुर वाले) अनेक प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—उष्ट्र (ऊँट), गाय (गौ और वृषभ आदि), गवय (नील गाय), रोज, पशुक, महिष (भैंस-भैंसा), मृग, सांभर, वराह (सूअर) अज (बकरा-बकरी), एलक (बकरा या भेड़ा), रुरु, सरभ, चमर (चमरी गाय), कुरंग, गोकर्ण आदि। यह दो खुर वालों की प्ररूपणा हुई।

७३. से किं तं गंडीपया ?

गंडीपया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—हत्थी हत्थी-पूयणया मंकुणहत्थी खग्गा गंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं गंडीपया ।

[७३ प्र.] वे (पूर्वोक्त) गण्डीपद किस प्रकार के हैं ?

[७३ उ.] गण्डीपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—हाथी, हस्तिपूतनक, मत्कुण-हस्ती, (विना दांतों का छोटे कद का हाथी), खड्गी और गंडा (गेंडा) । इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हों, उन्हें गण्डीपद में जान लेने चाहिए । यह हुई गण्डीपद जीवों की प्ररूपणा ।

७४. से किं तं सणप्फदा ?

सणप्फदा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—सीहा वग्घा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा सियाला विडाला सुणगा कोलसुणगा[1] कोकंतिया ससगा चित्तगा चित्तलगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं सणप्फदा ।

[७४ प्र.] वे सनखपद किस प्रकार के हैं ?

[७४ उ.] सनखपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—सिंह, व्याघ्र, द्वीपिक (दीपड़ा), रीछ (भालू), तरक्ष, पाराशर, शृगाल (सियार), विडाल (बिल्ली), श्वान, कोलश्वान, कोकन्तिक (लोमड़ी), शशक (खरगोश), चीता और चित्तलग (चिल्लक) । इसी प्रकार के अन्य जो भी प्राणी हैं, वे सब सनखपदों के अन्तर्गत समझने चाहिए । यह हुआ पूर्वोक्त सनखपदों का निरूपण ।

७५. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य ।

[७५-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सम्मूर्च्छिम और गर्भज ।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा ।

[७५-२] उनमें जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सब नपुंसक हैं ।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ णपुंसगा ३ ।

[७५-३] उनमें जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं । यथा—१. स्त्री, २. पुरुष और ३. नपुंसक ।

[४] एतेसि णं एवमादियाणं (चउप्पय) थलयरपंचिदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्ज-त्ताणं दस जाईकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा हवंतीति मक्खातं । से त्तं चउप्पयथलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया ।

[७५-४] इस प्रकार (एकखुर) इत्यादि इन स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याप्तक-

१. [ग्रन्थाग्रम् ५००]

अपर्याप्तकों के दस लाख जाति-कुल-कोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुआ चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का निरूपण।

७६. से किं तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[७६ प्र.] वे (पूर्वोक्त) परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[७६ उ.] परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक एवं भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७७. से किं तं उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—अही १ अयगरा २ आसालिया ३ महोरगा ४।

[७७ प्र.] उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हैं ?

[७७ उ.] उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अहि (सर्प), २. अजगर, ३. आसालिक और ४. महोरग।

७८. से किं तं अही ?

अही दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—दव्वीकरा य मउलिणो य।

[७८ प्र.] वे अहि किस प्रकार के होते हैं ?

[७८ उ.] अहि दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—दर्वीकर (फन वाले), और मुकुली (विना फन वाले)।

७९. से किं तं दव्वीकरा ?

दव्वीकरा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—आसीविसा दिट्ठीविसा उग्गविसा भोगविसा तयाविसा लालाविसा उस्सासविसा निस्सासविसा कण्हसप्पा सेदसप्पा काओदरा दज्झपुप्फा कोलाहा मेलिमिंदा, सेसिंदा; जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं दव्वीकरा।

[७९ प्र.] वे दर्वीकर सर्प किस प्रकार के होते हैं ?

[७९ उ.] दर्वीकर (फन वाले) सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—आशीविष (दाढ़ों में विष वाले), दृष्टिविष (दृष्टि में विष वाले), उग्रविष (तीव्र विष वाले), भोगविष (फन या शरीर में विष वाले), त्वचाविष (चमड़ी में विष वाले), लालाविष (लार में विष वाले), उच्छ्वास-विष (श्वास लेने में विष वाले), नि:श्वासविष (श्वास छोड़ने में विष वाले), कृष्णसर्प, श्वेतसर्प, काकोदर, दह्यपुष्प (दर्भपुष्प), कोलाह, मेलिभिन्द और शेषेन्द्र। इसी प्रकार के और भी जितने सर्प हों, वे सब दर्वीकर के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह हुई दर्वीकर सर्प की प्ररूपणा।

८०. से किं तं मउलिणो ?

मउलिणो अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—दिव्वागा गोणसा कसाहिया वइउला चित्तलिणो मंडलिणो मालिणो अही अहिसलागा वायपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं मउलिणो। से त्तं अही।

[८० प्र.] वे (पूर्वोक्त) मुकुली (विना फन वाले) सर्प कैसे होते हैं ?

[८० उ.] मुकुली सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—दिव्याक, गोनस, कषाधिक, व्यतिकुल, चित्रली, मण्डली, माली, अहि, अहिशलाका और वातपताका (वासपताका)। अन्य जितने भी इसी प्रकार के सर्प हैं, (वे सब मुकुली सर्प की जाति के समझने चाहिए।) यह हुआ मुकुली (सर्पो का वर्णन।) (साथ ही), अहि सर्पों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई)।

८१. से किं तं अयगरा ?

अयगरा एगागारा पण्णत्ता। से त्तं अयगरा।

[८१ प्र.] वे (पूर्वोक्त) अजगर किस प्रकार के होते हैं ?

[८१ उ.] अजगर एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं। यह अजगर की प्ररूपणा हुई।

८२. से किं तं आसालिया ? कहि णं भंते ! आसालिया सम्मुच्छति ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखित्ते अड्डाइज्जेसु दीवेसु, निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्मभूमीसु, वाघातं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु, चक्कवट्टिखंधावारेसु वा वासुदेवखंधावारेसु वलदेवखंधावारेसु मंडलियखंधावारेसु महामंडलियखंधावारेसु वा गामनिवेसेसु नगरनिवेसेसु निगमणिवेसेसु खेडनिवेसेसु कव्वडनिवेसेसु मडंवनिवेसेसु वा दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु संवाहनिवेसेसु रायहाणीनिवेसेसु एतेसि णं चेव विणासेसु एत्थ णं आसालिया सम्मुच्छति, जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए उक्कोसेणं वारसजोयणाइं, तयणुरूवं च णं विक्खंभवाहल्लेणं भूमिं दालित्ताणं समुट्ठेति अस्सण्णी मिच्छद्दिट्ठी अण्णाणी अंतोमुहुत्तद्धाउया चेव कालं करेइ। से त्तं आसालिया।

[८२ प्र.] आसालिक किस प्रकार के होते हैं ? भगवन् ! आसालिग (आसालिक) कहाँ सम्मूर्च्छित (उत्पन्न) होते हैं ?

[८२ उ.] गौतम ! वे (आसालिक उरःपरिसर्प) मनुष्य क्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीपों में, निर्व्याघातरूप से (विना व्याघात के) पन्द्रह कर्मभूमियों में, व्याघात की अपेक्षा से पांच महाविदेह क्षेत्रों में, अथवा चक्रवर्ती के स्कन्धावारों (सैनिकशिविरों-छावनियों) में, या वासुदेवों के स्कन्धावारों में, वलदेवों के स्कन्धावारों में, माण्डलिकों (अल्पवैभव वाले छोटे राजाओं) के स्कन्धावारों में, महामाण्डलिकों (अनेक देशों के अधिपति नरेशों) के स्कन्धावारों में, ग्रामनिवेशों में, नगरनिवेशों में, निगम (वणिक्-निवास)-निवेशों में, खेटनिवेशों में, कर्वटनिवेशों में, मडम्वनिवेशों में, द्रोणमुखनिवेशों में, पट्टणनिवेशों में, आकरनिवेशों में, आश्रमनिवेशों में, सम्वाधनिवेशों में और राजधानीनिवेशों में। इन (चक्रवर्ती स्कन्धावार आदि स्थानों) का विनाश होने वाला हो तब इन (पूर्वोक्त

स्थानों में आसालिक सम्मूर्च्छिमरूप से उत्पन्न होते हैं। वे (आसालिक) जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग-मात्र की अवगाहना से और उत्कृष्ट बारह योजन की अवगाहना से (उत्पन्न होते हैं।) उस (अवगाहना) के अनुरूप ही उसका विष्कम्भ (विस्तार) और बाहल्य (मोटाई) होता है। वह (आसालिक) चक्रवर्ती के स्कन्धावार आदि के नीचे की भूमि को फाड़ (विदारण) कर प्रादुर्भूत (समुत्थित) होता है। वह असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है, तथा अन्तर्मुहूर्त्त काल की आयु भोग कर मर (काल कर) जाता है। यह हुई उक्त आसालिक की प्ररूपणा।

८३. से किं तं महोरगा ?

महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—अत्थेगइया अंगुलं पि अंगुलपुहत्तिया वि वियत्थि पि वियत्थिपुहत्तिया वि रयणि पि रयणिपुहत्तिया वि कुच्छि पि कुच्छिपुहत्तिया वि धणुं पि धणुपुहत्तिया वि गाउयं पि गाउयपुहत्तिया वि जोयणं पि जोयणपुहत्तिया वि जोयणसतं पि जोयणसतपुहत्तिया वि जोयणसहस्सं पि। ते णं थले जाता जले वि चरंति थले वि चरंति। ते णत्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु हवंति, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं महोरगा।

[८३ प्र.] महोरग किस प्रकार के होते हैं ?

[८३ उ.] महोरग अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—कई महोरग एक अंगुल के भी होते हैं, कई अंगुलपृथक्त्व (दो अंगुल से नौ अंगुल तक) के, कई वितस्ति (बीता=बारह अंगुल) के भी होते हैं; कई वितस्तिपृथक्त्व (दो से नौ वितस्ति) के, कई एक रत्नि (हाथ) भर के, कई रत्निपृथक्त्व (दो हाथ से नौ हाथ तक) के भी, कई कुक्षिप्रमाण (दो हाथ के) होते हैं; कई कुक्षिपृथक्त्व (दो कुक्षि से नौ कुक्षि तक) के भी, कई धनुष (चार हाथ) प्रमाण भी, कई धनुपपृथक्त्व (दो धनुष से नौ धनुष तक) के भी, कई गव्यूति-(गाऊ=दो कोसदो हजारधनुष) प्रमाण भी, कई गव्यूति-पृथक्त्व के भी, कई योजनप्रमाण (चार गाऊ भर) भी, कई योजन पृथक्त्व के भी कई सौ योजन के भी, कई योजनशतपृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ योजन तक) के भी और कई हजार योजन के भी होते हैं। वे स्थल में उत्पन्न होते हैं, किन्तु जल में विचरण (संचरण) करते हैं, स्थल में भी विचरते हैं। वे यहाँ नहीं होते, किन्तु मनुष्यक्षेत्र के बाहर के द्वीप-समुद्रों में होते हैं। इसी प्रकार के अन्य जो भी उरःपरिसर्प हों, उन्हें भी महोरगजाति के समझने चाहिए। यह हुई उन (पूर्वोक्त) महोरगों की प्ररूपणा।

८४. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[८४-१] वे (चारों प्रकार के पूर्वोक्त उरःपरिसर्प स्थलचर) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं—सम्मूच्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

[८४-२] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुंसक होते हैं।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।

[८४-३] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं। १. स्त्री, २. पुरुष और ३. नपुंसक।

[४] एएसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं उरपरिसप्पाणं दस जाइकुलकोडीजोणिप्प-मुहसतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। से त्तं उरपरिसप्पा।

[८४-४] इस प्रकार (अहि) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक उरःपरिसर्पों के दस लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह उरःपरिसर्पो की प्ररूपणा हुई।

८५. [१] से किं तं भुयपरिसप्पा ?

भुयपरिसप्पा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—णउला गोहा सरडा सल्ला सरंठा सारा खारा घरोइला विस्संभरा मूसा मंगूसा पयलाइया छीरविरालिया; जहा चउप्पाइया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[८५-१ प्र.] भुजपरिसर्प किस प्रकार के हैं ?

[८५-१ उ.] भुजपरिसर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—नकुल (नेवले), गोह, सरट (गिरगिट), शल्य, सरंठ (सरठ), सार, खार (खोर), गृहकोकिला (घरोली=छिपकली), विषम्भरा (विसभरा), मूषक (चूहे), मंगुसा (गिलहरी), पयोलातिक, क्षीरविडालिका; जैसे चतुष्पद (चौपाये) स्थलचर (का कथन किया, वैसे ही इनका समझना चाहिए।) इसी प्रकार के अन्य जितने भी (भुजा से चलने वाले प्राणी हों, उन्हें भुजपरिसर्प समझना चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[८५-२] वे (नकुल आदि पूर्वोक्त भुजपरिसर्प) संक्षेप में दो प्रकार के होते हैं। जैसे कि—सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

[३] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा।

[८५-३] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुंसक होते हैं।

[४] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा।

[८५-४] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं। (१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुंसक।

[५] एतेसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं भुयपरिसप्पाणं णव जाइकुलकोडिजोणीपमुह-सतसहस्सा हवंतीति मक्खायं। से त्तं भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं परिसप्प-थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया।

[८५-५] इस प्रकार (नकुल) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक भुजपरिसर्पो के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह हुआ पूर्वोक्त भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों (का वर्णन।) (साथ ही) परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों (की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई।)

८६. से किं तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—चम्मपक्खी १ लोमपक्खी समुग्गपक्खी ३ वियतपक्खी ४ ।

[८६-प्र.] वे (पूर्वोक्त) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस-किस प्रकार के हैं ?

[८६-उ.] खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) चर्मपक्षी (जिनकी पांखें चमड़े की हों), (२) लोम (रोम) पक्षी (जिनकी पांखें रोंएदार हों), (३) समुद्गकपक्षी [जिनकी पांखें उड़ते समय भी समुद्गक (डिव्वे या पेटी) जैसी रहें), और (४) विततपक्षी (जिनके पंख फैले हुए रहें, सिकुड़ें नहीं) ।

८७. से किं तं चम्मपक्खी ?

चम्मपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—वग्गुली जलोया अडिला भारंडपक्खी जीवंजीवा समुद्दवायसा कण्णत्तिया पक्खिबिराली, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं चम्मपक्खी ।

[८७-प्र.] वे (पूर्वोक्त) चर्मपक्षी खेचर किस प्रकार के हैं ?

[८७-उ.] चर्मपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—वल्गुली (चमगीदड़ = चमचेड़), जलौका, अडिल्ल, भारण्डपक्षी, जीवंजीव (चक्रवाक-चकवे), समुद्रवायस (समुद्री कौए), कर्णत्रिक और पक्षिविडाली । अन्य जो भी इस प्रकार के पक्षी हों, (उन्हें चर्मपक्षी समझना चाहिए ।) यह हुई चर्मपक्षियों (की प्ररूपणा ।)

८८. से किं तं लोमपक्खी ?

लोमपक्खी अणेगविहा पन्नत्ता । तं जहा—ढंका कंका कुरला वायसा चक्कागा हंसा कलहंसा पायहंसा रायहंसा अडा सेडी बगा बलागा पारिप्पवा कोंचा सारसा मेसरा मसूरा मयूरा सतवच्छा गहरा पोंडरीया कागा कामंजुगा वंजुलगा तित्तिरा वट्टगा लावगा कवोया कविंजला पारेवया चिडगा चासा कुक्कुडा सुगा बरहिणा मदणसलागा कोइला सेहा वरेल्लगमादी । से त्तं लोमपक्खी ।

[८८-प्र.] वे (पूर्वोक्त) रोमपक्षी किस प्रकार के हैं ?

[८८-उ.] रोमपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—ढंक, कंक, कुरल, वायस (कौए), चक्रवाक (चकवा), हंस, कलहंस, राजहंस (लाल चोंच एवं पंख वाले हंस), पादहंस, आड (अड), सेडी, बक (बगुले), बलाका (बकपंक्ति), पारिप्लव, क्रौंच, सारस, मेसर, मसूर, मयूर (मोर), शतवत्स (सप्तहस्त), गहर, पौण्डरीक, काक, कामंजुक (कामेज्जुक), वंजुलक, तित्तिर (तीतर), वर्त्तक (वतक), लावक, कपोत, कपिंजल, पारावत (कबूतर), चिटक, चास, कुक्कुट (मुर्गे), शुक (सुग्गे-तोते), वर्ही (मोर विशेष), मदनशलाका (मैना), कोकिल (कोयल), सेह और वरिल्लक आदि । यह है (उक्त) रोमपक्षियों (का वर्णन ।)

८९. से किं तं समुग्गपक्खी ?

समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता । ते णं णत्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवंति । से त्तं समुग्गपक्खी ।

[८९-प्र.] वे (पूर्वोक्त) समुद्गपक्षी कौन-से हैं ?

[८९-उ.] समुद्गपक्षी एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं। वे यहाँ (मनुष्यक्षेत्र में) नहीं होते। वे (मनुष्यक्षेत्र से) वाहर के द्वीप-समुद्रों में होते हैं। यह समुद्गपक्षियों की प्ररूपणा हुई।

९०. से किं तं विततपक्खी ?

विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता। ते णं नत्थि इहं, वाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवंति। से त्तं विततपक्खी।

[९०-प्र.] वे (पूर्वोक्त) विततपक्षी कैसे हैं ?

[९०-उ.] विततपक्षी एक ही आकार-प्रकार के होते हैं। वे यहाँ (मनुष्यक्षेत्र में) नहीं होते। (मनुष्यक्षेत्र से) वाहर के द्वीप-समुद्रों में होते हैं। यह विततपक्षियों की प्ररूपणा हुई।

९१. [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

[९१-१] ये (पूर्वोक्त चारों प्रकार के खेचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

[९१-२] इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुंसक होते हैं।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३।

[९१-३] इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि—(१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुंसक।

[४] एएसि णं एवमाइयाणं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं वारस जातीकुलकोडीजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

सत्तट्ठ जातिकुलकोडिलक्ख नव अद्धतेरसाइं च।
दस दस य होंति णवगा तह वारस चेव वोद्धव्वा ॥१११॥

से त्तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं पंचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं तिरिक्खजोणिया।

[९१-४] इस प्रकार चर्मपक्षी इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के वारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

[संग्रहणी गाथार्थ—] (द्वीन्द्रियजीवों की) सात लाख जातिकुलकोटि, (त्रीन्द्रियों की) आठ लाख, (चतुरिन्द्रियों की) नौ लाख, (जलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों की) साढ़े वारह लाख, (चतुष्पद-स्थलचर पंचेन्द्रियों की) दस लाख, (उरःपरिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रियों की) दस लाख, (भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रियों की) नौ लाख तथा (खेचर-पंचेन्द्रियों की) वारह लाख, (यों द्वीन्द्रिय से लेकर खेचर पंचेन्द्रिय तक की क्रमशः) समझनी चाहिए ॥१११॥

यह खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों की प्ररूपणा हुई। इसकी समाप्ति के साथ ही पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की प्ररूपणा भी समाप्त हुई और इसके साथ ही समस्त तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई।

विवेचन—पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इकतीस सूत्रों (सू. ६१ से ९१ तक) में शास्त्रकार ने पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के जलचर आदि तीनों प्रकारों के भेद-प्रभेदों तथा उनकी विभिन्न जातियों एवं जातिकुलकोटियों की संख्या का विशद निरूपण किया है।

गर्भज और सम्मूर्च्छिम की व्याख्या—जो जीव गर्भ में उत्पन्न होते हैं, वे माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भव्युत्क्रान्तिक या **गर्भज** कहलाते हैं। जो जीव माता-पिता के संयोग के विना ही, गर्भ या उपपात के बिना, इधर-उधर के अनुकूल पुद्गलों के इकट्ठे हो जाने से उत्पन्न होते हैं, वे **सम्मूर्च्छिम** कहलाते हैं। सम्मूर्च्छिम सब नपुंसक ही होते हैं; किन्तु गर्भजों में स्त्री, पुरुष और नपुंसक, ये तीनों प्रकार होते हैं।[1]

तिर्यञ्चयोनिक शब्द का निर्वचन—जो 'तिर्' अर्थात् कुटिल—टेढ़े-मेढ़े या वक्र, 'अञ्चन' अर्थात् गमन करते हैं, उन्हें **तिर्यञ्च** कहते हैं। उनकी योनि अर्थात्—उत्पत्तिस्थान को **'तिर्यग्योनि'** कहते हैं। तिर्यग्योनि में जन्मने—उत्पन्न होने वाले **तैर्यग्योनिक** हैं।[2]

'उरःपरिसर्प' और 'भुजपरिसर्प' का अर्थ—जो अपनी छाती (उर) से रेंग (परिसर्पण) करके चलते हैं, वे सर्प आदि स्थलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय **'उरःपरिसर्प'** कहलाते हैं और जो अपनी भुजाओं के सहारे चलते हैं, ऐसे नेवले, गोह आदि स्थलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय प्राणी **'भुजपरिसर्प'** कहलाते हैं।[3]

'आसालिक' (उरःपरिसर्प) की व्याख्या—'आसालिया' शब्द के संस्कृत में दो रूपान्तर होते हैं—आसालिका और आसालिगा। आसालिका या आसालिक किसे कहते हैं, वे किस-किस प्रकार के होते हैं और कहाँ उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में प्रज्ञापना सूत्रकार श्री श्यामार्य वाचक ने अन्य ग्रन्थ में भगवान् द्वारा गौतम के प्रति प्ररूपित कथन को यहाँ उद्धृत किया है।

'आसालिया कहिं संमुच्छइ ?' इस वाक्य में प्रयुक्त 'संमुच्छइ' क्रियापद से स्पष्ट सूचित होता है कि 'आसालिका' या 'आसालिक' गर्भज नहीं, किन्तु सम्मूर्च्छिम हैं।

आसालिका की उत्पत्ति मनुष्यक्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीपों में होती है; वस्तुतः मनुष्यक्षेत्र, अढाई द्वीप को ही कहते हैं, किन्तु यहाँ जो अढाई द्वीप में इनकी उत्पत्ति बताई है; वह यह सूचित करने के लिए है कि आसालिका की उत्पत्ति अढाई द्वीपों में ही होती है, लवणसमुद्र में या कालोदधि-समुद्र में नहीं। किसी प्रकार के व्याघात के अभाव में वह १५ कर्मभूमियों में उत्पन्न होता है, इसका रहस्य यह है कि अगर ५ भरत एवं ५ ऐरवत क्षेत्रों में व्याघातहेतुक सुषम-सुषम आदि रूप या दुःषम-दुःषम आदिरूप काल व्याघातकारक न हों, तो १५ कर्मभूमियों में आसालिका की उत्पत्ति होती है। यदि ५ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्र में पूर्वोक्त रूप का कोई व्याघात हो तो फिर वहाँ वह उत्पन्न नहीं होता। ऐसी (व्याघातकारक) स्थिति में वह पांच महाविदेहक्षेत्रों में उत्पन्न होता है। इससे यह भी

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४४

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक ४३

३. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक ४६

ध्वनित हो जाता है कि तीस अकर्मभूमियों में आसालिका की उत्पत्ति नहीं होती तथा १५ कर्मभूमियों एवं महाविदेहों में भी इसकी सर्वत्र उत्पत्ति नहीं होती, किन्तु चक्रवर्ती, बलदेव आदि के स्कन्धावारों (सैनिक छावनियों) में वह उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त ग्राम-निवेश से लेकर राजधानी-निवेश तक में से किसी में भी इसकी उत्पत्ति होती है; और वह भी जब चक्रवर्ती आदि के स्कन्धावारों या ग्रामादि-निवेशों का विनाश होने वाला हो। स्कन्धावारों या निवेशों के विनाशकाल में उनके नीचे की भूमि को फाड़कर उसमें से वह आसालिका निकलती है। यही आसालिका की उत्पत्ति की प्ररूपणा है। आसालिका की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट बारह योजन की होती है। उसका विस्तार और मोटाई अवगाहना के अनुरूप होती है। आसालिका असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है। इसकी आयु सिर्फ अन्तर्मुहूर्त भर की होती है।[1]

महोरगों का स्वरूप और स्थान—महोरग एक अंगुल की अवगाहना से लेकर एक हजार योजन तक की अवगाहना वाले होते हैं। ये स्थल में उत्पन्न होकर भी जल में भी संचार करते हैं, स्थल में भी; क्योंकि इनका स्वभाव ही ऐसा है। महोरग इस मनुष्यक्षेत्र में नहीं होते, किन्तु इससे बाहर के द्वीपों और समुद्रों में, तथा समुद्रों में भी पर्वत, देवनगरी आदि स्थलों में उत्पन्न होते हैं। अत्यन्त स्थूल होने के कारण ये जल में उत्पन्न नहीं होते। इसी कारण ये मनुष्यक्षेत्र में नहीं दिखाई देते। मूलपाठ में उक्त लक्षण वाले दस अंगुल आदि की अवगाहना वाले जो उरःपरिसर्प हों, उन्हें महोरग समझना चाहिए।[2]

'दर्वीकर' और 'मुकुली' शब्दों का अर्थ—दर्वी कहते हैं—कुडछी या चाटु को, उसकी तरह दर्वी यानी फणा करने वाला दर्वीकर है। मुकुली अर्थात्—फन उठाने की शक्ति से विकल, जो बिना फन का हो।[3]

ग्राम आदि के विशेष अर्थ—**ग्राम**—बाड़ से घिरी हुई बस्ती। **नगर**—जहाँ अठारह प्रकार के कर न लगते हों। **निगम**—बहुत-से वणिक्जनों के निवास वाली बस्ती। **खेट**—खेड़ा, धूल के परकोटे से घिरी हुई बस्ती। **कर्बट**—छोटे-से प्राकार से वेष्टित बस्ती। **मडम्ब**—जिसके आसपास ढाई कोस तक दूसरी बस्ती न हो। **द्रोणमुख**—जिसमें प्रायः जलमार्ग से ही आवागमन हो या बन्दरगाह। **पट्टण**—जहाँ घोड़ा, गाड़ी या नौका से पहुँचा जाए अथवा व्यापार की मंडी, व्यापारिक केन्द्र। **आकर**—स्वर्णादि की खान। **आश्रम**—तापसजनों का निवासस्थान। **संबाध**—धान्यसुरक्षा के लिए कृषकों द्वारा निर्मित दुर्गम भूमिगत स्थान या यात्रिकों के पड़ाव का स्थान। **राजधानी**—राज्य का शासक जहाँ रहता हो।[4]

समग्र मनुष्य जीवों की प्रज्ञापना—

९२. से किं तं मणुस्सा ?

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कंतियमणुस्सा य।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४७-४८

२. वही मलय. वृत्ति, पत्रांक ४८

३. वही मलय. वृत्ति, पत्रांक ४७

४. वही मलय. वृत्ति, पत्रांक ४७-४८

[९२ प्र.] मनुष्य किस (कितने) प्रकार के होते हैं ?

[९२ उ.] मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भज मनुष्य।

९३. से किं तं सम्मुच्छिममणुस्सा ? कहि णं भंते ! सम्मुच्छिममणुस्सा सम्मुच्छंति ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते पणुतालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवएसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा १ पासवणेसु वा २ खेलेसु वा ३ सिंघाणेसु वा ४ वंतेसु वा ५ पित्तेसु वा ६ पूएसु वा ७ सोणिएसु वा ८ सुक्केसु वा ९ सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा १० विगतजीवकलेवरेसु वा ११ थी-पुरिससंजोएसु वा १२ [1][गामणिद्धमणेसु वा १३] णगरणिद्धमणेसु वा १४ सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु, एत्थ णं समुच्छिम-मणुस्सा सम्मुच्छंति। अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए असण्णी मिच्छद्दिट्ठी सव्वाहि पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव कालं करेंति। से त्तं सम्मुच्छिममणुस्सा।

[९३ प्र.] सम्मूर्च्छिम मनुष्य कैसे होते हैं ?, भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[९३ उ.] गौतम ! मनुष्य क्षेत्र के अन्दर, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत द्वीप-समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में एवं छप्पन अन्तर्द्वीपों में गर्भज मनुष्यों के—(१) उच्चारों (विष्ठाओं—मलों) में, (२) पेशाबों (मूत्रों) में, (३) कफों में, (४) सिंघाण—नाक के मैलों (लींट) में, (५) वमनों में, (६) पित्तों में, (७) मवादों में, (८) रक्तों में, (९) शुक्रों—वीर्यों में, (१०) पहले सूखे हुए शुक्र के पुद्गलों को गीला करने में, (११) मरे हुए जीवों के कलेवरों (लाशों) में, (१२) स्त्री-पुरुष के संयोगों में या (१३) ग्राम की गटरों या मोरियों में अथवा (१४) नगर की गटरों—मोरियों में, अथवा सभी अशुचि (अपवित्र—गंदे) स्थानों में—इन सभी स्थानों में सम्मूर्च्छिम मनुष्य (माता-पिता के संयोग के बिना स्वतः) उत्पन्न होते हैं। इन सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की अवगाहना अंगल के असंख्यातवें भाग मात्र की होती है। ये असंज्ञी मिथ्यादृष्टि एवं सभी पर्याप्तियों से अपर्याप्त होते हैं। ये अन्त-मुहूर्त्त की आयु भोग कर मर जाते हैं। यह सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की प्ररूपणा हुई।

९४. से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा ?

गब्भवक्कंतियमणुस्सा तिविहा पण्णत्ता। तं जहा—कम्मभूमगा १ अकम्मभूमगा २ अंतर-दीवगा ३।

[९४ प्र.] गर्भज मनुष्य किस प्रकार के होते हैं ?

[९४ उ.] गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—१. कर्मभूमिक, ९. अकर्म-भूमिक और ३. अन्तरद्वीपक।

९५. से किं तं अंतरदीवगा ?

अंतरदीवया अट्ठावीसतिविहा पण्णत्ता। तं जहा—एगोरुया १ आभासिया २ वेसाणिया ३

---

१. "गामणिद्धमणेसु वा १३" पाठ मलयगिरि नन्दी टीका के उद्धरण में है।

णंगोलिया ४ हयकण्णा ५ गयकण्णा ६ गोकण्णा ७ सक्कुलिकण्णा ८ आयंसमुहा ९ मेंढमुहा १० अयोमुहा ११ गोमुहा १२ आसमुहा १३ हत्थिमुहा १४ सीहमुहा १५ वग्घमुहा १६ आसकण्णा १७ सीहकण्णा १८ अकण्णा १९ कण्णपाउरणा २० उक्कामुहा २१ मेहमुहा २२ विज्जुमुहा २३ विज्जुदंता २४ घणदंता २५ लट्ठदंता २६ गूढदंता २७ सुद्धदंता २८। से त्तं अंतरदीवगा।

[९५ प्र.] अन्तरद्वीपक किस प्रकार के होते हैं ?

[९५ उ.] अन्तरद्वीपक अट्ठाईस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) एकोरुक, (२) आभासिक, (३) वैषाणिक, (३) नांगोलिक, (५) हयकर्ण, (६) गजकर्ण, (७) गोकर्ण, (८) शष्कुलिकर्ण, (९) आदर्शमुख, (१०) मेण्ढमुख, (११) अयोमुख, (१२) गोमुख, (१३) अश्वमुख, (१४) हस्तिमुख, (१५) सिंहमुख, (१६) व्याघ्रमुख, (१७) अश्वकर्ण, (१८) सिंहकर्ण (हरिकर्ण), (१९) अकर्ण, (२०) कर्णप्रावरण, (२१) उल्कामुख, (२२) मेघमुख, (२३) विद्युन्मुख, (२४) विद्युद्दन्त, (२५) घनदन्त, (२६) लष्टदन्त, (२७) गूढ़दन्त और (२८) शुद्धदन्त। यह अन्तरद्वीपकों की प्ररूपणा हुई।

९६. से किं तं अकम्मभूमगा ?

अकम्मभूमगा तीसतिविहा पन्नत्ता। तं जहा—पंचहिं हेमवएहिं पंचहिं हिरण्णवएहिं पंचहिं हरिवासेहिं पंचहिं रम्मगवासेहिं पंचहिं देवकुरूहिं पंचहिं उत्तरकुरूहिं। से त्तं अकम्मभूमगा।

[९६ प्र.] अकर्मभूमक मनुष्य कौन-से हैं ?

[९६ उ.] अकर्मभूमक मनुष्य तीस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पांच हैमवत क्षेत्रों में, पांच हैरण्यवत क्षेत्रों में, पांच हरिवर्ष क्षेत्रों में, पांच रम्यकवर्ष क्षेत्रों में, पांच देवकुरुक्षेत्रों में और पांच उत्तरकुरुक्षेत्रों में। इस प्रकार यह अकर्मभूमक मनुष्य की प्ररूपणा हुई।

९७. [१] से किं तं कम्मभूमया ?

कम्मभूमया पण्णरसविहा पण्णत्ता। तं जहा—पंचहिं भरहेहिं पंचहिं एरवतेहिं पंचहिं महाविदेहेहिं।

[९७-१ प्र.] कर्मभूमक मनुष्य किस प्रकार के हैं ?

[९७-१ उ.] कर्मभूमक मनुष्य पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पांच भरत क्षेत्रों में, पांच ऐरवतक्षेत्रों में और पांच महाविदेहक्षेत्रों में।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता तं जहा—आरिया य मिलक्खू य।

[९७-२] वे (पन्द्रह प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य) संक्षेप में दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ।

९८. से किं तं मिलक्खू ?

मिलक्खू[1] अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—सग-जवण-चिलाय-सबर-बब्बर-काय-मुरुंडोड्ड-भडग-णिण्णग-पक्कणिय- कुलक्ख- गोंड-सिंहल- पारस-गांधोडंब- दमिल-चिल्लल- पुलिंद- हारोस-डोंब-वोक्काण-गंधाहारग-बहलिय-अज्जल-रोम-पास-पउसा-मलया य चुंचया य मूयलि-कोंकणग-मेय-पल्हव-मालव-मग्गर-आभासिय-णक्क-चीणा ल्हसिय-खस-खासिय-णेडूर-मंढ-डोंबिलग-लउस-बउस-केक्कया अरवागा हूण-रोसग-मरुग-रुय-विलायविसयवासी य एवमादी । से त्तं मिलक्खू ।

[९८ प्र.] म्लेच्छ मनुष्य किस-किस प्रकार के हैं ?

[९८ उ.] म्लेच्छ मनुष्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर, काय, मरुण्ड, उड्ड, भण्डक, (भडक), निन्नक (निण्णक), पक्कणिक, कुलाक्ष, गोंड, सिंहल, पारस्य, (पारसक) आन्ध्र (क्रौंच), उडम्ब (अम्बडक), तमिल (दमिल-द्रविड़), चिल्लल (चिल्लस या चिल्लक) पुलिन्द, हारोस, डोंब (डोम), पोक्काण (वोक्काण), गन्धाहारक (कन्धारक), वहलिक (बाल्हीक), अज्जल (अज्झल), रोम, पास (मास), प्रदुष (प्रकुष), मलय (मलयाली) और चंचूक (बन्धुक) तथा मूयली (चूलिक), कोंकणक, मेद (मेव), पल्हव, मालव, गग्गर (मग्गर), आभाषिक, णक्क (कणवीर), चीना, ल्हासिक (लासा के), खस, खासिक (खासी जातीय), नेडूर (नेढूर), मंढ (मोंढ), डोम्बिलक, लओस, बकुश, कैकय, अरबाक (अक्खाग), हूण, रोसक (रूसवासी या रोमक), मरुक, रुत (भ्रमररुत) और विलात (चिलात) देशवासी इत्यादि । यह म्लेच्छों का (वर्णन हुआ ।)

९९. से किं तं आरिया ?

आरिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—इड्डिपत्तारिया य अणिड्डिपत्तारिया य ।

[९९ प्र.] आर्य कौन-से हैं ?

[९९ उ.] आर्य दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—ऋद्धिप्राप्त आर्य और ऋद्धि-अप्राप्त आर्य ।

१००. से किं तं इड्डिपत्तारिया ?

इड्डिपत्तारिया छव्विहा पण्णत्ता । तं जहा—अरहंता १ चक्कवट्टी २ बलदेवा ३ वासुदेवा ४ चारणा ५ विज्जाहरा ६ । से त्तं इड्डिपत्तारिया ।

---

१. प्रवचनसारोद्धार की तीन गाथाओं में म्लेच्छ के बदले अनार्यों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—"सग-जवण-सबर-बब्बर-काय-मुरुंडोड्ड-गोण-पक्कणया । अरबाग-होण-रोमय-पारस-खसखासिया चेव ॥१५८३॥ दुंबिलय-लउस-वोक्कस-भिल्लंऽध-पुलिंद-कुंच-भमररुया कोवाय-चीण-चंचुय-मालव-दमिला कुलग्घा य ॥१५८४॥ केक्कय-किराय-हयमुह-खरमुह-गय-तुरय-मिंढयमुहा य । हयकन्ना गयकन्ना अन्ने वि अणारिया बहवे ॥१५८५॥" "शकाः यवनाः शबराः बर्बराः कायाः मुरुण्डाः उड्डाः गौड्डाः पक्कणगाः अरबागाः हूणाः रोमकाः पारसाः खसाः खासिकाः द्रुम्बिलकाः लकुशाः वोक्कशाः भिल्लाः अन्ध्राः पुलिन्द्राः कुञ्चाः भ्रमररुचाः कोर्पकाः चीनाः चञ्चुकाः मालवाः द्रविडाः कुलार्घाः केकयाः किराताः हयमुखाः खरमुखाः गजमुखाः तुरङ्गमुखाः मिण्ढकमुखाः हयकर्णाः गजकर्णाश्चेत्येते देशा अनार्याः ।" इति वृत्तिः । पत्रं ४४५-२ ॥

[१०० प्र.] ऋद्धिप्राप्त आर्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०० उ.] ऋद्धिप्राप्त आर्य छह प्रकार के हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अर्हन्त (तीर्थंकर), २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव, ४. वासुदेव, ५. चारण और ६. विद्याधर। यह हुई ऋद्धिप्राप्त आर्यों की प्ररूपणा।

१०१. से किं तं अणिड्ढिपत्तारिया ?

अणिड्ढिपत्तारिया णवविहा पण्णत्ता। तं जहा—खेत्तारिया १ जातिआरिया २ कुलारिया ३ कम्मारिया ४ सिप्पारिया ५ भासारिया ६ णाणारिया ७ दंसणारिया ८ चरित्तारिया ९।

[१०१ प्र.] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य किस प्रकार के हैं ?

[१०१ उ.] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य नौ प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) क्षेत्रार्य, (२) जात्यार्य, (३) कुलार्य, (४) कर्मार्य, (५) शिल्पार्य, (६) भाषार्य, (७) ज्ञानार्य, (८) दर्शनार्य और (९) चारित्रार्य।

१०२. से किं तं खेत्तारिया ?

खेत्तारिया अद्धछव्वीसतिविहा पण्णत्ता। तं जहा—

रायगिह मगह १, चंपा अंगा २, तह तामलित्ति[1] वंगा य ३।
कंचणपुरं कलिंगा ४, वाणारसि चेव कासी य ५ ॥११२॥
साएय कोसला ६, गयपुरं च कुरु ७, सोरियं कुसट्टा य ८।
कंपिल्लं पंचाला ९, अहिछत्ता जंगला चेव १० ॥११३॥
वारवती य सुरट्ठा ११, मिहिल विदेहा य १२, वच्छ[2] कोसंबी १३।
णंदिपुरं संडिल्ला १४, भद्दिलपुरमेव मलया य १५ ॥११४॥
वइराड मच्छ[3] १६, वरणा अच्छा १७, तह मत्तियावइ दसण्णा १८।

---

१. 'तामलित्ती' शब्द के संस्कृत में दो रूपान्तर होते हैं—तामलिप्ती और ताम्रलिप्ती। प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, तथा प्रवचनसारोद्धार में प्रथम रूपान्तर माना गया है, जब कि भगवती आदि की टीकाओं में 'ताम्रलिप्ती' शब्द को ही प्रचलित माना है। जो हो, वर्तमान में यह 'तामलूक' नाम से पश्चिम बंगाल में प्रसिद्ध है।—सं.

२. प्रवचनसारोद्धार की गाथा १५८९ से १५९२ तक की वृत्ति १३ वें आर्यक्षेत्र से पाठक्रम तथा इसी के समान वृत्ति मिलती है—'वत्सदेशः कौशाम्बी नगरी १३ नन्दिपुरं नगरं शाण्डिल्यो शाण्डिल्या वा देशः १४ भद्दिलपुरं नगरं मलयादेशः १५ वैराटो देशः वत्सा राजधानी, अन्ये तु 'वत्सादेशो वैराटं पुरं नगरम्' इत्याहुः १६ वरुणानगरं अच्छादेशः, अन्ये तु 'वरुणेषु अच्छापुरी' इत्याहुः १७ तथा मृत्तिकावती नगरी दशार्णो देशः १८ शुक्तिमती नगरी चेदयो देशः १९ वीतभयं नगरं सिन्धुसौवीरा जनपदः २० मथुरा नगरी सूरसेनाख्यो देशः २१ पापा नगरी भङ्गयो देशः २२ मासपुरी नगरी वर्तो देशः २३ तथा श्रावस्ती नगरी कुणाला देशः २४।' —पत्रांक ४४६।२

३. वैराट् नगर (वर्तमान में वैराठ) अलवर के पास है, जहाँ प्राचीनकाल में पाण्डवों का अज्ञातवास रहा है। यह वत्सदेश में न होकर मत्स्यदेश में है। क्योंकि वच्छ कोसांवी पाठ पहले आ चुका है। अतः मूलपाठ में यह 'वच्छ' न होकर मच्छ शब्द होना चाहिए। अन्यथा 'वइराड वच्छ' पाठ होने से वत्सदेश नाम के दो देश होने का भ्रम हो जाएगा।—सं.। —देखिये, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भा-२, पृ. ९१।

सुत्तीमई य चेदी १९, वीइभयं सिंधुसोवीरा २० ॥११५॥
महुरा य सूरसेणा २१, पावा भंगी य २२, मास पुरिवट्टा २३।
सावत्थी य कुणाला २४, कोडीवरिसं च लाढा य २५ ॥११६॥
सेयविया वि य णयरी केयइअद्धं च २५॥ आरियं भणितं।
एत्थुप्पत्ति जिणाणं चक्कीणं राम-कण्हाणं ॥११७॥

से त्तं खेत्तारिया।

[१०२ प्र.] क्षेत्रार्य किस-किस प्रकार के हैं ?

[१०२ उ.] क्षेत्रार्य साढ़े पच्चीस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार से हैं—

[गाथाओं का अर्थ—] (१) मगध (देश में) राजगृह (नगर), (२) अंग (देश में) चम्पा (नगरी), तथा (३) वंग (देश में) ताम्रलिप्ती (तामलूक नगरी), (४) कलिंग (देश में) काञ्चनपुर और (५) काशी (देश में) वाराणसी (नगरी), ॥११२॥ (६) कौशल (देश में) साकेत (नगर), (७) कुरु (देश में) गजपुर (हस्तिनापुर), (८) कुशार्त्त (कुशावर्त्त देश में) सौरियपुर (सौरीपुर), (९) पंचाल (देश में) काम्पिल्य, (१०) जांगल (देश में) अहिच्छत्रा (नगरी) ॥११३॥ (११) सौराष्ट्र में द्वारावती (द्वारिका), (१२) विदेह (जनपद में) मिथिला (नगरी), (१३) वत्स (देश में) कौशाम्बी (नगरी), (१४) शाण्डिल्य (देश में) नन्दिपुर, (१५) मलय (देश में) भद्दिलपुर ॥११४॥ (१६) मत्स्य (देश में) वैराट नगर, (१७) वरण (देश में) अच्छा (पुरी), तथा (१८) दशार्ण (देश में) मृत्तिकावती (नगरी), (१९) चेदि (देश में) शुक्तिमती (शौक्तिकावती), (२०) सिन्धु-सौवीर देश में वीतभय नगर ॥११५॥ (२१) शूरसेन (देश में) मथुरा (नगरी), (२२) भंग (नामक जनपद में) पावापुरी (अपापा नगरी), (२३) पुरिवर्त्त (परावर्त्त) (नामक जनपद में) मासा पुरी (माषा नगरी), (२४) कुणाल (देश में) श्रावस्ती (सेहटमेहट), (२५॥) लाढ (देश में) कोटिवर्ष (नगर) ॥११६॥ और (२५½) केकयार्द्ध (जनपद में) श्वेताम्बिका (नगरी); (ये सब २५॥ देश) आर्य (क्षेत्र) कहे गए हैं। इन (क्षेत्रों) में तीर्थकरों, चक्रवर्तियों, राम और कृष्ण (बलदेवों और वासुदेवों) का जन्म (उत्पत्ति) होता है। ॥११७॥ यह हुआ उक्त क्षेत्रार्यों का वर्णन।

१०३. से किं तं जातिआरिया ?

जातिआरिया छव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

अंबट्ठा १ य कलिंदा २ विदेहा ३ वेदगा ४ इ य।
हरिया ५ चुंचुणा ६ चेव, छ एया इब्भजातिओ[1] ॥११८॥

से त्तं जातिआरिया।

[१०३ प्र.] जात्यार्य किस प्रकार के हैं ?

[१०३ उ.] जात्यार्य[2] छह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. पाठान्तर— अज्जजातितो।

२ जात्यार्य—उमास्वातिकृत तत्त्वार्थभाष्य में इक्ष्वाकु, विदेह, हरि, अम्बष्ठ, ज्ञात, कुरु, बुंबुनाल (?) उग्र, भोग, राजन्य आदि की गणना जात्यार्य में की गई है।

[गाथार्थ]—(१) अम्बष्ठ[1], (२) कलिन्द, (३) वैदेह[2], (४) वेदग (वेदंग) आदि और (५) हरित एवं (५) चुंचुण; ये छह इभ्य (अर्चनीय-माननीय) जातियां हैं ॥११८॥

यह हुआ उक्त जात्यार्यों का निरूपण।

१०४. से किं तं कुलारिया ?

कुलारिया छव्विहा पन्नत्ता। तं जहा—उग्गा १ भोगा २ राइण्णा ३ इक्खागा ४ णाता ५ कोरव्वा ६। से त्तं कुलारिया।

[१०४ प्र.] कुलार्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०४ उ.] कुलार्य[3] छह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) उग्र[4] (२) भोग, (३) राजन्य, (४) इक्ष्वाकु, (५) ज्ञात और (६) कौरव्य। यह हुआ उक्त कुलार्यों का निरूपण।

१०५. से किं तं कम्मारिया ?

कम्मारिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—दोस्सिया सोत्तिया कप्पासिया सुत्तवेयालिया भंडवेयालिया कोलालिया णरदावणिया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं कम्मारिया।

[१०५ प्र.] कर्मार्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०५ उ.] कर्मार्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—दोषिक (दूष्यक), सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैतालिक, भाण्डवैतालिक, कौलालिक और नरवाहनिक। इसी प्रकार के अन्य जितने भी (आर्यकर्म वाले हों, उन्हें कर्मार्य समझना चाहिए)। यह हुई उक्त कर्मार्यों (की प्ररूपणा)।

१०६. से किं तं सिप्पारिया ?

सिप्पारिया अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—तुण्णागा तंतुवाया पट्टगारा देयडा वरणा[5] छव्विया कट्ठपाउयारा मुंजपाउयारा छत्तारा वज्झारा पोत्थारा लेप्पारा चित्तारा संखारा दंतारा भंडारा जिज्झगारा[6] सेल्लगारा[7] कोडिगारा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं सिप्पारिया।

[१०६ प्र.] शिल्पार्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०६ उ.] शिल्पार्य (भी) अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—तुन्नाक—(रफ्फूगर) दर्जी, तन्तुवाय—जुलाहे, पट्टकार (पटवा), दृतिकार (चमड़े की मशक बनाने वाले), वरण (या वरुट्ट=पिच्छिक-पिंछी बनाने वाले), छर्विक (चटाई आदि बनाने वाले), काष्ठपादुकाकार (लकड़ी की

---

१. अम्बष्ठ—ब्राह्मण पुरुष और वैश्यस्त्री से उत्पन्न सन्तान, देखिये—मनुस्मृति तथा आचारांगनिर्युक्ति (२०-२७)

२. वैदेह—वैश्य पुरुष और ब्राह्मणस्त्री से उत्पन्न। देखिये—मनुस्मृति तथा आचारांगनिर्युक्ति (२०-२७)

३. कुलार्य—तत्त्वार्थभाष्य में कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि की गणना कुलार्य में की गई है।
—तत्त्वार्थभाष्य अ. ३। सू. १५

४. उग्र—क्षत्रिय पुरुष और शूद्रस्त्री से उत्पन्न सन्तान। देखिये मनुस्मृति और आचारांग नियुक्ति।

५. पाठान्तर—वरुणा, वरुट्टा। ६. जिब्भगारा, जिब्भारा। ७. सेल्लारा (शिलावट)।

खड़ाऊँ वनाने वाले), मुंजपादुकाकार (मूंज की खड़ाऊँ वनाने वाले), छत्रकार (छाते वनाने वाले), वज्झार-वाह्यकार (वाहन वनाने वाले), (अथवा वहकार=मोरपिच्छी वनाने वाले), पुच्छकार या पुस्तकार (पूंछ के वालों से झाड़ू आदि वनाने वाले), या पुस्तककार—जिल्दसाज अथवा मिट्टी के पुतले वनाने वाले, लेप्यकार (लिपाई-पुताई करने वाले, अथवा मिट्टी के खिलौने आदि वनाने वाले), चित्रकार, शंखकार, दन्तकार (दांत वनाने वाले, या दांती), भाण्डकार (विविध वर्तन वनाने वाले), जिज्झकार(जिह्वाकार=नकली जीभ वनाने वाले), सेल्लकार (शैल्यकार—शिला तथा पाषाण आदि घड़कर वस्तु वनाने वाले अथवा सैलकार=भाला वनाने वाले) और कोडिकार (कोडियों की माला आदि वनाने वाले), इसी प्रकार के अन्य जितने भी आर्य शिल्पकार हैं, उन सवको शिल्पार्य समझना चाहिए। यह हुई उन शिल्पार्यो की प्ररूपणा।

१०७. से किं तं भासारिया ?

भासारिया जे णं अद्धमागहाए भासाए भासिंति, जत्थ वि य णं बंभी लिवी पवत्तइ। बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेक्खविहाणे पण्णत्ते। तं जहा—बंभी १ जवणाणिया २ दोसापुरिया[1] ३ खरोट्ठी ४ पुक्खरसारिया ५ भोगवईया ६ पहराईयाओ य ७ अंतक्खरिया ८ अक्खरपुट्ठिया ९ वेणइया १० णिण्हइया ११ अंकलिवी १२ गणितलिवी १३ गंधव्वलिवी १४ आयंसलिवी १५ माहेसरी १६ दामिली[2] १७ पोलिंदी १८। से त्तं भासारिया।

[१०७ प्र.] भाषार्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०७ उ.] भाषार्य वे हैं, जो अर्धमागधी भाषा में वोलते हैं, और जहाँ भी व्राह्मी लिपि प्रचलित है। (अर्थात्—जिनमें व्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता है।) व्राह्मी लिपि में अठारह प्रकार का लेखविधान (लेखन-प्रकार) वताया गया है। जैसे कि—१. व्राह्मी, २. यवनानी, ३. दोषापुरिका, ४. खरौष्ट्री, ५. पुष्करशारिका, ६. भोगवतिका, ७. प्रहरादिका, ८. अन्ताक्षरिका, ९. अक्षरपुष्टिका, १०. वैनयिका, ११. निह्नविका, १२. अंकलिपि, १३. गणितलिपि, १४. गन्धर्व-लिपि, २५. आदर्शलिपि, १६. माहेश्वरी, १७. तामिली—द्राविड़ी, १८. पौलिन्दी। यह हुआ उक्त भाषार्यं का वर्णन।

१०८. से किं तं णाणारिया ?

णाणारिया पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—आभिणिवोहियणाणारिया १ सुयणाणारिया २ ओहिणाणारिया ३ मणपज्जवणाणारिया ४ केवलणाणारिया ५। से त्तं णाणारिया।

[१०८ प्र.] ज्ञानार्य कौन-कौन-से हैं।

[१०८ उ.] ज्ञानार्य पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. आभिनिवोधिक-ज्ञानार्य, २. श्रुतज्ञानार्य, ३. अवधिज्ञानार्य, ४. मनःपर्यवज्ञानार्य और ५. केवलज्ञानार्य। यह है उक्त ज्ञानार्यों की प्ररूपणा।

पाठान्तर—१. दासापुरिया। २. दोमिली, दोमिलिवी।

१०९. से किं तं दंसणारिया ?

दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सरागदंसणारिया य वीयरागदंसणारिया य।

[१०९ प्र.] वे दर्शनार्य कौन-कौन-से हैं ?

[१०९ उ.] दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य।

११०. से किं तं सरागदंसणारिया ?

सरागदंसणारिया दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—

निस्सग्गुवएसरुई १-२ आणारुइ ३-सुत्त ४-बीयरुइ ५ मेव।
अहिगम ६-वित्थाररुई ७ किरिया ८-संखेव ९-धम्मरुई १० ॥११९॥

भूअत्थेणाधिगया जीवाऽजीवं च पुण्ण-पावं च।
सहसम्मुइयाऽऽसव-संवरे य रोएइ उ णिसग्गो ॥१२०॥

जो जिणदिट्ठे भावे चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव।
एमेव णऽण्णह त्ति य णिस्सग्गरुइ त्ति णायव्वो १ ॥१२१॥

एते चेव उ भावे उवदिट्ठे जो परेण सद्दहइ।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ त्ति नायव्वो २ ॥१२२॥

जो हेउमयाणंतो आणाए रोयए पवयणं तु।
एमेव णऽण्णह त्ति य एसो आणारुई नाम ३ ॥१२३॥

जो सुत्तमहिज्जंतो सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं।
अंगेण बाहिरेण व सो सुत्तरुइ त्ति णायव्वो ४ ॥१२४॥

एगपएऽणेगाइं पदाइं जो पसरई उ सम्मत्तं।
उदए व्व तेल्लबिंदू सो बीयरुइ त्ति णायव्वो ५ ॥१२५॥

सो होइ अहिगमरुई सुयणाणं जस्स अत्थओ दिट्ठं।
एक्कारस अंगाइं पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ६ ॥१२६॥

दव्वाण सव्वभावा सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा।
सव्वाहिं णयविहीहिं वित्थाररुइ त्ति णायव्वो ७ ॥१२७॥

दंसण-णाण-चरित्ते तव-विणए सव्वसमिइ-गुत्तीसु।
जो किरियाभावरुई सो खलु किरियारुई णाम ८ ॥१२८॥

अणभिग्गहियकुदिट्ठी संखेवरुइ त्ति होइ णायव्वो।
अविसारओ पवयणे अणभिग्गहिओ य सेसेसु ९ ॥१२९॥

जो अत्थिकायधम्मं सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च।
सद्दहइ जिणाभिहियं सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो १० ॥१३०॥

परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावण्ण-कुदंसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥१३१॥

निस्संकिय १ निक्कंखिय २ निव्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठी ४ य ।
उववूह ५ थिरीकरणे ६ वच्छल्ल ७ पभावणे ८ अट्ठ ॥१३२॥

से त्तं सरागदंसणारिया ।

[११० प्र.] सरागदर्शनार्य किस-किस प्रकार के होते हैं ?

[११० उ.] सरागदर्शनार्य दस प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—

[गाथाओं का अर्थ—] १. निसर्गरुचि, २. उपदेशरुचि, ३. आज्ञारुचि, ४. सूत्ररुचि, और ५. बीजरुचि, ६. अभिगमरुचि, ७. विस्ताररुचि, ८. क्रियारुचि, ९. संक्षेपरुचि, और १०. धर्मरुचि ॥११९॥

१. जो व्यक्ति (परोपदेश के बिना) स्वमति (जातिस्मरणादि) से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव और संवर आदि तत्त्वों को भूतार्थ (तथ्य) रूप से जान कर उन पर रुचि—श्रद्धा करता है, वह निसर्ग—(रुचि सराग-दर्शनार्य) है ॥१२०॥ जो व्यक्ति तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट भावों (पदार्थों) पर स्वयमेव (परोपदेश के बिना) चार प्रकार से (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से) श्रद्धान करता है, तथा (ऐसा विश्वास करता है कि जीवादि तत्त्वों का स्वरूप जैसा तीर्थंकर भगवान् ने कहा है,) वह वैसा ही है, अन्यथा नहीं, उसे निसर्गरुचि जानना चाहिए ॥१२१॥

२. जो व्यक्ति छद्मस्थ या जिन (केवली) किसी दूसरे के द्वारा उपदिष्ट इन्हीं (जीवादि) पदार्थों पर श्रद्धा करता है, उसे उपदेशरुचि जानना चाहिए ॥१२२॥

३. जो (व्यक्ति किसी अर्थ के साधक) हेतु (युक्ति या तर्क) को नहीं जानता हुआ, केवल जिनाज्ञा से प्रवचन पर रुचि—श्रद्धा रखता है, तथा यह समझता है कि जिनोपदिष्ट तत्त्व ऐसे ही हैं, अन्यथा नहीं; वह आज्ञारुचि नामक दर्शनार्य है ॥१२३॥

४. जो व्यक्ति शास्त्रों का अध्ययन करता हुआ श्रुत के द्वारा ही सम्यक्त्व का अवगाहन करता है, चाहे वह श्रुत अंग-प्रविष्ट हो या अंगबाह्य, उसे सूत्ररुचि (दर्शनार्य) जानना चाहिए ॥१२४॥

५. जैसे जल में पड़ा हुआ तेल का बिन्दु फैल जाता है, उसी प्रकार जिसके लिए सूत्र (शास्त्र) का एक पद, अनेक पदों के रूप में फैल (परिणत हो) जाता है, उसे बीजरुचि (दर्शनार्य) समझना चाहिए ॥१२५॥

६. जिसने ग्यारह अंगों, प्रकीर्णकों (पइन्नों) को तथा बारहवें दृष्टिवाद नामक अंग तक का श्रुतज्ञान, अर्थरूप में उपलब्ध (दृष्ट एवं ज्ञात) कर लिया है, वह अभिगमरुचि होता है ॥१२६॥

७. जिसने द्रव्यों के सर्वभावों को, समस्त प्रमाणों से एवं समस्त नयविधियों (नयविवक्षाओं) से उपलब्ध कर (जान) लिया, उसे विस्ताररुचि समझना चाहिए ॥१२७॥

८. दर्शन, ज्ञान और चारित्र में, तप और विनय में, सर्व समितियों और गुप्तियों में जो क्रियाभावरुचि (आचरण-निष्ठा) वाला है, वह क्रियारुचि नामक (सरागदर्शनार्य) है ॥१२८॥

९. जिसने कुदर्शन (मिथ्यादर्शन) का ग्रहण नहीं किया है, तथा शेष अन्य दर्शनों का भी अभिग्रहण (परिज्ञान) नहीं किया है, और जो अर्हत्प्रणीत प्रवचन में विशारद (पटु) नहीं है, उसे संक्षेपरुचि (सराग दर्शनार्य) समझना चाहिए ।।१२९।।

१०. जो व्यक्ति जिनोक्त अस्तिकायधर्म (धर्मास्तिकाय आदि पांचों अस्तिकायों के धर्म) पर तथा श्रुतधर्म एवं चारित्रधर्म पर श्रद्धा करता है, उसे धर्मरुचि (सरागदर्शनार्य) समझना चाहिए ।।१३०।।

परमार्थ (जीवादि तात्त्विक पदार्थों) का संस्तव करना (परिचय प्राप्त करना, अर्थात्—उन्हें समझने के लिए बहुमानपूर्वक प्रयत्न करना या संस्तुति—प्रशंसा, आदर करना); जिन्होंने परमार्थ (जीवादि तत्त्वार्थ) को सम्यक् प्रकार से श्रद्धापूर्वक जान लिया है, उनकी सेवा—उपासना करना (या उनका सेवन-सत्संग करना); और जिन्होंने सम्यक्त्व का वमन कर दिया है, उन (निह्नवों) से तथा कुदृष्टियों से दूर रहना, यही सम्यक्त्व-श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) है। (जो इनका पालन करता है, वही सरागदर्शनार्य होता है।) ।।१३१।।

(सरागदर्शन के) ये आठ आचार हैं—(१) निःशंकित, (२) निष्कांक्षित, (३) निर्विचिकित्स और (४) अमूढदृष्टि, (५) उपबृंहण, (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। (ये आठ दर्शनाचार जिसमें हों, वह सरागदर्शनार्य होता है।) ।।१३२।।

यह हुई उक्त सरागदर्शनार्यों की प्ररूपणा।

१११. से किं तं वीयरागदंसणारिया ?

वीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया खीणकसाय-वीयरायदंसणारिया।

[१११ प्र.] वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[१११ उ.] वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११२. से किं तं उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया ?

उवसंतकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयउवसंतकसायवीयराय-दंसणारिया अपढमसमयउवसंतकसायवीयरायदंसणारिया, अहवा चरिमसमयउवसंतकसायवीयराय-दंसणारिया य अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरायदंसणारिया य।

[११२ प्र.] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११२ उ.] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—प्रथमसमय उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरम-समय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११३. से किं तं खीणकसायवीयरायदंसणारिया ?

खीणकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीयराग-दंसणारिया य केवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया य।

[११३ प्र.] क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११३ उ] क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११४. से किं तं छउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य।

[११४ प्र.] छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के हैं ?

[११४ उ.] छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११५. से किं तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अचरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य। से त्तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया।

[११५ प्र.] स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[११५ उ] स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—प्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरमसमय स्वयंबुद्धछद्मस्थ क्षीणकषाय वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य। यह हुआ उक्त स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन।

११६. से किं तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य अचरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया य। से त्तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया। से त्तं छउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया।

[११६ प्र.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११६ उ.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य; अथवा चरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य और अचरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुआ उक्त बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण और इसके साथ ही उक्त छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण पूर्ण हुआ।

११७. से किं तं केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया ?

केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य।

[११७ प्र.] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के कहे गए हैं ?

[११७ उ.] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११८. से किं तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया ?

सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अचरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य। से त्तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया।

[११८ प्र.] सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के हैं ?

[११८ उ.] सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य; अथवा चरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुई उक्त सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य की प्ररूपणा।

११९. से किं तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य, अहवा चरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया य। से त्तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया। से त्तं केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया। से त्तं खीणकसायवीतरागदंसणारिया। से त्तं वीयरायदंसणारिया। से त्तं दंसणारिया।

[११९ प्र.] अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[११९ उ.] अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—प्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य, अथवा चरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुआ उक्त अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों (का वर्णन)। (साथ ही, पूर्वोक्त) केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन (भी पूर्ण हुआ और इसके पूर्ण होने के साथ ही) क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यों का वर्णन भी समाप्त हुआ।

यह है उक्त दर्शनार्य (मनुष्यों) का (विवरण)।

१२०. से किं तं चरित्तारिया ?

चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सरागचरित्तारिया य वीयरागचरित्तारिया य।

[१२० प्र.] चारित्रार्य (मनुष्य) कैसे होते हैं ?

[१२० उ.] चारित्रार्य (मनुष्य) दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य।

१२१. से किं तं सरागचरित्तारिया ?

सरागचरित्तारिया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य बायरसंपरायसरागचरित्तारिया य।

[१२१ प्र.] सरागचारित्रार्य मनुष्य कैसे होते हैं ?

[१२१ उ.] सरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सूक्ष्मसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य।

१२२. से किं तं सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया ?

सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य अपढमसमयसुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य अचरिमसमयसुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया य; अहवा सुहुमसंपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संकिलिस्समाणा य विसुज्झमाणा य। से त्तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया।

[१२२ प्र.] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[१२२ उ.] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य दो प्रकार के होते हैं—प्रथमसमय-सूक्ष्मससम्पराय-सरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य। अथवा सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—संक्लिश्यमान (ग्यारहवें गुणस्थान से गिर कर दशम गुणस्थान में आये हुए) और विशुद्धयमान (नवम गुणस्थान से ऊपर चढ़ कर दशम गुणस्थान में पहुँचे हुए)। यह हुई, उक्त सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य की प्ररूपणा।

१२३. से किं तं बादरसंपरायसरागचरित्तारिया ?

बादरसंपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य अपढमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य अचरिमसमयबादरसंपरायसरागचरित्तारिया य; अहवा बादरसंपरायसराग-

चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पडिवाती य अपडिवाती य। से त्तं बादरसंपरायसराग-चरित्तारिया। से त्तं सरागचरित्तारिया।

[१२३ प्र.] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२३ उ.] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथमसमय-बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा चरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा (तीसरी तरह से) बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रतिपाती और अप्रतिपाती। यह हुआ बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य (का वर्णन) (और साथ ही) सराग-चारित्रार्य (का वर्णन भी पूर्ण हुआ।)

१२४. से किं तं वीयरागचरित्तारिया ?

वीयरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया य खीण-कसायवीतरागचरित्तारिया य।

[१२४ प्र.] वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार हैं ?

[१२४ उ.] वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। वे इस प्रकार—उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२५. से किं तं उवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया ?

उवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयउवसंतकसायवीय-रायचरित्तारिया य अपढमसमयउवसंतकसायवीयरायचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयउवसंतकसाय-वीयरागचरित्तारिया य अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरागचरित्तारिया य। से त्तं उवसंतकसायवीय-रागचरित्तारिया।

[१२५ प्र.] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[१२५ उ.] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य। यह हुआ उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का निरूपण।

१२६. से किं तं खीणकसायवीयरायचरित्तारिया ?

खीणकसायवीयरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीतराग-चरित्तारिया य केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य।

[१२६ प्र.] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१२६ उ.] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२७. से किं तं छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीण-कसायवीयरागचरित्तारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य।

[१२७ प्र.] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२७ उ.] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। यथा—स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकपाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२८. से किं तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयसयंबुद्ध-छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य अचरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थ-खीणकसायवीतरागचरित्तारिया य। से त्तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया।

[१२८ प्र.] वे स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२८ उ.] स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकपाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य। यह हुआ, उक्त स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का वर्णन।

१२९. से किं तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पढमसमयबुद्ध-बोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतराग-चरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अचरिम-समयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य। से त्तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीय-रायचरित्तारिया। से त्तं छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया।

[१२९ प्र.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२९ उ.] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य; अथवा चरमसमयबुद्धबोधित-छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरम-समय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

यह बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों और साथ ही छद्मस्थक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का वर्णन सम्पूर्ण हुआ।

१३०. से किं तं केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सजोगिकेवलिखीणकसाय-वीयरागचरित्तारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य ।

[१३० प्र.] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१३० उ.] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य और अयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य ।

१३१. से किं तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पढमसमयसजोगि-केवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अचरिमसमयसजोगिकेवलि-खीणकसायवीयरायचरित्तारिया य । से त्तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ।

[२३१ प्र.] सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य किस प्रकार के कहे हैं ?

[१३१ उ.] सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथमसमय-सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य । यह सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का निरूपण हुआ ।

१३२. से किं तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया दुविहा पन्नत्ता । तं जहा—पढमसमयअजोगि-केवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीण-कसायवीतरागचरित्तारिया य । से त्तं अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया । से त्तं केवलि-खीणकसायवीतरागचरित्तारिया । से त्तं खीणकसायवीतरागचरित्तारिया । से त्तं वीतराग-चरित्तारिया ।

[१३२ प्र.] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य कैसे होते हैं ?

[१३२ उ.] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथम-समय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य; अथवा चरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य । इस प्रकार अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का, साथ ही केवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का वर्णन (भी पूर्ण हुआ), (और इसके पूर्ण होने के साथ ही) वीतराग-चारित्रार्यों की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई) ।

१३३. अहवा चरित्तारिया पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—सामाइयचरित्तारिया १ छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया २ परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ३ सुहुमसंपरायचरित्तारिया ४ अहक्खायचरित्तारिया ५।

[१३३ प्र.] अथवा—प्रकारान्तर से चारित्रार्य पांच प्रकार के कहे गए हैं। यथा—१. सामायिक-चारित्रार्य, २. छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य, ३. परिहारविशुद्धिक-चारित्रार्य, ४. सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और ५. यथाख्यात-चारित्रार्य।

१३४. से किं तं सामाइयचरित्तारिया ?

सामाइयचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—इत्तरियसामाइयचरित्तारिया य आवकहियसामाइयचरित्तारिया य। से त्तं सामाइयचरित्तारिया।

[१३४ प्र.] वे [पूर्वोक्त) सामायिक-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३४ उ.] सामायिक-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—इत्वरिक सामायिक-चारित्रार्य और यावत्कथिक सामायिक-चारित्रार्य। यह हुआ सामायिक-चारित्रार्य का निरूपण।

१३५. से किं तं छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया ?

छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—साइयारछेदोवट्ठावणियचरित्तारिया य णिरइयारछेओवट्ठावणियचरित्तारिया य। से त्तं छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया।

[१३५ प्र.] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३५ उ.] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सातिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य और निरतिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य। यह हुआ छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्यो का वर्णन।

१३६. से किं तं परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ?

परिहारविसुद्धियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—निव्विसमाणपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य निव्विट्ठकाइयपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य। से त्तं परिहारविसुद्धियचरित्तारिया।

[१३६ प्र.] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३६ उ.] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—निर्विश्यमानक-परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य और निर्विष्टकायिक-परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य। यह हुआ उक्त परिहारविशुद्धि-चारित्रार्यों का वर्णन।

१३७. से किं तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया ?

सुहुमसंपरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—संकिलिस्समाणसुहुमसंपरायचरित्तारिया य विसुज्झमाणसुहुमसंपरायचरित्तारिया य। से त्तं सुहुमसंपरायचरित्तारिया।

[१३७ प्र.] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१३७ उ] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—संक्लिश्यमान-सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और विशुद्धयमान-सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य ।

यह हुआ उक्त सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्यों का निरूपण ।

१३८. से किं तं अहक्खायचरित्तारिया ?

अहक्खायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—छउमत्थअहक्खायचरित्तारिया य केवलि-अहक्खायचरित्तारिया य । से त्तं अहक्खायचरित्तारिया । से त्तं चरित्तारिया । से त्तं अणिड्ढिपत्तारिया । से त्तं आरिया । से त्तं कम्मभूमगा । से त्तं गब्भवक्कंतिया । से त्तं मणुस्सा ।

[१३८ प्र.] यथाख्यात-चारित्रार्य किस प्रकार के हैं ?

[१३८ उ.] यथाख्यात-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—छद्मस्थयथाख्यात-चारित्रार्य और केवलियथाख्यात-चारित्रार्य । यह हुआ उक्त यथाख्यात-चारित्रार्यो का (निरूपण ।) इसके पूर्ण होने के साथ ही) चारित्रार्य का वर्णन (समाप्त हुआ ।) इस प्रकार आर्यों का वर्णन, कर्मभूमिजों का वर्णन तथा उक्त गर्भजों के वर्णन के समाप्त होने के साथ ही मनुष्यों की प्ररूपणा पूर्ण हुई ।

विवेचन—समग्र मनुष्यजीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत ४७ सूत्रों (सू. ९२ से १३८ तक) में मनुष्यों के सम्मूर्च्छिम और गर्भज इन दो भेदों का उल्लेख करके गर्भजों के कर्मभूमक, अकर्मभूमक और अन्तरद्वीपज, यों तीन भेद और फिर इनके भेद-प्रभेदों का निरूपण किया गया है ।

कर्मभूमक और अकर्मभूमक की व्याख्या—कर्मभूमक—प्रस्तुत में कृषि-वाणिज्यादि जीवन-निर्वाह के कार्यो को तथा मोक्षसम्बन्धी अनुष्ठान को कर्म कहा गया है । जिनकी कर्मप्रधान भूमि है, वे '**कर्मभूम**' या '**कर्मभूमक**' कहलाते हैं । अर्थात्—कर्मप्रधान भूमि में रहने और उत्पन्न होने वाले मनुष्य कर्मभूमक हैं । **अकर्मभूमक**—जिन मनुष्यों की भूमि पूर्वोक्त कर्मो से रहित हो, जो कल्पवृक्षों से ही अपना जीवन निर्वाह करते हों, वे अकर्मभूम या अकर्मभूमक कहलाते हैं ।[1]

'अन्तरद्वीपक' मनुष्यों की व्याख्या—अन्तर शब्द मध्यवाचक है । अन्तर में अर्थात्—लवण-समुद्र के मध्य में जो द्वीप हैं, वे अन्तरद्वीप कहलाते हैं । उन अन्तरद्वीपों में रहने वाले अन्तरद्वीपग या अन्तरद्वीपक कहलाते हैं । ये अन्तरद्वीपग मनुष्य अट्ठाईस प्रकार के हैं, जिनका मूल पाठ में नामोल्लेख है ।

अन्तरद्वीपग मनुष्य वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले, कंकपक्षी के समान परिणमन वाले, अनुकूल वायुवेग वाले एवं समचतुरस्रसंस्थान वाले होते हैं । उनके चरणों की रचना कच्छप के समान आकार वाली एवं सुन्दर होती है । उनकी दोनों जांघें चिकनी, अल्परोमयुक्त, कुरुविन्द के समान गोल होती हैं । उनके घुटने निगूढ़ और सम्यक्तयावद्ध होते हैं, उनके उरूभाग हाथी की सूंड के समान गोलाई से युक्त होते हैं, उनका कटिप्रदेश सिंह के समान, मध्यभाग वज्र के समान, नाभि-मण्डल दक्षिणावर्त्त शंख के समान तथा वक्षःस्थल विशाल, पुष्ट एवं श्रीवत्स से लाञ्छित होता है । उनकी भुजाएँ नगर के फाटक की अर्गला के समान दीर्घ होती हैं । हाथ की कलाइयां (मणिवन्ध) सुवद्ध होती हैं । उनके करतल और पदतल रक्तकमल के समान लाल होते हैं । उनकी गर्दन चार अंगुल की, सम और वृत्ताकार शंख-सी होती है । उनका मुखमण्डल शरद्ऋतु के चन्द्रमा के समान सौम्य होता है । उनके छत्राकार मस्तक पर अस्फुटित-स्निग्ध, कान्तिमान एवं चिकने केश होते हैं ।

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ५०

वे कमण्डलु, कलश, यूप, स्तूप, वापी, ध्वज, पताका, सौवस्तिक, यव, मत्स्य, मगर, कच्छप, रथ, स्थाल, अंशुक, अष्टापद, अंकुश, सुप्रतिष्ठक, मयूर, श्रीदाम, अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, समुद्र, श्रेष्ठ-भवन, दर्पण, पर्वत, हाथी, वृषभ, सिंह, छत्र और चामर; इन ३२ उत्तम लक्षणों से युक्त होते हैं।

वहाँ की स्त्रियां भी सुनिर्मित-सर्वांगसुन्दर तथा समस्त महिलागुणों से युक्त होती हैं। उनके चरण कच्छप के आकार के, तथा परस्पर सटी हुई अंगुलियों वाले एवं कमलदल के समान मनोहर होते हैं। उनके जंघायुगल रोमरहित एवं प्रशस्त लक्षणों से युक्त होते हैं, तथा जानुप्रदेश निगूढ एवं पुष्ट होते हैं, उनके उरू केले के स्तम्भसदृश संहत, सुकुमार एवं पुष्ट होते हैं। उनके नितम्ब विशाल, मांसल एवं शरीर के आयाम के अनुरूप होते हैं। उनकी रोमराजि मुलायम, कान्तिमय एवं सुकोमल होती है। उनका नाभिमण्डल दक्षिणावर्त की तरंगों के समान, उदर प्रशस्त लक्षणयुक्त एवं स्तन स्वर्णकलशसम संहत, उन्नत, पुष्ट एवं गोल होते हैं। पार्श्वभाग भी संगत होता है। उनकी बांहें लता के समान सुकुमार होती हैं। उनके अधरोष्ठ अनार के पुष्प के समान लाल, तालु एवं जिह्वा रक्तकमल के समान तथा आंखें विकसित नीलकमल के समान बड़ी एवं कमनीय होती हैं। उनकी भौंहें चढ़ाए हुए धनुषबाण के आकार की सुसंगत होती हैं। ललाट प्रमाणोपेत होता है। मस्तक के केश सुस्निग्ध एवं सुन्दर होते हैं। करतल एवं पदतल स्वस्तिक, शंख, चक्र आदि की आकृति की रेखाओं से सुशोभित होते हैं। गर्दन ऊँची, मांसल एवं शंख के समान होती है। वे ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम होती हैं। स्वभाव से ही वे उदार, श्रृंगार और सुन्दर वेष वाली होती हैं। प्रकृति से हास्य, वचन, विलास एवं विषय में परम नैपुण्य से युक्त होती हैं।

वहाँ के पुरुष-स्त्री सभी स्वभाव से सुगन्धित वदन वाले होते हैं। उनके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त मन्द होते हैं। वे सन्तोषी, उत्सुकता रहित, मृदुता-ऋजुतासम्पन्न होते हैं। मनोहर मणि, स्वर्ण और मोती आदि ममत्व के कारणों के विद्यमान होते हुए भी वे ममत्व के अभिनिवेश से तथा वैरानुबन्ध से रहित होते हैं। हाथी, घोड़े, ऊंट, गाय, भैंस आदि के होते हुए भी वे उनके परिभोग से पराङ्मुख रह कर पैदल चलते हैं।

वे ज्वरादि रोग, भूत, प्रेत, यक्ष आदि की ग्रस्तता, महामारी आदि विपत्तियों के उपद्रव से भी रहित होते हैं। उनमें परस्पर स्वामि-सेवक का व्यवहार नहीं होता, अतएव सभी अहमिन्द्र जैसे होते हैं। उनकी पीठ में ६४ पसलियां होती हैं। उनका आहार एक चतुर्थभक्त (उपवास) के बाद होता है और आहार भी शालि आदि धान्य से निष्पन्न नहीं, किन्तु पृथ्वी की मिट्टी एवं कल्पवृक्षों के पुष्प, फल का होता है। क्योंकि वहाँ चावल, गेहूं, मूंग, उड़द आदि अन्न होते हुए भी वे मनुष्यों के उपभोग में नहीं आते, वहाँ की पृथ्वी ही शक्कर से अनन्तगुणी मधुर है, तथा कल्पवृक्षों के पुष्प-फलों का स्वाद चक्रवर्ती के भोजन से भी अनेक गुणा अच्छा है। वे इस प्रकार का स्वादिष्ट आहार करके प्रासाद के आकार के जो गृहाकार कल्पवृक्ष होते हैं, उनमें सुख से रहते हैं। उस क्षेत्र में डांस, मच्छर, जूं, खटमल, मक्खी आदि शरीरोपद्रवकारी जन्तु पैदा नहीं होते। जो भी सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि वहाँ होते हैं, वे मनुष्यों को कोई पीड़ा नहीं पहुँचाते। उनमें परस्पर हिंस्य-हिंसकभाव का व्यवहार नहीं है। क्षेत्र के प्रभाव से वहाँ के जीव रौद्र (भयंकर) स्वभाव से रहित होते हैं। वहाँ के मनुष्यों (स्त्री-पुरुष) का जोड़ा अपने अवसान के समय एक जोड़े (स्त्री-पुरुष) को जन्म देता है और ७९ दिन तक उसका पालन-पोषण करता है। उनके शरीर की ऊंचाई ८०० धनुष की और उनकी आयु पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी होती है। वे मन्दकषायी,

मन्दराग-मोहानुवन्ध के कारण मर कर देवलोक में जाते हैं। उनका मरण भी जंभाई, खांसी या छींक आदि से होता है, किन्तु किसी शरीरपीड़ापूर्वक नहीं।

अन्तरद्वीपगों के अन्तरद्वीप कहाँ और कैसी स्थिति में ?—आगमानुसार छप्पन अन्तरद्वीपगों के अन्तरद्वीप हिमवान् और शिखरी इन दो पर्वतों की लवणसमुद्र में निकली दाढ़ाओं पर स्थित हैं। **हिमवान् पर्वत के अट्ठाईस अन्तरद्वीपों का वर्णन**—जम्बूद्वीप में भरत और हैमवत क्षेत्रों की सीमा का विभाजन करने वाला हिमवान् नामक पर्वत है। वह भूमि में २५ योजन गहरा और सौ योजन ऊँचा तथा भरत क्षेत्र से दुगुना विस्तृत, हेममय चीनांशुक के-से वर्ण वाला है। उसके दोनों पार्श्व नाना वर्णों से विशिष्ट कान्तिमय मणिसमूह से परिमण्डित हैं। उसका विस्तार ऊपर-नीचे सर्वत्र समान है। वह गगनमण्डल को स्पर्श करने वाले रत्नमय ग्यारह कूटों से सुशोभित है, उसका तल वज्रमय है, तटभाग विविध मणियों और सोने से सुशोभित है। वह दस योजन में अवगाहित—जगह घेरे हुए है। वह पूर्व-पश्चिम में हजार योजन लम्बा और दक्षिण-उत्तर में पांच योजन विस्तीर्ण है। उसके मध्यभाग में पद्मह्रद है तथा चारों ओर कल्पवृक्षों की पंक्ति से अतीव कमनीय है। वह पूर्व और पश्चिम के छोरों (अन्तों) से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। लवणसमुद्र के जल के स्पर्श से लेकर पूर्व-पश्चिम दिशा में दो गजदन्ताकार दाढ़ें निकली हैं। उनमें से ईशानकोण में जो दाढ़ा निकली है, उस प्रदेश में हिमवान् पर्वत से तीन सौ योजन की दूरी पर लवणसमुद्र में ३०० योजन लम्बा-चौड़ा तथा कुछ कम ९४९ योजन की परिधिवाला **एकोरुक** नामक द्वीप है। जो कि ५०० धनुष विस्तृत, दो गाऊ ऊँची पद्मवरवेदिका से चारों ओर से मण्डित है। उसी हिमवान् पर्वत के पर्यन्तभाग से दक्षिण-पूर्वकोण में तीन सौ योजन दूर स्थित लवणसमुद्र का अवगाहन करते ही दूसरी दाढ़ा आती है, जिस पर एकोरुक द्वीप जितना ही लम्बा-चौड़ा **'आभासिक'** नामक द्वीप है तथा उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिम दिशा के छोर (पर्यन्त) से लेकर दक्षिण-पश्चिमदिशा (नैऋत्य-कोण) में तीन-सौ योजन लवणसमुद्र का अवगाहन करने के बाद एक दाढ़ आती है, जिस पर उसी प्रमाण का **वैषाणिक** नामक द्वीप है; एवं उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिमदिशा के छोर से लेकर पश्चिमोत्तरदिशा (वायव्यकोण) में तीन-सौ योजन दूर लवणसमुद्र में एक दंष्ट्रा (दाढ़) आती है, जिस पर पूर्वोक्त प्रमाण वाला **नांगोलिक** द्वीप आता है। इस प्रकार ये चारों द्वीप हिमवान् पर्वत से चारों विदिशाओं में हैं और समान प्रमाण वाले हैं।

तदनन्तर इन्हीं एकोरुक आदि चारों द्वीपों के आगे यथाक्रम से पूर्वोत्तर आदि प्रत्येक विदिशा में चार-चार सौ योजन आगे चलने के बाद चार-चार सौ योजन लम्बे-चौड़े, कुछ कम १२६५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ४०० योजन प्रमाण अन्तर वाले **हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलीकर्ण** नाम के चार द्वीप हैं। एकोरुक द्वीप के आगे हयकर्ण है, आभासिक के आगे गजकर्ण, वैषाणिक के आगे गोकर्ण और नांगोलिक के आगे शष्कुलीकर्ण द्वीप है।

तत्पश्चात् इन हयकर्ण आदि चार द्वीपों के आगे पांच-पांच सौ योजन की दूरी पर फिर चार द्वीप हैं—जो पांच-पांच सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं और पहले की तरह ही चारों विदिशाओं में स्थित हैं। इनकी परिधि १५८१ योजन की है। इनके बाह्यप्रदेश भी पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से सुशोभित हैं तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ५०० योजन प्रमाण अन्तर वाले हैं। इनके

नाम हैं—**आदर्शमुख, मेण्ढमुख, अयोमुख और गोमुख**। इनमें से हयकर्ण के आगे आदर्शमुख, गजकर्ण के आगे मेण्ढमुख, गोकर्ण के आगे अयोमुख और शष्कुलीकर्ण के आगे गोमुख द्वीप है।

इन आदर्शमुख आदि चारों द्वीपों के आगे छह-छह सौ योजन की दूरी पर पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में फिर चार द्वीप हैं—**अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख**। ये चारों द्वीप ६०० योजन लम्बे-चौड़े और १८९७ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से मण्डित बाह्यप्रदेश वाले एवं जम्बूद्वीप की वेदिका से ६०० योजन अन्तर पर हैं।

इन अश्वमुखादि चारों द्वीपों के आगे क्रमशः पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में ७००-७०० योजन की दूरी पर ७०० योजन लम्बे-चौड़े तथा २२१३ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से घिरे हुए एवं जम्बूद्वीप की वेदिका से ७०० योजन के अन्तर पर क्रमशः **अश्वकर्ण, हरिकर्ण, अकर्ण और कर्णप्रावरण** नाम के चार द्वीप हैं।

फिर इन्हीं अश्वकर्ण आदि चार द्वीपों के आगे, यथाक्रम से पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में ८००-८०० योजन दूर जाने पर आठ सौ योजन लम्बे-चौड़े, २५२९ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका-वनखण्ड से मण्डित परिसर वाले, एवं जम्बूद्वीप की वेदिका से ८०० योजन के अन्त पर **उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दन्त** नाम के चार द्वीप हैं।

तदनन्तर इन्हीं उल्कामुख आदि चारों द्वीपों के आगे क्रमशः पूर्वोत्तरादि विदिशाओं में ९००-९०० योजन की दूरी पर, नौ सौ योजन लम्बे-चौड़े तथा २८४५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले, जम्बूद्वीप की वेदिका से ९०० योजन के अन्तर पर चार द्वीप और हैं। जिनके नाम क्रमशः ये हैं—**घनदन्त, लष्टदन्त, गूढ़दन्त और शुद्धदन्त**। इस हिमवान् पर्वत की दाढों पर चारों विदिशाओं में स्थित ये सब द्वीप (७×४=२८) अट्ठाईस हैं।

शिखरी पर्वत के २८ अन्तरद्वीपों का वर्णन—इसी प्रकार हिमवान् पर्वत के समान वर्ण और प्रमाण वाले तथा पद्महृद के समान लम्बे-चौड़े और गहरे पुण्डरीकह्रद से सुशोभित शिखरी पर्वत पर लवणसमुद्र के जलस्पर्श से लेकर पूर्वोक्त दूरी पर यथोक्त प्रमाण वाली चारों विदिशाओं में स्थित, एकोरुक आदि नाम के अट्ठाईस द्वीप हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई परिधि, नाम आदि सब पूर्ववत् हैं। अतएव दोनों ओर के मिल कर कुल अन्तरद्वीप छप्पन हैं। इन द्वीपों में रहने वाले मनुष्य भी इन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं। जैसे पजाब में रहने वाले को पंजाबी कहा जाता है।[1]

अकर्मभूमकों का वर्णन—अकर्मभूमक मनुष्य तीस प्रकार के हैं। अढाई द्वीप रूप मनुष्यक्षेत्र में पांच हैमवत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु अकर्मभूमि के इन तीस क्षेत्रों में ३० ही प्रकार के मनुष्य रहते हैं। इन्हीं के नाम पर से इनमें रहने वाले मनुष्यों के प्रकार गिनाये गए हैं। इनमें से ५ हैमवत क्षेत्र और ५ हैरण्यवत क्षेत्र में मनुष्य एक गव्यूति (गाऊ) ऊँचे, एक पल्योपम की आयु और वज्रऋषभनाराचसंहनन तथा समचतुरस्रसंस्थान वाले होते हैं। इनकी पीठ की पांसलियाँ ६४ होती हैं, ये एक दिन के अन्तर से भोजन करते हैं और ७९ दिन तक अपनी संतान का पालन-पोषण करते हैं। पांच हरिवर्ष और पांच रम्यकवर्ष क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु दो पल्योपम की, शरीर की ऊँचाई दो गव्यूति की होती है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक ५० से ५४ तक

ये वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसंस्थान वाले होते हैं। ये दो दिन के अन्तर से आहार करते हैं। इनको पीठ की पसलियां १२८ होती हैं और ये अपनी संतान का पालन ६४ दिन तक करते हैं। पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम की एवं शरीर की ऊँचाई तीन गाऊ की होती है। ये भी वज्रऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसंस्थान वाले होते हैं। इनकी पीठ की पसलियां २५६ होती हैं। ये तीन दिनों के अनन्तर आहार करते हैं और ४९ दिनों तक अपनी संतति का पालन करते हैं।

इन सभी क्षेत्रों में अन्तरद्वीपों की तरह मनुष्यों के भोगोपभोग के साधनों की पूर्ति कल्पवृक्षों से होती है। इतना अन्तर अवश्य है कि पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत क्षेत्रों में मनुष्यों के उत्थान, बल-वीर्य आदि तथा वहाँ के कल्पवृक्षों के फलों का स्वाद और वहाँ की भूमि का माधुर्य अन्तरद्वीप की अपेक्षा पर्यायों की दृष्टि से अनन्तगुणा अधिक है। ये ही सब पदार्थ पांच हरिवर्ष और पांच रम्यकवर्ष क्षेत्रों में उनसे भी अनन्तगुणे अधिक तथा पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु में इनसे भी अनन्तगुणे अधिक होते हैं। यह संक्षेप में अकर्मभूमकों का निरूपण है।[1]

आर्य और म्लेच्छ मनुष्य—पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह, इन १५ क्षेत्रों में आर्य और म्लेच्छ दोनों प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य रहते हैं। आर्य का अर्थ है— हेय धर्मों (अधर्मों या पापों) से जो दूर हैं, और उपादेय धर्मों (अहिंसा, सत्य आदि धर्मों) के निकट हैं या इन्हें प्राप्त किये हुये हैं। म्लेच्छ वे हैं—जिनके वचन (भाषा) और आचार अव्यक्त—अस्पष्ट हों। दूसरे शब्दों में कहें तो जिनका समस्त व्यवहार शिष्टजनसम्मत न हो, उन्हें म्लेच्छ समझना चाहिए।

म्लेच्छ अनेक प्रकार के हैं, जिनका मूलपाठ में उल्लेख है। इनमें से अधिकांश म्लेच्छों की जाति के नाम तो अमुक-अमुक देश में निवास करने से पड़ गए हैं, जैसे—शक देश के निवासी शक, यवन देश के निवासी यवन इत्यादि।

आर्यों के प्रकार और उनके लक्षण—**क्षेत्रार्य**—मूलपाठ में परिगणित साढे पच्चीस जनपदात्मक आर्य क्षेत्र में उत्पन्न होने एवं रहने वाले क्षेत्रार्य कहलाते हैं। ये क्षेत्र आर्य इसलिए कहे गए हैं कि इनमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषों का जन्म होता है। इनसे भिन्न क्षेत्र अनार्य कहलाते हैं। **जात्यार्य**—मूलपाठ में वर्णित अम्बष्ठ आदि ६ जातियां इभ्य—अभ्यर्चनीय एवं प्रसिद्ध हैं। इन जातियों से सम्बद्ध जन जात्यार्य कहलाते हैं। **कुलार्य**—शास्त्र-परिगणित उग्र आदि ६ कुलों में से किसी कुल में जन्म लेने वाले कुलार्य—कुल की अपेक्षा से आर्य कहलाते हैं। **कर्मार्य**—अहिंसा आदि एवं शिष्टसम्मत तथा आजीविकार्थ किये जाने वाले कर्म आर्यकर्म कहलाते हैं। शास्त्रकार ने दोषिक, सौत्रिक आदि कुछ आर्यकर्म से सम्बन्धित मनुष्यों के प्रकार गिनाये हैं। विशेषता स्वयमेव समझ लेना चाहिए। **शिल्पार्य**—जो शिल्प अहिंसा आदि धर्मांगों से तथा शिष्टजनों के आचार के अनुकूल हो, वह आर्य शिल्प कहलाता है। ऐसे आर्य शिल्प से अपना जीवननिर्वाह करने वाले शिल्पार्यों में परिगणित किये गए हैं। कुछ नाम तो शास्त्रकार ने गिनाये ही हैं। शेष स्वयं चिन्तन द्वारा समझ लेना चासिए। **भाषार्य**—अर्धमागधी उस समय आम जनता की, शिष्टजनों की भाषा थी, आज उसी का प्रचलित रूप हिन्दी एवं विविध प्रान्तीय भाषाएँ हैं। अतः वर्तमान युग

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ५४

में भाषार्य उन्हें कहा जा सकता है, जिनकी भाषा उच्च संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्धित हो, जिनकी भाषा तुच्छ और कर्कश न हो, किन्तु आदरसूचक कोमल, कान्त पदावली से युक्त हो। शेष ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य का स्वरूप स्पष्ट ही है। जो सम्यग्ज्ञान से युक्त हों, वे ज्ञानार्य, जो सम्यग्दर्शन से युक्त हों, वे दर्शनार्य और जो सम्यक्चारित्र से युक्त हों, वे चारित्रार्य कहलाते हैं। जो मिथ्याज्ञान से, मिथ्यात्व एवं मिथ्यादर्शन से एवं कुचारित्र से युक्त हों, उन्हें क्रमशः ज्ञानार्य, दर्शनार्य एवं चारित्रार्य नहीं कहा जा सकता। शास्त्रकार ने पांच प्रकार के सम्यग्ज्ञान से युक्त जनों को ज्ञानार्य, सराग और वीतराग रूप सम्यग्दर्शन से युक्त जनों को दर्शनार्य तथा सराग और वीतराग रूप सम्यक्चारित्र से युक्त जनों को चारित्रार्य बतलाया है। इन सबके अवान्तर भेद-प्रभेद विभिन्न अपेक्षाओं से बताए हैं। इन सब अवान्तर भेदों वाले भी ज्ञानार्य, दर्शनार्य एवं चारित्रार्य में ही परिगणित होते हैं।

सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य—जो दर्शन राग अर्थात् कषाय से युक्त होता है, वह सरागदर्शन तथा जो दर्शन राग अर्थात्—कषाय से रहित हो वह वीतरागदर्शन कहलाता है। सराग-दर्शन की अपेक्षा से आर्य सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शन की अपेक्षा से आर्य वीतरागदर्शनार्य कहलाते हैं। सरागदर्शन के निसर्गरुचि आदि १० प्रकार हैं। परमार्थसंस्तव आदि तीन लक्षण हैं और निःशंकित आदि ८ आचार हैं। वीतरागदर्शन दो प्रकार का है—उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय। इन दोनों के कारण जो आर्य हैं, उन्हें क्रमशः उपशान्तकषायदर्शनार्य और क्षीणकषायदर्शनार्य कहा जाता है। उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य वे हैं—जिनके समस्त कषायों का उपशमन हो चुका है, अतएव जिनमें वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, ऐसे ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि। क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य वे हैं—जिनके समस्त कषाय समूल क्षीण हो चुके हैं, अतएव जिनमें वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, वे बारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थानवर्ती महामुनि। जिन्हें इस अवस्था में पहुँचे प्रथम समय ही हो, वे प्रथमसमयवर्ती, और जिन्हें एक समय से अधिक हो गया हो, वे अप्रथमसमयवर्ती कहलाते हैं। इसी प्रकार चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती ये दो भेद समयभेद के कारण हैं।

क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य के भी अवस्थाभेद से दो प्रकार हैं—जो बारहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग हैं, वे छद्मस्थ हैं और जो तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवाले हैं, वे केवली हैं। बारहवें गुण-स्थानवर्ती छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग भी दो प्रकार के हैं—स्वयंबुद्ध और बुद्धबोधित। फिर इन दोनों में से प्रत्येक के अवस्थाभेद से दो-दो भेद पूर्ववत् होते हैं—प्रथमसमयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती। स्वामी के भेद के कारण दर्शन में भी भेद होता है और दर्शनभेद से उनके व्यक्तित्व (आर्यत्व) में भी भेद माना गया है। केवलिक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य के सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दो भेद होते हैं। जो केवलज्ञान तो प्राप्त कर चुके, लेकिन अभी तक योगों से युक्त हैं, वे सयोगिकेवली, और जो केवली अयोग दशा प्राप्त कर चुके, वे अयोगि-केवली कहलाते हैं। वे सिर्फ चौदहवें गुणस्थान वाले होते हैं। इन दोनों के भी समयभेद से प्रथम-समयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती अथवा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती, यों प्रत्येक के चार-चार भेद हो जाते हैं। इनके भेद से दर्शन में भी भेद माना गया है और दर्शनभेद के कारण दर्शननिमित्तक आर्यत्व में भी भेद होता है।

सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य—रागसहित चारित्र अथवा रागसहितपुरुष के चारित्र को सरागचारित्र और जिस चारित्र में राग का सद्भाव न हो, या वीतरागपुरुष का जो चारित्र हो, उसे वीतरागचारित्र कहते हैं। सरागचारित्र के दो भेद हैं—सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्र

(जिसमें सूक्ष्म कषाय की विद्यमानता होती है) तथा बादरसम्पराय-सरागचारित्र (जिसमें स्थूल कषाय हो, वह)। इनसे जो आर्य हो, वह तथारूप आर्य होता है। सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य के अवस्था भेद से चार भेद बताए हैं—प्रथमसमयवर्ती व अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती। इनकी व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य के पुन: दो भेद बताए गए हैं—संक्लिश्यमान (ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर दसवें गुणस्थान में आया हुआ)। और विशुद्धयमान (नौवें गुणस्थान से ऊपर चढ़कर दसवें गुणस्थान में आया हुआ)। बादरसम्पराय-चारित्रार्य के भी पूर्ववत् प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद बताए गए हैं। इनके भी प्रकारान्तर से दो भेद किये गए हैं—प्रतिपाती और अप्रतिपाती। उपशमश्रेणी वाले प्रतिपाती (गिरने वाले) और क्षपकश्रेणीप्राप्त अप्रतिपाती (नहीं गिरने वाले) होते हैं। वीतराग के दो प्रकार हैं—उपशान्तकषायवीतराग और क्षीणकषायवीतराग। उपशान्तकषायवीतराग (एकादशम-गुणस्थान वर्ती) की व्याख्या तथा इसके चार भेदों की व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।

क्षीणकषायवीतराग के भी दो भेद होते हैं—छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग और केवलिक्षीण-कषायवीतराग। इनमें से छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग के दो प्रकार हैं—स्वयंबुद्ध और बुद्धबोधित। इन दोनों के प्रथमसमयवर्ती आदि पूर्ववत् चार-चार भेद होते हैं। इन सबकी व्याख्या भी पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इसी प्रकार केवलिक्षीणकषायवीतराग के भी पूर्ववत् सयोगिकेवली और अयोगिकेवली तथा प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद होते हैं। इनकी व्याख्या भी पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इन सबकी अपेक्षा से जो आर्य होते हैं, वे तथारूप चारित्रार्य कहलाते हैं।[1]

सामायिकचारित्रार्य का स्वरूप—सम का अर्थ है—राग और द्वेष से रहित। समरूप आय को समाय कहते हैं। अथवा सम का अर्थ है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, इनके आय अर्थात् लाभ अथवा प्राप्ति को समाय कहते हैं। अथवा 'समाय' शब्द साधु की समस्त क्रियाओं का उपलक्षण है; क्योंकि साधु की समस्त क्रियाएँ राग-द्वेष से रहित होती हैं। पूर्वोक्त 'समाय' से जो निष्पन्न हो, सम्पन्न हो अथवा 'समाय' में होने वाला सामायिक है। अथवा समाय ही सामायिक है; जिसका तात्पर्य है—सर्व सावद्य कार्यों से विरति। महाव्रती साधु-साध्वियों के चारित्र को सामायिक-चारित्र कहा गया है; क्योंकि महाव्रती जीवन अंगीकार करते समय समस्तसावद्य कार्यो अथवा योगों से निवृत्तिरूप सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है। यद्यपि सामायिकचारित्र में साधु के समस्त चारित्रों का अन्तर्भाव हो जाता है, तथापि छेदोपस्थापना आदि विशिष्ट चारित्रों से सामायिक-चारित्र में उत्तरोत्तर विशुद्धि और विशेषता आने के कारण उन चारित्रों को पृथक् ग्रहण किया गया है। सामायिकचारित्र के दो भेद हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक का अर्थ है—अल्पकालिक और यावत्कथिक का अर्थ है—आजीवन (जीवनभर का, यावज्जीव का)। इत्वरिकसामायिक-चारित्र, भरत और ऐरवत क्षेत्रों में, प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में, महाव्रतों का आरोपण नहीं किया गया हो, तब तक शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है। अर्थात्—दीक्षाग्रहणकाल से महा-व्रतारोपण से पूर्व तक का शैक्ष (नवदीक्षित) का चारित्र इत्वरिकसामायिक-चारित्र होता है। भरत और ऐरवत क्षेत्र के मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों तथा महाविदेहक्षेत्रीय तीर्थंकरों के तीर्थ में साधुओं के यावत्कथिकसामायिक-चारित्र होता है। क्योंकि उनके उपस्थापना नहीं होती, अर्थात्—

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ५५ से ६० तक,
(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. १, पृ. ४५३ से ५१३ तक

उन्हें महाव्रतारोपण के लिए दूसरी बार दीक्षा नहीं दी जाती। इस प्रकार के सामायिकचारित्र की आराधना के कारण से जो आर्य हैं वे सामायिकचारित्रार्य कहलाते हैं।

छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य—जिस चारित्र में पूर्वपर्याय का छेद, और महाव्रतों में उपस्थापन किया जाता है वह छेदोपस्थापनचारित्र है। वह दो प्रकार का है—सातिचार और निरतिचार। निरतिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है—जो इत्वरिक सामायिक वाले शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है अथवा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जाने पर अंगीकार किया जाता है। जैसे पार्श्वनाथ के तीर्थ से वर्द्धमान के तीर्थ में आने वाले श्रमण को पंचमहाव्रतरूप चारित्र स्वीकार करने पर दिया जाने वाला छेदोपस्थापनचारित्र निरतिचार है। सातिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है जो मूलगुणों (महाव्रतों) में से किसी का विघात करने वाले साधु को पुनः महाव्रतोच्चारण के रूप में दिया जाता है। यह दोनों ही प्रकार का छेदोपस्थापनचारित्र स्थितकल्प में—अर्थात्—प्रथम और चरम तीर्थंकरों के तीर्थ में होता है, मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ में नहीं। छेदोपस्थापनचारित्र की आराधना करने के कारण साधक को छेदोपस्थापनचारित्रार्य कहा जाता है।

परिहारविशुद्धिचारित्रार्य का स्वरूप—परिहार एक विशिष्ट तप है, जिससे दोषों का परिहार किया जाता है। अतः जिस चारित्र में उक्त परिहार तप से विशुद्धि प्राप्त होती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते हैं। उसके दो भेद हैं—निर्विशमानक और निर्विष्टकायिक। जिस चारित्र में साधक प्रविष्ट होकर उस तपोविधि के अनुसार तपश्चरण कर रहे हों, उसे निर्विशमानकचारित्र कहते हैं और जिस चारित्र में साधक तपोविधि के अनुसार तप का आराधन कर चुके हों, उस चारित्र का नाम निर्विष्टकायिकचारित्र है। इस प्रकार के चारित्र अंगीकार करने वाले साधकों को भी क्रमशः निर्विशमान और निर्विष्टकायिक कहा जाता है। नौ साधु मिल कर इस परिहारतप की आराधना करते हैं। उनमें से चार साधु निर्विशमानक होते हैं, जो इस तप को करते हैं और चार साधु उनके अनुचारी अर्थात्—वैयावृत्य करने वाले होते हैं तथा एक साधु कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है। यद्यपि सभी साधु श्रुतातिशयसम्पन्न होते हैं, तथापि यह एक प्रकार का कल्प होने के कारण उनमें एक कल्पस्थित आचार्य स्थापित कर लिया जाता है। निर्विशमान साधुओं का परिहारतप इस प्रकार होता है—ज्ञानीजनों ने पारिहारिकों का शीतकाल, उष्णकाल और वर्षाकाल में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तप इस प्रकार बताया है—ग्रीष्मकाल में जघन्य चतुर्थभक्त, मध्यम षष्ठभक्त और उत्कृष्ट अष्टमभक्त होता है, शिशिरकाल में जघन्य षष्ठभक्त (बेला), मध्यम अष्टमभक्त (तेला) और उत्कृष्ट दशमभक्त (चौला) तप होता है। वर्षाकाल में जघन्य अष्टमभक्त, मध्यम दशमभक्त और उत्कृष्ट द्वादशभक्त (पंचौला) तप। पारणे में आयम्बिल किया जाता है। भिक्षा में पांच (वस्तुओं) का ग्रहण और दो का अभिग्रह होता है। कल्पस्थित भी प्रतिदिन इसी प्रकार आयम्बिल करते हैं। इस प्रकार छह महीने तक तप करके पारिहारिक (निर्विशमानक) साधु अनुचारी (वैयावृत्य करने वाले) बन जाते हैं; और जो चार अनुचारी थे, वे छह महीने के लिए पारिहारिक बन जाते हैं। इसी प्रकार कल्पस्थित (वाचनाचार्य पदस्थित) साधु भी छह महीने के पश्चात् पारिहारिक बन कर अगले ६ महीनों तक के लिए तप करता है और शेष साधु अनुचारी तथा कल्पस्थित बन जाते हैं। यह कल्प कुल १८ मास का संक्षेप में कहा गया है कल्प समाप्त हो जाने के पश्चात् वे साधु या तो जिनकल्प को अंगीकार कर लेते हैं, या अपने गच्छ में पुनः लौट आते हैं। परिहार तप के प्रतिपद्यमानक इस तप को या तो तीर्थंकर भगवान् के सान्निध्य में अथवा जिसने इस कल्प को तीर्थंकर

से स्वीकार किया हो, उसके पास से अंगीकार करते हैं; अन्य के पास नहीं। ऐसे मुनियों का चारित्र परिहारविशुद्धिचारित्र कहलाता है। इस चारित्र की आराधना करने वाले को **परिहारविशुद्धिचारित्रार्य** कहते हैं।

परिहारविशुद्धिचारित्री दो प्रकार के होते हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक वे होते हैं, जो कल्प की समाप्ति के बाद उसी कल्प या गच्छ में आ जाते हैं। जो कल्प समाप्त होते ही बिना व्यवधान के तत्काल जिनकल्प को स्वीकार कर लेते हैं, वे यावत्कथिकचारित्री कहलाते हैं। इत्वरिक-परिहारविशुद्धिकों को कल्प के प्रभाव से देवादिकृत उपसर्ग, प्राणहारक आतंक या दुःसह वेदना नहीं होती किन्तु जिनकल्प को अंगीकार करने वाले यावत्कथिकों को जिनकल्पी भाव का अनुभव करने के साथ ही उपसर्ग होने सम्भव हैं।

सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य का स्वरूप—जिसमें सूक्ष्म अर्थात्—संज्वलन के सूक्ष्म लोभरूप सम्पराय=कषाय का ही उदय रह गया हो, ऐसा चारित्र सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहलाता है। यह चारित्र दसवें गुणस्थान वालों में होता है; जहाँ संज्वलनकषाय का सूक्ष्म अंश ही शेष रह जाता है। इसके दो भेद हैं—विशुद्धयमानक और संक्लिश्यमानक। क्षपकश्रेणी या उपशमश्रेणी पर आरोहण करने वाले का चारित्र विशुद्धयमानक होता है, जबकि उपशमश्रेणी के द्वारा ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँच कर वहाँ से गिरने वाला मुनि जब पुनः दसवें गुणस्थान में आता है, उस समय का सूक्ष्मसम्परायचारित्र संक्लिश्यमानक कहलाता है। सूक्ष्मसम्परायचारित्र की आराधना से जो आर्य हों, उन्हें **सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य** कहते हैं।

यथाख्यातचारित्रार्य—'यथाख्यात' शब्द में यथा+आ+आख्यात, ये तीन शब्द संयुक्त हैं, जिनका अर्थ होता है—यथा (यथार्थरूप से) आ (पूरी तरह से) आख्यात (कषायरहित कहा गया) हो अथवा जिस प्रकार समस्त लोक में ख्यात—प्रसिद्ध जो अकषायरूप हो, वह चारित्र, यथाख्यातचारित्र कहलाता है। इस चारित्र के भी दो भेद हैं—छाद्मस्थिक (छद्मस्थ—यानी ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव का) और कैवलिक (तेरहवें गुणस्थानवर्ती-सयोगिकेवली और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली का)। इस प्रकार के यथाख्यातचारित्र की आराधना से जो आर्य हों, वे **यथाख्यातचारित्रार्य** कहलाते हैं।[1]

चतुर्विध देवों की प्रज्ञापना—

१३९. से किं तं देवा ?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—भवणवासी १ वाणमंतरा २ जोइसिया ३ वेमाणिया ४।

[१३९ प्र.] देव कितने प्रकार के हैं ?

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ६३ से ६८ तक

(ख) **सव्वमिणं सामाइयं छेयाइविसेसियं पुण विभिन्नं।**
अविसेसं सामाइय चियमिह सामन्नसन्नाए॥ —प्र. म. वृ., प. ६३

(ग) **अह सद्दो उ जहत्थे, आङोऽभिविहीए कहियमक्खायं।**
चरणमकसायमुइयं तहमक्खायं जहक्खायं॥ —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक ६८

[१३९ उ.] देव चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) भवनवासी, (२) वाण-व्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

१४०. [१] से किं तं भवणवासी ?

भवणवासी दसविहा पन्नत्ता। तं जहा—असुरकुमारा १ नागकुमारा २ सुवण्णकुमारा ३ विज्जुकुमारा ४ अग्गिकुमारा ५ दीवकुमारा ६ उदहिकुमारा ७ दिसाकुमारा ८ वाउकुमारा ९ थणियकुमारा १०।

[१४०-१ प्र.] भवनवासी देव किस प्रकार के हैं ?

[१४०-१ उ.] भवनवासी देव दस प्रकार के हैं—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुपर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) पवन (वायु) कुमार और (१०) स्तनितकुमार।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं भवणवासी।

[१४०-२] ये (दस प्रकार के भवनवासी देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा-पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

यह भवनवासी देवों की प्ररूपणा हुई।

१४१. [१] से किं तं वाणमंतरा ?

वाणमंतरा अट्ठविहा पण्णत्ता। तं जहा—किन्नरा १ किंपुरिसा २ महोरगा ३ गंधव्वा ४ जक्खा ५ रक्खसा ६ भूया ७ पिसाया ८।

[१४१-१ प्र.] वाणव्यन्तर देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४१-१ उ.] वाणव्यन्तर देव आठ प्रकार के कहे गए हैं। जैसे—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गन्धर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत और (८) पिशाच।

[२] से समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं वाणमंतरा।

[१४१-२] वे (उपर्युक्त किन्नर आदि आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं; पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ उक्त वाणव्यन्तरों का वर्णन।

१४२. [१] से किं तं जोइसिया ?

जोइसिया पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—चंदा १ सूरा २ गहा ३ नक्खत्ता ४ तारा ५।

[१४२-१ प्र.] ज्योतिष्क देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४२-१ उ.] ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं। यथा—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारे।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं जोइसिया।

[१४२-२] वे (उपर्युक्त पांच प्रकार के ज्योतिष्क देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह ज्योतिष्क देवों का निरूपण है।

१४३. से किं तं वेमाणिया ?

वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—कप्पोवगा य कप्पातीता य।

[१४३ प्र.] वैमानिक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४३ उ.] वैमानिक देव दो प्रकार के हैं—कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

१४४. [१] से किं तं कप्पोवगा ?

कप्पोवगा बारसविहा पण्णत्ता। तं जहा—सोहम्मा १ ईसाणा २ सणंकुमार ३ माहिंदा ४ बंभलोया ५ लंतया ६ सुक्का ७ सहस्सारा ८ आणता ९ पाणता १० आरणा ११ अच्चुता १२।

[१४४-१ प्र.] कल्पोपपन्न कितने प्रकार के हैं ?

[१४४-१ उ.] कल्पोपपन्न देव बारह प्रकार के कहे गए हैं—(१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और (१२) अच्युत।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं कप्पोवगा।

[१४४-२] वे (बारह प्रकार के कल्पोपपन्न देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह कल्पोपपन्न देवों की प्ररूपणा हुई।

१४५. से किं तं कप्पातीया ?

कप्पातीया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—गेवेज्जगा य अणुत्तरोववाइया य।

[१४५ प्र.] कल्पातीत देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४५ उ.] कल्पातीत देव दो प्रकार के हैं—ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरौपपातिक।

१४६ [१] से किं तं गेवेज्जगा ?

गेवेज्जगा णवविहा पण्णत्ता। तं जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगा १ हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगा २ हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगा ३ मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ४ मज्झिममज्झिमगेवेज्जगा ५ मज्झिमउवरिमगेवेज्जगा ६ उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ७ उवरिममज्झिमगेवेज्जगा ८ उवरिमउवरिमगेवेज्जगा ९।

[१४६-१ प्र.] ग्रैवेयक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४६-१ उ.] ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक, (२) अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक, (३) अधस्तन-उपरिम-ग्रैवेयक, (४) मध्यम-

अधस्तन-ग्रैवेयक, (५) मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक, (६) मध्यम-उपरिम-ग्रैवेयक, (७) उपरिम-अधस्तन-ग्रैवेयक, (८) उपरिम-मध्यम-ग्रैवेयक और (९) उपरिम-उपरिम-ग्रैवेयक में रहने वाले।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से तं गेवेज्जगा।

[१४६-२] ये (उपर्युक्त नौ प्रकार के ग्रैवेयक देव) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह ग्रैवेयकों का निरूपण हुआ।

१४७. [१] से किं तं अणुत्तरोववाइया ?

अणुत्तरोववाइया पंचविहा पण्णत्ता। तं जहा—विजया १ वेजयंता २ जयंता ३ अपराजिता ४ सव्वट्ठसिद्धा ५।

[१४७-१ प्र.] अनुत्तरौपपातिक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४७-१ उ.] अनुत्तरौपपातिक देव पांच प्रकार के कहे गए हैं—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध, (विमानों में रहने वाले)।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं अणुत्तरोववाइया। से त्तं कप्पाईया। से त्तं वेमाणिया। से त्तं देवा। से त्तं पंचिंदिया। से त्तं संसारसमावण्णजीवपण्णवणा। से त्तं जीवपण्णवणा। से त्तं पण्णवणा।

।। पण्णवणाए भगवईए पढमं पण्णवणापयं समत्तं ।।

[१४७-२] ये संक्षेप में दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुई अनुत्तरौपपातिक देवों की प्ररूपणा। साथ ही उक्त कल्पातीत देवों का निरूपण पूर्ण हुआ, और इससे सम्बन्धित वैमानिक देवों का निरूपण भी पूर्ण हुआ। इसके पूर्ण होने पर देवों का वर्णन भी पूर्ण हुआ। साथ ही पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन भी पूरा हुआ। इसकी समाप्ति के साथ ही उक्त संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना पूर्ण हुई; और इससे सम्बन्धित जीवप्रज्ञापना भी समाप्त हुई। इस प्रकार यह प्रथम प्रज्ञापनापद पूर्ण हुआ।

विवेचन—चतुर्विध देवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. १३९ से १४७ तक) में चार प्रकार के देवों के भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है।

भवनवासी देवों का स्वरूप—जो देव प्रायः भवनों में निवास किया करते हैं, वे भवनवासी देव कहलाते हैं। यह कथन बहुलता से नागकुमार आदि देवों की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योंकि वे (नागकुमारादि) ही प्रायः भवनों में निवास करते हैं, कदाचित् आवासों में भी रहते हैं; किन्तु असुरकुमार प्रायः आवासों में रहते हैं, कदाचित् भवनों में भी निवास करते हैं। भवन और आवास में अन्तर यह है कि भवन तो बाहर से वृत्त (गोलाकार) तथा भीतर से समचौरस होते हैं, और नीचे कमल की कर्णिका के आकार के होते हैं; जबकि आवास कायप्रमाण स्थान वाले महामण्डप होते हैं, जो अनेक प्रकार के मणि-रत्नरूपी प्रदीपों से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। भवनवासी देवों के प्रत्येक प्रकार के नाम के साथ संलग्न 'कुमार' शब्द इनकी विशेषता का द्योतक है। ये दसों ही प्रकार के देव कुमारों के समान चेष्टा करते हैं अतएव 'कुमार' कहलाते हैं। ये कुमारों की तरह सुकुमार होते हैं, इनकी चाल (गति) कुमारों की तरह मृदु, मधुर और ललित होती है। शृंगार-

प्रसाधनार्थ ये नाना प्रकार की विशिष्ट एवं विशिष्टतर उत्तरविक्रिया किया करते हैं। कुमारों की तरह ही इनके रूप, वेशभूषा, भाषा, आभूषण, शस्त्रास्त्र, यान एवं वाहन ठाठदार होते हैं। ये कुमारों के समान तीव्र अनुरागपरायण एवं क्रीड़ातत्पर होते हैं।

वाणव्यन्तर देवों का स्वरूप—अन्तर का अर्थ है—अवकाश, आश्रय या जगह। जिन देवों का अन्तर (आश्रय), भवन, नगरावास आदि रूप हो, वे व्यन्तर कहलाते हैं। वाणव्यन्तर देवों के भवन रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम रत्नकाण्ड में ऊपर और नीचे सौ-सौ योजन छोड़ कर शेष आठ-सौ योजन-प्रमाण मध्यभाग में हैं; इनके नगर तिर्यग्लोक में भी हैं; तथा इनके आवास तीन लोकों में हैं, जैसे ऊर्ध्वलोक में इनके आवास पाण्डुकवन आदि में हैं। व्यन्तर शब्द का दूसरा अर्थ है—मनुष्यों से जिनका अन्तर नहीं (विगत) हो, क्योंकि कई व्यन्तर चक्रवर्ती, वासुदेव आदि मनुष्यों की सेवक की तरह सेवा करते हैं। अथवा जिनके पर्वतान्तर, कन्दरान्तर या वनान्तर आदि आश्रयरूप विविध अन्तर हों, वे व्यन्तर कहलाते हैं। अथवा वानमन्तर का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—वनों का अन्तर वनान्तर है, जो वनान्तरों में रहते हैं, वे वानमन्तर।

वाणव्यन्तरों के किन्नर आदि आठ भेद हैं। किन्नर के दस भेद हैं—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) किम्पुरुषोत्तम, (४) किन्नरोत्तम, (५) हृदयंगम, (६) रूपशाली, (७) अनिन्दित, (८) मनोरम, (९) रतिप्रिय और (१०) रतिश्रेष्ठ। किम्पुरुष भी दस प्रकार के होते हैं—(१) पुरुष, (२) सत्पुरुष, (३) महापुरुष, (४) पुरुषवृषभ, (५) पुरुषोत्तम, (६) अतिपुरुष, (७) महादेव, (८) मरुत, (९) मेरुप्रभ और (१०) यशस्वन्त। महोरग भी दस प्रकार के होते हैं—(१) भुजग, (२) भोगशाली, (३) महाकाय, (४) अतिकाय, (५) स्कन्धशाली, (६) मनोरम, (७) महावेग, (८) महायक्ष, (९) मेरुकान्त और (१०) भास्वन्त। गन्धर्व १२ प्रकार के होते हैं—(१) हाहा, (२) हूहू, (३) तुम्बरव, (४) नारद, (५) ऋषिवादिक, (६) भूतवादिक, (७) कादम्ब, (८) महाकदम्ब, (९) रैवत, (१०) विश्वावसु, (११) गीतरति और (१२) गीतयश। यक्ष तेरह प्रकार के होते हैं—(१) पूर्णभद्र, (२) मणिभद्र, (३) श्वेतभद्र, (४) हरितभद्र, (५) सुमनोभद्र, (६) व्यतिपातिकभद्र, (७) सुभद्र, (८) सर्वतोभद्र, (९) मनुष्ययक्ष, (१०) वनाधिपति, (११) वनाहार, (१२) रूपयक्ष और (१३) यक्षोत्तम। राक्षस देव सात प्रकार के होते हैं—(१) भीम, (२) महाभीम, (३) विघ्न, (४) विनायक, (५) जलराक्षस, (६) राक्षस-राक्षस और (७) ब्रह्मराक्षस। भूत नौ प्रकार के होते हैं—(१) सुरूप, (२) प्रतिरूप, (३) अतिरूप, (४) भूतोत्तम, (५) स्कन्द, (६) महास्कन्द, (७) महावेग, (८) प्रतिच्छन्न और (९) आकाशग। पिशाच सोलह प्रकार के होते हैं—(१) कूष्माण्ड, (२) पटक, (३) सुजोष, (४) आह्निक, (५) काल, (६) महाकाल, (७) चोक्ष, (८) अचोक्ष, (९) तालपिशाच, (१०) मुखरपिशाच, (११) अधस्तारक, (१२) देह, (१३) विदेह, (१४) महादेह, (१५) तूष्णीक और (१६) वनपिशाच।

ज्योतिष्क देवों का स्वरूप—जो लोक को द्योतित—ज्योतित—प्रकाशित करते वे ज्योतिष्क कहलाते हैं। अथवा जो द्योतित करते हैं, वे ज्योतिष्-विमान हैं, उन ज्योतिर्विमानों में रहने वाले देव ज्योतिष्क देव कहलाते हैं। अथवा जो मस्तक के मुकुटों से आश्रित प्रभामण्डलसदृश सूर्यमण्डल आदि के द्वारा प्रकाश करते हैं, वे सूर्यादि ज्योतिष्कदेव कहलाते हैं। सूर्यदेव के मुकुट के अग्रभाग में सूर्य के आकार का, चन्द्रदेव के मुकुट के अग्रभाग में चन्द्र के आकार का, ग्रहदेव के मुकुट के अग्रभाग

में ग्रह के आकार का, नक्षत्रदेव के मुकुट के अग्रभाग में नक्षत्र के आकार का और तारकदेव के मुकुट के अग्रभाग में तारक के आकार का चिह्न होता है। इससे वे प्रकाश करते हैं।

वैमानिक देवों का स्वरूप—वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं—(१) कल्पोपग या कल्पोपपन्न और (२) कल्पातीत। कल्पोपपन्न का अर्थ है—कल्प यानी आचार—अर्थात्—इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि का व्यवहार और मर्यादा। उक्त कल्प से युक्त व्यवहार जिनमें हो, वे देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं और जिनमें ऐसा कल्प न हो, वे कल्पातीत कहलाते हैं। सौधर्म आदि देव कल्पोपपन्न और नौ ग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तरौपपातिक देव कल्पातीत कहलाते हैं। लोकपुरुष की ग्रीवा पर स्थित होने से ये विमान ग्रैवेयक कहलाते हैं। अनुत्तर का अर्थ है—सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ विमान। उन अनुत्तर विमानों में उपपात यानी जन्म होने के कारण ये देव अनुत्तरौपपातिक कहलाते हैं।

॥ प्रज्ञापना सूत्र : प्रथम प्रज्ञापनापद समाप्त ॥

बिइयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

प्राथमिक

※ प्रज्ञापनासूत्र का यह द्वितीय स्थानपद है।

※ प्रथम पद में संसारी और सिद्ध, इन दो प्रकार के जीवों के भेद-प्रभेद बताए गए हैं। उन-उन जीवों के निवासस्थान का जानना आवश्यक होने से इस द्वितीय 'स्थानपद' में उसका विचार किया गया है।

※ जीवों के निवासस्थान का विचार करना इसलिए भी आवश्यक है कि अन्य दर्शनों की तरह जैनदर्शन में आत्मा को सर्वव्यापक नहीं, किन्तु उस-उस जीव के शरीरप्रमाणव्यापी संकोच-विकासशील माना गया है। इसके अतिरिक्त जैनदर्शन में अन्य दर्शनों की मान्यता की तरह आत्मा कूटस्थनित्य नहीं, किन्तु परिणामीनित्य मानी गई है। इस कारण संसार में नाना पर्यायों के रूप में उसका जन्म होता है तथा नियत स्थान में ही वह शरीर धारण करती है। अतएव कौन-सा जीव किस स्थान में होता है ?, इसका विचार करना अनिवार्य हो जाता है। दूसरे दर्शनों की दृष्टि से जीव सदैव सर्वत्र लोक में उपलब्ध है ही, वे केवल शरीर की दृष्टि से भले ही निवास स्थान का विचार कर लें, आत्मा की दृष्टि से जीव के स्थान का विचार उनके लिए अनिवार्य नहीं।[1]

※ प्रस्तुत 'स्थानपद' में अंकित मूलपाठ के अनुसार जीव के दो प्रकार के निवासस्थान फलित होते हैं—(१) **स्थायी** और (२) **प्रासंगिक**। जन्म धारण करने से लेकर मृत्यु पर्यन्त जीव जहाँ (जिस स्थान में) रहता है, उस निवासस्थान को स्थायी कहा जा सकता है, शास्त्रकार ने जिसका उल्लेख **'स्वस्थान'** के नाम से किया है। प्रासंगिक निवासस्थान का विचार **'उपपात'** और **'समुद्घात'** इन दो प्रकारों से किया गया है।

※ जैनशास्त्रीय परिभाषानुसार पूर्वभव की आयु समाप्त (मृत्यु) होते ही जीव नये नाम (पर्याय) से पहचाना जाता है। उदाहरणार्थ कोई जीव पूर्वभव में देव था, किन्तु वहाँ से मर कर वह मनुष्य होने वाला हो तो देवायु समाप्त होने से वह मनुष्य नाम से पहचाना जाता है। परन्तु जीव (आत्मा) सर्वव्यापक न होने से, शरीरप्रमाणव्यापी जीव को मृत्यु के पश्चात् नया जीवन स्वीकार करने हेतु यात्रा करके स्वजन्मस्थान में जाना पड़ता है। क्योंकि देवलोक तो उस जीव ने छोड़ दिया और मनुष्यलोक में अभी तक पहुँचा नहीं है, तब तक उसका यह यात्राकाल है। इस यात्रा के दौरान उस जीव ने जिस प्रदेश की यात्रा की, वह भी उस का स्थान तो है ही।

---

१. (क) प्रमाणनयतत्त्वालोक (रत्नाकरावतारिका) परि. ४,
(ख) पण्णवणासुत्तं पद २ की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४७-४८

इसी स्थान को शास्त्रकार ने 'उपपातस्थान' कहा है। स्पष्ट है कि यह स्थान प्रासंगिक है, फिर भी अनिवार्य तो है ही।

* दूसरा प्रासंगिक स्थान है—'समुद्घात'। वेदना मृत्यु या विक्रिया आदि के विशिष्ट प्रसंगों पर जैनमतानुसार जीव के प्रदेशों का विस्तार होता है, जिसे जैन परिभाषा में 'समुद्घात' कहते हैं; जो कि अनेक प्रकार का है। समुद्घात के समय जीव के (आत्म-) प्रदेश शरीरस्थान में रहते हुए भी किसी न किसी स्थान में बाहर भी समुद्घातकाल पर्यन्त रहते हैं। अतः समुद्घात की अपेक्षा से जीव के इस प्रासंगिक या कादाचित्क निवासस्थान का विचार भी आवश्यक है। इसीलिए प्रस्तुत पद में नानाविध जीवों के विषय में स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घात-स्थान, यों तीन प्रकार के निवासस्थानों का विचार किया गया है। षट्खण्डागम में भी खेत्ताणुगमप्रकरण में स्वस्थान, उपपात और समुद्घात को लेकर स्थान—क्षेत्र का विचार किया गया है।[1]

* प्रस्तुत 'स्थानपद' में जीवों के जिन भेदों के स्थानों के विषय में विचार और क्रम बताया गया है, उस पर से मालूम होता है कि प्रथमपद में निर्दिष्ट जीवभेदों में से एकेन्द्रिय जैसे कई सामान्य भेदों का विचार नहीं किया गया, किन्तु 'पंचेन्द्रिय' जैसे सामान्य भेदों का विचार किया गया है। प्रथमपद-निर्दिष्ट सभी विशेष भेद-प्रभेदों के स्थानों का विचार प्रस्तुत पद में नहीं किया गया है, किन्तु मुख्य-मुख्य भेद-प्रभेदों के स्थानों का विचार किया गया है।

* अन्य सभी जीवों के भेद-प्रभेदों के स्थान के विषय में विचार करते समय पूर्वोक्त तीनों स्थानों का विचार किया गया है, परन्तु सिद्धों के विषय में केवल 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है। इसका कारण यह है कि सिद्धों का उपपात नहीं होता; क्योंकि अन्य जीवों को उस-उस जन्मस्थान को प्राप्त करने से पूर्व उस-उस नाम, गोत्र और आयु कर्म का उदय होता है, इस कारण वे नाम धारण करके, नया जन्म ग्रहण करने हेतु उस गति को प्राप्त करते हैं। सिद्धों के कर्मों का अभाव है, इस कारण सिद्ध रूप में उनका जन्म नहीं होता, किन्तु वे स्व (सिद्धि) स्थान की दृष्टि से स्वस्वरूप को प्राप्त करते हैं, वही उनका स्वस्थान है। मुक्त जीवों की लोकान्त-स्थान तक जो गति होती है, वह जैनमान्यतानुसार आकाश-प्रदेशों को स्पर्श करके नहीं होती, इसलिए मुक्त जीवों का गमन होते हुए भी आकाशप्रदेशों का स्पर्श न होने से उस-उस प्रदेश में सिद्धों का 'स्थान' होना नहीं कहलाता। इस दृष्टि से सिद्धों का उपपातस्थान नहीं होता। समुद्घातस्थान भी सिद्धों को नहीं होता, क्योंकि समुद्घात कर्मयुक्त जीवों के होता है, सिद्ध कर्मरहित हैं। इसलिए सिद्धों के विषय में 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है।

* 'एकेन्द्रिय जीव समग्र लोक में परिव्याप्त हैं' इस कथन का अर्थ केवल एक एकेन्द्रिय जीव से नहीं, अपितु समग्ररूप से—सामान्यरूप से एकेन्द्रिय जाति से है। तथा तीनों स्थानों का पृथक्-पृथक् कथन न करके तीनों स्थान समग्ररूप से समझना चाहिए। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव समग्र लोक में नहीं, किन्तु लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। सामान्य

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १., पृ. ४६ से ८०
(ख) पण्णवणासुत्तं पद दो की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४७-४८ (ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. २९९

पंचेन्द्रियों का स्थान भी लोक के असंख्यातवें भाग में है, किन्तु विशेषपंचेन्द्रिय के रूप में नारकों, तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों, मनुष्यों एवं देवों के पृथक्-पृथक् सूत्रों में उन-उनके स्थानों का पृथक्-पृथक् निर्देश है। सिद्ध लोक के अग्रभाग में हैं।[1]

* जीवभेदों के अनुसार स्थान-निर्देश इस क्रम से किया गया है—(१) पृथ्वीकायिक (बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त), (२) अप्कायिक (पूर्ववत्), (३) तेजस्कायिक (पूर्ववत्), (४) वायुकायिक (पूर्ववत्), (५) वनस्पतिकायिक (पूर्ववत्), (६) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय (पर्याप्त-अपर्याप्त), (७) पंचेन्द्रिय (सामान्य), (८) नारक (सामान्य, पर्याप्त-अपर्याप्त), (९) प्रथम से सप्तम नरक तक (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१०) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च (पूर्ववत्), (११) मनुष्य (पूर्ववत्), (१२) भवनवासी देव (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१३) असुरकुमार आदि दस भवनवासी (दाक्षिणात्य, औदीच्य, पर्याप्त-अपर्याप्त) (१४) व्यन्तर (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१५)पिशाचादि ८ व्यन्तर (दक्षिण-उत्तर के, पर्याप्त-अपर्याप्त), (१६) ज्योतिष्कदेव, (१७) वैमानिकदेव, (१८) सौधर्म से अच्युत तक, (पर्याप्त-अपर्याप्त) (१९) ग्रैवेयकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त) (२०) अनुत्त-रौपपातिकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त) और (२१) सिद्ध।[2]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ४६ से ८० तक
   (ख) पण्णवणासुत्तं पद दो की प्रस्तावना भा. २, पृ. ४९-५०
   (ग) उत्तराध्ययन अ. ३६, गा. 'सुहुमा सव्वलोगम्मि'

२. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) विषयानुक्रम, पृ. ३१

बिइयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण—

१४८. कहि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं अट्ठसु पुढवीसु । तं जहा—रयणप्पभाए १ सक्करप्पभाए २ वालुयप्पभाए ३ पंकप्पभाए ४ धूमप्पभाए ५ तमप्पभाए ६ तमतमप्पभाए ७ इसीपब्भाराए ८-१ ।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु णिरएसु निरयावलियासु निरयपत्थडेसु २ ।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३ ।

तिरियलोए टंकेसु कूडेसु सेलेसु सिहरीसु पब्भारेसु विजएसु वक्खारेसु वासेसु वासहरपव्वएसु वेलासु वेइयासु दारेसु तोरणेसु दीवेसु समुद्देसु (-४)ण्क[1] ।

एत्थ णं बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१४८ प्र.] भगवन् ! बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१४८ उ.] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से वे आठ पृथ्वियों में हैं । वे इस प्रकार—(१) रत्नप्रभा में, (२) शर्कराप्रभा में, (३) वालुकाप्रभा में, (४) पंकप्रभा में, (५) धूमप्रभा में, (६) तमःप्रभा में, (७) तमस्तमःप्रभा में और (८) ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में ।

१. अधोलोक में—पातालों में, भवनों में, भवनों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में, नरकों में, नरकावलियों में एवं नरक के प्रस्तटों (पाथड़ों) में ।

२. ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमानावलियों में और विमान के प्रस्तटों (पाथड़ों) में ।

३. तिर्यक्लोक में—टंकों में, कूटों में, शैलों में, शिखर वाले पर्वतों में, प्राग्भारों (कुछ झुके हुए पर्वतों) में, विजयों में, वक्षस्कार पर्वतों में, (भारतवर्ष आदि) वर्षों (क्षेत्रों) में, (हिमवान् आदि) वर्षधरपर्वतों में, वेलाओं (समुद्रतटवर्ती ज्वारभूमियों) में, वेदिकाओं में, द्वारों में, तोरणों में, द्वीपों में और समुद्रों में ।

इन (उपर्युक्त भूमियों) में बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

---

१. 'ण्क' चार संख्या का द्योतक है ।

१४९. कहि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता । तं जहा—उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१४९ प्र.] भगवन् ! बादरपृथ्वीकायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१४९ उ.] गौतम ! जहाँ बादरपृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं, वहीं बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे हैं । जैसे कि—उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक में, समुद्घात की अपेक्षा से समस्त लोक में तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

१५०. कहि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमपुढविकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

[१५० प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५० उ.] गौतम ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक, जो पर्याप्तक हैं और जो अपर्याप्तक हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, विशेषतारहित (सामान्य) हैं, नानात्व (अनेकत्व) से रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे समग्र लोक में परिव्याप्त कहे गए हैं ।

विवेचन—पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १४८ से १५० तक) में बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक सभी प्रकार के पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण किया गया है ।

'स्थान' की परिभाषा और प्रकार—जीव जहाँ-जहाँ रहते हैं, जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक जहाँ रहते हैं, उसे **'स्वस्थान'** कहते हैं, जहाँ एक भव से छूट कर दूसरे भव में जन्म लेने से पूर्व बीच में स्वस्थानाभिमुख होकर रहते हैं, उसे **'उपपातस्थान'** कहते हैं और समुद्घात करते समय जीव के प्रदेश जहाँ रहते हैं, जितने आकाशप्रदेश में रहते हैं, उसे **'समुद्घातस्थान'** कहते हैं ।

पृथ्वीकायिकों के तीनों लोकों में निवासस्थान कहाँ-कहाँ और कितने प्रदेश में ? शास्त्रकार ने पृथ्वीकायिकों (बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्तों) के स्वस्थान तीन दृष्टियों से बताए हैं—(१) सात नरक पृथ्वियों में और आठवीं ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में, तत्पश्चात् (२) अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक के विभिन्न स्थानों में, तथा (३) स्वस्थान में भी लोक के असंख्यातवें भाग में । इसके अतिरिक्त बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तक के उपपातस्थान क्रमशः लोक के असंख्यातवें भाग में तथा सर्वलोक में और समुद्घातस्थान पूर्वोक्त दोनों पृथ्वीकायिकों के क्रमशः लोक के असंख्यातवें भाग में तथा सर्वलोक में बताया गया है ।[१]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ६४
   (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, पद २ की प्रस्तावना

उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में—बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवों का जो स्वस्थान कहा गया है, उसकी प्राप्ति के अभिमुख होना उपपात है, उस उपपात को लेकर वे चतुर्दशरज्ज्वात्मक लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, क्योंकि उनका रत्नप्रभादि समुदित स्वस्थान भी लोक के असंख्यातवें भाग में है। पर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक थोड़े हैं, इसलिए उपपात के समय अपान्तरालगत होने पर भी वे सभी स्वस्थान लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, इस कथन में कोई दोष नहीं है।

समुद्घात की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग में—बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव समुद्घात-अवस्था में स्वस्थान के अतिरिक्त क्षेत्रान्तरवर्ती होने पर भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं, कारण यह है कि बादर पृथ्वीकायिकजीव सोपक्रम आयु वाले हों या निरुपक्रम आयु वाले, जब भुज्यमान आयु का तृतीय भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करके मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब उनके दण्डरूप में फैले हुए आत्मप्रदेश भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं, क्योंकि वे जीव थोड़े ही होते हैं। उन बादर पृथ्वीकायिकों की आयु अभी क्षीण नहीं हुई, इसलिए वे बादर पृथ्वीकायिक तब (समुद्घात-अवस्था में) भी पर्याप्तरूप में उपलब्ध होते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग में—स्वस्थान हैं—रत्नप्रभादि। वे सब मिल कर भी लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। जैसे कि—रत्नप्रभा पृथ्वी का पिण्ड एक लाख, अस्सी हजार योजन का है। इसी प्रकार अन्य पृथ्वियों की भिन्न-भिन्न मोटाई भी कह लेनी चाहिए। पातालकलश भी एक लाख योजन अवगाह वाले होते हैं। नरकावास भी तीन हजार योजन ऊँचे होते हैं। विमान भी बत्तीस सौ योजन विस्तृत होते हैं। अतएव ये सभी परिमित होने के कारण सब मिल कर भी असंख्यातप्रदेशात्मक लोक के असंख्यातवें भागवर्ती ही होते हैं।

अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक : उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से—दोनों अपेक्षाओं से ये समस्त लोक में रहते हैं। अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक उपपातावस्था में विग्रहगति (अपान्तराल गति) में होते हुए भी स्वस्थान में भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की आयु का वेदन विशिष्ट विपाकवश करते हैं तथा वे देवों व नारकों को छोड़कर शेष सभी कायों से उत्पन्न होते हैं, उद्वृत्त होने पर (मरने पर) भी वे देवों और नारकों को छोड़कर शेष सभी स्थानों में जाते हैं। मर कर स्वस्थान में जाते समय वे विग्रहगति में रहे हुए (उपपातावस्था में) भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक ही कहलाते हैं, ये स्वभाव से ही प्रचुरसंख्या में होते हैं, इसलिए उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोकव्यापी होते हैं। इनमें से किन्हीं का उपपात ऋजुगति से होता है, और किन्हीं का वक्रगति से। ऋजुगति तो सुप्रतीत है। वक्रगति की स्थापना इस प्रकार है—जिस समय में प्रथम वक्र (मोड़) को कई जीव संहरण करते हैं, उसी समय दूसरे जीव उस वक्रदेश को आपूरित कर देते हैं। इसी प्रकार द्वितीय वक्रदेश के संहरण में भी, वक्रोत्पत्ति में भी प्रवाह से निरन्तर आपूरण होता रहता है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तों और अपर्याप्तों के तीन स्थान—सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के जो पर्याप्त और अपर्याप्त जीव हैं, वे सभी एक ही प्रकार के हैं, पूर्वकृत स्थान आदि के विचार की अपेक्षा से इनमें कोई भेद नहीं होता, कोई विशेष नहीं होता, जैसे पर्याप्त हैं, वैसे ही दूसरे हैं तथा वे नानात्व से रहित हैं, देशभेद से उनमें नानात्व परिलक्षित नहीं होता। तात्पर्य यह है कि जिन आधारभूत

आकाशप्रदेशों में ये (एक) हैं, उन्हीं में दूसरे हैं। अतः वे सभी सूक्ष्म पृथ्वीकायिक उपपात, समुद्घात और स्वस्थान, इन तीनों अपेक्षाओं से सर्वलोकव्यापी हैं।[1]

कठिन शब्दों के विशेष अर्थ—'भवणेसु'=भवनपतियों के रहने के भवनों में, 'भवन-पत्थडेसु'=भवनों के प्रस्तटों यानी भवनभूमिकाओं में (भवनों के बीच के भागों—अन्तरालों में)। 'णिरएसु निरयावलिकासु'—नरकों (प्रकीर्णक नरकावासों) में, तथा आवली रूप से स्थित नरकवासों में। 'कप्पेसु'=कल्पों—सौधर्मादि वारह देवलोकों में। 'विमाणेसु'—ग्रैवेयकसम्वन्धी प्रकीर्णक विमानों में। 'टंकेसु'=छिन्न टंकों (एक भाग कटे हुए पर्वतों) में। 'कूटेसु'=कूटों—पर्वत के शिखरों में। 'सेलेसु'=शैलों—शिखरहीन पर्वतों में। 'विजयेसु'=विजयों—कच्छादि विजयों में। 'वक्खारेसु'= विद्युत्प्रभ आदि वक्षस्कार पर्वतों में। 'वेलासु'=समुद्रादि के जल की तटवर्ती रमणभूमियों में। 'वेदिकासु'=जम्वूद्वीप की जगती आदि से सम्वन्धित वेदिकाओं में। 'तोरणेसु'=विजय आदि द्वारों में, द्वारादि सम्वन्धी तोरणों में। 'दीवेसु समुद्देसुण्क'=समस्त द्वीपों और समस्त समुद्रों में। यहाँ 'ण्क' शव्द 'चार' संख्या का द्योतक है, ऐसा किन्हीं विद्वानों का अभिप्राय है।[2]

अप्कायिकों के स्थानों का निरूपण—

१५१. कहि णं भंते ! बादरआउकाइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदधीसु सत्तसु घणोदधिवलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु विलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ४।

एत्थ णं वादरआउक्काइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१५१ प्र.] भगवन् ! वादर अप्कायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१५१ उ.] गौतम ! (१) स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदधियों में और सात घनोदधि-वलयों में उनके स्थान हैं।

२—अधोलोक में—पातालों में, भवनों में तथा भवनों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में हैं।

३—ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, विमानावलियों (आवलीवद्ध विमानों) में, विमानों के प्रस्तटों (मध्यवर्ती स्थानों) में हैं।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७३-७४

२. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७३

(ख) पण्णवणासुत्तं मूलपाठ-टिप्पण पृ. ४६

४—तिर्यग्लोक में—अवटों (कुओं) में, तालाबों में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों (चौकोर बावड़ियों), पुष्करिणियों (गोलाकार बावड़ियों या पुष्कर=कमल वाली बावड़ियों) में, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों, सरल-छोटी नदियों) में, गुंजालिकाओं (टेढ़ीमेढ़ी बावड़ियों) में, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों में, सर:सर:पंक्तियों (नाली द्वारा जिनमें कुंए का जल बहता है, ऐसे पंक्तिबद्ध तालाबों में), बिलों में (स्वाभाविक बनी हुई छोटी कुइओं में), पंक्तिबद्ध बिलों में, उज्झरों में (पर्वतीय जलस्रोतों में), निर्झरों (झरनों) में, गड्ढों में, पोखरों में, वप्रों (क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में तथा समस्त जलाशयों में और जलस्थानों में (इनके स्थान) हैं।

इन (पूर्वोक्त) स्थानों में बादर-अप्कायिकों के पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१५२. कहि णं भंते ! बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरआउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरआउक्काइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१५२ प्र.] भगवन् ! बादर-अप्कायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५२ उ.] गौतम ! जहाँ बादर-अप्कायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं, वहीं बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक में, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१५३. कहि णं भंते ! सुहुमआउक्काइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमआउक्काइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पन्नत्ता समणाउसो !

[१५३ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म-अप्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१५३ प्र.] गौतम ! सूक्ष्म-अप्कायिकों के जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक हैं, वे सभी एक प्रकार के हैं, अविशेष (विशेषतारहित—सामान्य या भेदरहित) हैं, नानात्व से रहित हैं, और आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए हैं।

विवेचन—अप्कायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५१ से १५३ तक) में बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक अप्कायिकों के स्वस्थान, उपपात और समुद्घात, इन तीनों अपेक्षाओं से स्थानों का निरूपण किया गया है।

'घणोदधिवलएसु' इत्यादि शब्दों की व्याख्या—'घणोदधिवलएसु'=स्व-स्वपृथ्वी-पर्यन्त प्रदेश को वेष्टित करने वाले वलयाकारों में। 'पायालेसु'=वलयामुख आदि पातालकलशों में। क्योंकि उनमें भी दूसरे में देशत: त्रिभाग में और तीसरे में त्रिभाग में सर्वात्मना जल का सद्भाव रहता है।

'भवणेसु कप्पेसु विमाणेसु' = भवनपतियों के भवनों में, कल्पों—देवलोकों में, तथा विमानों– सौधर्मादि-कल्पगत विमानों में, तथा इसके प्रस्तटों एवं विमानावलियों में जल बावडी आदि में होता है। ग्रैवेयक आदि विमानों में वावड़ियां नहीं होतीं, अतः वहाँ जल नहीं होता।[1]

तेजस्कायिकों के स्थानों का निरूपण—

१५४. कहि णं भंते ! वादरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं अंतोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्मभूमीसु, वाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु ।

एत्थ णं वादरतेउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं[2] लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१५४ प्र.] भगवन् ! वादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५४ उ.] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से—मनुष्यक्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीप-समुद्रों में, निर्व्याघात (विना व्याघात) से पन्द्रह कर्मभूमियों में, व्याघात की अपेक्षा से– पांच महाविदेहों में (इनके स्थान हैं।)

इन (उपर्युक्त) स्थानों में वादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (वे) होते हैं।

१५५. कहि णं भंते ! वादरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव वादरतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव वादरतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ।

उववाएणं लोयस्स दोसु उड्ढकवाडेसु[3] तिरियलोयतट्टे य, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१५५ प्र.] भगवन् ! वादर तेजस्कायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५५ उ.] गौतम ! जहाँ वादर तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों के स्थान हैं वहीं वादर तेजस्कायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों में तथा तिर्यग्लोक के तट्ट (स्थालरूप

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७४-७५

२. पाठान्तर—तीसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे

३. पाठान्तर—दोसुद्धक्क

स्थान) में एवं समुद्घात की अपेक्षा से—सर्वलोक में तथा स्वस्थान को अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१५६. कहि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमतेउकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[१५६ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५६ उ.] गौतम ! सूक्ष्म तेजस्कायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, अविशेष हैं, (उनमें विशेषता या भिन्नता नहीं है) उनमें नानात्व नहीं है, हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए हैं।

विवेचन—तेजस्कायिक के स्थान का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५४ से १५६ तक) में बादर-सूक्ष्म के पर्याप्त एवं अपर्याप्त तेजस्कायिकों के स्वस्थान, उपपातस्थान एवं समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकों के स्थान—स्वस्थान की अपेक्षा से—वे मनुष्यक्षेत्र के अन्दर-अन्दर हैं। अर्थात्—मनुष्यक्षेत्र के अन्तर्गत ढाई द्वीपों एवं दो समुद्रों में हैं। व्याघाताभाव से वे पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह इन पन्द्रह कर्मभूमियों में होते हैं; और व्याघात होने पर पांच महाविदेह क्षेत्रों में होते हैं। तात्पर्य यह है कि अत्यन्तस्निग्ध या अत्यन्तरूक्ष काल व्याघात कहलाता है। इस प्रकार के व्याघात के होने पर अग्नि का विच्छेद हो जाता है। जब पांच भरत पांच ऐरवत क्षेत्रों में सुषम-सुषम, सुषम, तथा सुषम-दुष्षम आरा प्रवृत्त होता है, तब वह अतिस्निग्ध काल कहलाता है। उधर दुष्षम-दुष्षम आरा अतिरूक्ष काल कहलाता है। ये दोनों प्रकार के काल हों तो व्याघात—अग्निविच्छेद होता है। अगर ऐसी व्याघात की स्थिति हो तो पंचमहाविदेह क्षेत्रों में ही बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते हैं। अगर इस प्रकार के व्याघात से रहित काल हो तो पन्द्रह ही कर्मभूमिक क्षेत्रों में बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते हैं।

विग्रहगति में यथोक्त स्वस्थान-प्राप्ति के अभिमुख—उपपात अवस्था में स्थान का विचार करने पर ये लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं, क्योंकि उपपात के समय वे बहुत थोड़े होते हैं। समुद्घात की अपेक्षा से विचार करें तो मारणान्तिक समुद्घातवश दण्डरूप में आत्म-प्रदेशों को फैलाने पर भी वे थोड़े होने से लोक के असंख्यातवें भाग में ही समा जाते हैं। स्वस्थान की अपेक्षा से भी वे लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं। क्योंकि मनुष्यक्षेत्र कुल ४५ लाख योजनप्रमाण लम्बा-चौड़ा है, जो कि लोक का असंख्यातवां भागमात्र है।[1]

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकों के स्थान—पर्याप्तकों के आश्रय से ही अपर्याप्त जीव रहते हैं, इस दृष्टि से जहाँ पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं अपर्याप्तकों के हैं। उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों में तथा तिर्यग्लोकतट्ट में बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक रहते हैं। आशय यह है

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७५

कि अढाई द्वीप-समुद्रों से निकले हुए, अढाई द्वीप-समुद्रप्रमाण विस्तृत एवं पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त जो दो कपाट हैं, वे केवलिसमुद्‌घातसमय के कपाट की तरह ऊपर भी लोक के अन्त को स्पृष्ट (छुए हुए) हैं और नीचे भी लोकान्त को स्पृष्ट (छुए हुए) हैं, ये ही **'दो ऊर्ध्वकपाट'** कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त तट्ट का अर्थ है—स्थाल (थाल)। अर्थात्—स्थालसदृश तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) कहलाता है। आशय यह है कि स्वयम्भूरमणसमुद्र की वेदिकापर्यन्त अठारह सौ योजन मोटा समस्त तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) है।

निष्कर्ष यह है कि उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटों एवं तिर्यग्लोकरूप तट्ट में बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीवों के स्थान हैं।

'लोयस्स दोसुद्धकवाडेसु तिरियलोयतट्ठे' इस पाठान्तर के अनुसार यह अर्थ भी हो सकता है—लोक के उन दोनों ऊर्ध्वकपाटों में जो स्थित हो, वह तट्ठ—'तत्स्थ'। इस प्रकार—तिर्यग्लोक रूप तत्स्थ में—अर्थात्—उन दो ऊर्ध्वकपाटों के अंदर स्थित तिर्यग्लोक में वे होते हैं। निष्कर्ष यह हुआ कि पूर्वोक्त दोनों ऊर्ध्वकपाटों में और तिर्यग्लोक में भी (स्थित) उन्हीं कपाटों में अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकजीवों का उपपातस्थान है, अन्यत्र नहीं।

अभिमुखनामगोत्र अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक का प्रस्तुत अधिकार—यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक तीन प्रकार के होते हैं—

(१) एकभविक, (२) बद्धायुष्क और (३) अभिमुखनामगोत्र। जो जीव एक विवक्षित भव के अनन्तर आगामी भव में बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकरूप में उत्पन्न होंगे वे एकभविक कहलाते हैं, जो जीव पूर्वभव की आयु का त्रिभाग आदि समय शेष रहते बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु बांध चुके हैं, वे बद्धायुष्क कहलाते हैं और जो पूर्वभव को छोड़ने के पश्चात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु, नाम और गोत्र का साक्षात् वेदन (अनुभव) कर रहे हैं, अर्थात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक-पर्याय का अनुभव कर रहे हैं, वे **'अभिमुखनामगोत्र'** कहलाते हैं। इन तीन प्रकार के बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों में से प्रथम के दो—एकभविक और बद्धायुष्क—द्रव्यनिक्षेप से ही बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक हैं, भावनिक्षेप से नहीं, क्योंकि ये दोनों उस समय आयु, नाम और गोत्र का वेदन नहीं करते; अतएव यहाँ इन दोनों का अधिकार नहीं है, किन्तु यहाँ केवल अभिमुख-नामगोत्र बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिकों का ही अधिकार समझना चाहिए; क्योंकि वे ही स्वस्थान-प्राप्ति के आभिमुख्यरूप उपपात को प्राप्त करते हैं। यद्यपि ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से वे भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक के आयुष्य, नाम एवं गोत्र का वेदन करने के कारण पूर्वोक्त कपाटयुगल-तिर्यग्लोक के बाहर स्थित होते हुए भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को प्राप्त कर लेते हैं, तथापि यहाँ व्यवहारनय की दृष्टि को स्वीकार करने के कारण जो स्वस्थान में समश्रेणिक कपाट-युगल में स्थित हैं, और जो स्वस्थान से अनुगत तिर्यग्लोक में प्रविष्ट हैं, उन्हीं को बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम से कहा जाता है; शेष जो कपाटों के अन्तराल में स्थित हैं, उनका नहीं, क्योंकि वे विषमस्थानवर्ती हैं। इस प्रकार जो अभी तक उक्त कपाटयुगल में प्रवेश नहीं करते और न तिर्यग्लोक में प्रविष्ट होते हैं, वे अभी पूर्वभव में ही स्थित हैं, अतएव उनकी गणना बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों में नहीं की जाती। कहा भी है—

पणयाललक्खपिहुला दुन्नि कवाडा य छद्दिसिं पुट्ठा।
लोगंते तेसिंऽतो जे तेऊ ते उ घिप्पंति॥

अर्थात्—पैंतालीस लाख योजन चौड़े दो कपाट हैं, जो छहों दिशाओं में लोकान्त का स्पर्श करते हैं। उनके अन्दर-अन्दर जो तेजस्कायिक हैं, उन्हीं का यहाँ ग्रहण किया जाता हैं।

इसकी स्थापना (आकृति) इस प्रकार है—

अतः इस सूत्र की व्याख्या व्यवहारनय की दृष्टि से की गई है।
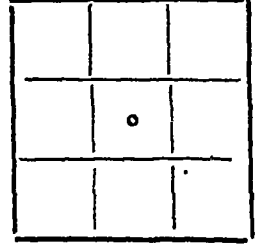
समुद्घात की अपेक्षा से बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों का स्थान—समुद्घात की दृष्टि से ये सर्वलोक में होते हैं। इसका आशय यों समझना चाहिए—पूर्वोक्तस्वरूप वाले दोनों कपाटों के मध्य (अपान्तरालों) में जो सूक्ष्मपृथ्वीकायिकादि जीव हैं, वे बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकों में उत्पन्न होते हुए मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उस समय वे विस्तार और मोटाई में शरीरप्रमाण और लम्बाई में उत्कृष्टतः लोकान्त तक अपने आत्मप्रदेशों को बाहर फैलाते हैं। जैसा कि अवगाहनासंस्थानपद में आगे कहा जाएगा—

*[प्र.] भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात किये हुए पृथ्वीकायिक के तैजसशरीर की शारीरिक अवगाहना कितनी बड़ी होती है?

[उ.] गौतम! (उन की शरीरावगाहना) विस्तार और मोटाई की अपेक्षा से शरीरप्रमाण होती है, और लम्बाई की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट लोकान्तप्रमाण होती है।

उसके पश्चात् वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि अपने उत्पत्तिदेश तक दण्डरूप में आत्मप्रदेशों को फैलाते हैं और अपान्तरालगति (विग्रहगति) में वर्तमान होते हुए वे बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक की आयु का वेदन करने के कारण बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को धारण करते हैं। वे समुद्घात अवस्था में ही विग्रहगति में विद्यमान होते हैं तथा समुद्घात-गत जीव समस्त लोक को व्याप्त करते हैं। इस दृष्टि से समुद्घात की अपेक्षा से इन्हें सर्वलोकव्यापी कहा गया है।

दूसरे आचार्यों का कहना है—बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक जीव संख्या में बहुत-अधिक होते हैं; क्योंकि एक-एक पर्याप्त के आश्रय से असंख्यात अपर्याप्तों की उत्पत्ति होती है। वे सूक्ष्मों में भी उत्पन्न होते हैं और सूक्ष्म तो सर्वत्र विद्यमान हैं। इसलिए बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक अपने-अपने भव के अन्त में मारणान्तिक समुद्घात करते हुए समस्त लोक को आपूरित करते हैं। इसलिए इन्हें समग्र की दृष्टि से, समुद्घात की अपेक्षा सकललोकव्यापी कहने में कोई दोष नहीं है।[1]

स्वस्थान की अपेक्षा से बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक—लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, क्योंकि पर्याप्तों के आश्रय से अपर्याप्तों की उत्पत्ति होती है। पर्याप्तों का स्थान मनुष्यक्षेत्र है, जो कि सम्पूर्ण लोक का असंख्यातवां भागमात्र है। इसलिए इन्हें लोक के असंख्यातवें भाग में कहना उचित ही है।

---

* **'पुढवीकाइयस्स णं भंते! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा प.?' 'गोयमा! सरीरपमाणमेत्तविक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागे, उक्कोसेणं लोगंतो।'**

—प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक ७६ में उद्धृत

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक ७५ से ७७ तक

वायुकायिकों के स्थानों का निरूपण—

१५७. कहि णं भंते ! बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणवाएसु सत्तसु घणवायवलएसु सत्तसु तणुवाएसु सत्तसु तणुवायवलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु भवणछिद्देसु भवणणिक्खुडेसु निरएसु निरयावलियासु णिरयपत्थडेसु णिरयछिद्देसु णिरयणिक्खुडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेस विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु विमाणछिद्देसु विमाणणिक्खुडेसु ३।

तिरियलोए पाईण-पडीण-दाहिण-उदीण सव्वेसु चेव लोगागासछिद्देसु लोगनिक्खुडेसु य ४।

एत्थ णं बायरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु ।

[१५७ प्र.] भगवन् ! बादर वायुकायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१७५ उ.] १—गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से सात घनवातों में, सात घनवातवलयों में, सात तनुवातों में और सात तनुवातवलयों में (वे होते हैं ।)

२. अधोलोक में—पातालों में, भवनों में, भवनों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में, भवनों के छिद्रों में, भवनों के निष्कुट प्रदेशों में नरकों में, नरकावलियों में, नरकों के प्रस्तटों में, छिद्रों में और नरकों के निष्कुट-प्रदेशों में (वे हैं ।)

३. ऊर्ध्वलोक में—(वे) कल्पों में, विमानों में, आवली (पंक्ति) बद्ध विमानों में, विमानों के प्रस्तटों (पाथड़ों—बीच के भागों) में, विमानों के छिद्रों में, विमानों के निष्कुट-प्रदेशों में (हैं ।)

४. तिर्यग्लोक में—(वे) पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में समस्त लोकाकाश के छिद्रों में, तथा लोक के निष्कुट-प्रदेशों में, इन (पूर्वोक्त सभी स्थलों) में बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीव के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असंख्येयभागों में, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्येयभागों में, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्येयभागों में (बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान हैं ।

१५८. कहि णं भंते अपज्जत्तबादरवाउकाइयाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवाउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरवाउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु ।

[१५८ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त-बादर-वायुकायिकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१५८ उ.] गौतम ! जहाँ बादर-वायुकायिक-पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यात भागों में हैं ।

१५९. कहि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सुहुमवाउकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[१५९ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मवायुकायिकों के पर्याप्तों और अपर्याप्तों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५९ उ.] गौतम ! सूक्ष्मवायुकायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, अविशेष (विशेषता या भेद से रहित) हैं, नानात्व से रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक में परिव्याप्त हैं ।

विवेचन—वायुकायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५७ से १५९ तक) में वायुकायिक जीवों के बादर, सूक्ष्म और उनके पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों के स्थानों का निरूपण तीनों अपेक्षाओं से किया गया है ।

'भवणछिद्देसु' 'भवणणिक्खुडेसु' आदि पदों के विशेषार्थ—भवणछिद्देसु=भवनपतिदेवों के भवनों के छिद्रों—अवकाशान्तरों में । **"भवणणिक्खुडेसु'**=भवनों के निष्कुटों अर्थात् गवाक्ष आदि के समान भवनप्रदेशों में । **णिरयणिक्खुडेसु**=नरकों के निष्कुटों यानी गवाक्ष आदि के समान नरकावास प्रदेशों में ।[1]

पर्याप्त बादरवायुकायिक : उपपात आदि तीनों की अपेक्षा से—ये तीनों की अपेक्षा से लोक के असंख्यात भागों में हैं; क्योंकि जहाँ भी खाली जगह है—पोल है, वहाँ वायु बहती है । लोक में खाली जगह (पोल) बहुत है । इसलिए पर्याप्त वायुकायिक जीव बहुत अधिक हैं । इस कारण उपपात, समुद्घात और स्वस्थान इन तीनों अपेक्षाओं से बादर पर्याप्तवायुकायिक लोक के असंख्येय भागों में कहे हैं ।

अपर्याप्त बादरवायुकायिकों के स्थान—उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से अपर्याप्त बादरवायुकायिक जीव सर्वलोक में व्याप्त हैं; क्योंकि देवों और नारकों को छोड़ कर शेष सभी कायों से जीव बादर अपर्याप्तवायुकायिकों में उत्पन्न होते हैं । विग्रहगति में भी बादर अपर्याप्तवायुकायिक पाए जाते हैं तथा उनके बहुत-से स्वस्थान हैं । अतएव व्यवहारनय की दृष्टि से भी उपपात को लेकर बादरप र्याप्त-अपर्याप्तवायुकायिकों की सकललोकव्यापिता में कोई बाधा नहीं है । समुद्घात की अपेक्षा से उनकी समग्रलोकव्यापिता प्रसिद्ध ही है; क्योंकि समस्त सूक्ष्म जीवों में और लोक में सर्वत्र वे उत्पन्न हो सकते हैं । स्वस्थान की अपेक्षा से बादर-अपर्याप्तवायुकायिकजीव लोक के असंख्येय-भागों में होते हैं, यह पहले बतलाया जा चुका है ।[2]

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक ७८

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्रांक ७८

वनस्पतिकायिकों के स्थानों का निरूपण—

१६०. कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदहिवलएसु १ ।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २ ।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३ ।

तिरियलोए अगडेसु तडागेसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ४ ।

एत्थ णं बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६० प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६० उ.] गौतम ! १—स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदधियों में और सात घनोदधिवलयों में (हैं ।)

२—अधोलोक में—पातालों में, भवनों में और भवनों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में (हैं ।)

३—ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, आवलिकाबद्ध विमानों में और विमानों के प्रस्तटों (पाथड़ों) में (वे हैं ।)

४—तिर्यग्लोक में—कुंओं में, तालाबों में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों (चौरस बावड़ियों) में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं (वक्र—टेढ़ीमेढ़ी बावड़ियों) में, सरोवरों में, पंक्तिबद्धसरोवरों में, सर-सर-पंक्तियों में, बिलों (स्वाभाविकरूप से बनी हुई कुइयों) में, पंक्तिबद्ध बिलों में, उज्झरों (पर्वतीयजल के अस्थायी प्रवाहों) में, निर्झरों (झरनों) में, तलैयों में, पोखरों में, क्षेत्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा जल के स्थानों में; इन (सभी स्थलों) में बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (ये) सर्वलोक में है, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में हैं और स्वस्थान की अपेक्षा से (ये) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

१६१. कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६१ प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६१ उ.] गौतम ! जहाँ बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (भी) सर्वलोक में हैं; (किन्तु) स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

१६२. कहि णं भंते ! सुहुमवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमवणस्सइकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[१६२ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिकों के पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६२ उ.] गौतम ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, विशेषता से रहित हैं, नानात्व से भी रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक में व्याप्त कहे गए हैं।

विवेचन—वनस्पतिकायिकों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रों में बादर-सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के पर्याप्तक-अपर्याप्तक-भेदों के स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है।

पर्याप्त-बादरवनस्पतिकायिकों के स्थान—जहाँ जल होता है, वहाँ वनस्पति अवश्य होती है, इस दृष्टि से समस्त जलस्थानों में पर्याप्त बादरवनस्पतिकायिक जीव होते हैं। उपपात की अपेक्षा से वे सर्वलोक में हैं, क्योंकि उनके स्वस्थान घनोदधि आदि हैं, उनमें शैवाल आदि बादरनिगोद के जीव होते हैं। सूक्ष्मनिगोद जीवों की भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है, तत्पश्चात् वे बादर पर्याप्त-निगोदों में उत्पन्न होकर बादर निगोदपर्याप्त की आयु का वेदन करते हुए सुविशुद्ध ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक नाम पा लेते हैं; उपपात की अपेक्षा से (वे) समस्त काल और समस्त लोक को व्याप्त कर लेते हैं।

समुद्घात की अपेक्षा से भी वे सर्वलोक में व्याप्त हैं; क्योंकि जब बादरनिगोद सूक्ष्मनिगोद-सम्बन्धी आयु का बन्ध करके और आयु के अन्त में मारणान्तिकसमुद्घात करके आत्मप्रदेशों को उत्पत्तिदेश तक फैलाते हैं, तब तक उनकी पर्याप्तबादरनिगोद की आयु क्षीण नहीं होती। अतएव वे उस समय भी बादर पर्याप्तनिगोद ही रहते हैं और समुद्घातावस्था में वे समस्तलोक में व्याप्त होते हैं। इस दृष्टि से कहा गया है कि बादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में व्याप्त होते हैं।

स्वस्थान की अपेक्षा से वे लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, क्योंकि घनोदधि आदि पूर्वोक्त सभी स्थान मिल कर भी लोक के असंख्यातवें भागमात्र में ही हैं।[1]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७८

द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-सामान्य पंचेन्द्रियों के स्थानों की प्ररूपणा—

१६३. कहि णं भंते ! बेइंदियाणं पज्जत्तगाऽपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभागे १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं बेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६३ प्र.] ! भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ(-कहाँ)कहे गए हैं ?

[१६३ उ.] गौतम ! १. ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (वे) होते हैं, २. अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में–कुंओं में, तालावों में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों (वावड़ियों) में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरोवरों में, पंक्तिवद्ध सरोवरों में, सर-सर-पंक्तियों में, बिलों में, पंक्तिवद्ध बिलों में, पर्वतीय जलप्रवाहों में, निर्झरों में, तलैयों में, पोखरों में, वप्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा समस्त जलस्थानों में द्वीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं ।

१६४. कहि णं भंते ! तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २. तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६४ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ(-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६४ उ.] गौतम ! १. ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), २. अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में—कुंओं में, तालावों में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों में, पंक्तिवद्ध सरोवरों में, सर-सर-पंक्तियों में, बिलों में, बिलपंक्तियों में, पर्वतीय जलप्रवाहों में, निर्झरों में, तलैयों (छोटे गड्ढों) में, पोखरों में, वप्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा समस्त जलस्थानों में, इन (सभी स्थानों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

१६५. कहि णं भंते ! चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३।

एत्थ णं चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६५ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६५ उ.] गौतम ! १. (वे) उर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), २. अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), ३. तिर्यग्लोक में—कूपों में, तालाबों में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरोवरों में, पंक्तिवद्ध सरोवरों में, सर-सरपंक्तियों में, बिलों में, पंक्तिवद्ध बिलों में, पर्वतीय जलस्रोतों में, झरनों में, छोटे गड्ढों में, पोखरों में, वप्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और समस्त जलाशयों में तथा सभी जलस्थानों में (होते हैं।) इन (पूर्वोक्त सभी स्थलों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं)।

१६६. कहि णं भंते ! पंचिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६६ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६६ उ.] गौतम ! १. (वे) ऊर्ध्वलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), अधोलोक में—उसके एकदेशभाग में (होते हैं), और ३. तिर्यग्लोक में—कुंओं में, तालावों में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरोवरों में, सरोवर-पंक्तियों में, सर-सरपंक्तियों में, विलों में, विलपंक्तियों में, पर्वतीय जलप्रवाहों में, झरनों में, छोटे गड्ढों में, पोखरों में, वप्रों में, द्वीपों में, समुद्रों में, और सभी जलाशयों तथा समस्त जलस्थानों में (होते हैं)। इन (सभी उपर्युक्त स्थलों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रियों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं) और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं)।

विवेचन—द्वि-त्रि-चतुः-पंचेन्द्रिय जीवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. १६३ से १६६ तक) में क्रमशः द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पंचेन्द्रिय जीवों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थानों की प्ररूपणा की गई है।

द्वीन्द्रियादि जीवों के तीनों लोकों की दृष्टि से स्वस्थान—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पंचेन्द्रिय, इन चारों के सूत्रपाठ एक समान हैं। ये सभी ऊर्ध्वलोक में उसके एकदेशभाग में—अर्थात्—मेरुपर्वत आदि की वापी आदि में होते हैं। अधोलोक में भी उसके एकदेशभाग में, अर्थात्—अधोलौकिक वापी, कूप तालाब आदि में होते हैं तथा तिर्यग्लोक में भी कूप, तड़ाग, नदी आदि में होते हैं।

तथा पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार उपपात, समुद्घात एवं स्वस्थान की अपेक्षा से द्वीन्द्रिय से सामान्य पंचेन्द्रिय तक के जीव लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।[1]

नैरयिकों के स्थानों की प्ररूपणा—

१६७. कहि णं भंते ! नेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! नेरइया परिवसंति ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं सत्तसु पुढवीसु। तं जहा—रयणप्पभाए सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए पंकप्पभाए धूमप्पभाए तमप्पभाए तमतमप्पभाए, एत्थ णं णेरइयाणं चउरासीति णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्त-जोइसपहा मेद-वसा-पूय-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा; काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं णेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ७९

एत्थ णं बहवे णेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो ! ।

ते णं तत्थ णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१६७ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के स्थान कहाँ, किस और कितने, तथा कैसे प्रदेश में कहे गए हैं ? नैरयिक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६७ उ.] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) सात (नरक-) पृथ्वियों में रहते हैं । तथा इस प्रकार हैं—(१) रत्नप्रभा में, (२) शर्कराप्रभा में, (३) वालुकाप्रभा में, (४) पंकप्रभा में, (५) धूमप्रभा में, (६) तमःप्रभा में और (७) तमस्तमःप्रभा में । इन (सातों नरक-पृथ्वियों) में चौरासी लाख नरकावास होते हैं, वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल और वाहर से चोकौर (होते हैं ।), नीचे से छुरे के आकार (संस्थान) से युक्त (संस्थित) हैं । सतत अन्धकार होने से वे गाढ़ अंधकार (से ग्रस्त होते हैं ।) (वे नारकावास) ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं । उनके तलभाग (फर्श) मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर (रक्त) और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त, अशुचि (गंदे), बीभत्स (घिनौने), अत्यन्त दुर्गन्धित, (धधकती) कापोत वर्ण की अग्नि जैसे रंग के, कठोरस्पर्श वाले, दुःसह एवं अशुभ नरक हैं । नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं । इन (ऐसे अशुभ नरकावासों) में पर्याप्त-अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असंख्यातवें भाग में, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में, इनमें (पूर्वोक्त नरकावासों में) बहुत-से नैरयिक निवास करते हैं । हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (नारक) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयानक), उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण (रंग) से अतीव काले कहे गए हैं ।

वे (वहाँ) नित्य भीत (डरते), सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरों से परस्पर) त्रासित (त्रास पहुँचाए हुए), सदैव उद्विग्न (घबराए हुए) तथा नित्य अत्यन्त अशुभ, अपने नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते हैं ।

१६८. कहि णं भंते ! रयणप्पभापुढविणेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

कहि णं भंते ! रयणप्पभापुढविणेरइया परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं रयणप्पभापुढविनेरइयाणं तीसं णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं ।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगय-गह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसप्पभा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं रयणप्पभापुढविणेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घातेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

एत्थ णं बहवे रयणप्पभापुढविनेरइया परिवसंति, काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१६८ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६८ उ.] गौतम ! इस एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर, तथा नीचे एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (जगह) में, रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावास होते हैं, ऐसा कहा गया है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (संस्थित) हैं, वे नित्य घने अंधकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग मेद, चर्वी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं। (अतएव) अशुचि (अपवित्र—गंदे), बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धित, कापोतरंग की अग्नि के वर्ण-सदृश, कर्कश स्पर्श वाले, दुःसह तथा अशुभ नरक हैं। नरकों में अशुभ वेदनाएँ हैं। इनमें रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

यहाँ रत्नप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते हैं। (वे) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयंकर), उत्कट त्रासजनक और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए हैं।

वे (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरों द्वारा एवं परस्पर) त्रासित (त्रास पहुँचाए हुए), नित्य उद्विग्न (घबराये हुए), तथा सदैव अत्यन्त अशुभ (स्व-)सम्बद्ध (लगातार) नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते हैं।

१६९. कहि णं भंते ! सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

कहि णं भंते ! सक्करप्पभापुढविनेरइया परिवसंति ?

गोयमा ! सक्करप्पभाए पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयण-सहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे तीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं सक्करप्पभापुढविणेरइयाणं पणवीसं णिरयावासतसहस्सा हवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

तत्थ णं बहवे सक्करप्पभापुढविणेरइया परिवसंति, काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१६९ प्र.] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६९ उ.] गौतम ! एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर तथा नीचे भी एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य में एक लाख, तीस हजार योजन (जगह) में, शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के पच्चीस लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (संस्थित) हैं । वे नित्य घने अन्धकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं । उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं । (अतएव वे) अशुचि, बीभत्स (घृणास्पद) हैं, अथवा अपक्व गन्ध वाले हैं, घोर दुर्गन्ध से युक्त हैं, कापोत अग्नि के वर्ण-सदृश (धोंकी जाती हुई लोहाग्नि के समान नीली आभा वाले) हैं; उनका स्पर्श बड़ा कठोर होता है, (अतएव वे) नरक दुःसह और अशुभ हैं । नरकों की वेदनाएँ अशुभ हैं । इन (पूर्वोक्त नरकावासों) में शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के (स्व-) स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

उनमें बहुत-से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं । (वे) काले, काली आभा वाले, अत्यन्त गम्भीर रोमाञ्चयुक्त, भयंकर, उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए हैं ।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (नारक) वहाँ नित्य भयभीत, नित्य त्रस्त, तथा (परमाधार्मिकों द्वारा) सदैव त्रासित, सदा उद्विग्न (घबराए हुए) और नित्य अत्यन्त अशुभ तत्सम्बद्ध नरक के भय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं ।

१७०. कहि णं भंते ! वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं

ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं वालुयप्पभा-पुढविनेरइयाणं पण्णरस णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं ।

ते णं णरगा अंतो वट्टा वाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरएसु वेदणाओ, एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे ।

तत्थ णं वहवे वालुयप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो ! ।

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिता णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संवद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१७० प्र.] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहां कहे गए हैं ?

[१७० उ.] गौतम ! एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन (पार) करके अर्थात् नीचे, और नीचे से एक हजार योजन छोड़ कर वीच में एक लाख छव्वीस हजार योजन प्रदेश में, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के पन्द्रह लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा है ।

वे नरक अन्दर से गोल, वाहर से चौरस और नीचे से छुरे के आकार से युक्त, नित्य गाढ़ अन्धकार से व्याप्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं । उनके तलभाग मेद, चर्वी, मवाद-पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं; अतएव वे अशुचि (अपवित्र), वीभत्स, अतीव दुर्गन्धित, कापोत रंग की धधकती अग्नि के वर्णसदृश, दुःसह एवं अशुभ नरक हैं । उन नरकों में वेदनाएँ अशुभ हैं । इन (ऐसे नारकावासों) में वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं) ।

जिनमें वहुत-से वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे काले, काली आभा वाले गम्भीर-लोमहर्षक, भीम, उत्कृष्ट त्रासजनक, वर्ण से अत्यन्त कृष्ण कहे हैं ।

वे नारक (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरों द्वारा) त्रास पहुँचाये हुए, नित्य उद्विग्न और सदैव परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं ।

ते णं मिग १-महिस २-वराह ३-सीह ४-छगल ५-दद्दुर ६-हय ७-गयवइ ८-भुयग ९-खग्ग १०-उसभंक ११-विडिम १२-पागडियचिंधमउडा पसढिलवरमउड-किरीडधारिणो वर-कुंडलुज्जोइयाणणा मउडदित्तसिरया रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुहवण्ण-गंध-फासा उत्तमवेउव्विणो पवरवत्थ-गंध-मल्लाणुलेवणधरा महिड्ढीया महाजुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्त-माला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाऽणुलेवणा भासरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए जतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतनट्ट-गीय-वाइततंती-तल-ताल-तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१९६ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! वैमानिक देव कहाँ निवास करते हैं?

[१९६ उ] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्कों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस विमान एवं विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाए हुए, रजरहित, निर्मल, पंक-(या कलंक) रहित, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय-रूपसम्पन्न और प्रतिरूप (अप्रतिम सुन्दर) हैं। इन्हीं (विमानावासों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उनमें बहुत-से वैमानिक देव निवास करते हैं। वे (वैमानिक देव) इस प्रकार हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक एवं (पांच) अनुत्तरौपपातिक देव।

वे (सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमशः)—१. मृग, २. महिष, ३. वराह (शूकर), ४. सिंह, ५. बकरा (छगल), ६. दर्दुर (मेंढक), ७. हय (अश्व), ८. गजराज, ९. भुजंग (सर्प), १०. खड्ग (चौपाया वन्य जानवर या गैंडा), ११. वृषभ (बैल) और १२. विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलों से उद्योतित मुख वाले, मुकुट

ओगाहित्ता हिट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं तिन्नि निरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे धूमप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७२ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ (किस प्रदेश में) कहे हैं ?

[१७२ उ.] गौतम ! एक लाख अठारह हजार योजन मोटी धूमप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन को अवगाहन (पार) करके, नीचे के एक हजार योजन (क्षेत्र) को छोड़ कर बीच के एक लाख सोलह हजार योजन प्रदेश में, धूमप्रभापृथ्वी के नारकों के तीन लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल और बाहर से चौकोर हैं, नीचे से छुरे के-से आकार के तीक्ष्ण हैं, (वे) सदैव गाढ अन्धकार से (पूर्ण रहते हैं); वे ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से दूर हैं। उनके तलभाग मेद, चर्वी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं। अतः वे नरक अत्यन्त अपवित्र, वीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कापोत रंग की जाज्वल्यमान अग्नि के वर्ण के समान, कठोरस्पर्श वाले दुःसह एवं अशुभ हैं। उन नरकों में अशुभ वेदनाएँ हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, (तथा) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, जहाँ उन (नरकावासों) में धूमप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक रहते हैं, जो काले, काली कान्तिवाले, गंभीर रोमाञ्चकारी, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से परम कृष्ण कहे गए हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रासित, नित्य उद्विग्न और सदैव अविच्छिन्नरूप से परम अशुभ नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

१७३. कहि णं भंते ! तमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तमप्पभाए पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठा वि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं तमप्पभापुढविनेरइयाणं एगे पंचूणे णरगावाससतसहस्से हवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा नरगेसु वेदणाओ, एत्थ णं तमप्पभा-पुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे तमप्पभापुढविणेरइया परिवसंति।

काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो!

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७३ प्र.] भगवन्! तमःप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे हैं?

[१७३ उ.] गौतम! एक लाख सोलह हजार योजन मोटी तमःप्रभापृथ्वी के ऊपर का एक हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे का एक हजार योजन (प्रदेश) छोड़कर मध्य में एक लाख चौदह हजार योजन (प्रदेश) में, वहाँ तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के पांच कम एक लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल, वाहर से चौरस और नीचे से छुरे के (आकार के-से तीक्ष्ण) संस्थान से युक्त हैं। वे सदैव (घने) अंधेरे से (भरे होते हैं,) वे ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों के प्रकाश से वंचित हैं, उनके तल मेद, वसा, मवाद की मोटी परत, रक्त और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं, अतएव वे अपवित्र, बीभत्स, अतिदुर्गन्धित, कर्कश स्पर्शयुक्त, दुःसह एवं अशुभ या सुखरहित (असुख) नरक हैं; इन नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं। इन (नरकावासों) में तमःप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नरकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं); जहाँ कि बहुत-से तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक निवास करते हैं।

(वे नैरयिक) काले, काली प्रभा वाले, गम्भीरलोमहर्षक, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से अतीव कृष्ण कहे गए हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे (वहाँ) सदैव भयभीत, सदैव त्रस्त, नित्य त्रासित, सदैव उद्विग्न, नित्य परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का सतत प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं।

१७४. कहि णं भंते! तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! तमतमाए पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता हिट्ठा वि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जेत्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु, एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—

काले १ महाकाले २ रोरुए ३ महारोरुए ४ अपइट्ठाणे ५ ।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परम-दुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं तमतमापुढविनेर-इयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

तत्थ णं बहवे तमतमापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

आसीतं १ बत्तीसं २ अट्ठावीसं च होइ ३ वीसं च ४ ।
अट्ठारस ५ सोलसगं ६ अट्ठुत्तरमेव ७ हिट्ठिमया ॥१३३॥
अडुत्तरं च १ तीसं २ छव्वीसं चेव सतसहस्सं तु ३ ।
अट्ठारस ४ सोलसगं ५ चोद्दसमहियं तु छट्ठीए ६ ॥१३४॥
अद्धतिवण्णसहस्सा उवरिमऽहे वज्जिऊण तो भणियं ।
मज्झे उ तिसु सहस्सेसु होंति नरगा तमतमाए ७ ॥१३५॥
तीसा य १ पण्णवीसा २ पण्णरस ३ दसेव सयसहस्साइं ४ ।
तिण्णि य ५ पंचूणेगं ६ पंचेव अणुत्तरा नरगा ७ ॥१३६॥

[१७४ प्र.] भगवन् ! तमस्तमपृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१७४ उ.] गौतम ! एक लाख, आठ हजार मोटी तमस्तमपृथ्वी के ऊपर के साढ़े बावन हजार योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे के भी साढ़े बावन हजार योजन (प्रदेश) को छोड़कर बीच के तीन हजार योजन (प्रदेश) में, तमस्तमप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के पांच दिशाओं में पांच अनुत्तर, अत्यन्त विस्तृत महान् महानिरय (बड़े-बड़े नरकावास) कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) काल, (२) महाकाल, (३) रौरव, (४) महारौरव और (५) अप्रतिष्ठान ।

वे नरक (नारकावास) अंदर से गोल और बाहर से चौरस हैं, नीचे से छुरे के समान तीक्ष्ण-संस्थान से युक्त हैं। वे नित्य अन्धकार से आवृत रहते हैं; वहाँ ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा नहीं है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त रहते हैं। अतएव वे अपवित्र, घृणित, अतिदुर्गन्धित, कठोरस्पर्शयुक्त, दुःसह एवं

अशुभ (अनिष्ट) नरक (नारकावास) हैं। उन नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं। यहीं तमस्तमःप्रभा-पृथ्वी के पर्याप्त और-अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो! इन्हीं (पूर्वोक्त स्थलों) में तमस्तमःपृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते हैं; जो कि काले, काली प्रभा वाले, (भयंकर) गंभीररोमाञ्चकारी, भयंकर, उत्कृष्ट त्रासदायक (आतंक उत्पन्न करने वाले), वर्ण से अत्यन्त काले कहे हैं।

वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रास पहुँचाये हुए, नित्य (दुःख से) उद्विग्न, तथा सदैव अत्यन्त अनिष्ट तत्सम्वद्ध नरकभय का सतत साक्षात् अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

[संग्रहणी गाथाओं का अर्थ—] (नरकपृथ्वियों की क्रमशः मोटाई एक लाख से ऊपर की संख्या में)—१. अस्सी (हजार), २. वत्तीस (हजार), ३. अट्ठाईस (हजार), ४. वीस (हजार), ५. अठारह (हजार), ६. सोलह (हजार) और ७. सवसे नीचली की आठ (हजार), (सवके साथ 'योजन' शब्द जोड़ देना चाहिए।) ॥१३३॥

(नारकावासों का भूमिभाग—) (ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर छठी नरक तक; एक लाख से ऊपर की संख्या में)—१. अठहत्तर (हजार), २. तीस (हजार), ३. छव्वीस (हजार), ४. अठारह (हजार), ५. सोलह (हजार), और ६. छठी नरकपृथ्वी में—चौदह (हजार) ये सब एक लाख योजन से ऊपर (की संख्याएँ) हैं। और ७. सातवीं तमस्तमा नरकपृथ्वी में ऊपर और नीचे साढ़े वावन-साढ़े वावन हजार छोड़ कर मध्य में तीन हजार योजनों में नरक (नारकावास) होते हैं, ऐसा कहा है ॥१३४-१३५॥

(नारकावासों की संख्या) (छठी नरक तक लाख की संख्या में)—१. (प्रथम पृथ्वी में) तीस (लाख), २. (दूसरी में) पच्चीस (लाख), ३. (तीसरी में) पन्द्रह (लाख), ४. (चौथी पृथ्वी में) दस लाख, ५. (पांचवीं में) तीन (लाख), तथा ६. (छठी पृथ्वी में) पांच कम एक (लाख) और ७. (सातवीं नरकपृथ्वी में) केवल पांच ही अनुत्तर नरक (नारकावास) हैं ॥१३६॥

विवेचन—नैरयिकों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. १६७ से १७४ तक) में सामान्य नैरयिकों तथा तत्पश्चात् क्रमशः पृथक्-पृथक् सातों नारकों के नैरयिकों के स्थानों की संख्या तथा उन स्थानों के स्वरूप एवं उन स्थानों में रहने वाले नारकों की प्रकृति एवं परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। आठों सूत्रों में उल्लिखित निरूपण कुछ बातों को छोड़ कर प्रायः एक सरीखा है।

नारकावासों की संख्या—सातों नरकों के नारकावासों की कुल मिला कर ८४ लाख संख्या होती है; जिसका विवरण संग्रहणी गाथाओं में दिया गया है। इसके अतिरिक्त नारक कहाँ (किस प्रदेश में) रहते हैं?, इसका विवरण भी पूर्वोक्त संग्रहणी गाथाओं में दिया है, जैसे कि—१ हजार योजन ऊपर और १ हजार योजन नीचे छोड़ कर बीच के एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश में प्रथम पृथ्वी के नारक रहते हैं; इत्यादि। सातों पृथ्वियों के नारकों के स्थानादि का वर्णन प्रायः समान है।[1]

---

१. देखिये संग्रहणी गाथाएँ—पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पण) भा. १, पृ. ५४-५५

नारकावासों की भूमि—नारकावासों का भूमितल कंकरीला होने पर भी नारकों के पैर रखने पर कंकड़ों का स्पर्श ऐसा लगता है, मानो छुरे से पैर कट गए हों। उनमें प्रकाश का अभाव होने से सदैव गाढ़ अन्धकार व्याप्त रहता है। बादलों से आच्छादित काली घोर रात्रि की तरह वहाँ सदैव अन्धकार रहता है; क्योंकि प्रकाशक ग्रह-सूर्य-चन्द्रादि का या उनकी प्रभा का वहाँ अभाव है। वहाँ मेद, चर्बी, मवाद, रक्त, मांस आदि दुर्गन्धित वस्तुओं के कीचड़ से भूमितल व्याप्त रहता है, इसलिए वे नारकावास सदैव गंदे, घृणित या दुर्गन्धयुक्त रहते हैं। मरी हुई गाय, भैंस आदि के कलेवरों की-सी दुर्गन्ध से भी अत्यन्त अनिष्ट घोर दुर्गन्ध वहाँ रहती है। धौंकनी से लोहे को खूब धौंकने पर जैसे गहरे नीले रंग की (कपोत के रंग-जैसी) ज्वाला निकलती है, वैसी ही आभा वाले नारकावास होते हैं, क्योंकि नारकों के उत्पत्तिस्थान को छोड़ कर वे सर्वत्र उष्ण होते हैं। यह कथन छठी-सातवीं पृथ्वी के सिवाय अन्यपृथ्वियों के विषय में समझना चाहिए। आगे कहा जाएगा कि छठी और सातवीं नरक के नारकावास कापोतवर्ण की अग्नि के वर्ण-सदृश नहीं होते। उन नारकावासों का स्पर्श तलवार की धार के समान अतीव कर्कश और दु:सह होता है। वे देखने में भी अत्यन्त अशुभ होते हैं। उन नरकों की वेदनाएँ भी दु:सह शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श के कारण अतीव अशुभ या असुखकर होती हैं।

नारकों की शरीररचना, प्रकृति और परिस्थिति—वे रंग से काले-कलूटे और भयंकर होते हैं। उनके शरीर से काली प्रभा निकलती है। उनको देखने मात्र से रोमांच हो जाता है, अथवा वे दूसरे नारकों में अत्यन्त भय उत्पन्न करके रोमांच खड़ा कर देते हैं। इस कारण वे अत्यन्त आतंक पैदा करते रहते हैं। तथा वे सदैव भयभीत, त्रस्त, आतंकित, उद्विग्न रहते हैं, तथा सतत अनिष्ट नरकभय का अनुभव करते रहते हैं।[1]

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के स्थानों की प्ररूपणा—

१७५. कहि णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ णं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे।

[१७५ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यंचों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१७५ उ.] गौतम ! १. ऊर्ध्वलोक में उसके एकदेशभाग में, २. अधोलोक में उसके एकदेशभाग में, ३. तिर्यग्लोक में कुओं में, तालावों में, नदियों में, वापियों में, ह्रदों में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं में, सरोवरों में, पंक्तिबद्ध सरोवरों में, सर-सर-पंक्तियों में, बिलों में, पंक्तिबद्ध बिलों में, पर्वतीय जलस्रोतों में, झरनों में, छोटे गड्ढों में, पोखरों में, क्यारियों अथवा खेतों

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति. पत्रांक ८०–८१ का सारांश

में, द्वीपों में, समुद्रों में तथा सभी जलाशयों एवं जल के स्थानों में; इन (सभी पूर्वोक्त स्थलों) में पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) वे लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

विवेचन—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू. १७५) में पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थानों की प्ररूपणा की गई है। इसमें प्रयुक्त शब्दों का स्पष्टीकरण पहले ही किया जा चुका है।

मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा—

१७६. कहि णं भंते ! मणुस्साणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते पणतालीसाए जोयणसतसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवेसु, एत्थ णं मणुस्साणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१७६ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१७६ उ.] गौतम ! मनुष्यक्षेत्र के अन्दर पैंतालीस लाख योजनों में, ढाई द्वीप-समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में, और छप्पन अन्तर्द्वीपों में; इन स्थलों में पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

विवेचन—मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुतसूत्र (सू. १७६) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक मनुष्यों के स्थानों की प्ररूपणा की गई है।

समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में—समुद्घात की अपेक्षा से पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य सर्वलोक में होते हैं, कह कथन केवलिसमुद्घात की अपेक्षा से सम्भव है।[1]

सर्व भवनवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा—

१७७. कहि णं भंते ! भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! भवणवासी देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयण-सहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झिमअट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरिं च भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ८४

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो समचउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरविउल-गंभीरखात-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंत-सयग्घि-मुसल-मुसंढिपरिय-रिया अउज्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामर-दंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकततोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरस-सुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया[1] कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंध-वरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविगिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिता सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पहा सस्सिरिया समरिया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरुवा, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति । तं जहा—

असुरा १ नाग २ सुवण्णा ३ विज्जू ४ अग्गी य ५ दीव ६ उदही य ७ ।
दिसि ८ पवण ९ थणिय १० नामा दसहा एए भवणवासी ।।१३७।।

चूडामणिमउडरयण १-भूसणनिउत्तणागफड २-गरुल ३-वइर ४-पुण्णकलसविउप्फेस ५-सीह ६-मगर ७-गयअंक ८-हयवर ९-वद्धमाण १०-निज्जुत्तचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुतीया महा-यसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडग-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठ-गंडतल कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउलीमउडा कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा ।

ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाहिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतनट्ट-गीत-वाइततंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुयंग-पडुप्पवाइयरवेण दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

[१७७ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भवनवासी देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७७ उ.] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक

---

१. ग्रन्थाग्रम् १०००

हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे भी एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन में भवनवासी देवों के सात करोड़, बहत्तर लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन बाहर से गोल और भीतर से समचतुरस्र (चौकोर), तथा नीचे पुष्कर (कमल) की कर्णिका के आकार के हैं। (उन भवनों के चारों ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और परिखाएँ खुदी हुई होती हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारों (परकोटों), अटारियों, कपाटों, तोरणों और प्रतिद्वारों से (वे भवन) सुशोभित हैं। (तथा वे भवन) विविध यन्त्रों, शतघ्नियों (महाशिलाओं या महायष्टियों), मूसलों, मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से चारों ओर वेष्टित (घिरे हुए) होते हैं; तथा वे शत्रुओं द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय (सदैव जयशील), सदागुप्त (सदैव सुरक्षित) एवं अड़तालीस कोठों (प्रकोष्ठों—कमरों) से रचित, अड़तालीस वनमालाओं से सुसज्जित, क्षेममय (उपद्रवरहित), शिव (मंगल)मय किंकरदेवों के दण्डों से उपरिक्षत हैं। (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते हैं। (उन भवनों पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पांचों अंगुलियों (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं। (यथास्थान) चन्दन के कलश (मांगल्यघट) रखे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घड़ों से सुशोभित (सुकृत) होते हैं। (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पुष्पमालाओं के कलाप से युक्त होते हैं; तथा पंचरंगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पों के उपचार से भी युक्त होते हैं। वे काले अगर, श्रेष्ठ चीड़ा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्धित, होने से गंधवट्टी के समान लगते हैं। वे अप्सरागण के संघों से व्याप्त, दिव्य वाद्यों के शब्दों से भलीभांति शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने (स्निग्ध), कोमल, घिसे हुए, पौंछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पंक, आवरणरहित कान्ति (छाया) वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणों से युक्त, उद्योतयुक्त (शीतल प्रकाश से युक्त), प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं सुरूप होते हैं। इन (पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त भवनों) में पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहे गए हैं।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से भवनवासी देव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १-असुरकुमार, २-नागकुमार, ३-सुप(व)र्णकुमार, ४-विद्युत्कुमार, ५-अग्निकुमार, ६-द्वीपकुमार, ७-उदधिकुमार, ८-दिशाकुमार, ९-पवनकुमार और १०-स्तनितकुमार; इन नामों वाले दस प्रकार के ये भवनवासी देव हैं ॥ १३७ ॥

इनके मुकुट या आभूषणों में अंकित चिह्न क्रमशः इस प्रकार हैं—(१) चूडामणि, (२) नाग का फन, (३) गरुड़, (४) वज्र, (५) पूर्णकलश चिह्न से अंकित मुकुट, (६) सिंह, (७) मकर (मगरमच्छ), (८) हस्ती का चिह्न, (९) श्रेष्ठ अश्व और (१०) वर्द्धमानक (शरावसम्पुट=सकोरा), इनसे युक्त विचित्र चिह्नों वाले, सुरूप, महर्द्धिक (महती ऋद्धि वाले) महाद्युति (कान्ति) वाले, महान् बलशाली, महायशस्वी, महान् अनुभाग (अनुभाव—प्रभाव या शापानुग्रहसामर्थ्य) वाले, महान् (अतीव) सुख वाले, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों और बाजूबन्दों से स्तम्भित भुजा वाले, कपोलों को चिकने बनाने वाले अंगद, कुण्डल तथा कर्णपीठ के धारक, हाथों में विचित्र

(नानारूप) आभूषण वाले, विचित्र पुष्पमाला और मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति (कान्ति) से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (शोभा) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एवं दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिकदेवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंश देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदाओं का, अपने-अपने सैन्यों (अनीकों) का, अपने-अपने सेनाधिपतियों का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का, तथा अन्य बहुत-से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नायकत्व), भर्तृत्व (पोषकत्व), महात्तरत्व (महानता), आज्ञैश्वरत्व (अपनी आज्ञा का पालन कराने का प्रभुत्व) एवं सेनापतित्व (अपनी सेना को आज्ञा पालन कराने का प्राधान्य) करते-कराते हुए तथा पालन करते-कराते हुए, अहत (अव्याहत—व्याघात-रहित अथवा आहत-आख्यानकों से प्रतिबद्ध) नृत्य, गीत, वादित, एवं तंत्री, तल, ताल (कांसा), त्रुटित (वाद्य) और घनमृदंग बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एवं उपभोग्य भोगों को भोगते हुए विचरते हैं।

१७८. [१] कहि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयण-सहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं असुर-कुमाराणं देवाणं चोवट्ठिं भवणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खायं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरविउल-गंभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंतसयग्घि-मुसल-मुसुंढिपरियरिया अओज्झा सदाजया सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोव-रक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचितचंदणकलसा चंदण-घडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभि-मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवर-गंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविगिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिया सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया निम्मला निप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे असुरकुमारा देवा परिवसंति; काला लोहियक्ख-बिंबोट्ठा धवलपुप्फदंता असिय-केसा वामेयकुंडलधरा अद्दचंदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंधपुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं

पवरपरिहिया, वयं च पढमं समइक्कंता, बिइयं च असंपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभंगय-तुडित-पवरभूसण-निम्मलमणि-रयणमंडितभुया दसमुद्दामंडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुइया महायसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगय-कुंडल-मट्ठगंडयलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थ-परिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतणट्ट-गीत-वाइयतंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७८-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७८-१ उ.] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन (प्रदेश) छोड़ कर, बीच में (स्थित) जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश है,) वहाँ असुरकुमारदेवों के चौंसठ लाख भवन-आवास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल, अंदर से चौरस (चौकोर), और नीचे से पुष्कर-(नील-कमल) कर्णिका के आकार में संस्थित हैं। (उन भवनों के चारों ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और परिखाएँ खुदी हुई हैं; जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारों (परकोटों), अटारियों, कपाटों, तोरणों और प्रतिद्वारों से भवनों के एकदेशभाग सुशोभित होते हैं, (तथा वे भवन) यंत्रों, शतघ्नियों (महाशिलाओं या महायष्टियों), मूसलों और मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से (चारों ओर से) वेष्टित (घिरे हुए) होते हैं; तथा शत्रुओं द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय, सदागुप्त (सदैव सुरक्षित) तथा अड़तालीस कोठों से रचित, अड़तालीस वनमालाओं से सुसज्जित, क्षेममय, शिवमय, किंकर-देवों के दण्डों से उपरक्षित हैं। (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते हैं। (उन भवनों पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पांचों अंगुलियों (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं; (यथास्थान) चन्दन के (मांगल्य) कलश रखे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घड़ों से सुशोभित (सुकृत) होते हैं। (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पुष्पमालाओं के समूह से युक्त होते हैं; तथा पंचरंगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पों के द्वारा उपचार से भी युक्त होते हैं। (वे भवन) काले अगर, श्रेष्ठ चीड़ा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित, गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान लगते हैं। (वे भवन) अप्सरागण के संघों से व्याप्त,

दिव्य वाद्यों के शब्दों से शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने (स्निग्ध), कोमल, घिसे हुए, पौंछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पंक (कलंकरहित), आवरणरहित-कान्तिमान्, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणों से युक्त, उद्योतयुक्त (प्रकाशमान), प्रसन्नता (आह्लाद) उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं प्रतिरूप (सुन्दर) होते हैं। इन (पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त भवनावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (वे) हैं।

उन (पूर्वोक्त स्थानों) में बहुत-से असुरकुमार देव निवास करते हैं। (वे असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्षरत्न तथा बिम्बफल के समान ओठों वाले, श्वेत '(धवल) पुष्पों के समान दांतों तथा काले केशों वाले, बाएँ एक कुण्डल के धारक, गीले चन्दन से लिप्त शरीर (गात्र) वाले, शिलिन्ध्र-पुष्प के समान थोड़े-से प्रकाशमान (किञ्चित् रक्त) तथा संक्लेश उत्पन्न न करने वाले सूक्ष्म अतीव उत्तम वस्त्र पहने हुए, प्रथम (कौमार्य) वय को पार किये हुए (कुमारावस्था के किनारे पहुँचे हुए) और द्वितीय वय को असंप्राप्त (प्राप्त नहीं किये हुए) (अतएव) भद्र (अतिप्रशस्त) यौवन में वर्तमान होते हैं। (तथा वे) तलभंगक (भुजा का आभूषणविशेष), त्रुटित (बाहुरक्षक) एवं अन्यान्य श्रेष्ठ आभूषणों में जटित निर्मल मणियों तथा रत्नों से मण्डित भुजाओं वाले, दस मुद्रिकाओं (अंगूठियों) से सुशोभित अग्रहस्त (अंगुलियों) वाले, चूडामणिरूप अद्भुत चिह्न वाले, सुरूप, महर्द्धिक, महाद्युति-मान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग (सामर्थ्य) युक्त, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों और बाजूबंदों से स्तम्भित भुजा वाले, अंगद एवं कुण्डल से चिकने कपोल वाले तथा कर्णपीठ के धारक, हाथों में विचित्र आभरण वाले, विचित्र पुष्पमाला मस्तक में धारण किये हुए, कल्याण-कारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्यवर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (शरीर के डीलडौल) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंश देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सैन्याधिपतिदेवों का, अपने-अपने आत्मरक्षकदेवों का तथा और भी अन्य बहुत-से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नेतृत्व), भर्तृत्व (पोषणकर्तृत्व), महत्तरत्व (महानता), आज्ञेश्वरत्व एवं सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए, महान् आहत से (बड़े जोरों से अथवा महान् व्याघातरहित) नृत्य, गीत, वादित, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदंग के बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एवं उपभोग्य भोगों का उपभोग करते हुए विहरण करते हैं।

[२] चमर-बलिणो यऽत्थ दुवे असुरकुमारिंदा असुरकुमाररायाणो परिवसंति काला महानीलसरिसा णीलगुलिय-गवल-अयसिकुसुमप्पगासा वियसियसयवत्तणिम्मलईसीसित-रत्त-तंबणयणा गरुलाययउज्जुतुंगणासा ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसन्निभाहरोट्ठा पंडरससिसगलविमल-निम्मलदहि-

घण-संख-गोखीर-कुंद-दगरय-मुणालियाधवलदंतसेढी हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततल-तालु-जीहा अंजण-घणकसिणरुयगरमणिज्जणिद्धकेसा वामेयकुंडलधरा, श्रद्दचंदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंध-पुप्फपगासाइं असंकिलिट्ठाइं सुहुमाइं वत्थाइं पवर परिहिया, वयं च पढमं समइक्कंता, बिइयं तु असंपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभंगय-तुडित-पवरभूसण-निम्मलमणि-रयणमंडितभुया दसमुद्दा-मंडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुईया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी विचित्त-हत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससत-सहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आतरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतनट्ट-गीत-वाइततंती-तल-ताल-तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७८-२] यहाँ (इन्हीं स्थानों में) जो दो असुरकुमारों के राजा—चमरेन्द्र और बलीन्द्र निवास करते हैं, वे काले, महानील के समान, नील की गोली, गवल (भैंस के सींग), अलसी के फूल के समान (रंग वाले), विकसित कमल (शतपत्र) के समान निर्मल, कहीं श्वेत, रक्त एवं ताम्रवर्ण के नेत्रों वाले, गरुड़ के समान विशाल सीधी और ऊँची नाक वाले, पुष्ट या तेजस्वी (उप-चित) मूंगा तथा बिम्बफल के समान अधरोष्ठ वाले; श्वेत विमल एवं निर्मल चन्द्रखण्ड, जमे हुए दही, शंख, गाय के दूध, कुन्द, जलकण और मृणालिका के समान धवल दन्तपंक्ति वाले, अग्नि में तपाये और धोये हुए तपनीय (सोने) के समान लाल तलवों, तालु तथा जिह्वा वाले, अंजन तथा मेघ के समान काले, रुचकरत्न के समान रमणीय एवं स्निग्ध (चिकने) केशों वाले, बांए एक कान में कुण्डल के धारक, गीले (सरस) चन्दन से लिप्त शरीर वाले, शिलीन्ध्र-पुष्प के समान किंचित् लाल रंग के एवं क्लेश उत्पन्न न करने वाले (अत्यन्त सुखकर) सूक्ष्म एवं अत्यन्त श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए, प्रथम वय (कौमार्य) को पार किये हुए, दूसरी वय को अप्राप्त, (अतएव) नवयौवन में वर्तमान, तल-भंगक, त्रुटित तथा अन्य श्रेष्ठ आभूषणों एवं निर्मल मणियों और रत्नों से मण्डित भुजाओं वाले, दस मुद्रिकाओं (अंगूठियों) से सुशोभित अग्रहस्त (हाथ की अंगुलियों) वाले, विचित्र चूड़ामणि के चिह्न से युक्त, सुरूप, महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबलवान्, महासामर्थ्यशाली (प्रभाव-शाली), महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कड़ों तथा बाजूबंदों से स्तम्भित भुजाओं वाले, अंगद, कुण्डल तथा कपोल भाग को मर्षण करने वाले कर्णपीठ (कर्णाभूषण) के धारक, हाथों में विचित्र आभूषणों वाले, अद्भुत मालाओं से युक्त मुकुट वाले, कल्याणकारी श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले, लम्बी वनमालाओं के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य कान्ति से, दिव्य अर्चि

(ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्य लेश्या (शारीरिकवर्ण-सौन्दर्य) से दसों दिशाओं को प्रकाशित एवं प्रभासित (सुशोभित) करते हुए, वे (असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र और वलीन्द्र) वहाँ अपने-अपने लाखों भवनावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिकों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिशक देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सैन्याधिपतियों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का और अन्य वहुत-से भवनवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व (महानता) और आज्ञैश्वरत्व तथा सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए महान् आहत (वड़े जोर से, अथवा अहत—व्याघातरहित) नाट्य, गीत, वादित, (वजाए गए) तंत्री, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदंग आदि से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य उपभोग्य भोगों को भोगते हुए रहते हैं।

१७६. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसतसहस्सवाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं चोत्तीसं भवणावाससत-सहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा वाहिं वट्टा अंतो चउरंसा, सो च्चेव वण्णओ[1] जाव पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं वहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा य देवीओ य परिवसंति। काला लोहियक्खा तहेव[2] जाव भुंजमाणा विहरंति। एतेसि णं तहेव[3] तायत्तीसगलोगपाला भवंति। एवं सव्वत्थ भाणितव्वं भवणवासीणं।

[१७९-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त एवं अपर्याप्त दाक्षिणात्य (दक्षिण दिशा वाले) असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् दाक्षिणात्य असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१७६-१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे के एक हजार योजन छोड़ कर, वीच में जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन क्षेत्र है, वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के एक लाख चौंतीस हजार भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे (दाक्षिणात्य असुरकुमारों के) भवन (भवनावास) वाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, शेष समस्त वर्णन यावत् 'प्रतिरूप हैं', तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए। यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं, जो कि तीनों अपेक्षाओं

---

१. 'वण्णओ' से सूत्र १७८ [१] के अनुसार पाठ समझना चाहिए।

२. 'तहेव' से सूत्र १७८ [१] के अनुसार तत्स्थानीय पूर्ण पाठ ग्राह्य है।

३. 'तहेव' से सूत्र १७८-१ के अनुसार तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

(उपपात, समुद्घात एवं स्वस्थान की अपेक्षा) से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देव एवं देवियाँ निवास करती हैं। वे (दाक्षिणात्य असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्ष रत्न.......के समान ओठ वाले हैं,.......इत्यादि सब वर्णन यावत् 'भोगते हुए रहते हैं' (भुंजमाणा विहरंति) तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए।

इनके उसी प्रकार त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल देव आदि होते हैं, (जिन पर वे आधिपत्य आदि करते-कराते, पालन करते-कराते हुए यावत् विचरण करते हैं।) इस प्रकार सर्वत्र 'भवनवासियों के' ऐसा उल्लेख करना चाहिए।

[२] चमरे अत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमाराया परिवसति काले महानीलसरिसे जाव[1] पभासेमाणे।

से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससतसहस्साणं चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तावत्तीसाए तायत्तीसाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं य चउसट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव[1] विहरति।

[१७९-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (दाक्षिणात्य) असुरकुमारों का इन्द्र असुरराज चमरेन्द्र निवास करता है, वह कृष्णवर्ण है, महानीलसदृश है, इत्यादि सारा वर्णन यावत् प्रभासित-सुशोभित करता हुआ ('पभासेमाणे') तक सूत्र १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए।

वह (चमरेन्द्र) वहाँ चौंतीस लाख भवनावासों का, चौसठ हजार सामानिकों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, पांच सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चार चौसठ हजार—अर्थात्—दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ यावत् विचरण करता है।

१८०. [१] कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए[2] असीउत्तर-जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाणं तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा, सेसं जहा[1] दाहिणिल्लाणं जाव[1] विहरंति।

---

१. 'जाव' तथा 'जहा' से सूचित तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

२. ग्रन्थागम् ११००

[१८०-१ प्र.] भगवन् ! उत्तरदिशा में पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उत्तरदिशा के असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८०-१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, सुमेरुपर्वत के उत्तर में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे (भी) एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश में, वहाँ उत्तरदिशा के असुरकुमार देवों के तीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, शेष सब वर्णन यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) तक, दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों के समान (सूत्र १७९-१ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] बली यऽत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसति काले महानीलसरिसे जाव (सु. १७८ [२]) पभासेमाणे। से णं तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं तावत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्ह य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे विहरति।

[१८०-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलीन्द्र निवास करता है, (जो) कृष्णवर्ण है, महानीलसदृश है, इत्यादि समग्र वर्णन यावत् 'प्रभासित-सुशोभित करता हुआ' ('पभासमाणे' तक सूत्र १७८-२ से अनुसार समझना चाहिए।) वह वहाँ तीस लाख भवनावासों का, साठ हजार सामानिक देवों का, तैंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, सपरिवार पांच अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चार साठ हजार अर्थात् दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से उत्तरदिशा के असुरकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य एवं पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व) करता हुआ विचरण करता है।

१८१. [१] कहि णं भंते ! णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! णागकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जिऊण मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं चुलसीइ भवणावाससयसहस्सा हवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव (सु. १७७) पडिरूवा। तत्थ णं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे णागकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया महाजुतीया, सेसं जहा ओहियाणं (सु. १७७) जाव विहरंति।

[१८१-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८१-१ उ.] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर

एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन छोड़ कर वीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के चौरासी लाख भवनावास (भवन) हैं, ऐसा कहा है। वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, यावत् प्रतिरूप (अत्यन्त सुन्दर) हैं तक, (सू. १७७ के अनुसार सारा वर्णन जानना चाहिए।)

वहाँ (पूर्वोक्त भवनावासों में) पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं। तीनों अपेक्षाओं से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) (वे स्थान) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ वहुत-से नागकुमार देव निवास करते हैं। वे महर्द्धिक हैं, महाद्युति वाले हैं, इत्यादि शेष वर्णन, यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) तक, औघिकों (सामान्य भवनवासी देवों) के समान (सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] धरण-भूयाणंदा एत्थ दुवे णागकुमारिंदा णागकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया, सेसं जहा ओहियाणं जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८१-२] यहाँ (इन्हीं पूर्वोक्त स्थानों में) जो दो नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज—धरणेन्द्र और भूतानन्देन्द्र—निवास करते हैं, (वे) महर्द्धिक हैं; शेष वर्णन औघिकों (सामान्य भवनवासियों) के समान (सूत्र १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक समझना चाहिए।

१८२. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं चोयालीसं भवणावाससय-सहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा जाव[1] पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। एत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया जाव (सू. १७७) विहरंति।

[१८२-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य नागकुमारों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! दाक्षिणात्य नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८२-१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के दक्षिण में, एक लाख अस्सी हजार मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाह करके और नीचे एक हजार योजन छोड़ कर, मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, यहाँ दाक्षिणात्य नागकुमार देवों के चवालीस लाख भवन हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल और भीतर से चौरस हैं, यावत् प्रतिरूप (अतीव सुन्दर) हैं। यहाँ (इन्हीं भवनावासों में) दाक्षिणात्य पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमारों के स्थान कहे गए हैं।

---

१. 'जाव' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।

(वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, जहाँ कि बहुत-से दाक्षिणात्य नागकुमार देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं; (इत्यादि शेष समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) तक (सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] धरणे यऽत्थ णागकुमारिंदे णागकुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव (सु. १७८) पभासेमाणे। से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं छण्हं सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं पंचण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउव्वीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं नागकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे विहरति।

[१८२-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणेन्द्र निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू. १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए।)

वहाँ वह (धरणेन्द्र) चवालीस लाख भवनावासों का, छह हजार सामानिकों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, सपरिवार पांच अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सैन्यों का, सात सेनाधिपति देवों का, चौवीस हजार आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से दाक्षिणात्य नागकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य और अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है।

१८३. [१] कहि णं भंते! उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! उत्तरिल्ला णागकुमारा देवा परिवसंति?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाणं णागकुमाराणं देवाणं चत्तालीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा सेसं जहा दाहिणिल्लाणं (सु. १८२ [१]) जाव विहरंति।

[१८३-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त उत्तरदिशा के नागकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! उत्तरदिशा के नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८३-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, सुमेरुपर्वत के उत्तर में, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे एक हजार योजन छोड़ कर, बीच में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, वहाँ उत्तरदिशा के नागकुमार देवों के चालीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल हैं, शेष सारा वर्णन दाक्षिणात्य नागकुमारों के वर्णन, सू. १८२-१ के अनुसार यावत् विचरण करते हैं (विहरंति) (तक समझ लेना चाहिए।)

[२] भूयाणंदे यऽत्थ णागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव (सु. १७७) पभासेमाणे। से णं तत्थ चत्तालीसाए भवणावाससतसहस्साणं श्राहेवच्चं जाव[1] (सु. १७७) विहरंति।

[१८३-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (औदीच्य) नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (शेष वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू. १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

वहाँ वह (भूतानन्देन्द्र) चालीस लाख भवनावासों का यावत् आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है, तक (सारा वर्णन सू. १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

१८४. [१] कहि णं भंते ! सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव एत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं बावत्तरिं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा। तत्थ णं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढीया, सेसं जहा ओहियाणं (सु. १७७) जाव विहरंति।

[१८४-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८४-१ उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक-एक हजार ऊपर और नीचे के भाग को छोड़ कर शेष भाग में यावत् सुपर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप तक (समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।) वहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) (पूर्वोक्त) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं; (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् 'विचरण करते हैं' (तक) औधिक (सामान्य असुरकुमारों) की तरह (सू. १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] वेणुदेव-वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदा सुवण्णकुमाररायाणो परिवसंति महड्ढीया जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८४-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में दो सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज—वेणुदेव और वेणुदाली निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं; (शेष समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं'; तक समझ लेना चाहिए।

१८५. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे जाव मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं अट्ठत्तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा।

---

१. 'जाव' एवं 'जहा' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन संकेतित सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

एत्थ णं दाहिणिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे । एत्थ णं बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ।

[१८५-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! दाक्षिणात्य सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८५-१ उ] गौतम ! इसी रत्नप्रभापृथ्वी के यावत् मध्य में एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) में, दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारों के अड़तीस लाख भवनावास हैं; ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप हैं; (यहाँ तक का शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए), यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। यहाँ बहुत-से सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं।

[२] वेणुदेवे यऽत्थ सुवण्णिदे सुवण्णकुमारराया परिवसइ। सेसं जहा णागकुमाराणं (सु १८२ [२]) ।

[१८५-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (दाक्षिणात्य) सुपर्णेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदेव निवास करता है; शेष सारा वर्णन नागकुमारों के वर्णन की तरह (सू. १८२-२ के अनुसार) समझ लेना चाहिए।

१८६. [१] कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए जाव एत्थ णं उत्तरिल्लाणं सुवण्णकुमाराणं चोत्तीसं भवणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भवणा जाव एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया जाव (सु. १७७) विहरंति।

[१८६-१ प्र.] भगवन् ! उत्तरदिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८६-१ उ.] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक लाख अठहत्तर योजन में, आदि (समग्र वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।) यावत् 'यहाँ उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देवों के चौंतीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) (जिनका समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए) यावत् यहाँ (इन्हीं भवनावासों में) बहुत-से उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देव निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं; यावत् विचरण करते हैं (तक का शेष समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार) समझ लेना चाहिए।

[२] वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसति महिड्ढीए, सेसं जहा णागकुमाराणं (सु. १८३[२]) ।

[१८६-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में यहाँ सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदाली निवास

करता है, जो महर्द्धिक है; शेष सारा वर्णन नागकुमारों की तरह (सू. १८३-२ के अनुसार) समझना चाहिए।

१८७. एवं जहा सुवण्णकुमाराणं वत्तव्वया भणिता तहा सेसाण वि चोद्दसण्हं इंदाणं भाणितव्वा। नवरं भवणनाणत्तं इंदणाणत्तं वण्णणाणत्तं परिहाणणाणत्तं च इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्वं--

चोवट्ठि असुराणं १ चुलसीती चेव होंति णागाणं २।
बावत्तरिं सुवण्णे ३ वाउकुमाराण छण्णउई ४॥१३८॥
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणिय-मग्गीणं।
छण्हं पि जुअलयाणं छावत्तरिमो सतसहस्सा १०॥१३९॥
चोत्तीसा १ चोयाला २ अट्ठत्तीसं च सयसहस्साइं ३।
पण्णा ४ चत्तालीसा ५-१० दाहिणओ होंति भवणाइं॥१४०॥
तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं ३।
छायाला ४ छत्तीसा ५-१० उत्तरओ होंति भवणाइं॥१४१॥
चउसट्ठी सट्ठी, १ खलु छ च्च सहस्सा २-१० उ असुरवज्जाणं।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ॥१४२॥
चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हरिकंत ४ अग्गिसीहे य।
पुण्णे ६ जलकंते या ७ अमिय ८ विलंबे य ९ घोसे य १०॥१४३॥
बलि १ भूयाणंदे २ वेणुदालि ३ हरिस्सहे ४ अग्गिमाणव ५ वसिट्ठे ६।
जलप्पहे ७ अमियवाहण ८ पभंजणे या ९ महाघोसे १०॥१४४॥

उत्तरिल्लाणं जाव विहरंति।

काला असुरकुमारा, णागा उदही य पंडरा दो वि।
वरकणगणिहसगोरा होंति सुवण्णा दिसा थणिया॥१४५॥
उत्तत्तकणगवन्ना विज्जू अग्गी य होंति दीवा य।
सामा पियंगुवण्णा वाउकुमारा मुणेयव्वा॥१४६॥
असुरेसु होंति रत्ता, सिलिंधपुप्फप्पभा य नागुदही।
आसासगवसणधरा होंति सुवण्णा दिसा थणिया॥१४७॥
णीलाणुरागवसणा विज्जू अग्गी य होंति दीवा य।
संझाणुरागवसणा वाउकुमारा मुणेयव्वा॥१४८॥

[१८७] इस प्रकार जैसी वक्तव्यता सुपर्णकुमारों की कही है, वैसी ही शेष भवनवासियों की भी और उनके चौदह इन्द्रों की भी कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि उनके भवनों की संख्या में, इन्द्रों के नामों में, उनके वर्णों तथा परिधानों (वस्त्रों) में अन्तर है, जो इन गाथाओं द्वारा समझ लेना चाहिए—

(गाथाओं का अर्थ—) भवनावास—१—(असुरकुमारों के) चौसठ लाख हैं, २—(नागकुमारों के) चौरासी लाख हैं, ३—(सुपर्णकुमारों के) बहत्तर लाख हैं, ४—(वायुकुमारों के) छियानवे लाख हैं ।।१३८।। ५ से १० तक अर्थात् (द्वीपकुमारों, दिशाकुमारों, उदधिकुमारों, विद्युत्कुमारों, स्तनितकुमारों और अग्निकुमारों,) इन छहों के युगलों के प्रत्येक के छहत्तर-छहत्तर लाख (भवनावास) हैं ।। १३९ ।।

दक्षिणदिशा के (असुरकुमारों आदि के) भवनों की संख्या (इस प्रकार है)—१—(असुरकुमारों के) चौंतीस लाख, २—(नागकुमारों के) चवालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारों के) अड़तीस लाख, ४—(वायुकुमारों के) पचास लाख, ५ से १० तक—(द्वीपकुमारों, उदधिकुमारों, विद्युत्कुमारों, स्तनितकुमारों और अग्निकुमारों के) प्रत्येक के चालीस-चालीस लाख भवन (भवनावास) हैं ।।१४०।।

उत्तरदिशा के (असुरकुमारों आदि के) भवनों की संख्या (इस प्रकार है—) १—(असुरकुमारों के) तीस लाख, २—(नागकुमारों के) चालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारों के) चौंतीस लाख, ४—(वायुकुमारों के) छयालीस लाख, ५ से १०तक—अर्थात् द्वीपकुमारों, दिशाकुमारों, उदधिकुमारों, विद्युत्कुमारों, स्तनितकुमारों और अग्निकुमारों के प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस लाख भवन हैं ।।१४१।।

सामानिकों और आत्मरक्षकों की संख्या—इस प्रकार है—१—(दक्षिण दिशा के) असुरेन्द्र के ६४ हजार और (उत्तरदिशा के असुरेन्द्र के) ६० हजार हैं; असुरेन्द्र को छोड़ कर (शेष सब २ से १०—दक्षिण-उत्तर के इन्द्रों के प्रत्येक) के छह-छह हजार सामानिकदेव हैं। आत्मरक्षकदेव (प्रत्येक इन्द्र के सामानिकों की अपेक्षा) चौगुने-चौगुने होते हैं ।। १४२ ।।

दाक्षिणात्य इन्द्रों के नाम— १—(असुरकुमारों का) चमरेन्द्र, २—(नागकुमारों का) धरणेन्द्र, ३—(सुपर्णकुमारों का) वेणुदेवेन्द्र, ४—(विद्युत्कुमारों का) हरिकान्त, ५—(अग्निकुमारों का) अग्निसिंह (या अग्निशिख), ६—(द्वीपकुमारों का) पूर्णेन्द्र, ७—(उदधिकुमारों का) जलकान्त, ८—(दिशाकुमारों का) अमित, ९—(वायुकुमारों का) वैलम्ब और १०—(स्तनितकुमारों का) इन्द्र घोष है ।। १४३ ।।

उत्तरदिशा के इन्द्रों के नाम— १—(असुरकुमारों का) बलीन्द्र, २—(नागकुमारों का) भूतानन्द, ३—(सुपर्णकुमारों का) वेणुदालि, ४—(विद्युत्कुमारों का) हरिस्सह, ५—(अग्निकुमारों का) अग्निमाणव, ६—द्वीपकुमारों का वशिष्ठ, ७—(उदधिकुमारों का) जलप्रभ, ८—(दिशाकुमारों का) अमितवाहन, ९—(वायुकुमारों का) प्रभंजन और १०—(स्तनितकुमारों का) महाघोष इन्द्र है ।। १४४ ।।

(ये दसों) उत्तरदिशा के इन्द्र"""यावत् विचरण करते हैं।

वर्णों का कथन—सभी असुरकुमार काले वर्ण के होते हैं, नागकुमारों और उदधिकुमारों का वर्ण पाण्डुर अर्थात्—शुक्ल होता है, सुपर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार कसौटी (निकषपाषाण) पर बनी हुई श्रेष्ठ स्वर्णरेखा के समान गौर वर्ण के होते हैं ।। १४५ ।।

विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमार तपे हुए सोने के समान (किञ्चित् रक्त) वर्ण के होते हैं और वायुकुमार श्याम प्रियंगु के वर्ण के समझने चाहिए ।। १४६ ।।

इनके वस्त्रों के वर्ण—असुरकुमारों के वस्त्र लाल होते हैं, नागकुमारों और उदधिकुमारों के

वस्त्र शिलिन्ध्रपुष्प की प्रभा के समान (नीले) होते हैं, सुपर्णकुमारों, दिशाकुमारों और स्तनितकुमारों के वस्त्र अश्व के मुख के फेन के सदृश अतिश्वेत होते हैं ॥ १४७ ॥

विद्युत्कुमारों, अग्निकुमारों और द्वीपकुमारों के वस्त्र नीले रंग के होते हैं और वायुकुमारों के वस्त्र सन्ध्याकाल की लालिमा जैसे वर्ण के जानने चाहिए ॥ १४८ ॥

विवेचन—सर्व भवनवासी देवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. १७७ से १८७ तक) में शास्त्रकार ने सामान्य भवनवासी देवों से लेकर असुरकुमारादि दस प्रकार के, तथा उनमें भी दक्षिण और उत्तर दिशाओं के, फिर उनके भी प्रत्येक निकाय के इन्द्रों के (विविध अपेक्षाओं से) स्थानों, भवनावासों की संख्या और विशेषता तथा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवों और इन्द्रों के स्वरूप, वैभव एवं सामर्थ्य, प्रभाव आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त में—संग्रहणी गाथाओं द्वारा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवों के भवनों, सामानिकों और आत्मरक्षक देवों की संख्या, दाक्षिणात्य और औदीच्य कुल २० इन्द्रों के नाम तथा दस प्रकार के भवनवासियों के प्रत्येक के शारीरिक और वस्त्र सम्बन्धी वर्ण का उल्लेख किया है।[1]

कुछ कठिन शब्दों की व्याख्या—पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया=पुष्कर=कमल की कर्णिका के समान आकार में संस्थित हैं। कर्णिका उन्नत एवं समान चित्रविचित्र विन्दु रूप होती है। **'उक्किण्णंतरविउलगंभीरखातपरिहा'**=उन भवनों के चारों ओर खाइयाँ और परिखाएँ हैं। जिनका अन्तर उत्कीर्ण की तरह स्पष्ट प्रतीत होता है। वे विपुल यानी अत्यन्त गंभीर (गहरी) हैं। जो ऊपर से चौड़ी और नीचे से संकड़ी हो, उसे परिखा कहते हैं और जो ऊपर-नीचे समान हो, उसे खात (खाई) कहते हैं। यही परिखा और खाई में अन्तर है। **पागारऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवार-देसभागा**—प्रत्येक भवन में प्राकार, अट्टालक, कपाट, तोरण और प्रतिद्वार यथास्थान बने हुए हैं। प्राकार कहते हैं—साल या परकोटे को। उस पर भृत्यवर्ग के लिए बने हुए कमरों को अट्टालक या अटारी कहते हैं। वड़े दरवाजों (फाटकों) के निकट छोटे द्वार 'तोरण' कहलाते हैं। वड़े द्वारों के सामने जो छोटे द्वार रहते हैं; उन्हें प्रतिद्वार कहते हैं। **अउज्झा**=जहाँ शत्रुओं द्वारा युद्ध करना अशक्य हो, ऐसे अयोध्य भवन। **खेमा**—शत्रुकृत उपद्रव से रहित। **सिवा**—सदा मंगलयुक्त। **चंदण-घडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा**=जिन भवनों के प्रतिद्वारों के देशभाग में चन्दन के घड़ों से अच्छी तरह बनाए हुए तोरण हैं। **'सव्वरयणामया····लण्हा**=वे असुरकुमारों के भवन पूर्णरूप से रत्नमय, अच्छा—स्फटिक के समान स्वच्छ, सण्हा—स्निग्ध पुद्‌गलस्कन्धों से निर्मित, और कोमल होते हैं। **निप्पंका**=कलंक या कीचड़ से रहित। **निक्कंकडछाया**=वे भवन उपघात या आवरण से रहित (निष्कंकट) छाया यानी कान्ति वाले होते हैं। **समरिया**=उनमें से किरणों का जाल बाहर निकलता रहता है। **सउज्जोया**=उद्योतयुक्त अर्थात्—बाहर स्थित वस्तुओं को भी प्रकाशित करने वाले। **पासा-दीया**=मन को प्रसन्न करने वाले। **दरिसणिज्जा**=दर्शनीय=दर्शनयोग्य, जिन्हें देखने में नेत्र थकें नहीं। **दिव्वतुडियसद्दसंपणादिया**=दिव्य वीणा, वेणु, मृदंग आदि वाद्यों की मनोहर ध्वनि सदा गूंजते रहने वाले। **पडिरूवा**=प्रतिरूप—उनमें प्रतिक्षण नया-नया रूप दृष्टिगोचर होता है। **धवलपुप्फदंता**=कुंद आदि के श्वेतवर्ण-पुष्पों के समान श्वेत दांत वाले, **असियकेसा**= काले केश वाले। ये दांत और केश औदारिक पुद्‌गलों के नहीं, वैक्रिय के समझने चाहिए। **महिड्ढिया**=

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ५५ से ६३ तक

भवन, परिवार आदि महान् ऋद्धियों से युक्त। महज्जुइया=जिनके शरीरगत और आभूषणगत महती द्युति है। महब्बला=शारीरिक और प्राणगत महती शक्ति वाले। महाणुभागे=महान् अनुभाग—सामर्थ्यशील, अर्थात् जिनमें शाप और अनुग्रह का महान् सामर्थ्य हो। दिव्वेण संघयणेणं=दिव्य संहनन से। यहाँ देवों के संहनन का कथन शक्तिविशेष की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि संहनन अस्थिरचनात्मक (हड्डियों की रचना विशेष) होता है, देवों के हड्डियाँ नहीं होतीं। इसीलिए जीवाभिगमसूत्र में कहा है—'देवा असंघयणी, जम्हा तेसिं नेवट्ठी नेव सिरा....' (देव असंहनन होते हैं, क्योंकि उनके न तो हड्डी होती है, न ही नसें (शिराएँ) होती हैं, दिव्वाए पभाए=दिव्य प्रभा से, भवनावासगत प्रभा से। दिव्वाए छायाए—दिव्य छाया से—देवों के समूह की शोभा से। दिव्वाए अच्चीए=शरीरस्थ रत्नों आदि के तेज की ज्वाला से। दिव्वेण तेएण=शरीर से निकलते हुए दिव्य तेज से। दिव्वाए लेसाए=देह के वर्ण की दिव्य सुन्दरता से। आणाईसरसेणावच्चं=आज्ञा से ईश्वरत्व (आज्ञा पर प्रभुत्व) एवं सेनापतित्व करते हुए।

भवनवासियों के मुकुट और आभूषणों में अंकित चिह्न—मूलपाठ में असुरकुमारादि की पहिचान के लिए चिह्न बताए हैं। वे उनके मुकुटों तथा अन्य आभूषणों में अंकित होते हैं।[1]

समस्त वाणव्यन्तर देवों के स्थानों की प्ररूपणा—

१८८. कहि णं भंते ! वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! वाणमंतरा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वि एगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भोमेज्जा णगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतर-विउलगंभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंत-सयग्घि-मुसल-मुसुंढि-परियरिया अओज्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितला उवचित-चंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविकिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिता पडाग-मालाउलाभिरामा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका णिक्कंकड-च्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा परिवसंति। तं जहा—पिसाया १ भूया २ जक्खा ३ रक्खसा ४ किन्नरा ५ किंपुरिसा ६ भुयगवइणो य महाकाया ७ गंधव्व-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ८५ से ९५ तक

गणा य निउणगंधव्वगीतरइणो ८ अणवण्णिय १-पणवण्णिय २-इसिवाइय ३-भूयवाइय ४-कंदित ५-महाकंदिया य ६-कुहंड ७-पयगदेवा ।

८ चंचलचलचवलचित्तकीलण-दवप्पिया गहिरहसिय-गीय-णच्चणरई वणमाला-मेल-मउल-कुंडल-सच्छंदविउव्वियाभरणचारुभूसणधरा सव्वोउयसुरभिकुसुमसुरइयपलंबसोहंतकंतवियसंतचित्त-वणमालरइयवच्छा कामकामा[1] कामरूवदेहधारी णाणाविहवण्णरागवरवत्थचित्तचिल्ल[ल]गणियंसणा विविहदेसिणेवच्छगहियवेसा पमुइयकंदप्प-कलह-केलि-कोलाहलप्पिया हास-बोलबहुला असि-मोग्गर-सत्ति-कोंत-हत्था अणेगमणि-रयणविविहणिजुत्तविचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढीया महज्जुतीया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडितथंभियभुया अंगय-कुंडल-मट्ठगंडयलकन्नपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाण-गपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भोमेज्जगणगरावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेव-साहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महतरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतणट्ट-गीय-वाइयतंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

[१८८ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८८ उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर से एक सौ योजन अवगाहन (प्रवेश) करके तथा नीचे भी एक सौ योजन छोड़ कर, बीच में आठ सौ योजन (प्रदेश) में, वाणव्यन्तर देवों के तिरछे असंख्यात भौमेय (भूमिगृह के समान) लाखों नगरावास हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे भौमेयनगर बाहर से गोल और अंदर से चौरस तथा नीचे से कमल की कर्णिका के आकार में संस्थित हैं । (उन नगरावासों के चारों ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयां एवं परिखाएं खुदी हुई हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है । (यथास्थान) प्राकारों, अट्टालकों, कपाटों, तोरणों प्रतिद्वारों से (वे नगरावास) युक्त हैं । (तथा वे नगरावास) विविध यन्त्रों, शतघ्नियों, मूसलों एवं मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से परिवेष्टित (घिरे हुए) होते हैं । (वे शत्रुओं द्वारा) अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजयशील, सदागुप्त (सुरक्षित), अडतालीस कोष्ठकों (कमरों) से रचित, अडतालीस वनमालाओं से सुसज्जित, क्षेममय, शिव (मंगल)मय, और किंकर देवों के दण्डों से उपरक्षित है । लिपे-पुते होने के

१. पाठान्तर—मलय वृत्ति में 'कामगमा' पाठ है, जिसका अर्थ किया है—काम-इच्छानुसार गम—प्रवृत्ति करने वाले अर्थात्—स्वेच्छाचारी ।

कारण (वे नगरावास) प्रशस्त रहते हैं। (उन नगरावासों पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पाँचों अंगुलियों (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वार-देश के भाग चन्दन के घड़ों से भलीभांति निर्मित होते हैं; (वे नगरावास) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एवं गोलाकार पुष्पमालाओं के समूह से युक्त होते हैं। पांच वर्णों के सरस सुगन्धित मुक्त पुष्पपुंज से उपचार (अर्चन)-युक्त होते हैं। वे काले अगर, उत्तम चीड़ा, लोवान, गुग्गल आदि के धूप की महकती हुई सौरभ से रमणीय तथा सुगन्धित वस्तुओं की उत्तमगन्ध से सुगन्धित, मानो गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान (वे नगरावास लगते हैं।) अप्सरागण के संघों से व्याप्त, दिव्य वाद्यों की ध्वनि से निनादित, पताकाओं की पंक्ति से मनोहर, सर्वरत्नमय, स्फटिकसम स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे, पौंछे, रजरहित, निर्मल, निष्पंक, आवरण-रहित छाया (कान्ति) वाले, प्रभायुक्त किरणों से युक्त, उद्योतयुक्त, (प्रकाशमान), प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप होते हैं। इन (पूर्वोक्त नगरावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों के स्थान कहे गए हैं।

(वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; जहाँ कि बहुत-से वाणव्यन्तरदेव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१—पिशाच, २—भूत, ३—यक्ष, ४—राक्षस, ५—किन्नर, ६—किम्पुरुष, ७—महाकाय भुजगपति तथा ८—निपुणगन्धर्व-गीतों में अनुरक्त गन्धर्वगण। (इनके आठ अवान्तर भेद—)

१—अणपर्णिक, २—पणपर्णिक, ३—ऋषिवादित, ४—भूतवादित, ५—क्रन्दित, ६—महाक्रन्दित, ७—कूष्माण्ड और ८—पतंगदेव।

ये अनवस्थित चित्त के होने से अत्यन्त चपल, क्रीडा-तत्पर और परिहास—(द्रव) प्रिय होते हैं। गंभीर हास्य, गीत और नृत्य में इनकी अनुरक्ति रहती है। वनमाला, कलंगी, मुकुट, कुण्डल तथा इच्छानुसार विकुर्वित आभूषणों से वे भलीभांति मण्डित रहते हैं। सभी ऋतुओं में होने वाले सुगन्धित पुष्पों से सुरचित, लम्बी, शोभनीय, सुन्दर एवं खिलती हुई विचित्र वनमाला से (उनका) वक्षस्थल सुशोभित रहता है। अपनी कामनानुसार काम-भोगों का सेवन करने वाले, इच्छानुसार रूप एवं देह के धारक, नाना प्रकार के वर्णों वाले, श्रेष्ठ, विचित्र चमकीले वस्त्रों के धारक, विविध देशों की वेशभूषा धारण करने वाले होते हैं, इन्हें प्रमोद, कन्दर्प (कामक्रीड़ा) कलह, केलि (क्रीड़ा) और कोलाहल प्रिय है। इनमें हास्य और विवाद (बोल) बहुत होता है। इन के हाथों में खड्ग, मुद्गर, शक्ति और भाले भी रहते हैं। ये अनेक मणियों और रत्नों के विविध चिह्न वाले होते हैं। ये महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाव या महासामर्थ्यशाली, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले होते हैं। कड़े और बाजूबंद से इनकी भुजाएँ मानो स्तब्ध रहती हैं। अंगद और कुण्डल इनके कपोलस्थल को स्पर्श किये रहते हैं। ये कानों में कर्णपीठ धारण किये रहते हैं, इनके हाथों में विचित्र आभूषण एवं मस्तक में विचित्र मालाएँ होती हैं। ये कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी माला एवं अनुलेपन धारण किये रहते हैं। इनके शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होते हैं। ये लम्बी वनमालाएँ धारण करते हैं तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एवं दिव्य लेश्या से दशों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए वे (वाणव्यन्तर देव) वहाँ (पूर्वोक्त स्थानों में) अपने-अपने लाखों भौमेय नगरावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपनी-

अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से वाणव्यन्तर देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व एवं सेनापतित्व करते-कराते तथा उनका पालन करते-कराते हुए वे (वाणव्यन्तर देवगण) महान् उत्सव के साथ नृत्य, गीत और वीणा, तल, ताल (कांसा), त्रुटित, घनमृदंग आदि वाद्यों को बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य उपभोग्य भोगों को भोगते हुए रहते हैं।

१८६. [१] कहि णं भंते ! पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भोमेज्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवण्णओ (सु. १७७) तहा भाणितव्वो जाव पडिरूवा। एत्थ णं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे पिसाया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा ओहिया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-१ प्र.] भंते ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिचाश देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

[१८९-१ उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर के एक सौ योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन (प्रदेश) को छोड़कर, बीच के आठ सौ योजन (प्रदेश) में, पिशाच देवों के तिरछे असंख्यात भूगृह के समान लाखों (भौमेय) नगरावास हैं, ऐसा कहा है।

वे भौमेय नगर (नगरावास) बाहर से गोल (वर्तुल), हैं, इत्यादि सब वर्णन जैसे सू. १७७ में सामान्य भवनों का कहा, वैसा ही यहाँ यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (नगरावासों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिशाच देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; जहाँ कि बहुत-से पिशाच देव निवास करते हैं। जो महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू. १८८ में) सामान्य वाणव्यन्तरों का कहा गया है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक जान लेना चाहिए।

[२] काल-महाकाला यऽत्थ दुहे पिसायइंदा पिसायरायाणो परिवसंति महिड्ढिया महज्जुइया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-२] इन्हीं (पूर्वोक्त नगरावासों) में जो दो पिशाचेन्द्र पिशाचराज—काल और महाकाल, निवास करते हैं, वे 'महर्द्धिक हैं, महाद्युतिमान हैं,' इत्यादि आगे का समस्त वर्णन, यावत् 'विचरण करते हैं' ('विहरंति') तक सू. १८८ के अनुसार कहना चाहिए।

१९०. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उर्वार एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससत-सहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं भोमेज्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवण्णओ (सु. १७७) तहा भाणियव्वो जाव पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा ओहिया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१६०-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! दाक्षिणात्य पिशाच देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१६०-१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, सुमेरु पर्वत के दक्षिण में, इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर का एक सौ योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन छोड़ कर बीच में जो आठ सौ योजन (प्रदेश) हैं, उनमें दाक्षिणात्य पिशाच देवों के तिरछे असंख्येय भूमिगृह-जैसे (भौमेय) लाखों नगरावास हैं, ऐसा कहा है।

वे (भौमेय) नगर बाहर से गोल हैं, इत्यादि सब कथन जैसे (सू. १७७ में) औधिक (सामान्य) भवनों का कहा, उसी प्रकार यहाँ भी यावत्—'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (पूर्वोक्त नगरावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। इन्हीं (स्थानों) में बहुत-से दाक्षिणात्य पिशाच देव निवास करते हैं, 'वे महर्द्धिक हैं', इत्यादि समग्र वर्णन जैसे (सू. १८८ में) सामान्य वाणव्यन्तर देवों का किया है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक करना चाहिए।

[२] काले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसति महिड्ढीए (सु. १८८) जाव पभासेमाणे। से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जगनगरावाससतसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हमग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं सोलसण्हं आतरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं (सु. १८८) जाव विहरति।

[१६०-२] इन्हीं (पूर्ववर्णित स्थानों) में पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल निवास करते हैं, जो महर्द्धिक है, (इत्यादि सब वर्णन सू. १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासेमाणे') तक समझना चाहिए। वह (दाक्षिणात्य पिशाचेन्द्र काल) तिरछे असंख्यात भूमिगृह जैसे लाखों नगरावासों का, चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर देवों और देवियों का 'आधिपत्य करता हुआ' यावत् 'विचरण करता है' (विहरति) तक (आगे का सारा कथन सू. १८८ के अनुसार करना चाहिए।)

१९१. [१] उत्तरिल्लाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहेव दाहिणिल्लाणं वत्तव्वया (सु. १९० [१]) तहेव उत्तरिल्लाणं पि । नवरं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं ।

[१९१-१ प्र.] भगवन् ! उत्तर दिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उत्तर दिशा के पिशाच देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९१-१ उ.] गौतम ! जैसे (सू. १९१-१ में) दक्षिण दिशा के पिशाच देवों का वर्णन किया है, वैसे ही उत्तर दिशा के पिशाच देवों का वर्णन समझना चाहिए । विशेष यह है कि (इनके नगरावास) मेरुपर्वत के उत्तर में हैं ।

[२] महाकाले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसति जाव (सु. १९० [२]) विहरति ।

[१९१-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में (उत्तर दिशा का) पिशाचेन्द्र पिशाचराज—महाकाल निवास करता है, (जिसका सारा वर्णन) यावत् 'विचरण करता है' (विहरति) तक, सू. १९०-२ के अनुसार (समझना चाहिए ।)

१९२. एवं जहा पिसायाणं (सु. १८९-१९०) तहा भूयाणं पि जाव गंधव्वाणं । णवरं इंदेसु णाणत्तं भाणियव्वं इमेण विहिणा—भूयाणं सुरूव-पडिरूवा, जक्खाणं पुण्णभद्द-माणिभद्दा, रक्खसाणं भीम-महाभीमा, किण्णराणं किण्णर-किंपुरिसा, किंपुरिसाणं सप्पुरिस-महापुरिसा, महोरगाणं अइकाय-महाकाया, गंधव्वाणं गीतरती-गीतजसे जाव (सु. १८८) विहरति ।

काले य महाकाले १ सुरूव पडिरूव २ पुण्णभद्दे य ।
अमरवइ माणिभद्दे ३ भीमे य तहा महाभीमे ४ ।। १४९ ।।
किण्णर किंपुरिसे खलु ५ सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे ६ ।
अइकाय महाकाए ७ गीयरई चेव गीतजसे ८ ।। १५० ।।

[१९२] इस प्रकार जैसे (सू. १८९-१९० में) (दक्षिण और उत्तर दिशा के) पिशाचों और उनके इन्द्रों (के स्थानों) का वर्णन किया गया, उसी तरह भूत देवों का यावत् गन्धर्वो तक का वर्णन समझना चाहिए । विशेष—इनके इन्द्रों में इस प्रकार से भेद (अन्तर) कहना चाहिए । यथा—भूतों के (दो इन्द्र)—सुरूप और प्रतिरूप, यक्षों के (दो इन्द्र)—पूर्णभद्र और माणिभद्र, राक्षसों के (दो इन्द्र)—भीम और महाभीम, किन्नरों के (दो इन्द्र)—किन्नर और किम्पुरुष, किम्पुरुषों के (दो इन्द्र) सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगों के (दो इन्द्र)—अतिकाय और महाकाय तथा गन्धर्वो के (दो इन्द्र)—गीतरति और गीतयश; (आगे का इनका सारा वर्णन) सूत्र १८८ के अनुसार, यावत् 'विचरण करता है, (विहरति)' तक समझ लेना चाहिए ।

[संग्रहगाथाओं का अर्थ—] (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के प्रत्येक के दो-दो इन्द्र क्रमशः इस प्रकार हैं)—१. काल और महाकाल, २. सुरूप और प्रतिरूप, ३. पूर्णभद्र और माणिभद्र इन्द्र, ४. भीम तथा महाभीम, ५. किन्नर और किम्पुरुष, ६. सत्पुरुष और महापुरुष, ७. अतिकाय और महाकाय तथा ८. गीतरति और गीतयश ।

१९३. [१] कहि णं भंते ! अणवन्नियाणं देवाणं [पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं] ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! अणवण्णिया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं हेट्ठा य एगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसतेसु, एत्थ णं अणवण्णियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा णगरावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं जाव (सु. १८८) पडिरूवा। एत्थ णं अणवण्णियाणं देवाणं ठाणा। उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे अणवन्निया देवा परिवसंति महड्ढिया जहा पिसाया (सु. १८९[१]) जाव विहरंति।

[१९३-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अणपर्णिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! अणपर्णिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९३-१ उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर और नीचे एक-एक सौ योजन छोड़ कर मध्य में आठ-सौ योजन (प्रदेश) में, अणपर्णिक देवों के तिरछे असंख्यात लाख नगरावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे नगरावास (सू. १८८ के अनुसार) यावत् प्रतिरूप तक पूर्ववत् समझने चाहिए। इन (पूर्वोक्त स्थानों) में अणपर्णिक देवों के स्थान हैं। (वे स्थान) उपपात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, स्वस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से अणपर्णिक देव निवास करते हैं, वे महर्द्धिक हैं, (इत्यादि आगे का समग्र वर्णन) (सू. १८९-१ में) जैसे पिशाचों का वर्णन है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक (समझना चाहिए।)

[२] सन्निहिय-सामाणा यऽत्थ दुवे अणवण्णिदा अणवण्णियकुमाररायाणो परिवसंति महिड्ढीया जहा काल-महाकाला (सु. १८९ [२])।

[१९३-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में दोनों अणपर्णिकेन्द्र अणपर्णिककुमारराज—सन्निहित और सामान निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सारा वर्णन सू. १८९-२ में वर्णित) काल और महाकाल की तरह (समझना चाहिए।)

१९४. एवं जहा काल-महाकालाणं दोण्हं पि दाहिणिल्लाणं उत्तरिल्लाण य भणिया (सु. १९०[२],१९१[२]) तहा सन्निहिय-सामाणाईणं पि भाणियव्वा। संगहणिगाहा—

अणवन्निय १ पणवन्निय २ इसिवाइय ३ भूयवाइया चेव ४।
कंद ५ महाकंदिय ६ कुहंडे ७ पययदेवा ८ इमे इंदा ॥ १५१ ॥
सण्णिहिया सामाणा १ धाय विधाए २ इसी य इसिपाले ३।
ईसर महेसरे या ४ हवइ सुवच्छे विसाले य ५॥ १५२ ॥
हासे हासरई वि य ६ सेते य तहा भवे महासेते ७।
पयते पययपई वि य ८ नेयव्वा आणुपुव्वीए ॥ १५३ ॥

[१९४] इस प्रकार जैसे दक्षिण और उत्तर दिशा के (पिशाचेन्द्र) काल और महाकाल के सम्बन्ध में जैसे (क्रमशः सूत्र १९०-२ और १९१-२ में) कहा है, उसी प्रकार सन्निहित और सामान आदि (दक्षिण और उत्तर दिशा के अणपर्णिक आदि देवों के समस्त इन्द्रों) के विषय में कहना चाहिए।

[संग्रहणी गाथाओं का अर्थ—] (वाणव्यन्तर देवों के आठ अवान्तर भेद—) १. अणपर्णिक, २. पणपर्णिक, ३. ऋषिवादिक, ४ भूतवादिक, ५ क्रन्दित, ६. महाक्रन्दित, ७ कुष्माण्ड और ८. पतंगदेव। इनके (प्रत्येक के दो-दो) इन्द्र ये हैं—॥१५१॥ १. सन्निहित और सामान, २. धाता और विधाता, ३. ऋषि और ऋषिपाल, ४. ईश्वर और महेश्वर, ५. सुवत्स और विशाल ॥१५२॥ ६. हास और हासरति, तथा ७. श्वेत और महाश्वेत, और ८. पतंग और पतंगपति क्रमशः जानने चाहिए ॥१५३॥

विवेचन—समस्त वाणव्यन्तर देवों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. १८८ से १९४ तक) में सामान्य वाणव्यन्तर देवों तथा पिशाच आदि उनके मूल आठ भेदों तथा अणपर्णिक आदि आठ अवान्तर भेदों एवं तत्पश्चात् इनके दक्षिण और उत्तर दिशा के देवों तथा इन सोलह के प्रत्येक के दो-दो इन्द्रों के स्थानों, उनकी विशेषताओं, उन सबकी प्रकृति, रुचि, शरीर-वैभव, तथा अन्य ऋद्धि आदि का स्पष्ट वर्णन किया गया है।[1]

ज्योतिष्कदेवों के स्थानों की प्ररूपणा—

१९५. [१] कहि णं भंते ! जोइसियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! जोइसिया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्ताणउते जोयणसते उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरे जोयणसतबाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोतिसविसये, एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोइसियविमाणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं विमाणा अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिता सव्वफलियामया अब्भुग्गयमूसियपहसिया इव विविहमणि-कणग-रतणभत्तिचित्ता वाउद्धुतविजयवेजयंतीपडाग-छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतल-मणुलिहमाणसिहरा जालंतररतण-पंजरुम्मिलिय व्व मणि-कणगथूभियागा वियसियसयवत्तपुंडरीया (य-)तिलय-रयणद्धचंदचित्ता णाणामणिमयदामालंकिया अंतो बहिं च सण्हा तवणिज्जरुइलवालुया-पत्थडा सुहफासा सस्सिरीया सुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

एत्थ णं जोइसियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखिज्ज-तिभागे।

तत्थ णं बहवे जोइसिया देवा परिवसंति, तं जहा—बहस्सती चंदा सूरा सुक्का सणिच्छरा राहू धूमकेऊ बुहा अंगारगा तत्ततवणिज्जकणगवण्णा, जे य गहा जोइसम्मि चारं चरंति केतू य गइरइया अट्ठावीसतिविहा य नक्खत्तदेवयगणा, णाणासंठाणसंठियाओ य पंचवण्णाओ तारयाओ, ठितलेस्सा चारिणो अविस्सामममंडलगई पत्तेयणामंकपागडियचिंधमउडा महिड्ढिया जाव (सु. १८८) पभासेमाणा।

---

१. (क) पण्णवणा सुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ६४ से ६७ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ९६-९७

ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१९५-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक ज्योतिष्क देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भंते ! ज्योतिष्क देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९५-१ उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग से सात सौ नव्वे (७९०) योजन की ऊंचाई पर एक सौ दस योजन विस्तृत एवं तिरछे असंख्यात योजन में ज्योतिष्क क्षेत्र है, जहाँ ज्योतिष्क देवों के तिरछे असंख्यात लाख ज्योतिष्कविमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान (विमानावास) आधे कवीठ (कपित्थ) के आकार के हैं और पूर्णरूप से स्फटिकमय हैं। वे सामने से चारों ओर ऊपर उठे (निकले) हुए, सभी दिशाओं में फैले हुए तथा प्रभा से श्वेत हैं। विविध मणियों, स्वर्ण और रत्नों की छटा से वे चित्र-विचित्र हैं; हवा से उड़ी हुई विजय-वैजयन्ती, पताका, छत्र पर छत्र (अतिछत्र) से युक्त हैं, वे बहुत ऊँचे, गगनतलचुम्बी शिखरों वाले हैं। (उनकी) जालियों के बीच में लगे हुए रत्न ऐसे लगते हैं, मानों पींजरे से बाहर निकाले गए हों। वे मणियों और रत्नों की स्तूपिकाओं से युक्त हैं। उनमें शतपत्र और पुण्डरीक कमल खिले हुए हैं। तिलकों तथा रत्नमय अर्धचन्द्रों से वे चित्र-विचित्र हैं तथा नानामणिमय मालाओं से सुशोभित हैं। वे अंदर और बाहर से चिकने हैं। उनके प्रस्तट (पाथड़े) सोने की रुचिर बालू वाले हैं। वे सुखद स्पर्श वाले, श्री से सम्पन्न, सुरूप, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं प्रतिरूप (अतिसुन्दर) हैं।

इन (विमानावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त ज्योतिष्कदेवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

वहाँ (ज्योतिष्क विमानावासों में) बहुत-से ज्योतिष्क देव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं—बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध एवं अंगारक (मंगल), ये तपे हुए तपनीय स्वर्ण के समान वर्ण वाले हैं (अर्थात्—ये किञ्चित रक्त वर्ण के हैं।) और जो ग्रह ज्योतिष्कक्षेत्र में गति (संचार) करते हैं तथा गति में रत रहने वाला केतु, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्रदेवगण, नाना आकारों वाले, पांच वर्णों के तारे तथा स्थितलेश्या वाले, संचार करने वाले, अविश्रान्त (बिना रुके) मंडल (वृत्त, गोलाकार) में गति करने वाले, (ये सभी ज्योतिष्क देव हैं।) (इन सब में से) प्रत्येक के मुकुट में अपने-अपने नाम का चिह्न व्यक्त होता है। 'ये महर्द्धिक होते हैं,' इत्यादि सब वर्णन (सू. १८८ के अनुसार), यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणे') तक (पूर्ववत् समझना चाहिए।)

वे (ज्योतिष्क देव) वहाँ (ज्योतिष्कविमानावासों में) अपने-अपने लाखों विमानावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपनी-अपनी सपरिवार अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परि-षदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से ज्योतिष्क देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व),

करते हुए ····(आगे का समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक सू. १८८ के अनुसार समझना चाहिए ।

[२] चंदिम-सूरिया यऽत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसियरायाणो परिवसंति महिड्ढिया जाव (सु. १८८) पभासेमाणा । ते णं तत्थ साणं साणं जोइसियविमाणावाससतसहस्साणं चउण्हं सामाणिय-साहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरंति ।

[१९५-२] इन्हीं (पूर्वोक्त ज्योतिष्कविमानावासों) में दो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज—चन्द्रमा और सूर्य—निवास करते हैं; 'जो महर्द्धिक हैं' (इत्यादि सब वर्णन सू. १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणे') (तक पूर्ववत् समझना चाहिए ।) वे वहाँ अपने-अपने लाखों ज्योतिष्कविमानावासों का, चार हजार सामानिक देवों का, सपरिवार चार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से ज्योतिष्क देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व करते हुए यावत् विचरण करते हैं ।

विवेचन—ज्योतिष्क देवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू. १९५-१, २) में ज्योतिष्क देवों तथा उनके परिवारों एवं उनके चन्द्र, सूर्य नामक दो इन्द्रों के स्थानों, उनकी प्रकृति, विशेषता, प्रभुता एवं ऐश्वर्य आदि की प्ररूपणा की गई है ।[1]

सर्व वैमानिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा—

१९६. कहि णं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! वेमाणिया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-ताराख्वाणं बहूइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुत-गेवेज्ज-अणुत्तरेसु एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं चउरासीइ विमाणावाससतसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खातं ।

ते णं विमाणा सव्वरतणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता । तिसु वि लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

तत्थ णं बहवे वेमाणिया देवा परिवसंति । तं जहा—सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-गेवेज्जगा-ऽणुत्तरोववाइया देवा ।

---

१९. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ९९
(ख) पण्णवणासुत्तं भा. १ (मूलपाठ) पृ. ६७-६८

ते णं मिग १-महिस २-वराह ३-सीह ४-छगल ५-दद्दुर ६-हय ७-गयवइ ८-भुयग ९-खग्ग १०-उसभंक ११-विडिम १२-पागडियचिंधमउडा पसढिलवरमउड-किरीडधारिणो वर-कुंडलुज्जोइयाणणा मउडदित्तसिरया रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुहवण्ण-गंध-फासा उत्तमवेउव्विणो पवरवत्थ-गंध-मल्लाणुलेवणधरा महिड्ढीया महाजुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्त-माला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाऽणुलेवणा भासरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतनट्ट-गीय-वाइततंती-तल-ताल-तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१९६ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! वैमानिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९६ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्कों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस विमान एवं विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाए हुए, रजरहित, निर्मल, पंक-(या कलंक) रहित, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय-रूपसम्पन्न और प्रतिरूप (अप्रतिम सुन्दर) हैं। इन्हीं (विमानावासों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उनमें बहुत-से वैमानिक देव निवास करते हैं। वे (वैमानिक देव) इस प्रकार हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक एवं (पांच) अनुत्तरौपपातिक देव।

वे (सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमशः)—१. मृग, २. महिष, ३. वराह (शूकर), ४. सिंह, ५. बकरा (छगल), ६. दर्दुर (मेंढक), ७. हय (अश्व), ८. गजराज, ९. भुजंग (सर्प), १०. खड्ग, (चौपाया वन्य जानवर या गेंडा), ११. वृषभ (बैल) और १२. विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलों से उद्योतित मुख वाले, मुकुट

के कारण शोभायुक्त, रक्त आभायुक्त, कमल के पत्र के समान गौरे, श्वेत, सुखद वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले, उत्तम विक्रियाशक्तिधारी, प्रवर वस्त्र, गन्ध, माल्य और अनुलेपन के धारक, महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले हैं। कड़े और बाजूबंदों से मानो भुजाओं को उन्होंने स्तब्ध कर रखी हैं, अंगद, कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोलस्थल को सहला रहे हैं, कानों में वे कर्णपीठ और हाथों में विचित्र कराभूषण धारण किये हुए हैं। विचित्र पुष्पमालाएँ मस्तक पर शोभायमान हैं। वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन धारण किये हुए होते हैं। उनका शरीर (तेज से) देदीप्यमान होता है। वे लम्बी वनमाला धारण किये हुए होते हैं तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से दिव्य संहनन से, दिव्य संस्थान से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से, दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए; वे (वैमानिक देव) वहाँ अपने-अपने लाखों विमानावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंशक देवों का, अपने-अपने लोकपालों का, सपरिवार अपनी-अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व तथा सेनापतित्व करते-कराते और पालते-पलाते हुए निरन्तर होने वाले महान् नाट्य, गीत तथा कुशल वादकों द्वारा बजाये जाते हुए वीणा, तल, ताल, त्रुटित, घनमृदंग आदि वाद्यों की समुत्पन्न ध्वनि के साथ दिव्य शब्दादि कामभोगों को भोगते हुए विचरण करते हैं।

१९७. [१] कहि णं भंते ! सोहम्मगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सोहम्मगदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिम-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूणि जोयणसताणि बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सोहम्मे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणवित्थिण्णे अद्धचंद-संठाणसंठिते अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खंभेणं, असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं, सव्वरयणामए अच्छे जाव (सु. १९६) पडिरूवे। तत्थ णं सोहम्मगदेवाणं बत्तीसं विमाणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पडिरूवा।

तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभागे पंच वडेंसया पण्णत्ता। तं जहा—असोगवडेंसए १ सत्तिवण्णवडेंसए २ चंपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ सोहम्मवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पडिरूवा। एत्थ णं सोहम्मगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तीसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे सोहम्मगदेवा परिवसंति महिड्ढीया जाव (सु १९६) पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं एवं जहेव ओहियाणं

(सु. १९६) तहेव एतेसिं पि भाणितव्वं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मग-कप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[१९७-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मकल्पगत देवों के स्थान कहाँ कहे हैं? भगवन्! सौधर्मकल्पगत देव कहाँ निवास करते हैं?

[१९७-१ उ.] गौतम! जम्बूद्वीपनामक द्वीप में सुमेरु पर्वत के दक्षिण में, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्कों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटा-कोटी योजन ऊपर दूर जाने पर सौधर्म नामक कल्प कहा गया है। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा, उत्तर दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्द्ध चन्द्र के आकार में संस्थित, अर्चियों—ज्योतियों की माला तथा दीप्तियों की राशि के समान वर्ण-कान्ति वाला है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई असंख्यात कोटि योजन ही नहीं, बल्कि असंख्यात कोटाकोटि योजन की है, तथा परिधि भी असंख्यात कोटाकोटि योजन की है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, (इत्यादि सब वर्णन,) यावत् 'प्रतिरूप है' तक सू. १९६ के अनुसार (समझना चाहिए।) उस (सौधर्मकल्प) में सौधर्मक देवों के बत्तीस लाख विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, (इत्यादि सब वर्णन) सू. १९६ के अनुसार यावत् प्रतिरूप हैं, तक, समझना चाहिए।

इन विमानों के बिलकुल मध्यदेशभाग में (ठीक बीचोंबीच) पांच अवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१-अशोकावतंसक, २-सप्तपर्णावतंसक, ३-चंपकावतंसक ४-चूतावतंसक और इन चारों के मध्य में ५-पांचवां सौधर्मावतंसक। ये अवतंसक पूर्णतया रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार समझ लेना चाहिए। इन्हीं (अवतंसकों) में पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मक देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। उनमें बहुत-से सौधर्मक देव निवास करते हैं, जो कि 'महर्द्धिक हैं' (इत्यादि शेष वर्णन) यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणा') तक (सू. १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् कहना चाहिए।) वे वहाँ अपने-अपने लाखों विमानों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, इस प्रकार जैसे औधिक (सामान्य) वैमानिकों के विषय में (सू. १९६ में) कहा है, वैसे ही इनके विषय में भी कहना चाहिए। यावत् हजारों आत्मरक्षक देवों का, तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व इत्यादि यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक (सू. १९६ के अनुसार) कहना चाहिए।

[२] सक्के यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति वज्जपाणी पुरंदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाधिवती बत्तीसविमाणावाससतसहस्साधिवती एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबर-वत्थधरे आलइयमाल-मउडे णवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे महिड्ढिए जाव (सु. १९६) पभासेमाणे।

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससतसहस्साणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं चउरासीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मगकप्प-वासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे जाव (सु. १९६) विहरइ।

[१९७-२] इन्हीं (पूर्वोक्त स्थानों) में देवेन्द्र देवराज शक्र निवास करता है; जो वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्द्धलोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों का अधिपति है। ऐरावत हाथी जिसका वाहन है, जो सुरेन्द्र है, रजरहित स्वच्छ वस्त्रों का धारक है, संयुक्त माला और मुकुट पहनता है तथा जिसके कपोलस्थल नवीन स्वर्णमय, सुन्दर, विचित्र एवं चंचल कुण्डलों से विलिखित होते हैं। वह महर्द्धिक है, (इत्यादि आगे का सब वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ, तक (सू. १९६ के अनुसार) पूर्ववत् (जानना चाहिए।)

वह (देवेन्द्र देवराज शक्र) वहाँ बत्तीस लाख विमानावासों का, चौरासी हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, आठ सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चार चौरासी हजार—अर्थात्—तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य एवं अग्रेसरत्व करता हुआ, (इत्यादि सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक पूर्ववत् (समझना चाहिए।)

१९८. [१] कहि णं भंते ! ईसाणगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! ईसाणगदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वतस्स उत्तरेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं जाव (सु. १९७ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं ईसाणे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणविच्छिण्णे एवं जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]) जाव पडिरूवे।

तत्थ णं ईसाणगदेवाणं अट्ठावीसं विमाणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव पडिरूवा।

तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—अंकवडेंसए १ फलिहवडेंसए २ रतणवडेंसए ३ जातरूववडेंसए ४ मज्झे एत्थ ईसाणवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु. १९६) पडिरूवा।

एत्थ णं ईसाणाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे। सेसं जहा सोहम्मगदेवाणं जाव (सु. १९७ [१]) विहरंति।

[१९८-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ईशानक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! ईशानक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९८-१ उ.] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुमेरुपर्वत के उत्तर में, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम और रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्कों से अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर ईशान नामक कल्प (देवलोक) कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण है, इस प्रकार (शेष वर्णन) सौधर्म (कल्प के वर्णन) के समान (सू. १९७-१ के अनुसार) यावत्—'प्रतिरूप है' तक समझना चाहिए।

उस (ईशानकल्प) में ईशान देवों के अट्ठाईस लाख विमानावास हैं । वे विमान सर्व-रत्नमय यावत् (पूर्ववत्) प्रतिरूप हैं ।

उन विमानावासों के ठीक मध्यदेशभाग में पांच अवतंसक कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं— १-अंकावतंसक, २-स्फटिकावतंसक, ३-रत्नावतंसक, ४-जातरूपावतंसक और इनके मध्य में ५-ईशानावतंसक । वे (सब) अवतंसक पूर्णरूप से रत्नमय यावत् प्रतिरूप हैं, (यह सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार जानना चाहिए ।)

इन्हीं (अवतंसकों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक ईशान देवों के स्थान कहे गए हैं । (वे स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं । शेष सब (वर्णन) सौधर्मक देवों के (सू. १९७-१ में कथित) (वर्णन के) अनुसार यावत् विचरण करते हैं ('विहरंति') तक (समझना चाहिए ।)

[२] ईसाणे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति सूलपाणी वसभवाहणे उत्तरड्ढलोगाधिवती अट्ठावीसविमाणावाससतसहस्साधिवती अरयंवरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस्स (सु. १९७ [२]) जाव पभासेमाणे ।

से णं तत्थ अट्ठावीसाए विमाणावाससतसहस्साणं असीतीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं असीतीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं ईसाणकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे जाव (सु. १९६) विहरति ।

[१९८-२] इस ईशानकल्प में देवेन्द्र देवराज ईशान निवास करता है, जो शूलपाणि, वृषभ-वाहन, उत्तरार्द्धलोकाधिपति, अट्ठाईस लाख विमानावासों का अधिपति, रजरहित स्वच्छ वस्त्रों का धारक है; शेष वर्णन (सू. १९७-२ में अंकित) शक्र के (वर्णन के) समान, यावत् 'प्रभासित करता हुआ' तक, (समझना चाहिए ।)

वह (ईशानेन्द्र) वहाँ अट्ठाईस लाख विमानावासों का, अस्सी हजार सामानिक देवों का, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों का, चार लोकपालों का, आठ सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदों का, सात सेनाओं का, सात सेनाधिपति देवों का, चार अस्सी हजार, अर्थात्—तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत-से ईशानकल्पवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, अग्रेसरत्व करता हुआ, (आगे का सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (पूर्ववत् समझना चाहिए ।)

१९९. [१] कहि णं भंते ! सणंकुमारदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सणंकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! सोहम्मस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसताइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं सणंकुमारे णामं कप्पे पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिण-वित्थिण्णे जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]) जाव पडिरूवे ।

एत्थ णं सणंकुमाराणं देवाणं बारस विमाणावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु. १९६) पडिरूवा। तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभागे पंच वडेंसगा पण्णत्ता। तं जहा—असोगवडेंसए १ सत्तिवण्णवडेंसए २ चंपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ सणंकुमारवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पडिरूवा। एत्थ णं सणंकुमारदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे सणंकुमारा देवा परिवसंति महिड्ढिया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा विहरंति। णवरं अग्गमहिसीओ णत्थि।

[१९९-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सनत्कुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९९-१ उ.] गौतम ! सौधर्म-कल्प के ऊपर समान (पूर्वापर दक्षिणोत्तररूप) पक्ष (पार्श्व) और समान प्रतिदिशा (विदिशा) में बहुत योजन, अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, अनेक करोड़ योजन और अनेक कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाने पर वहाँ सनत्कुमार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण है, (इत्यादि सब वर्णन) सौधर्मकल्प के (सू. १९७-१ में उल्लिखित वर्णन के) अनुसार यावत् 'प्रतिरूप है' तक (समझना चाहिए।)

इसी (सनत्कुमारकल्प) में सनत्कुमार देवों के बारह लाख विमान हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, यावत् 'प्रतिरूप है', तक (सू.१९६ को अनुसार पूर्ववत् वर्णन समझना चाहिए।) उन विमानों के एकदम बीचोंबीच में पांच अवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१—अशोकावतंसक, २—सप्तपर्णावतंसक, ३—चंपकावतंसक, ४—चूतावतंसक और इनके मध्य में ५—सनत्कुमारावतंसक है। वे अवतंसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं, (तक का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् समझना चाहिए।) इन (अवतंसकों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। उन (स्थानों) में बहुत-से सनत्कुमार देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सब वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रभासित करते हुए विचरण करते हैं' तक पूर्ववत् समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अग्रमहिषियां नहीं हैं।

[२] सणंकुमारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति, अरयंबरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस्स (सु. १९७ [२])। से णं तत्थ बारसण्हं विमाणावाससतसहस्साणं बावत्तरीए सामाणियसाहस्सीणं सेसं जहा सक्कस्स (सु. १९७ [२]) अग्गमहिसीवज्जं। णवरं चउण्हं बावत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरइ।

[१९९-२] यहीं देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार निवास करता है, जो रज से रहित वस्त्रों के धारक है, (इत्यादि) शेष वर्णन जैसे (सू. १९७-२ में) शक्र का कहा है, (उसी प्रकार इसका समझना चाहिए।) वह (सनत्कुमारेन्द्र) बारह लाख विमानावासों का, बहत्तर हजार सामानिक देवों का' (इत्यादि) शेष सब वर्णन (जैसे सू. १९७-२ में) शक्रेन्द्र का किया गया है, इसी प्रकार (यहाँ भी) 'अग्रमहिषियों को छोड़ कर (करना चाहिए।) विशेषता यह कि चार बहत्तर हजार, अर्थात्—दो लाख अठासी हजार आत्मरक्षक देवों का ···यावत् 'विचरण करता है।' (यह कहना चाहिए।)

२००. [१] कहि णं भंते ! माहिंदाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! माहिंदगदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! ईसाणस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव (सु. १६६ [१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं माहिंदे णामं कप्पे पाईण-पडीणायए एवं जहेव सणंकुमारे (सु. १६६ [१]), णवरं अट्ठ विमाणावाससतसहस्सा। वडेंसया जहा ईसाणे (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ माहिंदवडेंसए। एवं सेसं जहा सणंकुमारगदेवाणं (सु. १६६) जाव विहरंति।

[२००-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक माहेन्द्र देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! माहेन्द्र देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२००-१ उ.] गौतम ! ईशानकल्प के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा में बहुत योजन, यावत्—(सू. १६६-१ के अनुसार) बहुत कोड़ाकोड़ी योजन ऊपर दूर जाने पर वहाँ माहेन्द्र नामक कल्प कहा गया है, पूर्व-पश्चिम में लम्बा इत्यादि वर्णन जैसे (सू. १६६-१ में) सनत्कुमारकल्प का किया गया है, वैसे इसका भी समझना चाहिए। विशेष यह है कि इस कल्प में विमान आठ लाख हैं। इनके अवतंसक (सू. १९८-१ में प्रतिपादित) ईशानकल्प के अवतंसकों के समान जानने चाहिए। विशेषता यह है कि इनके बीच में माहेन्द्रअवतंसक है। इस प्रकार शेष सब वर्णन (सू. १६६ में वर्णित) सनत्कुमार देवों के समान, यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझना चाहिए।

[२] माहिंदे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति अरयंबरवत्थधरे, एवं जहा सणंकुमारे (सु. १६६ [२]) जाव विहरति। णवरं अट्ठण्हं विमाणावाससतसहस्साणं सत्तरीए सामाणिय-साहस्सीणं चउण्हं सत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १६६) विहरइ।

[२००-२] यहीं देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र निवास करता है; जो रज से रहित स्वच्छ—श्वेत वस्त्र-धारक है, इस प्रकार (आगे का समस्त वर्णन सू. १९९-२ में उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के वर्णन की तरह यावत् 'विचरण करता है' तक समझना चाहिए। विशेष यह है कि माहेन्द्र आठ लाख विमानावासों का, सत्तर हजार सामानिक देवों का, चार सत्तर हजार अर्थात्—दो लाख अस्सी हजार आत्मरक्षक देवों का—(शेष सू. १६६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' (तक समझना चाहिए।)

२०१. [१] कहि णं भंते ! बंभलोगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! बंभलोगदेवा परिवसंति ? गोयमा ! सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव[1] (सु. १६६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं बंभलोए णामं कप्पे पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे पडिपुन्नचंदसंठाणसंठिते अच्चिमाली-भासरासिप्पभे अवसेसं जहा सणंकुमाराणं (सु. १६६[१]), णवरं चत्तारि विमाणावाससतसहस्सा। वडिंसगा जहा सोहम्मवडेंसया (सु. १९७ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ बंभलोयवडिंसए। एत्थ णं बंभलोगाणं देवाणं ठाणा पन्नत्ता। सेसं तहेव जाव (सु. १६६) विहरंति।

१, 'जाव' और 'जहा' शब्द से तत्स्थानीय सारा बीच का पाठ ग्राह्य है।

[२०१-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! ब्रह्मलोक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०१-१ उ.] गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा में बहुत योजन यावत् ऊपर दूर जाने पर, वहाँ ब्रह्मलोक नामक कल्प है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार का, ज्योति-माला तथा दीप्तिराशि की प्रभा वाला है। शेष वर्णन, सनत्कुमारकल्प की तरह (सू. १९९-१ के अनुसार) समझना चाहिए। विशेष यह है कि (इस कल्प में) चार लाख विमानावास हैं। इनके अवतंसक (सू. १९७-१ में कथित) सौधर्म-अवतंसकों के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों अवतंसकों) के मध्य में ब्रह्मलोक अवतंसक है; जहाँ कि ब्रह्मलोक देवों के स्थान कहे गए हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार (सू. १९६ में कथित वर्णन के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझना चाहिए।

[२] बंभे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति अरयंबरवत्थधरे, एवं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]) जाव विहरति। णवरं चउण्हं विमाणावाससतसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जाव (सु. १९६) विहरति।

[२०१-२] ब्रह्मलोकावतंसक में देवेन्द्र देवराज ब्रह्म निवास करता है; जो रज-रहित स्वच्छ वस्त्रों का धारक है, इस प्रकार जैसे (सू. १९९-२ में) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करता है', तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि (यह ब्रह्मेन्द्र) चार लाख विमानावासों का, साठ हजार सामानिकों का, चार साठ हजार अर्थात्—दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से ब्रह्मलोककल्प के देवों का आधिपत्य करता हुआ (इत्यादि शेष वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए।)

२०२. [१] कहि णं भंते ! लंतगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! लंतगदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! बंभलोगस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइं जोयणसयाइं जाव (सु. १९९ [१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं लंतए णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए (सु. २०१ [१]), णवरं पण्णासं विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खायं। वडेंसगा जहा ईसाणवडेंसगा (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ लंतगवडेंसए। देवा तहेव जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०२-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त लान्तक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! लान्तक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०२-१ उ.] गौतम ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में अनेक सौ योजन यावत् बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाने पर, लान्तक नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा है; (इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू. २०१-१ में) ब्रह्मलोक (कल्प) का (किया गया) है, (उसी तरह यहाँ भी करना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस कल्प में) पचास

हजार विमानावास हैं, (इनके) अवतंसक ईशानावतंसकों (सू. १९८-१ में उक्त) के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों) के मध्य में (पांचवां) लान्तक अवतंसक है। (सू. १९६ में) (जिस प्रकार सामान्य वैमानिक देवों का वर्णन है,) उसी प्रकार (लान्तक) देवों का भी यावत् 'विचरण करते हैं,' तक (वर्णन समझना चाहिए।)

[२] लंतए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणंकुमारे। (सु. १९९[२]) णवरं पण्णासाए विमाणावाससहस्साणं पण्णासाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य पण्णासाणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जाव (सु. १९६) विहरति।

[२०२-२] इस लान्तक अवतंसक में देवेन्द्र देवराज लान्तक निवास करता है, (इसका समग्र वर्णन) (सू. १९९-२ में अंकित) सनत्कुमारेन्द्र की तरह (समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (लान्तकेन्द्र) पचास हजार विमानावासों का, पचास हजार सामानिकों का, चार पचास हजार अर्थात्—दो लाख आत्मरक्षक देवों का, तथा अन्य बहुत-से लान्तक देवों का आधिपत्य करता हुआ इत्यादि (शेष समग्र वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझ लेना चाहिए।)

२०३. [१] कहि णं भंते! महासुक्काणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! महासुक्का देवा परिवसंति?

गोयमा! लंतयस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. १९९[१]) उप्पइत्ता एत्थ णं महासुक्के णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे जहा बंभलोए णवरं चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खातं। वडेंसगा जहा सोहम्मवडेंसगा (सु. १९७[१]), णवरं मज्झे यऽत्थ महासुक्कवडेंसए जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०३-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक महाशुक्र देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! महाशुक्र देव कहाँ निवास करते हैं?

[२०३-१ उ.] गौतम! लान्तककल्प के ऊपर समान दिशा में (सू. १९९-१ के आगे का वर्णन) यावत् ऊपर जाने पर, महाशुक्र नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण है, इत्यादि, जैसे (सू. २०१-१ में) ब्रह्मलोक का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि (इसमें) चालीस हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। इनके अवतंसक (सू. १९७-१ में उक्त) सौधर्मावतंसक के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों) के मध्य में (पांचवां) महाशुक्रावतंसक है, (इससे आगे का) यावत् 'विचरण करते हैं', तक (का वर्णन) (सू. १९६-१ के अनुसार) (कह देना चाहिए।)

[२] महासुक्के यऽत्थ देविंदे देवराया जहा सणंकुमारे (सु. १९९[२]), णवरं चत्तालीसाए विमाणावाससहस्साणं चत्तालीसाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य चत्तालीसाणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) विहरति।

[२०३-२] इस महाशुक्रावतंसक में देवेन्द्र देवराज महाशुक्र रहता है, (जिसका सर्व वर्णन सू. १९९ में उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि (वह महाशुक्रेन्द्र)

चालीस हजार विमानावासों का, चालीस हजार सामानिकों का, और चार चालीस हजार, अर्थात् एक लाख साठ हजार आत्मरक्षक देवों का अधिपतित्व करता हुआ……(आगे का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए।)

२०४. [१] कहि णं भंते ! सहस्सारदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सहस्सारदेवा परिवसंति ?

गोयमा ! महासुक्कस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं सहस्सारे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते जहा बंभलोए (सु. २०१ [१]), णवरं छव्विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खातं। देवा तहेव (सु. १९७ [१]) जाव वडेंसगा जहा ईसाणस्स वडेंसगा (सु. १९८ [१]), णवरं मज्झे यऽत्थ सहस्सारवडेंसए जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०४-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सहस्रार देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सहस्रार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०४-१ उ.] गौतम ! महाशुक्र कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में यावत् (सू. १९९-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर, वहाँ सहस्रार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बा है, (इत्यादि समस्त वर्णन) जैसे (सू. २०१-१ में) ब्रह्मलोक कल्प का है, (उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस सहस्रार कल्प में) छह हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। (सहस्रार) देवों का वर्णन सू. १९७-१ के अनुसार यावत् 'अवतंसक हैं' तक उसी प्रकार (पूर्ववत्) कहना चाहिए। इनके अवतंसकों के विषय में ईशान (कल्प) के अवतंसकों की तरह (सू. १९८-१ के अनुसार) जानना चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों) के बीच में (पांचवां) 'सहस्रारावतंसक' समझना चाहिए। (इससे आगे) यावत् 'विचरण करते हैं' तक का भी वर्णन (सू. १९६ के अनुसार) जान लेना चाहिए।

[२] सहस्सारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं छण्हं विमाणावाससहस्साणं तीसाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य तीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं जाव (सु. १९६) आहेवच्चं कारेमाणे विहरति।

[२०४-२] इसी स्थान पर देवेन्द्र देवराज सहस्रार निवास करता है। (उसका वर्णन) जैसे (सू. १९९-२ में) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, उसी प्रकार (समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (सहस्रारेन्द्र) छह हजार विमानावासों का, तीस हजार सामानिक देवों का और चार तीस हजार, अर्थात्—एक लाख वीस हजार आत्मरक्षक देवों का यावत् (सू. १९६ के अनुसार बीच का वर्णन) आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है।

२०५. [१] कहि णं भंते ! आणय-पाणयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! आणय-पाणया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! सहस्सारस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं आणय-पाणयनामेणं दुवे कप्पा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता उदीण-दाहिणवित्थिण्णा अद्धचंद-

संठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिप्पभा, सेसं जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [१]) जाव पडिरूवा। तत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं चत्तारि विमाणावाससता भवंतीति मक्खायं जाव पडिरूवा। वडिंसगा जहा सोहम्मे (सु. १९७ [१]), णवरं मज्झे पाणयवडेंसए। ते णं वडेंसगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा (सु. १९६)। एत्थ णं आणय-पाणयदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जात्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे आणय-पाणयदेवा परिवसंति महिड्ढीया जाव (सु. १९६) पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयाणं जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०५-१ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक आनत एवं प्राणत देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! आनत-प्राणत देव कहाँ निवास करते हैं?

[२०५-१ उ.] गौतम! सहस्रार कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में, (इत्यादि सू. १९९-१ के अनुसार) यावत् ऊपर दूर जा कर, यहाँ आनत एवं प्राणत नाम के दो कल्प कहे गए हैं; जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण, अर्द्धचन्द्र के आकार में संस्थित, ज्योतिमाला और दीप्तिराशि की प्रभा के समान हैं, शेष सब वर्णन (सू. १९९-१ में उक्त) सनत्कुमारकल्प के वर्णन की तरह यावत् प्रतिरूप हैं, तक (समझना चाहिए।) उन कल्पों में आनत और प्राणत देवों के चार सौ विमानावास हैं, ऐसा कहा है; विमानावासों का वर्णन यावत् प्रतिरूप हैं, तक पूर्ववत् कहना चाहिए। जिस प्रकार सौधर्मकल्प के अवतंसक सू. १९७-१ में कहे हैं, इसी प्रकार इनके अवतंसक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारों) के बीच में (पांचवां) प्राणतावतंसक है। वे अवतंसक पूर्णरूप से रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, (बीच का वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (अवतंसकों) में पर्याप्त-अपर्याप्त आनत-प्राणत देवों के स्थान कहे गए हैं। ये स्थान तीनों अपेक्षाओं से, लोक के असंख्यातवें भाग में हैं; जहाँ बहुत-से आनत-प्राणत देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, यावत् (बीच का पाठ सू. १९६ के अनुसार) 'प्रभासित करते हुए' तक समझ लेना चाहिए। वे (आनत-प्राणत देव) वहाँ अपने-अपने सैकड़ों विमानों का यावत् आधिपत्य करते हुए विचरते हैं।

[२] पाणए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणंकुमारे (सु. १९९ [२]), णवरं चउण्हं विमाणावाससयाणं वीसाए सामाणियसाहस्सीणं असीतीए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जाव (सु. १९६) विहरति।

[२०५-२] यहीं देवेन्द्र देवराज प्राणत निवास करता है, जिस प्रकार (सू. १९९-२ में) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, (तदनुसार यहाँ भी प्राणतेन्द्र का समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (यह प्राणतेन्द्र) चार सौ विमानावासों का, बीस हजार सामानिक देवों का तथा अस्सी हजार आत्मरक्षकदेवों का एवं अन्य बहुत-से देवों का अधिपतित्व करता हुआ यावत् 'विचरण करता है' तक (का वर्णन सू. १९६ के अनुसार समझना चाहिए।)

२०६. [१] कहि णं भंते! आरण-ऽच्चुताणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जाणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! आरण-ऽच्चुता देवा परिवसंति?

गोयमा! आणय-पाणयाणं कप्पाणं उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं एत्थ णं आरणऽच्चुया णामं दुवे

कप्पा पण्णत्ता, पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा श्रद्धचंदसंठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिवण्णप्पभा श्रसंखेज्जाश्रो जोयणकोडाकोडीश्रो श्रायामविक्खंभेणं श्रसंखेज्जाश्रो जोयणकोडा-कोडीश्रो परिक्खेवेणं सव्वरयणामया श्रच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कं-कडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा श्रभिरूवा, एत्थ णं श्रारण-ऽच्चुताणं देवाणं तिन्नि विमाणावाससता हवंतीति मक्खायं।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया श्रच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोता पासाईया दरिसणिज्जा श्रभिरूवा पडिरूवा। तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभाए पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—अंकवडेंसए १ फलिहवडेंसए २ रयणवडेंसए ३ जायरूववडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ श्रच्चुतवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु. २०६ [१]) पडिरूवा। एत्थ णं श्रारणऽच्चुयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स श्रसंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे श्रारणऽच्चुता देवा जाव (सु. १९६) विहरंति।

[२०६-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक श्रौर श्रपर्याप्तक श्रारण श्रौर श्रच्युत देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! श्रारण और श्रच्युत देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०६-१ उ.] गौतम ! श्रानत-प्राणत कल्पों के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में, यहाँ श्रारण श्रौर श्रच्युत नाम के दो कल्प कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे श्रौर उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण हैं, श्रर्द्धचन्द्र के श्राकार में संस्थित श्रौर र्श्रचिमाली (सूर्य) की तेजोराशि के समान प्रभा वाले हैं। उनकी लम्बाई-चौड़ाई श्रसंख्यात कोटा-कोटी योजन तथा परिधि भी श्रसंख्यात कोटा-कोटी योजन की है। वे विमान पूर्णत: रत्नमय, स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे हुए तथा चिकने किये हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पंक, निरावरण कान्ति से युक्त, प्रभामय, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, श्रभिरूप श्रौर प्रतिरूप (श्रतीव सुन्दर) हैं। उन विमानों के ठीक मध्यदेशभाग में पांच श्रवतंसक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. अंकावतंसक, २. स्फटिकावतंसक, ३. रत्नाव-तंसक, ४. जातरूपावतंसक श्रौर इन चारों के मध्य में ५. अच्युतावतंसक है। ये अवतंसक सर्वरत्नमय हैं, (तथा सू. २०६-१ में कहे श्रनुसार) यावत् प्रतिरूप हैं। इनमें श्रारण और श्रच्युत देवों के पर्याप्तकों एवं श्रपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों श्रपेक्षाश्रों से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। इनमें बहुत-से श्रारण और श्रच्युत देव यावत् (सू. १९६ के वर्णन के श्रनुसार) विचरण करते हैं।

[२] श्रच्चुते यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा पाणए (सु. २०५[२]) जाव विहरति। णवरं तिण्हं विमाणावाससताणं दसण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तालीसाए श्रायरक्खदेवसाहस्सीणं श्राहेवच्चं कुव्वमाणे जाव (सु. १९६(विहरति।

बत्तीस श्रट्ठवीसा बारस श्रट्ठ चउरो सतसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा छ च्च सहस्सा सहस्सारे ॥१५४॥
श्राणय-पाणकप्पे चत्तारि सयाऽऽरण-ऽच्चुए तिन्नि।
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥१५५॥

सामाणियसंगहणीगाहा—

चउरासीइ १ असीई २ बावत्तरि ३ सत्तरी य ४ सट्ठी य ५ ।
पण्णा ६ चत्तालीसा ७ तीसा ८ वीसा ९-१० दस सहस्सा ११-१२ ॥१५६॥

एते चेव आयरक्खा चउगुणा ।

[२०६-२] यहीं अच्युतावतंसक में देवेन्द्र देवराज अच्युत निवास करता है । इसका सारा वर्णन (सू. २०५-२ में अंकित) प्राणत की तरह, यावत् विचरण करता है, तक कहना चाहिए । विशेष यह है कि अच्युतेन्द्र तीन सौ विमानावासों का, दस हजार सामानिक देवों का तथा चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है ।

(द्वादश कल्प-विमानसंख्या-संग्रहणीगाथाओं का अर्थ—क्रमशः) १. बत्तीस लाख, २. अट्ठाईस लाख, ३. बारह लाख, ४. आठ लाख, ५. चार लाख, ६. पचास हजार, ७. चालीस हजार, ८. सहस्रारकल्प में छह हजार, ९-१०. आनत-प्राणत कल्पों में चार सौ, तथा ११-१२ आरण-अच्युत कल्पों में तीन सौ विमान होते हैं । अन्तिम इन चार कल्पों में (कुल मिला कर ४००+३००=७००) सात सौ विमान होते हैं ॥१५४-१५५॥

(द्वादशकल्प) सामानिक (संख्या)—संग्रहणीगाथा (का अर्थ—) १. चौरासी हजार, २. अस्सी हजार, ३. बहत्तर हजार, ४. सत्तर हजार, ५. साठ हजार, ६. पचास हजार, ७. (महाशुक्र में) चालीस हजार, ८. (सहस्रार में) तीस हजार, ९-१०. बीस हजार, ११-१२. (आरण-अच्युत में) दस हजार (क्रमशः हैं ।) ॥१५६॥

इन्हीं बारह कल्पों के आत्मरक्षक इन (सामानिकों) से (क्रमशः) चार-चार गुने हैं ।

२०७. कहि णं भंते ! हेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! आरणच्चुताणं कप्पाणं उप्पि जाव (सु. २०६[१]) उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेवेज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिवण्णाभा सेसं जहा बंभलोगे जाव (सु. २०१[१]) पडिरूवा । तत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं एक्कारसुत्तरे विमाणावाससते हवंतीति मक्खातं । ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु. २०६[१]) पडिरूवा । एत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखिज्जइ-भागे । तत्थ णं बहवे हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति सव्वे समिड्ढिया सव्वे समज्जतीया सव्वे समजसा सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अप्पेस्सा अपुरोहिया अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२०७ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त अधस्तन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०७ उ.] गौतम ! आरण और अच्युत कल्पों के ऊपर यावत् (सू. २०६-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर अधस्तन-ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक-विमान—प्रस्तट कहे गए हैं; जो पूर्व-

पश्चिम में लम्बे और उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण हैं। वे परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार में संस्थित हैं, सूर्य की तेजोराशि के वर्ण की-सी प्रभा वाले हैं, शेष वर्णन (सू. २०१-१ में अंकित) ब्रह्मलोक-कल्प के समान यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझना चाहिए।) उनमें अधस्तन ग्रैवेयक देवों के एक-सौ ग्यारह विमान हैं, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, (इत्यादि सब वर्णन) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (सू. २०६-१ के अनुसार समझना चाहिए।) यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक अधस्तन-ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। उनमें बहुत-से अधस्तन-ग्रैवेयक देव निवास करते हैं, वे सब समान ऋद्धि वाले, सभी समान द्युति वाले, सभी समान यशस्वी, सभी समान बली, सब समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्य (दास) रहित, पुरोहितहीन हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' नाम से कहे गए हैं।

२०८. कहि णं भंते! मज्झिमगाणं गेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?

गोयमा! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं मज्झिमगेवेज्जगदेवाणं तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता। पाईण-पडीणायता जहा हेट्ठिमगेवेज्जगाणं णवरं सत्तुत्तरे विमाणावाससते हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा जाव (सु. २०६ [१]) पडिरूवा। एत्थ णं मज्झिमगेवेज्जगाणं देवाणं जाव (सु. २०७) तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे। तत्थ णं बहवे मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति जाव (सु. २०७) अहमिंदा नामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

[२०८ प्र.] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक मध्यम ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! मध्यम ग्रैवेयक देव कहाँ रहते हैं?

[२०८ उ.] गौतम! अधस्तन ग्रैवेयकों के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा में यावत् ऊपर दूर जाने पर, मध्यम ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयकविमान-प्रस्तट कहे गए हैं; जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे;हैं, इत्यादि वर्णन जैसा अधस्तन ग्रैवेयकों का (सू. २०७ में) कहा गया है, वैसा ही यहाँ कहना चाहिए। विशेष यह है कि (इनके) एक सौ सात विमानावास कहे गये हैं। वे विमान (विमानावास) (सू. २०६-१ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझने चाहिए।) यहाँ (इन विमानावासों में) पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम-ग्रैवेयक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से मध्यम ग्रैवेयकदेव निवास करते हैं (इत्यादि शेष वर्णन सू. २०७ के अनुसार) यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं; (तक समझना चाहिए।)

२०९. कहि णं भंते! उवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! उवरिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?

गोयमा! मज्झिमगेवेज्जगदेवाणं उप्पिं जाव (सु. २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं उवरिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता सेसं जहा हेट्ठिमगेविज्जगाणं

(सु. २०७), नवरं एगे विमाणावाससते भवंतीति मक्खातं। सेसं तहेव भाणियव्वं (सु. २०७) जाव अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा ॥१५७॥

[२०९ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उपरितन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उपरितन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०९ उ.] गौतम ! मध्यम ग्रैवेयकों के ऊपर यावत् (सू. २०६-१ के अनुसार) दूर जाने पर, वहाँ उपरितन ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम में लम्बे हैं; शेष वर्णन (सू. २०७ में कथित) अधस्तन ग्रैवेयकों के समान (जानना चाहिए।) विशेष यह है कि (इनके) विमानावास एक सौ होते हैं, ऐसा कहा है। शेष वर्णन (जैसा सू. २०७ में कहा गया है,) वैसा ही यहाँ यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं; तक कहना चाहिए।

[विमानसंख्याविषयक संग्रहणी गाथार्थ—] अधस्तन ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह, मध्यम ग्रैवेयकों में एक सौ सात, उपरितन के ग्रैवेयकों में एक सौ और अनुत्तरौपपातिक देवों के पांच ही विमान हैं ॥१५७॥

२१०. कहि णं भंते ! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुयकप्पा तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्ज-विमाणावाससते वीतीवतित्ता तेण परं दूरं गता णीरया निम्मला वितिमिरा विसुद्धा पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महतिमहालया विमाणा पण्णत्ता। तं जहा—विजये १ वेजयंते २ जयंते ३ अपराजिते ४ सव्वट्ठसिद्धे ५।

ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तत्थ णं अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे। तत्थ णं बहवे अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति सव्वे समिड्ढिया सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अपेस्सा अपुरोहिता अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२१० प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? अनुत्तरौपपातिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२१० उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क देवों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों तथा तीनों ग्रैवेयकप्रस्तटों के तीन सौ अठारह विमानवासों को पार (उल्लंघन) करके उससे आगे सुदूर स्थित, पांच दिशाओं में रज से रहित, निर्मल, अन्धकाररहित एवं विशुद्ध बहुत बड़े पांच अनुत्तर (महा) विमान कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध।

वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय, स्फटिकसम स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने किये हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पंक, निरावरण छायायुक्त, प्रभा से युक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतयुक्त, प्रसन्नताकारक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। वहीं पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपपातिक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहाँ बहुत-से अनुत्तरौपपातिक देव निवास करते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सब समान ऋद्धिसम्पन्न, सभी समान बली, सभी समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्यरहित, पुरोहित-रहित हैं। वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे जाते हैं।

विवेचन—सर्व वैमानिक देवों के स्थानों की प्ररूपणा—प्रस्तुत पन्द्रह सूत्रों (सू. १९६ से २१० तक) में सामान्य वैमानिकों से ले कर सौधर्मादि विशिष्ट कल्पोपपन्नों एवं नौ ग्रैवेयक तथा पंच अनुत्तरौपपातिकरूप कल्पातीत वैमानिकों के स्थानों, विमानों, उनकी विशेषताओं, वहाँ बसने वाले देवों, इन्द्रों, अहमिन्द्रों आदि सबका स्फुट वर्णन किया गया है।

सामान्य वैमानिकों की विमानसंख्या—सौधर्म आदि विशिष्ट कल्पोपपन्न वैमानिकों के क्रमश: बत्तीस, अट्ठाईस, बारह, आठ, चार लाख विमान आदि ही कुल मिला कर ८४ लाख ९७ हजार २३ विमान, सामान्य वैमानिकों के होते हैं।

द्वादश कल्पों के देवों के पृथक्-पृथक् मुकुटचिह्न—१. सौधर्म देवों के मुकुट में मृग का, २. ऐशान देवों के मुकुट में महिष (भैंसे) का, ३. सनत्कुमार देवों के मुकुट में वराह (शूकर) का, ४. माहेन्द्र देवों के मुकुट में सिंह का, ५. ब्रह्मलोक देवों के मुकुट में छगल (बकरे) का, ६. लान्तक देवों के मुकुट में दर्दुर (मेंढक) का, ७. (महा) शुक्रदेवों के मुकुट में अश्व का, ८. सहस्रारकल्पदेवों के मुकुट में गजपति का, ९. आनतकल्पदेवों के मुकुट में भुजग (सर्प) का, १०. प्राणतकल्पदेवों के मुकुट में खड्ग (वन्य पशु या गेंडे) का, ११. आरणकल्पदेवों के मुकुट में वृषभ (बैल) का और १२. अच्युतकल्पदेवों के मुकुट में विडिम का[1] चिह्न होता है।

सपक्खि सपडिदिसिं की व्याख्या—जिनके पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणरूप पक्ष अर्थात् पार्श्व समान हैं, वे 'सपक्ष' यानी समान दिशा वाले कहलाते हैं तथा जहाँ प्रतिदिशाएँ—विदिशाएँ समान हैं, वे '**सप्रतिदिश**' कहलाते हैं।[2]

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १००

२. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १०५

कल्पों के अवतंसकों का रेखाचित्र—

क्रम	कल्प का नाम	मध्य में	पूर्वदिशा में	दक्षिणदिशा में	पश्चिमदिशा में	उत्तरदिशा में
१	सौधर्मकल्प	सौधर्मावतंसक	अशोकावतंसक	सप्तपर्णावतंसक	चम्पकावतंसक	चूतावतंसक
३	सनत्कुमारकल्प	सनत्कुमारावतंसक	,,	,,	,,	,,
५	ब्रह्मलोककल्प	ब्रह्मलोकावतंसक	,,	,,	,,	,,
७	महाशुक्रकल्प	महाशुक्रावतंसक	,,	,,	,,	,,
(९) १०	(आनत) प्राणतकल्प	प्राणतावतंसक	,,	,,	,,	,,
२	ईशानकल्प	ईशानावतंसक	अंकावतंसक	स्फटिकावतंसक	रत्नावतंसक	जातरूपावतंसक
४	माहेन्द्रकल्प	माहेन्द्रावतंसक	,,	,,	,,	,,
६	लान्तककल्प	लान्तकावतंसक	,,	,,	,,	,,
८	सहस्रारकल्प	सहस्रारावतंसक	,,	,,	,,	,,
(११) १२	(आरण) अच्युतकल्प	अच्युतावतंसक	,,	,,	,,	,,

'अणिंदा' आदि शब्दों की व्याख्या—'अणिंदा'=जिन देवों के कोई इन्द्र यानी अधिपति नहीं है, वे अनिन्द्र। 'अपेस्सा'—जिनके कोई दास या भृत्य नहीं है, वे अप्रेष्य। 'अपुरोहिया'—जिनके कोई पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाला नहीं होता, वे अपुरोहित हैं, क्योंकि इन कल्पातीत देवलोकों को किसी प्रकार की अशान्ति नहीं होती। 'अहमिंदा'='अहमिन्द्र', जिनमें सबके सब स्वयं इन्द्र हों, वे अहमिन्द्र कहलाते हैं।[1]

तात्पर्य यह है कि बारह कल्पों में जैसा स्वामी-सेवक आदि का भेद होता है, वैसा भेद नव-ग्रैवेयकों एवं अनुत्तरविमानों के देवों में नहीं है। वहाँ के सभी देवों की ऋद्धि आदि समान है, अतएव सभी अपने को इन्द्र-जैसा (स्वाधीन) अनुभव करते हैं। हाँ, सर्वार्थसिद्ध विमान को छोड़ कर उनकी आयु में अन्तर हो सकता है।

२११. कहि णं भंते ! सिद्धाणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! सिद्धा परिवसंति ?

गोयमा ! सव्वट्ठसिद्धस्स महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणे उड्ढं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णामं पुढवी पण्णत्ता, पणतालीसं जोयणसतसहस्साणि आयाम-

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १०५-१०६

विक्खंभेणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयण-सते किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता। ईसीपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, ततो अणंतरं च णं माताए माताए पएसपरिहाणीए परिहायमाणी परिहायमाणी सव्वेसु चरिमंतेसु मच्छियपत्तातो तणुययरी अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधिज्जा पण्णत्ता। तं जहा—ईसी ति वा १ ईसीपब्भारा इ वा २ तणू ति वा ३ तणुतणू ति वा ४ सिद्धी ति वा ५ सिद्धालए ति वा ६ मुत्ती इ वा ७ मुत्तालए ति वा ८ लोयग्गे इ वा ९ लोयग्गथूभिया ति वा १० लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा ११ सव्वपाण-भूत-जीवसत्तसुहावहा इ वा १२।

ईसीपब्भारा णं पुढवी सेता संखदलविमलसोत्थिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हारवण्णा उत्ताणयछत्तसंठाणसंठिता सव्वज्जुणसुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ईसीपब्भाराए णं सीताए जोयणम्मि लोगंतो। तस्स णं जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे एत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया अपज्जवसिता अणेगजाति-जरा-मरण-जोणिसंसारकलंकलीभाव-पुणब्भवगब्भवासवसहीपवंचसमतिक्कंता सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंति।

तत्थ वि य ते अवेदा अवेदणा निम्ममा असंगा य।
संसारविप्पमुक्का पदेसनिव्वत्तसंठाणा ॥१५८॥

कहिं पडिहता सिद्धा? कहिं सिद्धा पइट्ठिता?।
कहिं बोंदिं चइत्ता णं? कहिं गंतूण सिज्झई? ॥१५९॥

अलोए पडिहता सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोंदिं चइत्ता णं तत्थ गंतूण सिज्झई ॥१६०॥

दीहं वा हस्सं वा जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं।
तत्तो तिभागहीणा सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥१६१॥

जं संठाणं तु इहं भवं चयंतस्स चरिमसमयम्मि।
आसी य पदेसघणं तं संठाणं तहिं तस्स ॥१६२॥

तिण्णि सया तेत्तीसा धणुत्तिभागो य होति बोधव्वो।
एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिया ॥१६३॥

चत्तारि य रयणीओ रयणितिभागूणिया य बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिम ओगाहणा भणिया ॥१६४॥

एगा य होइ रयणी अट्ठेव य अंगुलाइं साहीया।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिता ॥१६५॥

ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा ।
संठाणमणित्थंथं[1] जरा-मरणविप्पमुक्काणं ।।१६६।।
जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।
अण्णोण्णसमोगाढा पुट्ठा सव्वे वि लोयंते ।।१६७।।
फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिं नियमसो सिद्धा ।
ते वि असंखेज्जगुणा देस-पदेसेहिं जे पुट्ठा ।।१६८।।
असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य ।
सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ।।१६९।।
केवलणाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुण-भावे ।
पासंति सव्वतो खलु केवलदिट्ठीहऽणंताहिं ।।१७०।।
न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ।।१७१।।
सुरगणसुहं समत्तं सव्वद्धापिडितं अणंतगुणं ।
ण वि पावे मुत्तिसुहं णंताहिं वि वग्गवग्गूहिं ।।१७२।।
सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिडितो जइ हवेज्जा ।
सोऽणंतवग्गभइतो सव्वागासे ण माएज्जा ।।१७३।।
जह णाम कोइ मेच्छो णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो ।
न चएइ परिकहेउं उवमाए तहिं असंतीए ।।१७४।।
इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं, णत्थि तस्स ओवम्मं ।
किंचि विसेसेणेत्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ।।१७५।।
जह सव्वकामगुणितं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ ।
तण्हा-छुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो ।।१७६।।
इय सव्वकालतित्ता अतुलं णेव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ।।१७७।।
सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य पारगत त्ति य परंपरगत त्ति ।
उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ।।१७८।।
णित्थिण्णसव्वदुक्खा जाति-जरा-मरणबंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सोक्खं अणुहुंती सासयं सिद्धा ।।१७९।।[2]

।। पण्णवणाए भगवईए बिइयं ठाणपयं समत्तं ।।

---

१. [ग्रन्थाग्रम् १५००]
२. [ग्रन्थाग्रम् १५२०]

[२११ प्र.] भगवन् ! सिद्धों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सिद्ध कहाँ निवास करते हैं ?

[२११ उ.] गौतम ! सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपरी स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर बिना व्यवधान के, ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी कही है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन है। उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख, तीस हज़ार, दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक है। ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बहुत (एकदम) मध्यभाग में (लम्बाई-चौड़ाई में) आठ योजन का क्षेत्र है, जो आठ योजन मोटा (ऊँचा) कहा गया है। उसके अनन्तर (सभी दिशाओं और विदिशाओं में)' मात्रा-मात्रा से अर्थात्—अनुक्रम से प्रदेशों की कमी होते जाने से, हीन (पतली) होती-होती वह सबसे अन्त में मक्खी के पंख से भी अधिक पतली, अंगुल के असंख्यातवें भाग मोटी कही गई है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बारह नाम कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) ईषत्, (२) ईषत्प्राग्भारा, (३) तनु, (४) तनु-तनु, (५) सिद्धि, (६) सिद्धालय, (७) मुक्ति, (८) मुक्तालय (९) लोकाग्र, (१०) लोकाग्र-स्तूपिका, या (११) लोकाग्रप्रतिवाहिनी (बोधना) और (१२) सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी श्वेत है, शंखदल के निर्मल चूर्ण के स्वस्तिक, मृणाल, जलकण, हिम, गोदुग्ध तथा हार के समान वर्ण वाली, उत्तान (उलटे किये हुए) छत्र के आकार में स्थित, पूर्णरूप से अर्जुनस्वर्ण के समान श्वेत, स्फटिक-सी स्वच्छ, चिकनी, कोमल, घिसी हुई, चिकनी की हुई (मृष्ट), निर्मल, निष्पंक, निरावरण छाया (कान्ति) युक्त, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नताजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप (सर्वांगसुन्दर) है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी से निःश्रेणीगति से एक योजन पर लोक का अन्त है। उस योजन का जो ऊपरी गव्यूति है, उस गव्यूति का जो ऊपरी छठा भाग है, वहाँ सादि-अनन्त, अनेक जन्म, जरा, मरण, योनिसंसरण (गमन), बाधा (कलंकली भाव), पुनर्भव (पुनर्जन्म), गर्भवासरूप वसति तथा प्रपंच से अतीत (अतिक्रान्त) सिद्ध भगवान् शाश्वत अनागतकाल तक रहते हैं।

[सिद्धविषयक गाथाओं का अर्थ—] वहाँ (पूर्वोक्त सिद्धस्थान में) भी वे (सिद्ध भगवान्) वेदरहित, वेदनारहित, ममत्वरहित, (बाह्य-आभ्यन्तर-) संग (संयोग या आसक्ति) से रहित, संसार (जन्म-मरण) से सर्वथा विमुक्त एवं (आत्म) प्रदेशों से बने हुए आकार वाले हैं ॥१५८॥

'सिद्ध कहाँ प्रतिहत—रुक जाते हैं ? सिद्ध किस स्थान में प्रतिष्ठित (विराजमान) हैं ? कहाँ शरीर को त्याग कर, कहाँ जा कर सिद्ध होते हैं ? ॥१५९॥

(आगे) अलोक के कारण सिद्ध (लोकाग्र में) रुके हुए (प्रतिहत) हैं। वे लोक के अग्रभाग (लोकाग्र) में प्रतिष्ठित हैं तथा यहाँ (मनुष्यलोक में) शरीर को त्याग कर वहाँ (लोक के अग्रभाग में) जा कर सिद्ध (निष्ठितार्थ) हो जाते हैं ॥१६०॥

दीर्घ अथवा ह्रस्व, जो अन्तिमभव में संस्थान (आकार) होता है, उससे तीसरा भाग कम सिद्धों की अवगाहना कही गई है ॥१६१॥

इस भव को त्यागते समय अन्तिम समय में (त्रिभागहीन जितने) प्रदेशों से सघन संस्थान (आकार) था, वही संस्थान वहाँ(लोकाग्र में सिद्ध अवस्था में)रहता है, ऐसा जानना चाहिए ।।१६२।।

(जिनकी यहाँ पांच सौ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना थी, उनकी वहाँ) तीन सौ तेतीस धनुष और एक धनुष के तीसरे भाग जितनी अवगाहना होती है । यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है ।।१६३।।

(पूर्ण) चार रत्नि (मुण्ड हाथ) और त्रिभागन्यून एक रत्नि; यह सिद्धों की मध्यम अवगाहना कही है, ऐसा समझना चाहिए ।।१६४।।

एक (पूर्ण) रत्नि और आठ अंगुल अधिक जो अवगाहना होती है, यह सिद्धों की जघन्य अवगाहना कही है ।।१६५।।

(अन्तिम) भव (चरम शरीर) से त्रिभाग हीन (कम) सिद्धों की अवगाहन होती है । जरा और मरण से सर्वथा विमुक्त सिद्धों का संस्थान (आकार) अनित्थंस्थ होता है । अर्थात् 'ऐसा है' यह नहीं कहा जा सकता ।।१६६।।

जहाँ (जिस प्रदेश में) एक सिद्ध है, वहाँ भवक्षय के कारण विमुक्त अनन्त सिद्ध रहते हैं । वे सब लोक के अन्त भाग (सिरे) से स्पृष्ट एवं परस्पर समवगाढ़ (पूर्णरूप से एक दूसरे में समाविष्ट) होते हैं ।।१७६।।

एक सिद्ध सर्वप्रदेशों से नियमतः अनन्तसिद्धों को स्पर्श करता(स्पृष्ट हो कर रहता) है । तथा जो देश-प्रदेशों से स्पृष्ट(हो कर रहे हुए) हैं, वे सिद्ध तो (उनसे भी) असंख्यातगुणा अधिक हैं ।।१६८।।

सिद्ध भगवान् अशरीरी हैं, जीवघन (सघन आत्मप्रदेश वाले) हैं तथा ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त (सदैव उपयोगयुक्त) रहते हैं; (क्योंकि) साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) उपयोग होना, यही सिद्धों का लक्षण है ।।१६९।।

केवलज्ञान से (सदैव) उपयुक्त (उपयोगयुक्त) होने से वे समस्त पदार्थो को, उनके समस्त गुणों और पर्यायों को जानते हैं तथा अनन्त केवलदर्शन से सर्वतः [समस्त-पदार्थो को सर्वप्रकार से) देखते हैं ।।१७०।।

अव्याबाध को प्राप्त (उपगत) सिद्धों को जो सुख होता है, वह न तो (चक्रवर्ती आदि) मनुष्यों को होता है, और न ही (सर्वार्थसिद्धपर्यन्त) समस्त देवों को होता है ।।१७१।।

देवगण के समस्त सुख को सर्वकाल के साथ पिण्डित (एकत्रित या संयुक्त) किया जाय, फिर उसको अनन्त गुणा किया जाय तथा अनन्त वर्गों से वर्गित किया जाए तो भी वह मुक्ति-सुख को नहीं पा सकता (उसकी बराबरी नहीं कर सकता) ।।१७२।।

एक सिद्ध के (प्रतिसमय के) सुखों की राशि, यदि सर्वकाल से पिण्डित (एकत्रित) की जाए, और उसे अनन्तवर्गमूलों से भाग दिया (कम किया) जाए, तो वह (भाजित=न्यूनकृत) सुख भी (इतना अधिक होगा कि) सम्पूर्ण आकाश में नहीं समाएगा ।।१७३।।

जैसे कोई म्लेच्छ (आरण्यक अनार्य) अनेक प्रकार के नगर-गुणों को जानता हुआ भी उसके सामने कोई उपमा न होने से कहने में समर्थ नहीं होता ।।१७४।।

इसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है। उसकी कोई उपमा नहीं है। फिर भी कुछ विशेष रूप से इसकी उपमा (सदृशता) बताऊंगा, इसे सुनो ।।१७५।।

जैसे कोई पुरुष सर्वकामगुणित भोजन का उपभोग करके प्यास और भूख से विमुक्त हो कर ऐसा हो जाता है, जैसे कोई अमृत से तृप्त हो। वैसे ही सर्वकाल में तृप्त अतुल (अनुपम), शाश्वत, एवं अव्याबाध निर्वाण-सुख को प्राप्त सिद्ध भगवान् (सदैव) सुखी रहते हैं ।।१७६-१७७।।

वे मुक्त जीव सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, पारगत हैं, परम्परागत हैं, कर्मरूपी कवच से उन्मुक्त हैं, अजर, अमर और असंग हैं। उन्होंने सर्वदुःखों को पार कर दिया है। वे जन्म जरा, मरण के बन्धन से सर्वथा मुक्त, सिद्ध (होकर) अव्याबाध एवं शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं ।।१७८-१७९।।

विवेचन—सिद्धों के स्थान आदि का निरूपण—प्रस्तुत गाथाबहुल सूत्र (सू. २११) में शास्त्रकार ने सिद्धों के स्थान, उसकी विशेषता, उसके पर्यायवाचक नाम, सिद्धों के गुण, अवगाहना सुख तथा उनकी विशेषता आदि का निरूपण किया है।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अन्वर्थक पर्यायवाची नाम—(१)संक्षेप में कहने के लिए 'ईषत्' नाम है। (२) थोड़ी-सी आगे को झुकी हुई होने से **ईषत्प्राग्भरा** है। (३) शेष पृथ्वियों की अपेक्षा पतली होने से '**तनु**' नाम है। (४) जगत् प्रसिद्ध पतली मक्खी की पांख से भी पतली होने से इसका '**तनुतन्वी**' नाम है। (५) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से इसका नाम '**सिद्धि**' है, (६) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से उपचार से इसका नाम '**सिद्धालय**' भी है। (७-८) इसी प्रकार '**मुक्ति**' और '**मुक्तालय**' नाम भी सार्थक हैं। (९) लोक के अग्रभाग में स्थित होने से '**लोकाग्र**' नाम है। (१०) लोकाग्र की स्तूपिका-समान होने से इसका नाम '**लोकाग्रस्तूपिका**' भी है। (११) लोक के अग्रभाग में होने से उसके आगे जाना रुक जाता है, इसलिए एक नाम '**लोकाग्र-प्रतिवाहिनी**' भी है। (१२) समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के लिए निरुपद्रवकारी भूमि होने से '**सर्व प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा**' नाम भी सार्थक है।[1]

सिद्धों के कुछ विशेषणों की व्याख्या—'**सादीया अपज्जवसिता**'=सादि-अपर्यवसित—अनन्त। प्रत्येक सिद्ध सर्वकर्मों का सर्वथा क्षय होने पर ही सिद्ध-अवस्था प्राप्त करता है; इस कारण से सिद्ध सादि (आदि युक्त) हैं, किन्तु सिद्धत्व प्राप्त कर लेने पर कभी उसका अन्त नहीं होता, इस कारण उन्हें अपर्यवसित—'अनन्त' कहा है। इस विशेषण के द्वारा 'अनादिशुद्ध' पुरुष की मान्यता का निराकरण किया गया है। सिद्धों के रागद्वेषादि विकारों का समूल विनाश हो जाने के कारण उनका सिद्धत्वदशा से प्रतिपात नहीं होता, क्योंकि पतन के कारण रागादि हैं, जो उनके सर्वथा निर्मूल हो चुके हैं। जैसे बीज के जल जाने पर उससे अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही संसारबीज—रागद्वेषादि के विनष्ट हो जाने से पुनः संसार में आना और जन्ममरण पाना नहीं होता। इसीलिए उन्हें '**अणेगजाति-जरा-मरण-जोणि-संसार-कलंकलीभाव-पुणब्भव-गब्भवासवसही-पवंचसमतिक्कंता**' कहा गया है। अर्थ स्पष्ट है। **अवेदा**=सिद्ध भगवान् स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद (काम) से अतीत होते हैं। अर्थात्—शरीर का अभाव होने से उनमें द्रव्यवेद नहीं रहता और नोकषायमोहनीय का

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०७

अभाव हो जाने से भाववेद भी नहीं रहता; इसलिए इन्हें **अवेदी** कहा है। **अवेदणा**—साता और असातावेदनीय कर्म का अभाव होने से वे **वेदना से रहित** होते हैं। **'निम्ममा असंगा य'** ममत्व से तथा वाह्य एवं आभ्यन्तर संग (आसक्ति या परिग्रह) से रहित होने के कारण वे **निर्मम** और **असंग** होते हैं। **संसारविप्पमुक्का**—संसार से वे सर्वथा मुक्त और अलिप्त हैं, ऊपर उठे हुए हैं। **पदेसनिव्वत्त-संठाणा**—सिद्धों में जो आकार होता है, वह पौद्‌गलिक शरीर के कारण नहीं होता, क्योंकि शरीर का वहाँ सर्वथा अभाव है, अतः उनका संस्थान (आकार) आत्मप्रदेशों से ही निष्पन्न होता है। **सव्वकालतित्ता**—सर्वकाल यानी सादि-अनन्तकाल तक वे तृप्त हैं, क्योंकि औत्सुक्य से सर्वथा निवृत्त होने से वे परमसंतोष को प्राप्त हैं। **'अतुलं सासयं अव्वाबाहं णेव्वाणं सुहं पत्ता**=सिद्ध भगवान् अतुल—उपमातीत—अनन्यसदृश शाश्वत तथा अव्यावाध (किसी प्रकार की लेशमात्र भी वाधा न होने से) निर्वाण (मोक्ष) संवंधी—सुख को प्राप्त हैं। **'सिद्धत्ति य'**=सित यानी वद्ध जो अष्टप्रकारक कर्म, उसे जिन्होंने ध्मात=भस्मीकृत कर दिया है, वे सिद्ध। सामान्यतया जो कर्म, शिल्प, विद्या, मंत्र, योग, आगम, अर्थ, यात्रा, अभिप्राय, तप और कर्मक्षय, इन सवसे सिद्ध होता है,[१] उसे भी उस-उस विशेपणयुक्त कहते हैं, किन्तु यहाँ इन सवकी विवक्षा न करके एक **'कर्मक्षयसिद्ध'** की विवक्षा की गई है। शेप सवको निरस्त करने हेतु **'बुद्ध'** शव्द का प्रयोग किया गया है। बुद्ध का अर्थ है—अज्ञान-निद्रा में प्रसुप्त जगत् को स्वयं जिन्होंने तत्त्ववोध देकर जागृत किया है, सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होने से उनका स्वभाव ही वोधरूप है। परोपदेश के विना ही केवलज्ञान के द्वारा स्वतः वस्तुस्वरूप या जीवादितत्त्वों को जान लिया है। अर्हन्त भगवान् भी 'बुद्ध' होते हैं, इसलिए विशेषण दिया है—पारगता—जो संसार से या समस्त प्रयोजनों से पार हो चुके हैं। अतएव कृतकृत्य हैं। अक्रमसिद्धों का निराकरण करने के लिए यहाँ कहा गया है—'परंपरगता'=जो परम्परागत हैं। अर्थात्—जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप परम्परा से अथवा मिथ्यात्व से लेकर यथासंभव चतुर्थ, पष्ठ, आदि गुणस्थानों को पार करके सिद्ध हुए हैं। अमरा=आयुकर्म से सर्वथा रहित होने से वे **अजर-अमर** हैं। देह के अभाव में जन्म, जरा, मरण आदि के वन्धनों से विमुक्त हैं। जन्मजरामरणादि ही दुःख रूप हैं और सिद्ध इन सव दुःखों से पार हो चुके हैं। इसलिए कहा गया है—**'णित्थिन्नसव्वदुक्खा-जाति-जरा-मरणबंधणो विमुक्का'**। सिद्धों के 'असरीरा', णेव्वाणमुवगया, उम्मुक्ककम्मकवचा, सव्वकालतित्ता आदि विशेपण प्रसिद्ध हैं, इनके अर्थ भी स्पष्ट हैं।[२]

'अलोए पडिहता सिद्धा' की व्याख्या—सिद्ध भगवान् लोकाग्र के आगे अलोकाकाश होने से अलोक के कारण प्रतिहत हो (रुक) जाते हैं। गति में निमित्त कारण धर्मास्तिकाय है। वह लोका-काश में ही है, अलोकाकाश में नहीं होता। इसलिए ज्यों ही आलोकाकाश प्रारम्भ होता है, सिद्धों की गति में रुकावट आ जाती है। इस प्रकार वे धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण प्रतिहत हो जाते हैं और मनुष्य क्षेत्र का परित्याग करके एक ही समय में अस्पृशद्‌गति से लोक के अग्रभाग (ऊपरी भाग) में स्थित हो जाते हैं।[३]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १०८ से ११२ तक

२. (क) सितं वद्धं अष्टप्रकारं कर्मध्मातं भस्मीकृतं यैस्ते सिद्धाः।

(ख) 'कम्मे सिप्पे य विज्जाए, मंते जोगे य आगमे।
अत्यजत्ताभिप्पाए, तवे कम्मक्खए इ य॥'

३. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति. पत्रांक १०८

चरमभव में सिद्धों का संस्थान—अन्तिम भव में जो भी दीर्घ (५०० धनुष), ह्रस्व (दो हाथ प्रमाण) अथवा विचित्र प्रकार का मध्यम संस्थान (आकार) उनका होता है, सिद्धावस्था में उससे तीसरा भाग कम आकार (संस्थान) रह जाता है, क्योंकि सिद्धावस्था में मुख, पेट, कान आदि के छिद्र भी भर जाते हैं; आत्मप्रदेश सघन हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि भवपरित्याग से कुछ पहले सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाती नाम तीसरे शुक्लध्यान के बल से मुख, उदर आदि के छिद्र भर जाने से जो त्रिभागन्यून संस्थान रह जाता है, वही संस्थान सिद्धावस्था में बना रहता है।

सिद्धों की अवगाहना—जिन सिद्धों की चरमभव में अन्तिम समय में ५०० धनुष की अवगाहना होती है, उनकी त्रिभागन्यून होने पर ३३३⅓ धनुष की होती है, यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना है। इस सम्बन्ध में एक शंका है, कि जैन इतिहासप्रसिद्ध नाभिकुलकर की पत्नी मरुदेवी सिद्ध हुई हैं। नाभिकुलकर के शरीर की अवगाहना ५२५ धनुष की थी, और इतनी ही अवगाहना मरुदेवी की थी; क्योंकि आगमिक कथन है—'संहनन, संस्थान और ऊंचाई कुलकरों के समान ही समझनी चाहिए।' अत: सिद्धिप्राप्त मरुदेवी के शरीर की अवगाहना में से तीसरा भाग कम किया जाए तो वह ३५० धनुष सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में ऊपर जो उत्कृष्ट अवगाहना ३३३⅓ धनुष बतलाई है, उसके साथ इसकी संगति कैसे बैठेगी ? इसका समाधान यह है कि मरुदेवी के शरीर की अवगाहना नाभिराज से कुछ कम होना सम्भव है; क्योंकि उत्तम संस्थान वाली स्त्रियों की अवगाहना उत्तम संस्थान वाले पुरुषों की अवगाहना से अपने अपने समय की अपेक्षा से कुछ कम होती है। इस उक्ति के अनुसार मरुदेवी की अवगाहना ५०० धनुष की मानी जाए तो कोई दोष नहीं। इसके अतिरिक्त मरुदेवी हाथी के हौदे पर बैठी-बैठी सिद्ध हुई थी, अतएव उनका शरीर उस समय सिकुड़ा हुआ था। इस कारण अधिक अवगाहना होना संभव नहीं है। इस प्रकार सिद्धों की जो उत्कृष्ट अवगाहना ऊपर कही गई है, उसमें विरोध नहीं आता।

सिद्धों की मध्यम अवगाहना चार हाथ पूर्ण और एक हाथ में त्रिभाग कम है। आगम में जघन्य सात हाथ की अवगाहना वाले जीवों को सिद्धि बताई गई है, इस दृष्टि से यह अवगाहना मध्मम न हो कर जघन्य सिद्ध होती है, इस शंका का समाधान यह है कि सात हाथ की अवगाहना वाले जीवों की जो सिद्धि कही गई है, वह तीर्थंकर की अपेक्षा से समझनी चाहिए। सामान्य केवली तो इससे कम अवगाहना वाले भी सिद्ध होते हैं। ऊपर जो अवगाहना बताई गई है, वह सामान्य की अपेक्षा से ही है, तीर्थंकरों की अपेक्षा से नहीं। सिद्धों की जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अंगुल की है। यह जघन्य अवगाहना कूर्मापुत्र आदि की समझनी चाहिए, जिनके शरीर की अवगाहना दो हाथ की होती है।

भाष्यकार ने कहा है—'उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष वालों की अपेक्षा से, मध्यम अवगाहना ७ हाथ के शरीर वालों की अपेक्षा से और जघन्य अवगाहना दो हाथ के शरीर वालों की अपेक्षा से कही गई है, जो उनके शरीर से त्रिभागन्यून होती है।'

सिद्धों का संस्थान अनियत—जरामरणरहित सिद्धों का आकार (संस्थान) अनित्थंस्थ होता है। जिस आकार को इस प्रकार का है, ऐसा न कहा जा सके, वह अनित्थंस्थ—यानी अनिर्देश्य कहलाता है। मुख एवं उदर आदि के छिद्रों के भर जाने से सिद्धों के शरीर का पहले वाला आकार बदल जाता है, इस कारण सिद्धों का संस्थान अनित्थंस्थ कहलाता है, यही भाष्यकार ने कहा है। आगम में जो यह कहा गया है कि 'सिद्धात्मा न दीर्घ हैं, न ह्रस्व हैं' आदि कथन भी संगत हो जाता

है। अतः सिद्धों के संस्थान की अनियतता पूर्वाकार की अपेक्षा से है, आकार का अभाव होने के कारण नहीं। क्योंकि सिद्धों में संस्थान का एकान्ततः अभाव नहीं है।[1]

सिद्धों का अवस्थान—जहाँ एक सिद्ध अवस्थित है, वहाँ अनन्त सिद्ध अवस्थित होते हैं। वे परस्पर अवगाढ़ होकर रहते हैं, क्योंकि अमूर्त्तिक होने से सिद्धों को परस्पर एक दूसरे में समाविष्ट होने में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एक दूसरे में मिले हुए लोक में अवस्थित हैं, इसी प्रकार अनन्त सिद्ध एक ही परिपूर्ण अवगाहनक्षेत्र में परस्पर मिलकर लोक में अवस्थित हैं। वे सभी सिद्ध लोकान्त से स्पृष्ट रहते हैं। नियम से अनन्त सिद्ध आत्मा के सर्वप्रदेशों से स्पृष्ट रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अनन्त सिद्ध ऐसे हैं, जो पूर्ण रूप से एक दूसरे से मिले हुए रहते हैं और जिनका स्पर्श देश—(किंचित्) प्रदेशों से है ऐसे सिद्ध तो उनसे भी असंख्यात गुणे अधिक हैं। क्योंकि अवगाढ प्रदेश असंख्यात हैं।

सिद्ध, केवलज्ञान से सदैव उपयुक्त—सिद्ध भगवान् के केवलज्ञान-दर्शन का उपयोग सदैव लगा रहता है, इसलिए वे केवलज्ञानोपयुक्त होकर जानते हैं, अन्तःकरण आदि से नहीं, क्योंकि वे शुद्ध आत्ममय होने से अन्तःकरणादि से रहित हैं।

सिद्ध : जीवघन कैसे ?—सिद्धों को जीवघन अर्थात् सघन आत्मप्रदेशों वाला, इसलिए कहा गया है कि सिद्धावस्था प्राप्त करने से पूर्व तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम काल में उनके मुख, उदर आदि रन्ध्र आत्मप्रदेशों से भर जाते हैं, कहीं भी आत्मप्रदेशों से वे रिक्त नहीं रहते।[2]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : द्वितीय स्थानपद समाप्त ॥

---

१. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १०८ से ११० तक

(ख) कहं मरुदेवामाणं ? नाभीतो जेण किंचिदूणा सा।
तो किर पंचसयच्चिय अहवा संकोचओ सिद्धा ॥ —भाष्यकार

(ग) जेट्ठा उ पंचधणुसय-तणुस्स, मज्झा य सत्तहत्थस्स।
देहत्तिभागहीणा जहन्निया जा विहत्थस्स ॥१॥
नत्तूसियं एसु सिद्धी जहन्नओ कहमिहं विहत्थेसु ?
सा किर तित्थयरेसु, सेयाणं सिज्झमाणाणं ॥२॥
ते पुण होज्ज विहत्था कुम्मापुत्तादयो जहन्नेणं।
अन्ने संवट्टिय सत्तहत्थ सिद्धस्स हीणत्ति ॥३॥ —भाष्यकार

(घ) सुसिरपरिपूरणाओ पुव्वागारन्नहाववत्थाओ। संठाणमणित्थंत्थं जं भणिय मणिययागारं।
एतोच्चिय पडिस्सेहो सिद्धाइगुणेसु दीहयाईणं। जमणित्थंथं पुव्वागाराविक्खाए नाभावो ॥२॥ —भाष्य
दीहं वा हस्से वा। —

२. प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक ११०

तइयं बहुवत्तव्वयपयं (अप्पाबहुत्तंपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यपद (अल्पबहुत्वपद)

प्राथमिक

※ प्रज्ञापनासूत्र का यह तृतीय पद है, इसके दो नाम हैं—'बहुवक्तव्यपद' और 'अल्पबहुत्वपद'।

※ तत्त्वों या पदार्थों का संख्या की दृष्टि से भी विचार किया जाता है। उपनिषदों में वेदान्त का दृष्टिकोण बताया है कि विश्व में एक ही तत्त्व—'ब्रह्म' है, समग्र विश्व उसी का 'विवर्त्त' या 'परिणाम' है, दूसरी ओर सांख्यों का मत है कि जीव तो अनेक हैं, परन्तु अजीव एक ही है। बौद्धदर्शन अनेक 'चित्त' और अनेक 'रूप' मानता है। जैनदर्शन में षड्द्रव्यों की दृष्टि से संख्या का निरूपण ही नहीं, किन्तु परस्पर एक दूसरे से तारतम्य, अल्पबहुत्व का भी निरूपण किया गया है। अर्थात् कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है या विशेषाधिक है? इसका पृथक्-पृथक् अनेक पहलुओं से विचार किया गया है। प्रस्तुत पद में यही वर्णन है।

※ इसमें दिशा, गति, इन्द्रिय, काय, योग आदि से लेकर महादण्डक तक सत्ताईस द्वारों के माध्यम से केवल जीवों का ही नहीं, यथाप्रसंग धर्मास्तिकाय आदि ६ द्रव्यों का, पुद्गलास्तिकाय का वर्गीकरण करके उनके अल्प-बहुत्व का विचार किया गया है। षट्खण्डागम में गति आदि १४ द्वारों से अल्पबहुत्व का विचार है।[1]

※ सर्वप्रथम (सू. २१३-२२४ में) दिशाओं की अपेक्षा से सामान्यतः जीवों के, फिर पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों के, तीन विकलेन्द्रियों के, नैरयिकों के, सप्त नरकों के नैरयिकों के, तिर्यंचपंचेन्द्रिय जीवों के, मनुष्यों के, भवनपति-वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिक देवों के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व का एवं सिद्धों के भी अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।[2]

※ तत्पश्चात् सू. २२५ से २७५ तक दूसरे से तेईसवें द्वार तक के माध्यम से नरकादि चारों गतियों के, इन्द्रिय-अनिन्द्रिययुक्त जीवों के, पर्याप्तक-अपर्याप्तकों के, षट्कायिक-अकायिक, अपर्याप्तक-पर्याप्तक, पर्याप्तक-अपर्याप्तकों के, बादर-सूक्ष्मषट्कायिकों के, सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी काययोगी-अयोगी के, सवेदक-स्त्रीवेदक-पुरुषवेदक-नपुंसक वेदक-अवेदकों के, सकषायी-क्रोध-

---

१. (क) पंण्णवणासुत्तं भाग-२, प्रस्तावना पृष्ठ ५२ (ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३
   (ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. ५२० (घ) प्रज्ञापना.-प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. २०३

२. पण्णवणासुत्तं भाग-१, पृ. ८१ से ८४ तक

मान-माया-लोभ कपायी-अकपायी के, सलेश्य-षट्लेश्य-अलेश्य जीवों के, सम्यग् मिथ्या-मिश्र दृष्टि के, पांच ज्ञान-तीन अज्ञान से युक्त जीवों के, चक्षुर्दर्शनादि चार दर्शनों से युक्त जीवों के, संयत-असंयत संयतासंयत-नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीवों के, साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवों के, आहारक-अनाहारक जीवों के, भाषक-अभाषक जीवों के, परीत्त-अपरीत्त-नोपरीत्त-नोअपरीत्त जीवों के, पर्याप्त-अपर्याप्त-नोपर्याप्त-नोअपर्याप्तकों के, सूक्ष्म-बादर-नोसूक्ष्म-नोबादरों के, संज्ञी-असंज्ञी-नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों के, भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक-नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवों के, धर्मास्तिकाय आदि षट्द्रव्यों के द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से पृथक्-पृथक् एवं समुच्चय जीवों के, चरम-अचरम जीवों के, जीव-पुद्गल-काल-सर्वद्रव्य सर्वप्रदेश-सर्वपर्यायों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।[1]

* इसके पश्चात् सू. २७६ से ३२३ तक चौवीसवें क्षेत्रद्वार के माध्यम से ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक, अधोलोक-तिर्यक्लोक एवं त्रैलोक्य में सामान्य जीवों के, तथा नैरयिक, तिर्यंचयोनिक पुरुष-स्त्री, मनुष्यपुरुष-स्त्री, देव-देवी, भवनपति देव-देवी, वाणव्यन्तर देव-देवी, ज्योतिष्क देव-देवी, वैमानिक देव-देवी, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के तथा षट्कायिक पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

* पच्चीसवें बन्धद्वार (सू. ३२५) में आयुष्यकर्मबन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समवहत-असमवहत, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नोइन्द्रियोपयुक्त, एवं साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा है।

* छब्बीसवें पुद्गलद्वार में क्षेत्र और दिशाओं की अपेक्षा से पुद्गलों तथा द्रव्यों का एवं द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से परमाणु पुद्गलों एवं संख्यात, असंख्यात, और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का तथा एक प्रदेशावगाढ़ संख्यातप्रदेशावगाढ़ एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों का, एकसमयस्थितिक, संख्यातसमयस्थितिक और असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलों का एवं एकगुण काला, संख्यातगुण काला, असंख्यातगुण काला और अनन्तगुण काला आदि पुद्गलों का अल्पबहुत्व प्ररूपित किया गया है।

* सत्ताईसवें महादण्डकद्वार में समग्रभाव से पृथक्-पृथक् सविशेष जीवों के अल्पबहुत्व का ९८ क्रमों में कथन किया गया है। षट्खण्डागम के महादण्डक द्वार में भी सर्वजीवों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।[2]

* महादण्डक द्वार में समग्ररूप से जीवों की अल्पबहुत्व-प्ररूपणा की है। इस लम्बी सूची पर से फलित होता है कि उस युग में भी आचार्यों ने जीवों की संख्या का तारतम्य बताने का प्रयत्न किया है तथा मनुष्य हो, देव हो या तिर्यंच हो, सभी में पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों की संख्य अधिक मानी गई है। अधोलोक में पहली से सातवीं नरक तक क्रमशः जीवों की संख्या घटती जाती

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ. ८४ से १०१ तक (ख) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३ से १६८ तक

२. (क) पण्णवणासुत्तं भा. १, पृ. १०१ से १११ तक (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, पृ. ५२-५३ (प्रस्तावना)

है, जबकि ऊर्ध्वलोक में इससे उलटा क्रम है, वहाँ सबसे ऊपर के अनुत्तर विमानवासी देवों की संख्या सब से कम है, फिर नीचे के देवों में क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सौधर्म देवों की संख्या सबसे अधिक बताई गई है। पर मनुष्य लोक के नीचे भवनपति देव हैं, उनकी संख्या सौधर्म से अधिक है, उससे ऊँचे होते हुए भी व्यन्तर तथा ज्योतिष्क देवों की संख्या उत्तरोत्तर अधिक है। सबसे कम संख्या मनुष्यों की है, इसी कारण मनुष्यभव दुर्लभ माना जाता है। जैसे-जैसे इन्द्रियां कम हैं, वैसे-वैसे जीवों की संख्या अधिक होती है, अर्थात् विकसित जीवों की अपेक्षा अविकसित जीवों की संख्या अधिक है। सिद्ध (पूर्णताप्राप्त) जीवों की संख्या एकेन्द्रिय जीवों से कम है। सबसे नीची सातवें नरक में और सर्वोच्च अनुत्तर देवलोक में सबसे कम जीव हैं, इस पर से ध्वनित होता है, जैसे अत्यन्त पुण्यशाली कम होते हैं, वैसे अत्यन्त पापी भी कम हैं।[1]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. २, प्रस्तावना पृ. ५४ (ख) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. ५७५ से

तइयं बहुवत्तव्वयपयं (अप्पाबहुत्तपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यतापद (अल्पबहुत्वपद)

द्वारसंग्रह-गाथाएँ

दिशादि २७ द्वारों के नाम

२१२. दिसि १ गति २ इंदिय ३ काए ४ जोगे ५ वेदे ६ कसाय ७ लेस्सा य ८ ।
सम्मत्त ९ णाण १० दंसण ११ संजय १२ उवओग १३ आहारे १४ ॥१८०॥

भासग १५ परित्त १६ पज्जत्त १७ सुहुम १८ सण्णी १९ भवऽत्थिए २०-२१ चरिमे २२।
जीवे य २३ खेत्त २४ बंधे २५ पोग्गल २६ महदंडए २७ चेव ॥१८१॥

[२१२ गाथार्थ—] १. दिक् (दिशा), २. गति, ३. इन्द्रिय, ४. काय, ५. योग, ६. वेद, ७. कषाय, ८. लेश्या, ९. सम्यक्त्व, १०. ज्ञान, ११. दर्शन, १२. संयत, १३. उपयोग, १४. आहार, १५. भाषक, १६. परीत, १७. पर्याप्त, १८. सूक्ष्म, १९. संज्ञी, २०. भव, २१. अस्तिक, २२. चरम, २३. जीव, २४. क्षेत्र, २५. बन्ध, २६. पुद्गल और २७. महादण्डक; (तृतीय पद में ये २७ द्वार हैं, जिनके माध्यम से पृथ्वीकाय आदि जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की जाएगी) ॥१८१-१८२॥

प्रथम दिशाद्वार : दिशा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२१३. दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा जीवा पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया ।

[२१३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े जीव पश्चिमदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्वदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिणदिशा में हैं, (और उनसे) विशेषाधिक (जीव) उत्तर-दिशा में है ।

२१४. [१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया दाहिणेणं, उत्तरेणं विसेसाहिया, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया ।

[२१४-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक जीव दक्षिणदिशा में हैं, (उनसे) उत्तर में विशेषाधिक हैं, (उनसे) पूर्वदिशा में विशेषाधिक हैं, (उनसे भी) पश्चिम में (पृथ्वीकायिक) विशेषाधिक हैं ।

[२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा आउक्काइया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया ।

[२१४-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े अप्कायिक जीव पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं।

[३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउक्काइया दाहिणुत्तरेणं, पुरत्थिमेणं संखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया।

[२१४-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े तेजस्कायिक जीव दक्षिण और उत्तर में हैं, पूर्व में (उनसे) संख्यातगुणा अधिक हैं,(और उनसे भी) पश्चिम में विशेषाधिक हैं।

[४] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया पुरत्थिमेणं, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया।

[२१४-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम वायुकायिक जीव पूर्वदिशा में हैं, उनसे विशेषाधिक पश्चिम में हैं, उनसे विशेषाधिक उत्तर में हैं और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण में हैं।

[५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१४-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े वनस्पतिकायिक जीव पश्चिम में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर में हैं।

२१५. [१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दक्खिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१५-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव पश्चिम में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं।

[२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१५-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम त्रीन्द्रिय जीव पश्चिमदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर में हैं।

[३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२१५-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम चतुरिन्द्रिय जीव पश्चिम में हैं, (उनसे) विशेषाधिक पूर्वदिशा में हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण में हैं (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा में हैं।

२१६. [१] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं, असंखेज्जगुणा।

[२१६-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।

[२] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा रयणप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२१६-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।

[३] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा सक्करप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२१६-३] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।

[४] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा वालुयप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२१६-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं (और उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।

[५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पंकप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२१६-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं (और उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।

[६] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा धूमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२१६-६] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं, एवं (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।

[७] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा तमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा।

[२१६-७] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं।

[८] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा अहेसत्तमापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१६-८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े अधःसप्तमा (तमस्तमःप्रभा) पृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में हैं और (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा में हैं ।

२१७. [१] दाहिणिल्लेहिंतो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-१] दक्षिणदिशा के अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों से छठी तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं, और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं ।

[२] दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविणेरइएहिंतो पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-२] दक्षिणदिशावर्ती तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से पांचवीं धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं ।

[३] दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-३] दक्षिणदिशावर्ती धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं; (उनसे) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं ।

[४] दाहिणिल्लेहिंतो पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो तइयाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखिज्जगुणा ।

[२१७-४] दाक्षिणात्य पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से तीसरी वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और दक्षिणदिशा में (उनसे भी) असंख्यातगुणे हैं ।

[५] दाहिणिल्लेहिंतो वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखिज्जगुणा, दाहिणेणं असंखिज्जगुणा ।

[२१७-५] दक्षिणदिशा के वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और दक्षिणदिशा में उनसे भी असंख्यातगुणे हैं ।

[६] दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढविनेरइएहिंतो इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२१७-६] दक्षिणदिशा के शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से इस पहली रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और उनसे भी दक्षिणदिशा में असंख्यातगुणे हैं ।

२१८. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया पच्चत्थिमेणं, पुरत्थिमेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया ।

[२१८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पश्चिम में हैं। पूर्व में (इनसे) विशेपाधिक हैं, दक्षिण में (इनसे) विशेषाधिक हैं और उत्तर में (इनसे भी) विशेषाधिक हैं।

२१९. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा मणुस्सा दाहिणउत्तरेणं, पुरत्थिमेणं संखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया ।

[२१९] दिशाओं की अपेक्षा सबसे कम मनुष्य दक्षिण एवं उत्तर में हैं, पूर्व में (उनसे) संख्यातगुणे अधिक हैं और पश्चिमदिशा में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

२२०. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा भवणवासी देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२०] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम में हैं। (उनसे) असंख्यातगुणे अधिक उत्तर में हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

२२१. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा पुरत्थिमेणं, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया ।

[२२१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव पूर्व में हैं, उनसे विशेषाधिक पश्चिम में हैं, उनसे विशेपाधिक उत्तर में है और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण में हैं।

२२२. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा जोइसिया देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया ।

[२२२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे थोड़े ज्योतिष्क देव पूर्व एवं पश्चिम में हैं, दक्षिण में उनसे विशेपाधिक हैं और उत्तर में उनसे भी विशेषाधिक हैं।

२२३. [१] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सोहम्मे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया ।

[२२३-१] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प देव सौधर्मकल्प में पूर्व तथा पश्चिम दिशा में है, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

[२] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा ईसाणे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया ।

[२२३-२] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव ईशान-कल्प में पूर्व एवं पश्चिम में हैं। उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

[३] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सणंकुमारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्ज-गुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया ।

[२२३-३] दिशाओं की अपेक्षा सबसे अल्प देव सनत्कुमारकल्प में पूर्व और पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं ।

[४] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा माहिंदे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं असंखेज्ज-गुणा, दाहिणेणं विसेसाहिया ।

[२२३-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प देव माहेन्द्रकल्प में पूर्व तथा पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं ।

[५] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा बंभलोए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२३-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव ब्रह्मलोककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं; दक्षिणदिशा में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं ।

[६] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा लंतए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२३-६] दिशाओं को लेकर सबसे थोड़े देव लान्तककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं । (उनसे) असंख्यातगुणे दक्षिण में हैं ।

[७] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा महासुक्के कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२३-७] दिशाओं की दृष्टि से सबसे कम देव महाशुक्रकल्प में पूर्व, पश्चिम एवं उत्तर में हैं । दक्षिण में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं ।

[८] दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा देवा सहस्सारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेणं असंखेज्जगुणा ।

[२२३-८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव सहस्रारकल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं । दक्षिण में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं ।

[९] तेण परं बहुसमोववण्णगा समणाउसो ! ।

[२२३-९] हे आयुष्मन् श्रमणो ! उससे आगे (के प्रत्येक कल्प में, प्रत्येक ग्रैवेयक में तथा प्रत्येक अनुत्तरविमान में चारों दिशाओं में) बहुत (बिलकुल) सम उत्पन्न होने वाले हैं ।

२२४. दिसाणुवातेणं सव्वत्थोवा सिद्धा दाहिणुत्तरेणं, पुरत्थिमेणं संखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया । दारं १ ॥

[२२४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तरदिशा में हैं। पूर्व में (उनसे) संख्यातगुणे हैं और पश्चिम में (उनसे) विशेषाधिक हैं। —प्रथमद्वार ॥१॥

विवेचन—प्रथम दिशाद्वार : दिशाओं की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत बारह सूत्रों (सू. २१३ से २२४ तक) में से प्रथमसूत्र में दिशा की अपेक्षा से औधिक जीवों के अल्पबहुत्व की और शेष ११ सूत्रों में पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवों से लेकर अनुत्तर विमानवासी वैमानिक देवों तक के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

दिशाओं की अपेक्षा से—आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध में द्रव्यदिशा और भावदिशा के अनेक भेद बताए गए हैं, किन्तु यहाँ उनमें से क्षेत्रदिशाओं का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि अन्य दिशाएँ यहाँ अनुपयोगी हैं और प्रायः अनियत हैं। क्षेत्रदिशाओं की उत्पत्ति (प्रभव) तिर्यक्लोक के मध्य में स्थित आठ रुचकप्रदेशों से है। वही सब दिशाओं का केन्द्र है।

औधिक जीवों का अल्पबहुत्व—दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प जीव पश्चिम दिशा में हैं, क्योंकि उस दिशा में बादर वनस्पति की अल्पता है। यहाँ बादर जीवों की अपेक्षा से ही अल्पबहुत्व का विचार किया गया है, सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा से नहीं, क्योंकि सूक्ष्मजीव तो समग्र लोक में व्याप्त हैं, इसलिए प्रायः सर्वत्र समान ही हैं। बादर जीवों में वनस्पतिकायिक जीव सबसे अधिक हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ वनस्पति अधिक है, वहाँ जीवों की संख्या अधिक है, जहाँ वनस्पति की अल्पता है,वहाँ जीवों की संख्या भी अल्प है। वनस्पति वहीं अधिक होती है, जहाँ जल की प्रचुरता होती है। '**जत्थ जलं तत्थ वणं**' इस उक्ति के अनुसार जहाँ जल होता है, वहाँ वन अर्थात् पनक, शैवाल आदि वनस्पति अवश्य होती है। बादरनामकर्म के उदय से पनक आदि की गणना बादर वनस्पतिकाय में होने पर भी उनकी अवगाहना अतिसूक्ष्म होने तथा उनके पिण्डीभूत हो कर रहने के कारण सर्वत्र विद्यमान होने पर भी वे नेत्रों से ग्राह्य नहीं होते। 'जहाँ अप्काय होता है, वहाँ नियमतः वनस्पतिकायिक जीव होते हैं;' इस वचनानुसार समुद्र आदि में प्रचुर जल होता है और समुद्र द्वीपों की अपेक्षा दुगुने विस्तार वाले हैं। उन समुद्रों में भी प्रत्येक में पूर्व और पश्चिम में क्रमशः चन्द्रद्वीप और सूर्यद्वीप हैं। जितने प्रदेश में चन्द्र-सूर्यद्वीप स्थित हैं, उतने प्रदेश में जल का अभाव है। जहाँ जल का अभाव है, वहाँ वनस्पतिकायिक जीवों का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त पश्चिमदिशा में लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित नामक देव का आवासरूप गौतमद्वीप है, जो लवणसमुद्र से भी अधिक विस्तृत है। वहाँ भी जल का अभाव होने से वनस्पतिकायिकों का अभाव है। इसी कारण पश्चिम दिशा में सबसे कम जीव पाए जाते हैं। पश्चिमदिग्वर्ती जीवों से पूर्वदिशा में विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि पूर्वदिशा में गौतमद्वीप नहीं है, अतएव वहाँ उतने जीव अधिक हैं, दक्षिणदिशा में पूर्वदिग्वर्ती जीवों से विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि दक्षिण में चन्द्र-सूर्यद्वीप न होने से प्रचुर जल है, इस कारण वनस्पतिकायिक जीव भी बहुत हैं। उत्तर में दक्षिणदिग्वर्ती जीवों की अपेक्षा विशेषाधिक जीव हैं, क्योंकि उत्तरदिशा में संख्यात योजन वाले द्वीपों में से एक द्वीप में संख्यातकोटि-योजन-प्रमाण लम्बा-चौड़ा एक मानस-सरोवर है, उसमें जल की प्रचुरता होने से वनस्पतिकायिक जीवों की बहुलता है। इसी प्रकार जलाश्रित शंखादि द्वीन्द्रिय जीव, समुद्रादितटोत्पन्न शंख आदि के आश्रित चींटी

(पिपीलिका) आदि त्रीन्द्रिय जीव, कमल आदि में निवास करने वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव तथा जलचर मत्स्य आदि पंचेन्द्रिय जीव भी उत्तर में विशेषाधिक हैं।[1]

विशेषरूप से दिशाओं की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—(१) पृथ्वीकायिकों का अल्पबहुत्व— दक्षिणदिशा में सबसे कम पृथ्वीकायिक इसलिए हैं कि पृथ्वीकायिक जीव वहीं अधिक होते हैं, जहाँ ठोस स्थान होता है, जहाँ छिद्र या पोल होती है, वहाँ बहुत कम होते हैं। दक्षिणदिशा में बहुत-से भवनपतियों के भवन और नरकावास होने के कारण छिद्रों और पोली जगहों की बहुलता है। दक्षिण दिशा की अपेक्षा उत्तरदिशा में पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तरदिशा में भवनपतियों के भवन और नरकावास कम हैं। अतः वहाँ सघन स्थान अधिक है। पूर्वदिशा में चन्द्र-सूर्यद्वीप होने से पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक हैं। इसकी अपेक्षा भी पश्चिम में पृथ्वीकायिकजीव विशेषाधिक हैं क्योंकि वहाँ चन्द्र-सूर्यद्वीप के अतिरिक्त लवणसमुद्रीय गौतमद्वीप भी है।

(२) अप्कायिकों का अल्पबहुत्व—पश्चिम में वे सब से कम हैं, क्योंकि पश्चिम में गौतमद्वीप होने के कारण जल कम है। पूर्व में गौतमद्वीप नहीं होने से अप्कायिक विशेषाधिक हैं, दक्षिण में चन्द्र-सूर्यद्वीप न होने से अप्कायिक विशेषाधिक हैं और उत्तर में मानससरोवर होने से जल की प्रचुरता है, इसलिए वहाँ अप्कायिक विशेषाधिक हैं।

(३) तेजस्कायिकों का अल्पबहुत्व—दक्षिण और उत्तर दिशा में अग्निकायिक जीव सबसे कम इसलिए हैं कि मनुष्यक्षेत्र में ही बादर तेजस्कायिक जीवों का अस्तित्व होता है, अन्यत्र नहीं। उसमें भी जहाँ मनुष्यों की संख्या अधिक होती है, वहाँ पचन-पाचन की प्रवृत्ति अधिक होने से तेजस्कायिक जीवों की अधिकता होती है। दक्षिण में पांच भरत क्षेत्रों तथा उत्तर में पांच ऐरवत क्षेत्रों में क्षेत्र की अल्पता होने से मनुष्य कम हैं, अतएव वहाँ तेजस्कायिक भी कम हैं। स्वस्थान में (अर्थात् दोनों में) प्रायः समान हैं। इन दोनों दिशाओं की अपेक्षा पूर्व में क्षेत्र संख्यातगुण अधिक होने से तेजस्कायिक पूर्व में संख्यातगुण अधिक हैं, तथा उनसे भी विशेषाधिक तेजस्कायिक पश्चिमदिशा में हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं, जहाँ मनुष्यों की बहुलता होती है।

(४) वायुकायिक जीवों का अल्पबहुत्व—सब से अल्प वायुकायिक जीव पूर्व में हैं, क्योंकि जहाँ पोल होती है वहीं वायु का संचार होता है, सघन स्थान में नहीं। पूर्व में सघन (ठोस) स्थान अधिक होने से वायु अल्प है। पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में वायुकायिक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं। उत्तर में उससे विशेषाधिक हैं, क्योंकि नारकावासों की वहाँ बहुलता होने से पोल अधिक है। दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा पोल अधिक है, क्योंकि दक्षिण में भवनों और नारकावासों की प्रचुरता है, इसलिए दक्षिण में वे विशेषाधिक हैं।

(५) वनस्पतिकायिक जीवों का अल्पबहुत्व—वे सबसे कम पश्चिम में हैं, क्योंकि पश्चिम में

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ११३-११४

(ख) अट्ठपएसो रुयगो तिरियलोयस्स मज्झयारम्मि।
एस पभवो दिसाणं, एसेव भवे अणुदिसाणं ॥ १ ॥

(ग) 'ते णं वालग्गा सुहुमपणग जीवस्स सरीरोगाहणाहिंतो असंखेज्जगुणा।' —अनुयोगद्वारसूत्र

(घ) 'जत्थ आउकाओ, तत्थ नियमा वणस्सइकाइया।'

गौतमद्वीप होने से जल की अल्पता है और जल अल्प होने से वनस्पतिकायिक जीव भी कम हैं। पश्चिम की अपेक्षा पूर्व में वनस्पतिकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि पूर्व में गौतमद्वीप न होने से जल अधिक है। उनसे दक्षिणदिशा में वनस्पतिकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप का अभाव होने से जल की प्रचुरता है।

(६) **द्वीन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम द्वीन्द्रिय पश्चिमदिशा में हैं, क्योंकि वहाँ गौतमद्वीप होने से जल कम है और जल कम होने से शंख आदि द्वीन्द्रिय जीव कम हैं। उनसे पूर्वदिशा में विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ गौतमद्वीप का अभाव होने से जल का प्राचुर्य है, इस कारण शंख आदि द्वीन्द्रिय जीवों की अधिकता है। दक्षिण में उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप न होने से जल अधिक है और इस कारण शंखादि भी अधिक हैं। उत्तर में तो मानस-सरोवर होने से जलाधिक्य है ही, इसलिए वहाँ द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

(७) **त्रीन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—कुंथुआ, चींटी आदि त्रीन्द्रिय शंखादि-कलेवरों के आश्रित होने से द्वीन्द्रिय जीवों की तरह जलाधिक्य पर निर्भर हैं। इसलिए इनके अल्पबहुत्व का समाधान भी द्वीन्द्रिय की तरह समझ लेना चाहिए।

(८) **चतुरिन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव भी प्रायः कमल आदि के आश्रित होते हैं और कमल (जलज) भी जलजन्य होने से चतुरिन्द्रिय जीवों की अल्पता-अधिकता भी जलाभाव-जलप्राचुर्य पर निर्भर है। अतः इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी द्वीन्द्रियों की तरह समझना चाहिए।

(९) **नारकों का अल्पबहुत्व**—पूर्व, पश्चिम और उत्तर में सबसे कम नारक हैं, क्योंकि इन दिशाओं में पुष्पावकीर्ण नरकावास थोड़े हैं, और वे प्रायः संख्यात योजन विस्तृत हैं। इन दिशाओं की अपेक्षा दक्षिणदिशा में असंख्यात-गुणा नारक हैं, क्योंकि दक्षिण में पुष्पावकीर्णनरकावासों की बहुलता है और वे प्रायः असंख्यात योजन विस्तृत हैं। इसके अतिरिक्त कृष्णपाक्षिक जीवों की उत्पत्ति दक्षिणदिशा में बहुत होती है। संसार में दो प्रकार के जीव हैं—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। जिनका संसार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन मात्र ही शेष है, वे शुक्लपाक्षिक हैं और जिनका संसार (भवभ्रमण) इससे बहुत अधिक है; वे कृष्णपाक्षिक हैं। शुक्लपाक्षिक (परिमित-संसारी) जीव अल्प होते हैं, जबकि कृष्णपाक्षिक जीव अत्यधिक होते हैं। वे क्रूरकर्मा एवं दीर्घतर भवभ्रमणकर्ता जीव स्वभावतः दक्षिणदिशा में उत्पन्न होते हैं। प्रायः क्रूरकर्मा भवसिद्धिक जीव भी दक्षिणदिशा में स्थित नारकों, तिर्यंचों, मनुष्यों और असुरों आदि के स्थानों में उत्पन्न होते हैं।

(१०) **विशेषरूप से रत्नप्रभादि के नारकों का अल्पबहुत्व**—रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक-भूमि से तमस्तमःप्रभा नामक सप्तम नरकभूमि तक के नारक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में सबसे कम हैं, किन्तु दक्षिण दिशा में उनसे असंख्यातगुणे अधिक हैं। इसका कारण पहले बतलाया जा चुका है।

(११) **सातों नरकपृथ्वियों के जीवों का परस्पर अल्पबहुत्व**—सप्तम नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरदिग्वर्ती नारकों की अपेक्षा इसी पृथ्वी के दक्षिणदिग्वर्ती नारक असंख्यातगुणे अधिक हैं, इसका कारण पहले बताया जा चुका है। सप्तम नरकपृथ्वी के दक्षिणदिग्वर्ती नैरयिकों की अपेक्षा छठी नरकपृथ्वी (तमःप्रभा) के पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्वर्ती नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, इसका कारण यह है कि संसार में सबसे अधिक पापकर्मकारी संज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य सप्तम

नरकपृथ्वी में उत्पन्न होते हैं, किञ्चित् हीन, हीनतर पापकर्मकारी छठी, पांचवी आदि पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं। सर्वोत्कृष्ट पापकर्मकारी सबसे थोड़े हैं; इसलिए सप्तम नरकपृथ्वी के दक्षिण में सबसे कम नारक हैं, उनसे छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरदिग्वर्ती नारक असंख्येयगुणे हैं; छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिम-उत्तरदिग्वर्ती नारकों की अपेक्षा दक्षिणदिग्वर्ती नारक असंख्यातगुणे हैं। कारण पहले बताया जा चुका है। उनसे क्रमशः पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और प्रथम नरक के पूर्वपश्चिमोत्तरदिग्वर्ती तथा दक्षिणदिग्वर्ती नैरयिक अनुक्रम से असंख्यातगुणे समझ लेने चाहिए।

(१२) **तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व**—तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व अप्कायिक सूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।

(१३) **मनुष्यों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम मनुष्य दक्षिण और उत्तर दिशा में हैं, क्योंकि इन दिशाओं में पांच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्र छोटे ही हैं। उनसे पूर्वदिशा में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ क्षेत्र संख्यातगुणे बड़े हैं। पश्चिम दिशा में इनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम हैं, जिनमें स्वभावतः मनुष्यों की बहुलता है।

(१४) **भवनवासी देवों का अल्पबहुत्व**—सबसे अल्प भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम में हैं, क्योंकि इन दोनों दिशाओं में उनके भवन थोड़े हैं। इनकी अपेक्षा उत्तर में असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि स्वस्थान होने से वहाँ भवन बहुत हैं। दक्षिणदिशा में इनसे भी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ प्रत्येक निकाय के चार-चार लाख भवन अधिक हैं तथा बहुत-से कृष्णपाक्षिक इसी दिशा में उत्पन्न होते हैं, अतः वे असंख्यातगुणे अधिक हैं।

(१५) **वाणव्यन्तर देवों का अल्पबहुत्व**—जहाँ पोले स्थान हैं, वहीं प्रायः व्यन्तरों का संचार होता है, पूर्वदिशा में ठोस स्थान अधिक हैं, इस कारण वहाँ व्यन्तर थोड़े ही हैं। पश्चिमदिशा में उनसे विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्रामों में पोल अधिक है, उनकी अपेक्षा उत्तरदिशा में विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ उनके स्वस्थान होने से नगरावासों की बहुलता है। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक हैं, क्योंकि दक्षिणदिशा में उनके नगरावास अत्यधिक हैं।

(१६) **ज्योतिष्क देवों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम ज्योतिष्क देव पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में होते हैं, क्योंकि इन दोनों दिशाओं में चन्द्र और सूर्य के उद्यान जैसे द्वीपों में ज्योतिष्क देव अल्प ही होते हैं। दक्षिण में उनकी अपेक्षा विशेषाधिक हैं, क्योंकि दक्षिण में उनके विमान अधिक हैं और कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा में ही होते हैं। उत्तरदिशा में उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तर में मानससरोवर में ज्योतिष्क देवों के क्रीड़ास्थल बहुत हैं। क्रीड़ारत होने के कारण वहाँ ज्योतिष्क देव सदैव रहते हैं। मानससरोवर के मत्स्य आदि जलचरों को अपने निकटवर्ती विमानों को देख कर जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे वे किंचित् व्रत अंगीकार कर अशनादि का त्याग करके निदान के कारण वहाँ उत्पन्न होते हैं। इस कारण उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा ज्योतिष्क देव विशेषाधिक हैं।

(१७) **सौधर्म आदि वैमानिक देवों का अल्पबहुत्व**—वैमानिक देव सौधर्मकल्प में सबसे कम पूर्व और पश्चिम में हैं, क्योंकि आवलिकाप्रविष्ट विमान तो चारों दिशाओं में समान हैं, किन्तु बहुसंख्यक और असंख्यातयोजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान दक्षिण और उत्तर में ही हैं, पूर्व और पश्चिम में नहीं। इसी कारण पूर्व और पश्चिम में सबसे कम वैमानिक देव हैं। इनकी अपेक्षा उत्तर में वे असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उत्तर में असंख्यात योजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान बहुत हैं

और उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि कृष्णपाक्षिकों का वहाँ अधिकतर गमन होता है। ईशान, सनत्कुमार एवं माहेन्द्र कल्प के देवों का भी दिशा की अपेक्षा से अल्पबहुत्व इसी प्रकार है और उनका कारण भी पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिए। ब्रह्मलोककल्प के देव सबसे कम पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं, क्योंकि बहुसंख्यक कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा में उत्पन्न होते हैं और शुक्लपाक्षिक थोड़े ही होते हैं। दक्षिणदिशा में उनकी अपेक्षा असंख्यातगुणे देव हैं, क्योंकि वहाँ बहुत कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र एवं सहस्रार कल्प के देवों का (दिशाओं की अपेक्षा) अल्पबहुत्व एवं कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। सहस्रारकल्प के बाद ऊपर के कल्पों के तथा नौ ग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर विमानों के देव चारों दिशाओं में समान हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।

(१८) सिद्धजीवों का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तर में हैं, क्योंकि मनुष्य ही सिद्ध होते हैं, अन्य जीव नहीं। सिद्ध होने वाले मनुष्य चरम समय में जिन आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ (स्थित) होते हैं, उन्हीं आकाशप्रदेशों की दिशा में ऊपर जाते हैं, उसी सीध में ऊपर जाकर वे लोकाग्र में स्थित हो जाते हैं। दक्षिणदिशा में पांच भरतक्षेत्रों में तथा उत्तर में पांच ऐरावत क्षेत्रों में मनुष्य अल्प हैं, क्योंकि सिद्धक्षेत्र अल्प है। फिर सुषम-सुषमा आदि आरों में सिद्धि प्राप्त नहीं होती। इस कारण दक्षिण और उत्तर में सिद्ध सबसे कम हैं। पूर्वदिशा में उनसे असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि भरत और ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा पूर्वविदेह संख्यातगुणा विस्तृत है, इसलिए वहाँ मनुष्य भी संख्यातगुणे हैं और वहाँ से सर्वकाल में सिद्धि होती रहती है। उनसे भी पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं; क्योंकि अधोलौकिक ग्रामों में मनुष्यों की अधिकता है।[1]

द्वितीय गतिद्वार : पांच या आठ गतियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—

२२५. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं देवाणं सिद्धाण य पंचगति[2] समासेणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा १, नेरइया असंखेज्जगुणा २, देवा असंखेज्जगुणा ३, सिद्धा अणंतगणा ४, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ५।

[२२५ प्र.] भगवन् ! नारकों, तिर्यंचों, मनुष्यों, देवों और सिद्धों की पांच गतियों की अपेक्षा से संक्षेप में कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२५ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े मनुष्य हैं, २. (उनसे) नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) देव असंख्यातगुणे हैं, ४. उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं और ५. (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं।

२२६. एतेसि णं भंते ! नेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणुस्साणं मणुस्सीणं देवाणं देवीणं सिद्धाण य[3] अट्ठगति[3] समासेणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ११६ से ११९ तक

२. 'पंचगति अणुवाएणं समासेणं' यह पाठान्तर मिलता है। —सं.

३. 'अट्ठगति अणुवाएणं समासेणं' यह पाठान्तर मिलता है। —सं.

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ १, मणुस्सा असंखेज्जगुणा २, नेरइया असंखेज्जगुणा ३, तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ४, देवा असंखेज्जगुणा ५, देवीओ संखेज्जगुणाओ ६, सिद्धा अणंतगुणा ७, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ८ । दारं २ ॥

[२२६ प्र.] भगवन् ! इन नैरयिकों, तिर्यंचों, तिर्यंचिनियों, मनुष्यों, मनुष्यस्त्रियों, देवों, देवियों और सिद्धों का आठ गतियों की अपेक्षा से, संक्षेप में, कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२६ उ.] गौतम ! १. सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्री) हैं, २. (उनसे) मनुष्य असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) तिर्यञ्चिनियां असंख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) देव असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) देवियां संख्यातगुणी हैं, ७. (उनसे) सिद्ध अनन्तगुणे हैं, और ८. (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक अनन्तगुणे हैं । द्वितीय द्वार ॥२॥

विवेचन—द्वितीय गतिद्वार—पांच या आठ गतियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. २२५-२२६) में नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्धि, इन पांच गतियों की अपेक्षा से तथा नारक, तिर्यंच, तिर्यचनी, मनुष्य, मानुषी, देव, देवी और सिद्ध, इन आठ गतियों की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

पांच गतियों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—गतियों की अपेक्षा से सबसे थोड़े मनुष्य हैं, क्योंकि वे ९६ छेदनक-छेद्यराशिप्रमाण ही हैं । उनके नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अंगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के प्रथम वर्गमूल का द्वितीय वर्गमूल से गुणाकार करने पर जो प्रदेशराशि होती है, उतनी ही घनीकृतलोक की एकप्रादेशिकी श्रेणियों में जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतना ही नारकों का प्रमाण है । नैरयिकों की अपेक्षा देव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि व्यन्तर और ज्योतिष्क देव प्रतर की असंख्यातभागवर्ती श्रेणियों के आकाशप्रदेशों की राशि के तुल्य हैं । सिद्ध उनसे भी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अभव्यों से अनन्तगुणे हैं । सिद्धों से तिर्यञ्च अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं ।[1]

आठ बोलों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—पांच गतियों के ही अवान्तर भेद करके प्रस्तुत आठ गतियां बता कर उनकी दृष्टि से अल्पबहुत्व का निरूपण करते हैं—सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्रियां) हैं, क्योंकि उनकी संख्या संख्यातकोटाकोटी प्रमाण है । उनसे मनुष्य असंख्यातगुणे अधिक हैं; क्योंकि इनमें वेद की विवक्षा न करने से सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का भी समावेश हो जाता है और सम्मूर्च्छनज मनुष्य उच्चार, प्रस्रवण, वमन आदि से लेकर नगर की नालियों (मोरियों) आदि (१४ स्थानों) में असंख्येय उत्पन्न होते हैं । मनुष्यों की अपेक्षा नारक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि मनुष्य उत्कृष्ट संख्या में श्रेणी के असंख्यातवें भागगत प्रदेशों की राशि प्रमाण पाए जाते हैं, जबकि नारक अंगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशिवर्ती तृतीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूलप्रमाण-श्रेणिगत आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं । अतः वे उनसे असंख्यातगुणे हैं । नारकों से तिर्यंचिनी असंख्यातगुणी हैं, क्योंकि वे प्रतरासंख्येय भाग में रहे हुए असंख्यातश्रेणियों के आकाशप्रदेशों के समान हैं । देव इनसे भी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे असंख्येयगुणप्रतर के असंख्येयभागवर्ती असंख्येय श्रेणिगतप्रदेशों की राशि-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ११९

प्रमाण हैं। देवों की अपेक्षा देवियां संख्येयगुणी अधिक हैं, क्योंकि वे देवों से बत्तीसगुणी हैं। देवियों की अपेक्षा सिद्ध अनन्तगुणे हैं और सिद्धों से तिर्यञ्च अनन्तगुणे अधिक हैं। इनकी अधिकता का कारण पहले बताया जा चुका है।[1]

तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२२७. एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं अणिंदियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया १, चउरिंदिया विसेसाहिया २, तेइंदिया विसेसाहिया ३, बेइंदिया विसेसाहिया ४, अणिंदिया अणंतगुणा ५, एगिंदिया अणंतगुणा ६, सइंदिया विसेसाहिया ७।

[२२७ प्र.] भगवन् ! इन इन्द्रिययुक्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रियों में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२२७ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय जीव हैं, २. (उन से) चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं, ६. (उनसे) एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं और ७. उनसे इन्द्रियसहित जीव विशेषाधिक हैं।

२२८. एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं अपज्जत्तगाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया अपज्जत्तगा १, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, एगिंदिया अपज्जत्तया अणंतगुणा ५, सइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ६।

[२२८ प्र.] भगवन् ! इन इन्द्रियसहित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२८ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ६, (उनसे भी) इन्द्रियसहित अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२२९. एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं पज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाधिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा १, पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, एगिंदिया पज्जत्तगा अणंतगुणा ५, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ६।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १२०

[२२९ प्र.] भगवन् ! इन इन्द्रियसहित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२९ उ.] गौतम ! १. सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव हैं, २. (उनसे) पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ६. उनसे भी इन्द्रियसहित पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं ।

२३०. [१] एतेसि णं भंते ! सइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा, सइंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३०-१ प्र.] भगवन् ! इन्द्रिययुक्त (सेन्द्रिय) पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-१ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े सेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं ।

[२] एतेसि णं भंते ! एगिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगिंदिया अपज्जत्तगा, एगिंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३०-२ प्र.] भगवन् ! इन एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-२ उ.] गौतम ! सबसे अल्प एकेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[३] एतेसि णं भंते ! बेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बेंदिया पज्जत्तगा, बेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-३ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२३०-३ उ.] गौतम ! सबसे कम द्वीन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि णं भंते ! तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तेंदिया पज्जत्तगा, तेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-४ प्र.] भगवन् ! इन त्रीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-४ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े त्रीन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[५] एतेसि णं भंते ! चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा, चउरिंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-५ प्र.] भगवन् ! इन चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-५ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं, (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[६] एएसि णं भंते ! पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया पज्जत्तगा, पंचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-६ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३०-६ उ.] गौतम ! सबसे अल्प पर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीव हैं, उनसे अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातगुणे हैं ।

२३१. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं पंचेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा १, पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, पंचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७, बेंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ८, एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ९, सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १०, एगिंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ११, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया १२, सइंदिया विसेसाहिया १३ । दारं ३ ॥

[२३१ प्र.] भगवन् ! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३१ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं । २. (उनसे) पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं । ३. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं । ४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं । ५. (उनसे) पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं । ६. (उनसे) चतुरिन्द्रिय

अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ७. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ८ (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ९. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। १०. (उनसे) सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ११. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं १२. (और उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं १३. (तथा उनसे भी) सेन्द्रिय (इन्द्रियवान्) विशेषाधिक हैं।

तृतीय द्वार ॥३॥

विवेचन—तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. २२७ से २३१ तक) में इन्द्रियों की अपेक्षा से सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तक के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा विभिन्न पहलुओं से की गई है।

(१) सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम पंचेन्द्रिय (पांचों इन्द्रियों वाले नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव) जीव हैं, क्योंकि वे संख्यात कोटाकोटी-योजनप्रमाण विष्कम्भसूची से प्रमित प्रतर के असंख्येयभागवर्ती असंख्येय श्रेणीगत आकाश-प्रदेशों की राशि-प्रमाण हैं। उनसे विशेषाधिक चार इन्द्रियों वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं; क्योंकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुर संख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय (चींटी आदि तीन इन्द्रियों वाले) जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे विष्कम्भसूची से प्रचुरतर संख्यातकोटाकोटी-योजनप्रमाण हैं। द्वीन्द्रिय (शंख आदि दो इन्द्रियों वाले) जीव उनकी अपेक्षा विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुरतम संख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण हैं। द्वीन्द्रियों से अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं। अनिन्द्रियों से एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव सिद्धों से अनन्तगुणे अधिक हैं। एकेन्द्रिय जीवों से भी सेन्द्रिय (सभी इन्द्रियों वाले) जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवों का उसमें समावेश हो जाता है। यह समुच्चय जीवों का अल्पबहुत्व हुआ।

(२) अपर्याप्त समुच्चय जीवों का अल्पबहुत्व—अपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीव सबसे थोड़े हैं, क्योंकि वे एक प्रतर में जितने भी अंगुल के असंख्यात भागमात्र खण्ड होते हैं, उतने ही हैं। उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक इसलिए हैं कि वे प्रचुर अंगुल के असंख्यातभाग खण्डप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतरप्रतरांगुल के असंख्येयभागखण्डप्रमाण हैं। द्वीन्द्रिय अपर्याप्त उनसे विशेषाधिक हैं; क्योंकि वे प्रचुरतम प्रतरांगुल के असंख्यातभागखण्ड-प्रमाण हैं। एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अपर्याप्त वनस्पतिकायिक सदैव अनन्त पाए जाते हैं। इनसे विशेषाधिक सेन्द्रिय अपर्याप्त जीव हैं, क्योंकि सेन्द्रिय सामान्य जीवों में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि सभी इन्द्रियवान् जीवों का समावेश हो जाता है।

(३) पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव सबसे अल्प हैं, क्योंकि चतुरिन्द्रिय जीवों की आयु बहुत अल्प होती है, इसलिए अधिक काल तक न रहने से वे प्रश्न के समय थोड़े ही पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुर प्रतरांगुल के असंख्येयभाग-खण्ड-प्रमाण हैं। उनसे द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतर प्रतरांगुल के संख्यातभाग-प्रमाण खण्डों के बराबर हैं। उनकी अपेक्षा त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक होते हैं, क्योंकि वे स्वभावतः प्रचुरतम प्रतरांगुल के संख्यातभागप्रमाण खण्डों के बराबर हैं। उनसे अनन्तगुणे एकेन्द्रिय पर्याप्तक हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव अनन्त होते हैं। सेन्द्रिय-पर्याप्त उनसे भी विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पर्याप्तक द्वीन्द्रिय आदि का भी समावेश हो जाता है।

(४) **पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम सेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव हैं, क्योंकि, सेन्द्रियों में सूक्ष्म-एकेन्द्रिय ही सर्वलोकव्याप्त होने के कारण बहुत हैं, किन्तु उनमें अपर्याप्त सबसे कम होते हैं। उनकी अपेक्षा सेन्द्रिय-पर्याप्त संख्यातगुणे अधिक हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रिय अपर्याप्त सबसे कम और पर्याप्त उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं। द्वीन्द्रियों में पर्याप्तक सबसे कम हैं, क्योंकि वे प्रतरांगुल के संख्येयभागमात्रखण्ड-प्रमाण हैं, जबकि द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक प्रतरवर्ती अंगुल के असंख्येयभागखण्ड-प्रमाण होते हैं। इसके पश्चात् त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में प्रत्येक में पर्याप्तक सबसे कम हैं, अपर्याप्तक उनसे असंख्यातगुणे हैं, कारण वही पूर्ववत् समझना चाहिए।

(५) **समुच्चय में सेन्द्रिय आदि समुदित पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों का अल्पबहुत्व**—इनमें सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, ये तीनों क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं। उनसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त एवं द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक क्रमशः उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे, विशेषाधिक, विशेषाधिक एवं विशेषाधिक हैं। आगे क्रमशः एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे, सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक तथा सेन्द्रिय जीव इनसे भी विशेषाधिक होते हैं। इनके अल्पबहुत्व का कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।[1]

चतुर्थ कायद्वार : काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवों का अल्पबहुत्व—

२३२. एएसि णं भंते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सतिकाइयाणं तसकाइयाणं अकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया १, तेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पुढविकाइया विसेसाहिया ३, आउकाइया विसेसाहिया ४, वाउकाइया विसेसाहिया ५, अकाइया अणंतगुणा ६, वणस्सइकाइया असंखगुणा ७, सकाइया विसेसाहिया ८।

[२३२ प्र.] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३२ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायुकायिक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) अकायिक अनन्तगुणे हैं, ७. (उनसे) वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, ८. और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक हैं।

२३३. एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सतिकाइयाणं तसकाइयाण य अपज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १२१, १२२

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तगा १, तेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया-अपज्जत्तगा अणंतगुणा ६, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३३ प्र.] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३३ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) वनस्पति-कायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, ७. और (उनसे भी) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं ।

२३४. एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं तसकाइयाण य पज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा १, तेउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा ६, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३४ प्र.] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३४ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) वनस्पति-कायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं ।

२३५. [१] एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सकाइया अपज्जत्तगा, सकाइया पज्जत्तगा संखिज्जगुणा ।

[२३५-१ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्त और अपर्याप्त सकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-१ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े सकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[२] एतेसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा, पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-२ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वीकायिकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-२ उ.] गौतम ! सवसे अल्प पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[३] एतेसि णं भंते ! आउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तगा, आउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अप्कायिकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेपाधिक हैं ?

[२३५-३ उ.] गौतम ! सवसे कम अप्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि णं भंते ! तेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तगा, तेउक्काइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-४ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेपाधिक हैं ?

[२३५-४ उ.] गौतम ! सवसे कम अपर्याप्तक तेजस्कायिक हैं । (उनसे) पर्याप्तक तेजस्कायिक संख्यातगुणे हैं ।

[५] एतेसि णं भंते ! वाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तगा, वाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-५ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वायुकायिकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेपाधिक हैं ?

[२३५-५ उ.] गौतम ! सवसे अल्प अपर्याप्तक वायुकायिक हैं, (उनसे) पर्याप्तक वायुकायिक संख्यातगुणे हैं ।

[६] एएसि णं भंते ! वणस्सइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तगाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वणप्फइकाइया अपज्जत्तगा, वणप्फइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-६ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक वनस्पतिकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-६ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े अपयप्तिक वनस्पतिकायिक हैं, (उनसे) पर्याप्तक वनस्पतिकायिक संख्यातगुणे हैं ।

[७] एतेसि णं भंते ! तसकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३५-७ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-७ उ.] गौतम ! सबसे कम पर्याप्तक त्रसकायिक हैं, (उनसे) अपर्याप्तक त्रसकायिक असंख्यातगुणे हैं ।

२३६. एतेसि णं भंते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं तसकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा १, तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, तेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ४, आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ७, पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ८, आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ९, वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया १०, वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ११, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १२, वणप्फतिकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा १३, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया १४, सकाइया विसेसाधिया १५ ।

[२३६ प्र.] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अयवा विशेषाधिक हैं ?

[२३६ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७. (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ९. (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११. (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १२. (उनसे) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १३. (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५. और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक हैं ।

विवेचन—चतुर्थ कायद्वार : काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. २३२ से २३६ तक) में काय की अपेक्षा षट्कायिक, सकायिक, तथा अकायिक जीवों का समुच्चयरूप में, इनके अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों का एवं पृथक्-पृथक् एवं समुदित पर्याप्तक, अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है।

(१) **षट्कायिक, सकायिक, अकायिक जीवों का अल्पबहुत्व**—सबसे थोड़े त्रसकायिक हैं, क्योंकि त्रसकायिकों में द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव हैं, वे अन्य कायों (पृथ्वीकायादि) की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे तेजस्कायिक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुर असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतर असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतम असंख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनकी अपेक्षा अकायिक (सिद्ध भगवान्) अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेशराशि-प्रमाण हैं। उनसे भी सकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पृथ्वीकायिक आदि सभी कायवान् प्राणियों का समावेश हो जाता है।

(२) **सकायिक आदि अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व**—इनमें सबसे अल्प त्रसकायिक अपर्याप्तक से लेकर क्रमशः सकायिक अपर्याप्तक पर्यन्तविशेषाधिक हैं। यहाँ तक के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

(३) **सकायिक आदि पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व**—इनका अल्पबहुत्व भी पूर्ववत् युक्ति से समझ लेना चाहिए।

(४) **सकायिकादि प्रत्येक के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व**—सबसे थोड़े सकायिक अपर्याप्तक हैं, उनसे सकायिक पर्याप्तक संख्येयगुणे हैं। इसी तरह आगे के सभी सूत्रपाठ सुगम हैं। इन सब में अपर्याप्तक सबसे थोड़े और उनकी अपेक्षा पर्याप्तक संख्यातगुणे बताए गए हैं, इसका कारण यह है कि पर्याप्तकों के आश्रय से अपर्याप्तकों का उत्पाद होता है। अर्थात् पर्याप्तक अपर्याप्तकों के आधारभूत हैं।

(५) **समुच्चय में सकायिक आदि समुदित पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व**—इनमें सबसे कम त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि पर्याप्त द्वीन्द्रियादि से अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि असंख्यातगुणे अधिक हैं। उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाशप्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक एवं वायुकायिक अपर्याप्तक क्रमशः विशेषाधिक हैं। पृथ्वीकाय के अपर्याप्तकों की आयु अधिक होने से वे तेजस्कायिक अपर्याप्त से अधिक हैं। उनसे अप्काय के अपर्याप्तक बहुत अधिक होने से विशेषाधिक हैं। उनसे वायुकायिक अपर्याप्तक पूर्वोक्त युक्ति से विशेषाधिक हैं। उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वायुकायिक पर्याप्तक क्रमशः विशेषाधिक हैं, क्योंकि अपर्याप्तकों की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक होते हैं। आगे वनस्पति काय के अपर्याप्तक अनन्तगुणे पर्याप्तक संख्यातगुणे तथा सकायिक पर्याप्त उनसे संख्यातगुणे हैं। इसका कारण पहले बता चुके हैं।[1] यद्यपि इस सूत्र (सू. २३६) के अल्पबहुत्व में १५ पद हैं, जिनका उल्लेख अन्य प्रतियों में है, किन्तु वृत्तिकार ने प्रज्ञापनावृत्ति में केवल १२ पदों का ही निर्देश किया है। अतः

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १२३

प्रज्ञापनासूत्र (मूलपाठ-टिप्पणसहित) में अन्य प्रतियों के अनुसार तीन पद अधिक अंकित किये गए हैं—यथा १३. सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १४. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक (बीच में वनस्पति कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं के पश्चात्), विशेषाधिक हैं, तथा १५. सकायिक विशेषाधिक हैं।[1]

कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादरकायद्वार—

२३७. एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउक्काइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं सुहुमणिओयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया १, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ४, सुहुमनिगोदा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया अणंतगुणा ६, सुहुमा विसेसाहिया ७।

[२३७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्मनिगोदों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३७ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

२३८. एतेसि णं भंते ! सुहुमअपज्जत्तगाणं सुहुमपुढविकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमआउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं सुहुमणिगोदापज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया १, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फतिकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ६, सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७।

[२३८ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १२४

(ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. ८८

(ग) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग. २, पृ. ७४ एवं ९२

[२३८ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक, अपर्याप्त विशेषाधिक हैं; ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं ।

२३९. एतेसि णं भंते ! सुहुमपज्जत्तगाणं सुहुमपुढविकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमआउकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमतेउकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमवाउकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमवणप्फइकाइयपज्जत्तगाणं सुहुमनिगोदपज्जत्तगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउक्काइया पज्जत्तगा १, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, सुहुमणिओया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा ६, सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाधिया ७ ।

[२३९ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३९ उ.] गौतम ! १ सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ७. (उनसे भी) विशेषाधिक सूक्ष्म पर्याप्तक जीव हैं ।

२४०. [१] एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा, सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२४०-१ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४० १ उ.] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव हैं, उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं ।

[२] एतेसि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२४०-२ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-२ उ.] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[३] एतेसि णं भंते ! सुहुमआउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-३ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-३ उ.] गौतम ! सबसे कम सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[४] एतेसि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-४ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तकों में से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-उ.] गौतम ! सबसे कम सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-५ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-५ उ] गौतम ! सबसे थोड़े सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक जीव हैं, (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते ! सुहुमवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२४०-६ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-६ उ.] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[७] एएसि णं भंते ! सुहुमनिगोदाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा।

[२४०-७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म निगोद के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेपाधिक हैं ?

[२४०-७ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

२४१. एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा १, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ५, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ६, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ८, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ९, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा १०, सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तया अणंतगुणा ११, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया १२, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा १३, सुहुमा पज्जत्तया विसेसाहिया १४, सुहुमा विसेसाहिया १५।

[२४१ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म जीव, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्म निगोदों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य या विशेपाधिक हैं ?

[२४१ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेपाधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेपाधिक हैं, ४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेपाधिक हैं, ५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेपाधिक हैं, ७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेपाधिक हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेपाधिक हैं, १३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेपाधिक हैं और १५. (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

२४२. एतेसि णं भंते ! बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरग्राउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा तसकाइया १, बादरा तेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया असंखेज्जगुणा ३, बादरा निगोदा असंखेज्जगुणा ४, बादरा पुढविकाइया असंखेज्जगुणा ५, बादरा आउकाइया असंखेज्जगुणा ६, बादरा वाउकाइया असंखेज्जगुणा ७, बादरा वणप्फइकाइया अणंतगुणा ८, बादरा विसेसाहिया ९ ।

[२४२ प्र.] भगवन् ! इन बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों, बादर अप्कायिकों, बादर तेजस्कायिकों, बादर वायुकायिकों, बादर वनस्पतिकायिकों, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४२ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादर त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक असंख्येयगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्येयगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर निगोद असंख्येयगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक असंख्येयगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक असंख्येयगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक असंख्येयगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, और ९. (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक हैं ।

२४३. एतेसि णं भंते ! बादरअपज्जत्तगाणं बादरपुढविकाइयअपज्जत्तगाणं बादरआउकाइयअपज्जत्तगाणं बादरतेउकाइयअपज्जत्तगाणं बादरवाउकाइयअपज्जत्तगाणं बादरवणप्फइकाइयअपज्जत्तगाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयअपज्जत्तगाणं बादरनिगोदापज्जत्तगाणं बादरतसकाइयापज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ८, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया ९ ।

[२४३ प्र.] भगवन् ! इन बादर अपर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तकों, बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, बादर निगोद-अपर्याप्तकों एवं बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४३ उ.] गौतम ! १. सबसे कम बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वी-

-कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ९. (उनसे भी) बादर अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं ।

२४४. एतेसि णं भंते ! बादरपज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयपज्जत्तयाणं बादरआउकाइय-पज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं बादरनिगोदपज्जत्तयाणं बादरतसकाइयपज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउक्काइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा २, पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बायरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा ८, बायरपज्जत्तया विसेसाहिया ९ ।

[२४४ प्र.] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, बादर अप्कायिक-पर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-पर्याप्तकों, बादर वनस्पति-कायिक-पर्याप्तकों, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, बादर निगोद-पर्याप्तकों एवं बादर त्रसकायिक-पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४४ उ.] गौतम ! १. सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ९. बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं ।

२४५. [१] एतेसि णं भंते ! बादराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा, बायरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-१ प्र.] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-१ प्र.] गौतम ! सबसे अल्प बादर पर्याप्तक जीव हैं, (उनसे) बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[२] एतेसि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-२ प्र.] भगवन् ! इन बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-२ उ.) गौतम ! सबसे थोड़े बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[३] एतेसि णं भंते ! बादरआउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तगा, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-३ प्र.] भगवन् ! इन बादर अप्कायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-३ उ.] गौतम ! सबसे कम बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि णं भंते ! बादरतेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया, बादरतेउक्काइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ।

[२४५-४ प्र.] भगवन् ! इन बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-४ उ.] गौतम ! सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[५] एतेसि णं भंते ! बादरवाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तगा, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-५ प्र.] भगवन् ! इन बादर वायुकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-५ उ.] गौतम ! सबसे अल्प बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं और (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[६] एतेसि णं भंते ! बादरवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा, वादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ।

[२४५-६ प्र.] भगवन् ! इन वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२४५-६ उ.] गौतम ! सबसे कम वादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) वादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[७] एतेसि णं भंते ! पत्तेयसरीरवादरवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पत्तेयसरीरवादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा, पत्तेयसरीरवादरवणप्फइ-काइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-७ प्र.] भगवन् ! प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-७ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[८] एतेसि णं भंते ! वादरनिगोदाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वादरनिगोदा पज्जत्तगा, वादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-८ प्र.] भगवन् ! इन वादर निगोद-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२४५-८ उ.] गौतम ! सबसे अल्प वादर निगोद-पर्याप्तक हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे वादर निगोद-अपर्याप्तक हैं ।

[९] एएसि णं भंते ! वादरतसकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वादरतसकाइया पज्जत्तगा, वादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्ज-गुणा ।

[२४५-९ प्र.] भगवन् ! इन वादर त्रसकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-९ उ.] गौतम ! सबसे कम वादर त्रसकायिक-पर्याप्तक हैं (और उनसे) वादर त्रसकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

२४६. एएसि णं भंते ! बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादर-तसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउक्काइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा २, बादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ४, बादरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्ज-गुणा ६, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ८, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा १०, बादरनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ११, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बादरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १४, बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा १५, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १७, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया १८, बादरा विसेसाहिया १९।

[२४६ प्र.] भगवन् ! इन बादर-जीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिकों, बादर-वस्पतिकायिकों, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४६ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं। २. (उनसे) बादर-त्रसकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ३. (उनसे) बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ४. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ५. (उनसे) बादर-निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ६. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ७. (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ८. (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ९. (उनसे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १०. (उनसे) प्रत्येक-शरीर-बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ११. (उनसे) बादर-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १२. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १३. (उनसे) बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १४. (उनसे)बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १५. (उनसे) बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। १६. (उनसे) बादर-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। १७. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १८. (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं और १९. (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक हैं।

२४७. एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं सुहुमनिगोदाणं बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरआउका-इयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणप्फइकाइयाणं पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइयाणं बादरणिगोदाणं बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया १, बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइया असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया असंखेज्ज-

गुणा ५, बादरग्राउकाइया असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया ९, सुहुमग्राउकाइया विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ११, सुहुमणिगोदा असंखेज्जगुणा १२, बादरवणस्सइकाइया अणंतगुणा १३, बादरा विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा १५, सुहुमा विसेसाहिया १६ ।

[२४७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्मजीवों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म-अप्कायिकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिकों, सूक्ष्मवनस्पतिकायिकों, सूक्ष्मनिगोदों तथा बादरजीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिकों, बादर-वनस्पतिकायिकों, प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर-निगोदों और बादर-त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४७ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादर-त्रसकायिक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) बादरनिगोद असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर-अप्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-वायुकायिक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्म-वायुकायिक विशेषाधिक हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म-निगोद असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) बादर-वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, १४. (उनसे) बादर-जीव विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म-वनपतिकायिक असंख्यातगुणे हैं १६. (और उनसे भी) सूक्ष्म-जीव विशेषाधिक हैं ।

२४८. एतेसि णं भंते ! सुहुमअपज्जत्तयाणं सुहुमपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं सुहुमग्राउकाइयाणं अपज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयाणं अपज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयाणं अपज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं सुहुमणिगोदापज्जत्तयाणं बादरापज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयापज्जत्तयाणं बादरग्राउकाइयापज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयापज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयापज्जत्तयाणं बादरवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं बादरणिगोदापज्जत्तयाणं बादरतसकाइयापज्जत्तयाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बादरणिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरग्राउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ९, सुहुमग्राउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ११, सुहुमणिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा १३, बादर अपज्जत्तगा विसेसाहिया १४, सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १५, सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६ ।

[२४८ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर निगोद-अपर्याप्तकों एवं बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४८ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादरत्रसकायिक-अपर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर-बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणें हैं, ४. (उनसे) बादरनिगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यात-गुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्मतेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसें) सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसें) सूक्ष्म-अप्कायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्मवायुकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) बादरवनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १४. (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) १६. सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४९. एतेसि णं भंते ! सुहुमपज्जत्तयाणं सुहुमपुढविकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमआउकाइय-पज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमनिगोयपज्जत्तयाणं बादरपज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयपज्जत्तयाणं बादरआउकाइयपज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं बादरनिगोदपज्जत्तयाणं बादरतसकाइयपज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा १, बादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढ-विकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ११, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा १३, बादरा पज्जत्तया विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकाया पज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा १५, सुहुमा पज्जत्तया विसेसाहिया १६ ।

[२४९ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों,

सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तकों, वादर-पर्याप्तकों, वादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, वादर-अप्कायिक-पर्याप्तकों, वादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, वादर-वायुकायिक-पर्याप्तकों, वादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, प्रत्येक-शरीर वादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों, वादर-निगोद-पर्याप्तकों और वादरत्रसकायिक-पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४९ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प वादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) वादर त्रस-कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) वादर-निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) वादर-पृथ्वी-कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) वादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) वादर-वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १०. (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) वादरवनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १४. (उनसे) वादर-पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) १६. सूक्ष्म-पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं ।

२५०. [१] एएसि णं भंते ! सुहुमाणं वादराण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वादरा पज्जत्तगा १, वादरा अपज्जत्तगा असंखेज्ज गुणा २, सुहुमा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४ ।

[२५०-१ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म और वादर जीवों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-१ उ.] गौतम ! १. (इनमें) सबसे थोड़े वादर पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) वादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं और ४. (उनसे भी) सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[२] एएसि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं वादरपुढविकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वादरपुढविकाइया पज्जत्तगा १, वादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४ ।

[२५०-२ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों और वादर पृथ्वीकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-२ उ.] गौतम ! १. सवसे थोड़े वादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) वादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं ।

[३] एएसि णं भंते ! सुहुमआउकाइयाणं बादरआउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तया १, बादरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-३ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म अप्कायिकों और बादर अप्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-३ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं; ३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[४] एएसि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं बादरतेउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-४ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिकों और बादर तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-४ उ.] गौतम ! १. सबसे कम बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे भी) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि णं भंते सुहुमवाउकाइयाणं बादरवाउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तया १, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-५ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म वायुकायिकों तथा बादर वायुकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-५ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे अधिक हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक हैं, ४. (और उनसे भी) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि णं भंते ! सुहुमवणस्सतिकाइयाणं बादरवणस्सतिकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तया १, बादरवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-६ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२५०-६ उ.] गौतम ! १. सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक जीव असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[७] एतेसि णं भंते ! सुहुमनिगोदाणं बादरनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा १, बायरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, सुहुमनिगोया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-७ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म निगोदों एवं बादर निगोदों के पर्याप्तकों तथा अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-७ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े बादर निगोद-पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, (और उनसे भी) ४. सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

२५१. एएसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमनिगोदाणं बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकायाणं बादरवणस्सतिकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादरतसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, बादरतसकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरनिगोदा पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८, बादरतेउक्काइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १०, बायरणिगोया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ११, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बायरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १४, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १५, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १७, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १८, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा १९, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया २०, सुहुमआउकाइया

पज्जत्तया विसेसाहिया २१, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया २२, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २३, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा २४, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा २५, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया २६, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २७, बादरअपज्जत्तया विसेसाहिया २८, बादरा विसेसाहिया २९, सुहुमवणप्फतिकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३०, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया ३१, सुहुमवणप्फतिकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ३२, सुहुमपज्जत्तया विसेसाहिया ३३, सुहुमा विसेसाहिया ३४ । दारं ४ ।।

[२५१ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म-जीवों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म-अप्कायिकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिकों, सूक्ष्म-वायुकायिकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिकों, सूक्ष्म-निगोदों, बादर-जीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिकों, बादर-वस्पतिकायिकों, प्रत्येक-शरीर-बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर-निगोदों और बादर-त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५१ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर-अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्त असंख्यातगुणे हैं, ९. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ११. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १२. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १४. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १६. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १८. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १९. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, २०. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २१. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २२. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, २४. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, २५. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, २६. (उनसे) बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, २७. (उनसे) बादर वनस्पतिकाय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, २८ (उनसे) बादर अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, २९. (उनसे) बादर जीव विशेषाधिक हैं, ३०. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३१. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं; ३२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ३३. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, (और उनसे भी) ३४. सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं । चतुर्थ-द्वार ।।४।।

विवेचन—कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादर-कायद्वार—प्रस्तुत १५ सूत्रों (सू. २३७ से २५१ तक) में सूक्ष्म और बादर को लेकर कायद्वार के माध्यम से विभिन्न पहलुओं से अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

१. समुच्चय में सूक्ष्म जीवों का अल्पबहुत्व—सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव सबसे अल्प हैं, वे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश के बराबर हैं। इनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुर असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं। इनसे सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रचुरतर असंख्येय लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं। इनसे सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक हैं; क्योंकि वे प्रचुरतम असंख्यात लोकाकाश प्रदेश-प्रमाण हैं। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं। जो अनन्तजीव एक शरीर के आश्रय में रहते हैं, वे निगोद जीव कहलाते हैं। निगोद दो प्रकार के होते हैं—सूक्ष्म और बादर। सूरणकन्द आदि में बादर निगोद हैं, सूक्ष्म निगोद समस्त लोक में व्याप्त हैं। वे एक-एक गोलक में असंख्यात-असंख्यात होते हैं। इसलिए वे वायुकायिकों से असंख्यात-गुणे हैं। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येकनिगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनकी अपेक्षा सामान्य सूक्ष्मजीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि का भी उनमें समावेश हो जाता है।

२. सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व भी पूर्वोक्त क्रम से समझ लेना चाहिए।

३. सूक्ष्म पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—इसके अल्पबहुत्व का क्रम भी पूर्ववत् है।

४. सूक्ष्म से लेकर सूक्ष्मनिगोद तक के पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का पृथक्-पृथक् अल्प-बहुत्व—इनके प्रत्येक के अल्पबहुत्व में सूक्ष्म अपर्याप्तक सबसे कम हैं और उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं। सूक्ष्म जीवों में अपर्याप्तकों की अपेक्षा पर्याप्तक जीव चिरकालस्थायी रहते हैं। इसलिए वे सदैव अधिक संख्या में पाए जाते हैं।

५. समुदितरूप से सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्-कायिक अपर्याप्त हैं, कारण पहले बता चुके हैं। उनसे उत्तरोत्तर क्रमशः सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक हैं; विशेषाधिक का अर्थ है—थोड़ा अधिक; न दुगुना, न तिगुना। इनकी विशेषाधिकता का कारण पहले कहा जा चुका है। उनकी (सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त की) अपेक्षा सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, अपर्याप्त से पर्याप्त संख्यातगुणे अधिक होते हैं, यह पहले कहा जा चुका है। अतः उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक एवं सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुर संख्या में हैं। उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, क्योंकि सूक्ष्म जीवों में अपर्याप्तों से पर्याप्त सामान्यतः संख्यातगुणे अधिक होते हैं। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक निगोद में वे अनन्त-अनन्त होते हैं। उनसे सामान्यतः सूक्ष्म अपर्याप्त जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि का भी उनमें समावेश हो जाता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, इसका कारण पहले कहा जा चुका है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि पर्याप्तकों का भी उनमें समावेश है। उनसे सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों, सभी का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्माश्रित पांच सूत्र हुए। अब बादराश्रित पांच सूत्र इस प्रकार हैं—

६. समुच्चय में बादर जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे कम बादर त्रसकायिक हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियादि ही बादर त्रस हैं, और वे शेष कायों से अल्प हैं। उनसे बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणे

हैं, क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादर तेजस्कायिक तो सिर्फ मनुष्यक्षेत्र में ही होते हैं जबकि प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिकों का क्षेत्र उनसे असंख्यातगुणा अधिक है। प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय स्थानपद में बताया है कि स्वस्थान में ७ घनोदधि, ७ घनोदधिवलय, इसी तरह अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिरछे लोक आदि में जहाँ-जहाँ जलाशय होते हैं, वहाँ सर्वत्र बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों के स्थान हैं। जहाँ बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों के स्थान है, वहीं इनके अपर्याप्तकों के स्थान होते हैं। अतः क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से वे भी असंख्यातगुणे हैं। उनसे बादर निगोद असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहनावाले होने के कारण जल में शैवाल आदि के रूप में सर्वत्र पाए जाते हैं। इनकी अपेक्षा बादर पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे आठों पृथ्वियों में तथा विमानों, भवनों एवं पर्वतों आदि में विद्यमान हैं। बादर अप्कायिक उनसे भी अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योंकि समुद्रों में जल की प्रचुरता होती है। उनकी अपेक्षा बादर वायुकायिक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि सभी पोली जगहों में वायु विद्यमान रहती है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योंकि बादर निगोद में अनन्त जीव होते हैं। बादर जीव उनसे विशेषाधिक होते हैं, क्योंकि बादर द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवों का उनमें समावेश होता है।

७-८. बादर अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—बादर जीवों के अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व का क्रम भी प्रायः पूर्वसूत्र (सू. २४२) के समान है। बादर पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व में सिर्फ प्रारम्भ में अन्तर है—वहाँ सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक के बदले बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं। शेष सब पूर्ववत् ही है। इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

९. बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—बादर जीवों में एक-एक पर्याप्तक के आश्रित असंख्येय बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। इस नियम से बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों आदि में सर्वत्र पर्याप्तकों से अपर्याप्तक असंख्यातगुणे अधिक होते हैं।

१०. समुदितरूप से बादर, बादर पृथ्वीकायिकादि पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, बादर त्रसकायिक पर्याप्तक उनसे असंख्यातगुणे हैं, बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक, बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर निगोद पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, बादर अप्कायिक पर्याप्तक एवं बादर वायुकायिक पर्याप्तक क्रमशः उत्तरोत्तर असंख्यगुणे हैं। इनके अल्पबहुत्व को पूर्वोक्त युक्तियों से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरनिगोद में वे अनन्त-अनन्त होते हैं। उनकी अपेक्षा समुच्चय बादर पर्याप्त विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें बादर तेजस्कायिक आदि सभी का समावेश हो जाता है। बादर पर्याप्तों की अपेक्षा बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, उनसे बादर अपर्याप्तक एवं बादर क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, इसका कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

११. समुच्चय में सूक्ष्म-बादरों का अल्पबहुत्व—(सू. २४७ के अनुसार) सबसे कम बादर त्रसकायिक हैं, उसके बाद बादर वायुकायिकपर्यन्त बादरगत विकल्पों का अल्पबहुत्व पूर्ववत् समझना चाहिए। तदनन्तर सूक्ष्म निगोदपर्यन्त सूक्ष्मगत विकल्पों का अल्पबहुत्व भी पूर्ववत् जान लेना चाहिए। उसके पश्चात् बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरनिगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनसे बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर तेजस्कायिक आदि का भी उनमें

समावेश हो जाता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि बादर निगोदों से सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं। उनसे सामान्यत: सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, क्योंकि सूक्ष्म तेजस्कायिकादि का भी उनमें समावेश हो जाता है।

१२–१३. सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तकों एवं अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—(सू. २४८ में अनुसार) अपर्याप्तकों में सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्त हैं। उसके पश्चात् बादर तेजस्कायिक, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त उत्तरोत्तर क्रमश: असंख्यातगुणे हैं। इसका स्पष्टीकरण द्वितीय अपर्याप्तकसूत्र की तरह समझना चाहिए। बादर वायुकायिक अपर्याप्तकों से सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुर असंख्यात लोकाकाशप्रदेशों के बराबर हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: असंख्यातगुणे हैं; इसका समाधान सूक्ष्मपंचसूत्रों में द्वितीयसूत्रवत् समझ लेना चाहिए। सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तकों से बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरनिगोद में अनन्त जीवों का सद्-भाव है। उनसे सामान्यत: बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि बादर त्रसकायिक अपर्याप्तकों का भी उनमें समावेश है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादर निगोद-अपर्याप्तकों से सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। उनसे सामान्यत: सूक्ष्मापर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तकों का भी समावेश हो जाताहै। पर्याप्तकों में (सू. २४९ के अनुसार) बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक सबसे थोड़े हैं। उसके पश्चात् बादर त्रसकायिक, बादर प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक एवं बादर वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादर वायुकायिक असंख्यातप्रतर-प्रदेश-राशिप्रमाण हैं। उसके पश्चात् सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश: विशेषाधिक हैं। सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तकों से सूक्ष्मनिगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुर होने से प्रत्येक गोलक में विद्यमान हैं। उनसे बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक बादरनिगोद में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं। उनसे सामान्यत: सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म तेजस्कायिकादि पर्याप्तकों का भी समावेश होता है।

१४. सूक्ष्म-बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(सूत्र. २५० के अनुसार) सबसे कम बादर पर्याप्तक हैं, क्योंकि वे परिमित क्षेत्रवर्ती हैं, उनसे बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि एक-एक बादर पर्याप्तक के आश्रित असंख्यात बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं; उनसे सूक्ष्म अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि सर्वलोक में व्याप्त होने के कारण उनका क्षेत्र असंख्यातगुणा है; उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, क्योंकि चिरकालस्थायी रहने के कारण वे सदैव संख्यातगुणे पाए जाते हैं। इसी प्रकार आगे सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एवं निगोदों के पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की घटना कर लेनी चाहिए।

१५. समुदितरूप में सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का अल्पबहुत्व—(सू. २५१ के अनुसार) सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक हैं, क्योंकि कुछ समय कम आवलिका-समयों से गुणित आवलिका-समयवर्ग में जितनी समयराशि होती है, वे उतने प्रमाण हैं। उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि प्रतर में जितने अंगुल के संख्यातभाग-मात्र खण्ड होते हैं, ये उतने

प्रमाण हैं। उनसे वादरत्रसकायिक अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं। जो पूर्ववत् युक्ति से समझना चाहिए। उनसे प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, वादर पृथ्वीकायिक, वादर अप्कायिक और बादर वायुकायिक-पर्याप्तक यथोत्तरक्रम से असंख्यातगुणे हैं। इसके समाधान के लिए पूर्ववत् युक्ति सोच लेनी चाहिए। उनसे बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं। उसके बाद प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर-पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यातगुणे हैं। उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त संख्यातगुणे हैं, क्योंकि सूक्ष्मों में अपर्याप्तों की अपेक्षा पर्याप्त ओघतः ही संख्येयगुणे होते हैं। उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक एवं सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से विशेषाधिक हैं। उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे अतिप्रचुररूप में सर्वलोक में होते हैं। उनसे पूर्व नियमानुसार सूक्ष्मनिगोद-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं; यह भी पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं; क्योंकि उनमें बादर पर्याप्त तेजस्कायिकादि का भी समावेश हो जाता है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि प्रत्येक-बादर निगोद के आश्रित असंख्यात बादर निगोद-अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। उनकी अपेक्षा सामान्यतया बादर विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पर्याप्तकों का समावेश भी होता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि बादरनिगोदों से सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे होते ही हैं। उनसे सामान्यतया सूक्ष्म-अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं; क्योंकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि के अपर्याप्तकों का भी उनमें समावेश होता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त संख्यातगुणे हैं, क्योंकि इनके अपर्याप्तों से पर्याप्त संख्यातगुणे होते हैं। उनसे सामान्यतः सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश होता है। उनकी अपेक्षा पर्याप्त-अपर्याप्तविशेषणरहित केवल सूक्ष्म (सामान्य) विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म-बादर-समुदायगत अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।[1]

॥ चतुर्थ कायद्वार समाप्त ॥

पंचम योगद्वार : योगों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२५२. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सजोगीणं मणजोगीणं वइजोगीणं कायजोगीणं अजोगीण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणजोगी १, वइजोगी असंखेज्जगुणा २, अजोगी अणंतगुणा ३, कायजोगी अणंतगुणा ४, सजोगी विसेसाहिया ५। दारं ५॥

[२५२ प्र.] भगवन् ! इन सयोगी (योगसहित), मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

---

१. (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ युक्त) भा. १, पृ. ८८ से ९६ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक पृ. १२४ से १३४ तक

[२५२ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प जीव मनोयोग वाले हैं, २. (उनसे) वचनयोग वाले जीव असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अयोगी अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) काययोगी अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ५. सयोगी विशेषाधिक हैं । —पंचम द्वार ॥५॥

विवेचन—पंचम योगद्वार : योगों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५२) में सयोगी, अयोगी, मनो-वचन-काययोगी की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

सबसे कम मनोयोगी जीव हैं, क्योंकि संज्ञीपर्याप्त जीव ही मनोयोग वाले होते हैं और वे थोडे ही हैं । उनसे वचनयोगी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय आदि वचनयोगी संज्ञीजीवों से असंख्यातगुणे हैं, उनकी अपेक्षा अयोगी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्धजीव अनन्त हैं । उनसे काययोग वाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिकजीव ही सिद्धों से अनन्त हैं । यद्यपि अनन्त निगोदजीवों का एक शरीर होता है, तथापि उसी शरीर से सभी आहारादि ग्रहण करते हैं, इसलिए उन सभी के काययोगी होने के कारण उनके अनन्तगुणत्व में कोई बाधा नहीं आती । उनकी अपेक्षा सामान्यतः सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योंकि सयोगी में द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव आ जाते हैं ।[1]

छठा वेदद्वार : वेदों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२५३. एएसि णं भंते ! जीवाणं सवेदगाणं इत्थीवेदगाणं पुरिसवेदगाणं नपुंसकवेदगाणं अवेदगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा १, इत्थीवेदगा संखेज्जगुणा २, अवेदगा अणंतगुणा ३, नपुंसगवेदगा अणंतगुणा ४, सवेयगा विसेसाहिया ५ । दारं ६ ॥

[२५३. प्र.] भगवन् ! इन सवेदी (वेदसहित), स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अवेदी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२५३ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े जीव पुरुषवेदी हैं, २. (उनसे) स्त्रीवेदी संख्यातगुणे हैं; ३. (उनसे) अवेदी अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) नपुंसकवेदी अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ५. सवेदी विशेषाधिक हैं । छठा द्वार ॥ ६ ॥

विवेचन—छठा वेदद्वारः वेदों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५३) में वेदद्वार के माध्यम से जीवों में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है ।

सबसे थोड़े पुरुषवेदी हैं, क्योंकि संज्ञी तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों में ही पुरुषवेद पाया जाता है । उनसे स्त्रीवेदी जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि जीवाभिगमसूत्र में कहा है—"तिर्यंचयोनिक पुरुषों की अपेक्षा तिर्यंचयोनिक स्त्रियां तीन गुनी और त्रि-अधिक होती हैं तथा मनुष्यपुरुषों से मनुष्यस्त्रियां सत्तावीसगुणी एवं सत्तावीस अधिक होती हैं; एवं देवों से देवियां (देवांगनाएँ) बत्तीसगुणी तथा बत्तीस अधिक होती हैं ।" इनकी अपेक्षा अवेदक (सिद्ध) अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद से रहित, नौवें गुणस्थान के कुछ ऊपरी भाग से आगे के सभी जीव तथा सिद्ध जीव; ये सभी अवेदी कहलाते हैं, और सिद्ध जीव अनन्त हैं । अवेदकों की अपेक्षा नपुंसकवेदी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि नारक, एकेन्द्रिय जीव आदि सब नपुंसकवेदी होते हैं और अकेले

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १३४

वनस्पतिकायिक जीव अनन्त हैं, जो सब नपुंसकवेदी ही हैं। उनकी अपेक्षा सामान्यतः सवेदी जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदी सभी जीवों का उनमें समावेश हो जाता है।[1]

सप्तम कषायद्वार : कषायों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२५४. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सकसाईणं कोहकसाईणं माणकसाईणं मायकसाईणं लोभकसाईणं अकसाईण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अकसायी १, माणकसायी अणंतगुणा २, कोहकसायी विसेसाहिया ३, मायकसाई विसेसाहिया ४, लोहकसाई विसेसाहिया ५, सकसाई विसेसाहिया ६। दारं ७॥

[२५४ प्र.] भगवन् ! इन सकषायी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५४ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े जीव अकषायी हैं, २. (उनसे) मानकषायी जीव अनन्तगुणे हैं, ३. (उनसे) क्रोधकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ४. उनसे मायाकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ५. उनसे लोभकषायी विशेषाधिक हैं और (उनसे भी) ६. सकषायी जीव विशेषाधिक हैं।

विवेचन—सप्तम कषायद्वारः कषायों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र(२५४) में कषाय की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

कषायों की अपेक्षा जीवों की न्यूनाधिकता—अकषायी—कषायपरिणाम से रहित जीव सबसे कम हैं, क्योंकि कतिपय क्षीणकषाय आदि गुणस्थानवर्ती मनुष्य एवं सिद्ध जीव ही कषाय से रहित होते हैं। उनसे मानकषायी जीव अनन्तगुणे इसलिए हैं कि छहों जीव-निकायों में मानकषाय पाया जाता है। उनसे क्रोधकषाय वाले, मायाकषाय वाले एवं लोभकषाय वाले क्रमशः उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, क्योंकि क्रोधादिकषायों के परिणाम का काल यथोत्तर विशेषाधिक है। पूर्व-पूर्व कषायों का उत्तरोत्तर कषायों में क्रमशः सद्भाव है ही तथा लोभकषायी की अपेक्षा सकषायी जीव विशेषाधिक है, क्योंकि सामान्य कषायोदय वाले जीव कुछ अधिक ही हैं, उनमें मानादि कषायोदय वाले सभी जीवों का समावेश हो जाता है।

सकषायी शब्द का विशेषार्थ—कषाय शब्द से कषायोदय अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस दृष्टि से सकषाय का अर्थ होता है—कषायोदयवान् या जिसमें वर्तमान में कषाय विद्यमान है वह, अथवा जिसमें विपाकावस्था को प्राप्त कषायकर्म के परमाणु अपने उदय को प्रदर्शित कर रहे हैं, वह जीव।[2]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३४-१३५

(ख) **तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिरिक्खजोणिय-इत्थीओ तिगुणीओ, तिरूवाहियाओ य। तहा मणुस्सपुरिसेहिंतो मणुस्सइत्थीओ सत्तावीसगुणीओ सत्तावीसरूवुत्तराओ य, तथा देवपुरिसेहिंतो देवित्थीओ बत्तीसगुणाओ बत्तीसरूवुत्तराओ॥**

—जीवाभिगमसूत्र

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३५

अष्टम लेश्याद्वार : लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—

२५५. एएसि णं भंते ! जीवाणं सलेस्साणं किण्हलेस्साणं नीललेस्साणं काउलेस्साणं तेउलेस्साणं पम्हलेस्साणं सुक्कलेस्साणं अलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा १, पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा २, तेउलेस्सा संखेज्जगुणा ३, अलेस्सा अणंतगुणा ४, काउलेस्सा अणंतगुणा ५, णीललेस्सा विसेसाहिया ६, किण्हलेस्सा विसेसाहिया ७, सलेस्सा विसेसाधिया ८ । दारं ८ ॥

[२५५ प्र.] भगवन् ! इन सलेश्यों, कृष्णलेश्या वालों, नीललेश्या वालों, कापोतलेश्या वालों तेजोलेश्या वालों, पद्मलेश्या वालों, शुक्ललेश्या वालों एवं लेश्यारहित (अलेश्य) जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५५ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े शुक्ललेश्या वाले जीव हैं, २. (उनसे) पद्मलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) तेजोलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) लेश्यारहित जीव अनन्तगुणे हैं, ५. (उनसे) कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे हैं, ६. (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं; ७. (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, ८. (उनसे) सलेश्य जीव विशेषाधिक हैं ।

अष्टमद्वार ॥ ८ ॥

विवेचन—अष्टम लेश्याद्वार: लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५५) में सलेश्य, पृथक्-पृथक् षट्लेश्यायुक्त एवं अलेश्य जीवों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है ।

लेश्याओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे अल्प शुक्ललेश्या वाले जीव हैं, क्योंकि शुक्ललेश्या लान्तक से ले कर अनुत्तर वैमानिक देवों तक में, कतिपय गर्भज कर्मभूमि के संख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्यों में तथा कतिपय संख्यातवर्ष की आयुवाले तिर्यंच-स्त्रीपुरुषों में ही पाई जाती है । उनकी अपेक्षा पद्मलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि पद्मलेश्या सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक-कल्प वासी देवों में, बहुसंख्यक गर्भज-कर्मभूमिज संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य-स्त्रीपुरुषों में तथा गर्भज-तिर्यञ्च-स्त्रीपुरुषों में पाई जाती है और ये समुदित सनत्कुमार देव आदि, लान्तकदेव आदि से संख्यातगुणे अधिक हैं । उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणे हैं, क्योंकि समस्त सौधर्म, ईशान-कल्प के वैमानिक देवों में, सभी ज्योतिष्क देवों में तथा कतिपय भवनपति, वाणव्यन्तर, गर्भज तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों और मनुष्यों में, बादर-पर्याप्त-एकेन्द्रियों में तेजोलेश्या पाई जाती है । यद्यपि ज्योतिष्कदेव भवनवासी देवों तथा सनत्कुमार आदि देवों से असंख्यातगुणे होने से तेजोलेश्या वाले जीव असंख्यातगुणे कहने चाहिए, तथापि पद्मलेश्या वालों से तेजोलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे ही हैं । यह कथन केवल देवों की लेश्याओं को लेकर नहीं किया गया है, अपितु समग्रजीवों को लेकर किया गया है, इसलिए पद्मलेश्या वालों में देवों के अतिरिक्त बहुत-से तिर्यञ्च भी सम्मिलित हैं । इसी तरह तेजोलेश्या वालों में भी हैं, और पद्मलेश्या वाले तिर्यञ्च भी बहुत हैं । अतएव उनसे तेजोलेश्या वाले संख्यातगुणे ही अधिक हो सकते हैं, असंख्यातगुणे नहीं । तेजोलेश्या वालों से अलेश्य (लेश्यारहित—सिद्ध) अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्धजीव अनन्त हैं । उनसे कापोतलेश्या वाले जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीवों में भी कापोतलेश्या सम्भव है और वनस्पतिकायिक

जीव सिद्धों से अनन्तगुणे हैं। उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं, क्योंकि नीललेश्या वाले जीव कापोतलेश्या वालों से प्रचुरतर होते हैं। उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, क्योंकि वे प्रभूततम हैं। उनकी अपेक्षा सामान्यतः सलेश्य जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सलेश्य में नीललेश्यादि वाले सभी लेश्यावान् जीवों का समावेश हो जाता है।[1]

नौवाँ दृष्टि (सम्यक्त्व) द्वार : तीन दृष्टियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—

२५६. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सम्मद्दिट्ठीणं मिच्छद्दिट्ठीणं सम्मामिच्छादिट्ठीणं च कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सम्मामिच्छद्दिट्ठी १, सम्मद्दिट्ठी अणंतगुणा २, मिच्छद्दिट्ठी अणंतगुणा ३। दारं ९ ।।

[२५६ प्र.] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५६ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं, २. (उनसे) सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं और ३. (उनसे भी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं। नौवाँ दृष्टिद्वार ।। ९ ।।

विवेचन—नौवाँ दृष्टि द्वारः तीन दृष्टियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५६) में सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि की अपेक्षा जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

सबसे थोड़े सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि जीव हैं, क्योंकि मिश्रदृष्टि के परिणाम का काल अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है, अतएव बहुत ही अल्पकाल होने से प्रश्न के समय वे थोड़े से पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं और वे सम्यग्दृष्टियों में ही सम्मिलित हैं। सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक आदि जीव सिद्धों से अनन्तगुणे हैं और वनस्पतिकायिक मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।[2]

दसवाँ ज्ञानद्वार : ज्ञान और अज्ञान की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—

२५७. एतेसि णं भंते ! जीवाणं आभिणिबोहियणाणीणं सुतणाणीणं ओहिणाणीणं मणपज्जवणाणीणं केवलणाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी १, ओहिणाणी असंखेज्जगुणा २, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, केवलणाणी अणंतगुणा ४।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३५-१३६

(ख) '.....पम्हलेसा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ, तेउलेसा गब्भवक्कंतियतिरिक्खजोणिया संखेज्जगुणा, तेउलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ।'

प्रज्ञापना. महादण्डक (म. वृ. पृ. १३६)

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३७

[२५७ प्र.] भगवन् ! आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी जीवों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५७ उ.] गौतम ! १. सवसे अल्प मनःपर्यवज्ञानी हैं, २. (उनसे) अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं ३. आभिनिवोधिक (मति) ज्ञानी और और श्रुतज्ञानी; ये दोनों तुल्य हैं और (अवधिज्ञानियों से) विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं ।

२५८. एतेसि णं भंते ! जीवाणं मइअण्णाणीणं सुतअण्णाणीणं विहंगणाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा विभंगणाणी १, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा २ ।

[२५८ प्र.] भगवन् ! इन मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[२५८ उ.] गौतम ! १. सवसे थोड़े विभंगज्ञानी हैं, २. मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनों तुल्य हैं और (विभंगज्ञानियों से) अनन्तगुणे हैं ।

२५९. एतेसि णं भंते ! जीवाणं आभिणिवोहियणाणीणं सुयणाणीणं ओहिणाणीणं मणपज्जवणाणीणं केवलणाणीणं मतिअण्णाणीणं सुतअण्णाणीणं विभंगनाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी १, ओहिणाणी असंखेज्जगुणा २, आभिणिवोहियणाणी सुतणाणी य दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, विहंगणाणी असंखेज्जगुणा ४, केवलणाणी अणंतगुणा ५, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी य दो वि तुल्ला अणंतगुणा ६ । दारं १० ॥

[२५९ प्र.] भगवन् ! इन आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५९ उ.] गौतम ! १. सवसे अल्प मनःपर्यवज्ञानी जीव हैं, २. (उनसे) अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, ३. आभिनिवोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों तुल्य हैं और (अवधिज्ञानियों से) विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, ६. मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी, दोनों तुल्य हैं और (केवलज्ञानियों से) अनन्तगुणे हैं ।

दशम (ज्ञान) द्वार ॥१०॥

विवेचन—दसवाँ ज्ञानद्वार : ज्ञान-अज्ञान की अपेक्षा से जीवों का अल्पवहुत्व—प्रस्तुत तीन सूत्रों (२५७ से २५९ तक) में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की दृष्टि से जीवों के अल्पवहुत्व का विचार किया गया है ।

ज्ञान की अपेक्षा से अल्पवहुत्व—सवसे थोड़े मनःपर्यायज्ञानी हैं, क्योंकि मनःपर्यवज्ञान आमर्ष-औषधि आदि ऋद्धिप्राप्त संयमी पुरुषों को ही होता है । उनकी अपेक्षा अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अवधिज्ञान नारकों, तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों, मनुष्यों और देवों को भी होता है । उनसे आभिनिवोधिक-

ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों विशेषाधिक हैं, क्योंकि जिन संज्ञी-तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों और मनुष्यों को अवधिज्ञान नहीं होता है, उन्हें भी आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान हो सकते हैं। इन दोनों ज्ञानों को परस्पर तुल्य कहने का कारण यह है कि ये दोनों ज्ञान परस्पर सहचर हैं।[1] इन दोनों ज्ञानियों से केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध केवलज्ञानी होते हैं और वे अनन्त हैं।

अज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े विभंगज्ञानी हैं, क्योंकि विभंगज्ञान मिथ्यादृष्टि नैरयिकों व देवों और किन्हीं-किन्हीं तिर्यंचपंचेन्द्रियों और मनुष्यों को ही होता है। विभंगज्ञान की अपेक्षा मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान दोनों अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव भी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते हैं, और वे अनन्त होते हैं। स्वस्थान में मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनों तुल्य हैं, क्योंकि ये दोनों अज्ञान परस्पर सहचर हैं।[2]

ज्ञानी और अज्ञानी दोनों का सामुदायिकरूप से अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े मनःपर्यवज्ञानी हैं, तथा उनसे आगे का अल्पबहुत्व पूर्ववत् ही पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। मति-श्रुतज्ञानियों से विभंगज्ञानी जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि देवगति और मनुष्यगति में सम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं। तथा देवों और नारकों में जो सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे अवधिज्ञानी और मिथ्यादृष्टि विभंगज्ञानी होते हैं, इस दृष्टि से विभंगज्ञानी उनसे असंख्यातगुणे हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त होते हैं। उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि मति-श्रुत-अज्ञानी वनस्पतिकायिकजीव भी होते हैं, और सिद्धों से भी अनन्तगुणे हैं। स्वस्थान में ये दोनों अज्ञान परस्पर तुल्य हैं।[3]

ग्यारहवाँ दर्शनद्वार : दर्शन की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—

२६०. एतेसि णं भंते ! जीवाणं चक्खुदंसणीणं अचक्खुदंसणीणं ओहिदंसणीणं केवलदंसणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा ओहिदंसणी १, चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा २, केवलदंसणी अणंतगुणा ३, अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ४। दारं ११॥

[२६० प्र.] भगवन् ! इन चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६० उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े अवधिदर्शनी जीव हैं, २. (उनसे) चक्षुदर्शनी जीव असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं, (और उनसे भी) ४. अचक्षुदर्शनी जीव अनन्तगुणे हैं।

ग्यारहवाँ (दर्शन) द्वार ॥११॥

विवेचन—ग्यारहवाँ दर्शनद्वार : दर्शन की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६०) में चार दर्शनों की अपेक्षा से जीवों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

---

१. 'जत्थ मइनाणं, तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं, तत्थ मइनाणं'

२. 'जत्थ मइ-अन्नाणं, तत्थ सुय-अन्नाणं, जत्थ सुय-अन्नाणं तत्थ मइ-अन्नाणं।'

—प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १३७

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३७

सबसे थोड़े अवधिदर्शनी जीव इसलिए हैं कि अवधिदर्शन देवों, नारकों और कतिपय संज्ञी-तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों और मनुष्यों को ही होता है। उनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि चक्षुदर्शन सभी देवों, नारकों, गर्भज मनुष्यों, संज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रियों, असंज्ञी तिर्यंचपंचेन्द्रियों और चतुरिन्द्रिय जीवों को भी होता है। उनकी अपेक्षा केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं। उनकी अपेक्षा भी अचक्षुर्दर्शनी अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अचक्षुर्दर्शनियों में वनस्पतिकायिक भी हैं, जो अकेले ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।[1]

वारहवाँ संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—

२६१. एतेसि णं भंते ! जीवाणं संजयाणं असंजयाणं संजयासंजयाणं नोसंजयनोअसंजयनो-संजतासंजताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा संजता १, संजयासंजता असंखेज्जगुणा २, नोसंजतनोअसंजत-नोसंजतासंजता अणंतगुणा ३, असंजता अणंतगुणा ४। दारं १२ ॥

[२६१ प्र.] भगवन् ! इन संयतों, असंयतों, संयतासंयतों और नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयता-संयत जीवों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२६१ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प संयत जीव हैं, २. (उनसे) संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ४. असंयत जीव अनन्तगुणे हैं। वारहवाँ (संयत) द्वार ॥१२॥

विवेचन—वारहवाँ संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा से जीवों का अल्पवहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६१) में संयत, असंयत, संयतासंयत एवं नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत की दृष्टि से जीवों के अल्पवहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे थोड़े संयत हैं, क्योंकि मनुष्यलोक में वे उत्कृष्टतः (अधिक से अधिक) कोटिसहस्र-पृथक्त्व, अर्थात्—दो हजार करोड़ से नौ हजार करोड़ तक ही पाए जाते हैं।[2] उनकी अपेक्षा संयतासंयत (देशविरत) असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि मनुष्य के अतिरिक्त असंख्यात तिर्यंचपंचेन्द्रियों में भी देशविरति पाई जाती है। उनसे नोसंयत-नोअसंयत (नोसंयतासंयत) अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जो संयत, असंयत तथा संयतासंयत तीनों नहीं कहे जा सकते, ऐसे सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे असंयत अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव भी असंयत हैं और वे अकेले ही सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।[3]

तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोगद्वार की दृष्टि से जीवों का अल्पवहुत्व—

२६२. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अणागारोवउत्ता १, सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा २। दारं १३ ॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३८

२. 'कोडिसहस्सपुहुत्तं मणुयलोए संजयाणं' —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पृ. १३८

३. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३८

[२६२ प्र.] भगवन् ! इन साकारोपयोग-युक्त और अनाकारोपयोग-युक्त जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६२ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प अनाकारोपयोग वाले जीव हैं, २. (उनसे) साकारोपयोग वाले जीव संख्यातगुणे हैं । तेरहवाँ (उपयोग) द्वार ॥१३॥

विवेचन—तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोग की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६२) में साकारोपयोगयुक्त और अनाकारोपयोगयुक्त जीवों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

अनाकारोपयोग का काल थोड़ा होता है, जबकि साकारोपयोगकाल उससे असंख्यातगुणा अधिक होता है । इसीलिए कहा गया है कि पृच्छासमय में अनाकारोपयोग-(दर्शनोपयोग) काल थोड़ा होने से वे बहुत थोड़े पाए जाते हैं, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग-(ज्ञानोपयोग) उपयुक्त जीव संख्यातगुणे होते हैं । क्योंकि साकारोपयोगकाल लम्बा होने से पृच्छा के समय वे बहुत संख्या में पाये जाते हैं ।[1]

चौदहवाँ आहारद्वार : आहारक-अनाहारक जीवों का अल्पबहुत्व—

२६३. एतेसि णं भंते ! जीवाणं आहारगाणं अणाहारगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अणाहारगा १, आहारगा असंखेज्जगुणा २ । दारं १४ ॥

[२६३ प्र.] भगवन् ! इन आहारकों और अनाहारकजीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६३ उ.] गौतम ! १. सबसे कम अनाहारक जीव हैं, २. (उनसे) आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं । चौदहवाँ (आहार) द्वार ॥१४॥

विवेचन—चौदहवाँ आहारद्वार : आहार की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६३) में आहारक-अनाहारक जीवों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

सबसे थोड़े अनाहारक जीव हैं, क्योंकि विग्रहगति करते हुए जीव, समुद्घातप्राप्त केवली, और अयोगी सिद्ध जीव ही अनाहारक होते हैं ।[2] उनकी अपेक्षा आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं । प्रश्न हो सकता है कि आहारक जीवों में वनस्पतिकायिक भी हैं और वे सिद्धों से अनन्त हैं, तो अनाहारकों से वे अनन्तगुणे क्यों नहीं बताए गए ? असंख्यातगुणे ही क्यों बताए गए ? इसका समाधान यह है कि सूक्ष्म निगोद सब मिलकर भी असंख्यात हैं, उसमें भी वे अन्तर्मुहूर्त्तसमय की राशि के तुल्य हैं, तथा सदैव विग्रहगति में ही रहते हैं, इसलिए उनमें अनाहारक भी बहुत अधिक होते हैं और वे समग्रजीवराशि के असंख्येयभाग के तुल्य होते हैं । अत: उनकी अपेक्षा आहारकजीव असंख्यातगुणे ही हैं, अनन्तगुणे नहीं ।[3]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३८

२. **विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य ।**
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा ॥ —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १३८

३. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३८

पन्द्रहवाँ भाषकद्वार : भाषा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२६४. एतेसि णं भंते ! जीवाणं भासगाणं अभासगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा भासगा १, अभासगा अणंतगुणा २ । दारं १५ ।।

[२६४ प्र.] भगवन् ! इन भाषक और अभाषक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं ?

[२६४ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प भाषक जीव हैं, २. (उनसे) अनन्तगुणे अभाषक हैं।
पन्द्रहवाँ (भाषक) द्वार ।।१५।।

विवेचन—पन्द्रहवाँ भाषकद्वार : भाषा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र में भाषक और अभाषक जीवों के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है।

भाषक और अभाषक की व्याख्या—जो जीव भाषालब्धि-सम्पन्न हैं, वे भाषक और जो भाषालब्धि-विहीन हैं, वे अभाषक कहलाते हैं।

भाषकों की अपेक्षा अभाषक अनन्तगुणे क्यों ?—भाषक जीव द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव हैं, जबकि अभाषकों में एकेन्द्रिय जीव हैं, जिनमें अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त हैं, इसलिए भाषकों से अभाषक अनन्तगुणे कहे गए हैं।[1]

सोलहवाँ परित्तद्वार : परित्त आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—

२६५. एतेसि णं भंते ! जीवाणं परित्ताणं अपरित्ताणं नोपरित्तनोअपरित्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा परित्ता १, नोपरित्तनोअपरित्ता अणंतगुणा २, अपरित्ता अणंतगुणा ३ । दारं १६ ।।

[२६५ प्र.] भगवन् ! इन परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६५ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े परीत जीव हैं, २. (उनसे) नोपरीत-नोअपरीत जीव अनन्तगुणे हैं और ३. (उनसे भी) अपरीत जीव अनन्तगुणे हैं।
सोलहवाँ (परीत्त) द्वार ।। १६ ।।

विवेचन—सोलहवाँ परीतद्वार : परीत आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६५) में परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवों की न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है।

परीत आदि की व्याख्या—परीत का सामान्यतया अर्थ होता है—परिमित या सीमित। इस दृष्टि से 'परीत' दो प्रकार के बताए गए हैं—भवपरीत और कायपरीत। भवपरीत उन्हें कहते हैं,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

जिनका संसार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध-पुद्गलपरावर्तनमात्र रह गया है। 'कायपरीत' कहते हैं—प्रत्येकशरीरी को। भवपरीत शुक्लपाक्षिक होते हैं और कायपरीत प्रत्येकशरीरी होते हैं। अपरीत उन्हें कहते हैं—जिनका संसार परीत—परिमित न हुआ हो, ऐसे जीव कृष्णपाक्षिक होते हैं।

परीत आदि की दृष्टि से अल्पबहुत्व—पूर्वोक्त दोनों प्रकार के परीत जीव सबसे थोड़े हैं, क्योंकि समस्त जीवों की अपेक्षा शुक्लपाक्षिक एवं प्रत्येकशरीरी कम हैं। उनकी अपेक्षा नोपरीत-नोअपरीत अर्थात् इन दोनों से अलग सिद्ध भगवन् हैं, जो कि अनन्त हैं, इसलिए अनन्तगुणे हैं और उनसे अपरीत यानी कृष्णपाक्षिक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त हैं। वे सिद्धों से अनन्तगुणे हैं।[1]

सत्रहवाँ पर्याप्तद्वार : पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२६६. एएसि णं भंते ! जीवाणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं नोपज्जत्तनोअपज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा नोपज्जत्तगनोअपज्जत्तगा १, अपज्जत्तगा अणंतगुणा २, पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ३। दारं १७॥

[२६६ प्र.] भगवन् ! इन पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६६ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव हैं, २. (उनसे) अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे हैं, (और उनसे भी) ३. पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

सत्रहवाँ (पर्याप्त) द्वार ॥ १७॥

विवेचन—सत्रहवाँ पर्याप्तद्वार: पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत (२६६वें) सूत्र में पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवों की न्यूनाधिकता—सबसे कम नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव हैं, क्योंकि पर्याप्ति और अपर्याप्ति से रहित सिद्ध हैं, जो पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों से कम हैं। उनकी अपेक्षा से अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि साधारणवनस्पतिकायिक सिद्धों से अनन्तगुणे हैं, जो सर्वकाल में अपर्याप्तक ही पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।[2]

अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार : सूक्ष्म आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—

२६७. एएसि णं भंते ! जीवाणं सुहुमाणं बादराणं नोसुहुमनोबादराण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा णोसुहुमणोबादरा १, बादरा अणंतगुणा २, सुहुमा असंखेज्जगुणा ३। दारं १८॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

[२६७ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६७ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर जीव हैं, २. (उनसे) बादर जीव अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ३. सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं। अठारहवाँ (सूक्ष्म) द्वार ॥१८॥

विवेचन—अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार—प्रस्तुत सूत्र (२६७) में सूक्ष्म, बादर एवं नोसूक्ष्म-नोबादर जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सूक्ष्मद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व—सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर अर्थात् सिद्धजीव हैं, क्योंकि वे सूक्ष्म जीवराशि और बादर जीवराशि के अनन्तभाग के बराबर हैं। उनसे बादरजीव अनन्तगुने हैं, क्योंकि बादर निगोदजीव सिद्धों से अनन्तगुणे हैं। उनसे सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादरनिगोदों की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद असंख्यातगुणे अधिक हैं।[1]

उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार : संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—

२६८. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सण्णीणं असण्णीणं नोसण्णीनोअसण्णीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सण्णी १, णोसण्णीणोअसण्णी अणंतगुणा २, असण्णी अणंतगुणा ३। दारं १९ ॥

[२६८ प्र.] भगवन् ! संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६८ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प संज्ञी जीव हैं, २. (उनसे) नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ३. असंज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं। उन्नीसवाँ (संज्ञी) द्वार ॥ १९ ॥

विवेचन—उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार : संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६८) में संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे कम संज्ञी जीव हैं, क्योंकि विशिष्ट मन वाले जीव ही संज्ञी होते हैं और ऐसे जीव सबसे कम हैं। संज्ञियों की अपेक्षा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे हैं, उनकी अपेक्षा असंज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय आदि जीव अनन्त हैं, जो सिद्धों से भी अनन्तगुणे हैं।[2]

बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार : भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व—

२६९. एतेसि णं भंते ! जीवाणं भवसिद्धियाणं अभवसिद्धियाणं णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अभवसिद्धिया १, णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धिया अणंतगुणा २, भवसिद्धिया अणंतगुणा ३। दारं २० ॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

[२६९ प्र.] भगवन् ! इन भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवों में से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६९ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े अभवसिद्धिक जीव हैं, २. (उनसे) नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ३. भवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं ।

वीसवाँ (भव) द्वार ॥२०॥

विवेचन—बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार : भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से जीवों का अल्पबहुत्व— प्रस्तुत सूत्र (२६९) में भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है ।

सबसे कम अभवसिद्धिक—अभव्य—मोक्षगमन के अयोग्य जीव हैं, क्योंकि वे जघन्य युक्तानन्तक प्रमाण वाले हैं । अनुयोगद्वार के अनुसार—'उत्कृष्ट परीतानन्त में एक रूप (संख्या) मिलाने से '*जघन्य युक्तानन्तक*' होता है; अभवसिद्धिक उतने ही हैं ।[1] उनकी अपेक्षा नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जो भव्य भी नहीं और अभव्य भी नहीं, ऐसे जीव सिद्ध हैं और वे अजघन्योत्कृष्ट युक्तानन्तक-परिमाण हैं, इस कारण वे अनन्त हैं । उनकी अपेक्षा भवसिद्धिक—भव्य—मोक्षगमनयोग्य जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्ध एक भव्यनिगोदराशि के अनन्तभागकल्प होते हैं और ऐसी भव्य जीवनिगोदराशियाँ लोक में असंख्यात हैं ।[2]

इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार : अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्य का अल्पबहुत्व—

२७०. एतेसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं दव्वट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए य एए तिन्नि वि तुल्ला दव्वट्ठयाए सव्वत्थोवा १, जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ३, अद्धासमए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ४ ।

[२७० प्र.] भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल) इन द्रव्यों में से, द्रव्य की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७० उ.] गौतम ! १. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, ये तीनों ही तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प हैं; २. (इनकी अपेक्षा) जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है; ३. (इससे) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है; ४. (और इससे भी) अद्धा-समय (कालद्रव्य) द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है ।

२७१. एएसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं पदेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. 'उक्कोसए परित्ताणंतए रूवे पक्खित्ते जहन्नयं जुत्ताणंतयं होइ, अभवसिद्धिया वि तत्तिया चेव' —अनुयोगद्वार
२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४०

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते णं दो वि तुल्ला पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा १, जीवत्थिकाए पदेसट्ठताए अणंतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए पदेसट्ठयाए अणंतगुणे ३, अद्धासमए पदेसट्ठयाए अणंतगुणे ४, आगासत्थिकाए पदेसट्ठताए अणंतगुणे ५ ।

[२७१ प्र.] हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय और अद्धासमय; इन (द्रव्यों) में से प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७१ उ.] गौतम ! १. धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनों प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य हैं और सबसे थोड़े हैं, २. (इनकी अपेक्षा) जीवास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ३. (इसकी अपेक्षा) पुद्‌गलास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ४. (इसकी अपेक्षा) अद्धा-समय (काल) प्रदेशापेक्षया अनन्तगुण है; ५. (इससे) आकाशास्तिकाय प्रदेशों की दृष्टि से अनन्तगुण है ।

२७२. [१] एतस्स णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे एगे धम्मत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-१ प्र.] भगवन् ! इस धर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-१ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक धर्मास्तिकाय (द्रव्य) है और २. वही प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है ।

[२] एतस्स णं भंते ! अधम्मत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे एगे अधम्मत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ।

[१७२-१ प्र.] भगवन् ! इस अधर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-२ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक अधर्मास्तिकाय (द्रव्य) है; और २. वही प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है ।

[३] एतस्स णं भंते ! आगासत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे एगे आगासत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए अणंतगुणे ।

[२७२-३ प्र.] भगवन् ! इस आकाशास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-३ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक आकाशास्तिकाय (द्रव्य) है और २. वही प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण है ।

[४] एतस्स णं भंते ! जीवत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे।

[२७२-४ प्र.] भगवन् ! इस जीवास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-४ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय है और २. वही प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुण है।

[५] एतस्स णं भंते ! पोग्गलत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए, से चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणे।

[२७२-५ प्र.] भगवन् ! इस पुद्गलास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की दृष्टि से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-५ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से है, २. प्रदेशों की अपेक्षा से वही असंख्यातगुणा है।

[६] अद्धासमए ण पुच्छिज्जइ पदेसाभावा।

[२७२-६] काल (अद्धा-समय) के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं पूछा जाता, क्योंकि उसमें प्रदेशों का अभाव है।

२७३. एतेसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए य एते णं तिण्णि वि तुल्ला दव्वट्ठयाए सव्वत्थोवा १, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते णं दोण्णि वि तुल्ला पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणा २, जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ३, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ४, पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ५, से चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणे ६, अद्धासमए दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए अणंतगुणे ७, आगासत्थिकाए पएसट्ठयाए अणंतगुणे ८। दारं २१॥

[२७३ प्र.] भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल), इनमें से द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७३ उ.] गौतम ! १. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, ये तीन (द्रव्य) तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प हैं, २. (इनसे) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दोनों प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य हैं तथा असंख्यातगुणे हैं, ३. (इनसे) जीवास्तिकाय, द्रव्य

की अपेक्षा अनन्तगुण है, ४. वह प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है, ५. (इससे) पुद्‌गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ६. वही (पुद्‌गलास्तिकाय) प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुण है। ७. अद्धा-समय (काल) (उससे) द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ७. और (इससे भी) आकाशास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुण है। इक्कीसवाँ (अस्तिकाय) द्वार ॥२१॥

विवेचन—इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार : अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्‌द्रव्यों का अल्पबहुत्व— प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. २७० से २७३ तक) में द्रव्य, प्रदेशों व द्रव्य और प्रदेशों—दोनों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि षड्‌द्रव्यों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

द्रव्य की अपेक्षा से षड्‌द्रव्यों का अल्पबहुत्व—(१) धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्य, द्रव्य रूप से एक-एक संख्या वाले होने से सबसे अल्प हैं। जीवास्तिकाय इन तीनों से द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, क्योंकि जीव अनन्त हैं और वे प्रत्येक पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। उससे भी पुद्‌गलास्तिकाय द्रव्यापेक्षया अनन्तगुणा है, क्योंकि परमाणु, द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि पृथक्-पृथक् द्रव्य स्वतन्त्र द्रव्य हैं, और वे सामान्यतया तीन प्रकार के हैं—प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत। इनमें से सिर्फ प्रयोगपरिणत पुद्‌गल जीवों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जीव अनन्त-अनन्त ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय आदि कर्मपरमाणुओं (स्कन्धों) से आवेष्टित-परिवेष्टित (सम्बद्ध) है, जैसा कि व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) में कहा है[1]—'सबसे थोड़े प्रयोगपरिणत पुद्‌गल हैं, उनसे मिश्रपरिणत पुद्‌गल अनन्तगुणे हैं और उनसे भी विस्रसापरिणत अनन्तगुणे हैं।' अतः यह सिद्ध हुआ कि पुद्‌गलास्तिकाय, द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय द्रव्य से अनन्तगुणा है। पुद्‌गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-काल द्रव्यरूप से अनन्तगुणा है; क्योंकि एक ही परमाणु के भविष्यत् काल में द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के साथ परिणत होने के कारण एक ही परमाणु के भावीसंयोग अनन्त हैं और पृथक्-पृथक् कालों में होने वाले वे अनन्त संयोग केवलज्ञान से ही जाने जा सकते हैं। जैसे एक परमाणु के अनन्त संयोग होते हैं, वैसे द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि सर्वपरमाणुओं के प्रत्येक के अनन्त-अनन्त संयोग भिन्न-भिन्न कालों में होते हैं। ये सब परिणमन मनुष्यलोक (क्षेत्र) के अन्तर्गत होते हैं। इसलिए क्षेत्र की दृष्टि से एक-एक परमाणु के भावी संयोग अनन्त हैं। जैसे—यह परमाणु अमुक काल में अमुक आकाश-प्रदेश में अवगाहन करेगा, दूसरे समय में किसी दूसरे आकाश-प्रदेश में। जैसे—एक परमाणु के क्षेत्र की दृष्टि से विभिन्नकालवर्ती अनन्त भावीसंयोग हैं, वैसे ही अनन्तप्रदेशस्कन्धपर्यन्त द्विप्रदेशी आदि स्कन्धों के प्रत्येक के एक-एक आकाशप्रदेश में अवगाहन-भेद से भिन्न-भिन्न कालों में होने वाले भावीसंयोग अनन्त हैं। इसी प्रकार काल की अपेक्षा भी यह परमाणु इस आकाशप्रदेश में एक समय की स्थिति वाला, दो आदि समयों की स्थिति वाला है, इस प्रकार एक परमाणु के एक आकाशप्रदेश में असंख्यात भावीसंयोग होते हैं, इसी तरह सभी आकाशप्रदेशों में प्रत्येक परमाणु के असंख्यात-असंख्यात भावीसंयोग होते हैं, फिर पुनः पुनः उन आकाशप्रदेशों में काल का परावर्त्तन होने पर और काल अनन्त होने से, काल की अपेक्षा से भावी संयोग अनन्त होते हैं। जैसे एक परमाणु के क्षेत्र एवं काल की अपेक्षा से अनन्त भावीसंयोग होते हैं तथा सभी द्विप्रदेशी स्कन्धादि परमाणुओं के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त संयोग होते हैं। इसी प्रकार भाव की अपेक्षा से भी समझ लेना चाहिए। यथा—यह परमाणु अमुक काल में एक गुण काला होगा। इस प्रकार एक ही परमाणु के

---

१. 'सव्वथोवा पुग्गला पयोगपरिणया, मीसपरिणया अणंतगुणा, वीससापरिणया अणंतगुणा।' — व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र

भाव की अपेक्षा से भिन्न-भिन्नकालीन अनन्त संयोग समझ लेने चाहिए। एक परमाणु की तरह सभी परमाणुओं एवं द्विप्रदेशी आदि स्कन्धों के पृथक्-पृथक् अनन्त संयोग भाव की अपेक्षा से भी होते हैं। इस प्रकार विचार करने पर एक ही परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-विशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावीसमय सिद्ध होते हैं और जो बात एक परमाणु के विषय में है, वही सब परमाणुओं एवं द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धों के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिए। यह सब परिणमनशील काल नामक वस्तु के बिना, और परिणमनशील पुद्गलास्तिकाय आदि वस्तुओं के बिना संगत नहीं हो सकता।[1]

जिस प्रकार परमाणु, द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धों में से प्रत्येक के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावी अद्धाकाल प्रतिपादित किये गए हैं, इसी प्रकार भूत अद्धाकाल भी समझ लेने चाहिए।[2]

(२) **धर्मास्तिकाय आदि का प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनों प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य हैं, क्योंकि दोनों के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशों के जितने ही हैं। अतः अन्य द्रव्यों से इनके प्रदेश सबसे कम हैं। इन दोनों से जीवास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण है, क्योंकि जीव द्रव्य अनन्त हैं, उनमें से प्रत्येक जीवद्रव्य के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशों के बराबर हैं। उससे भी पुद्गलास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुण है। क्योंकि पुद्गल की अन्य वर्गणाओं को छोड़ दिया जाए और केवल कर्मवर्गणाओं को ही लिया जाए तो भी जीव का एक-एक प्रदेश अनन्त-अनन्त कर्मपरमाणुओं (कर्मस्कन्ध प्रदेशों) से आवृत है। कर्मवर्गणा के अतिरिक्त औदारिक, वैक्रिय आदि अन्य अनेक वर्गणाएँ भी हैं। अतएव सहज ही यह सिद्ध हो जाता है कि जीवास्तिकाय के प्रदेशों से पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा भी अद्धाकाल के प्रदेश अनन्तगुणे हैं, क्योंकि पहले कहे अनुसार एक-एक पुद्गलास्तिकाय के उस-उस (विभिन्न) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के साथ सम्बन्ध के कारण अतीत और अनागत का काल अनन्त-अनन्त है। अद्धाकाल की अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशों की दृष्टि से अनन्तगुण है, क्योंकि अलोकाकाश सभी ओर अनन्त और असीम है।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि का अल्पबहुत्व—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय ये दोनों द्रव्य की दृष्टि से थोड़े हैं, क्योंकि ये दोनों एक-एक द्रव्य ही हैं। किन्तु प्रदेशों की अपेक्षा से वे द्रव्य से असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि दोनों असंख्यातप्रदेशी हैं। आकाशास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से सबसे कम है, क्योंकि वह एक है, मगर प्रदेशों की अपेक्षा से वह अनन्तगुण है क्योंकि उसके प्रदेश अनन्तानन्त हैं। जीवास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से अल्प है और प्रदेशों की दृष्टि से असंख्यातगुण है, क्योंकि एक-एक जीव के लोकाकाश के प्रदेशों के तुल्य असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय कम है, क्योंकि प्रदेशों से द्रव्य कम ही होते हैं, प्रदेशों की दृष्टि से पुद्गलास्तिकाय असंख्यातगुणे हैं। यह प्रश्न हो सकता है कि लोक में अनन्तप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध बहुत हैं, अतएव पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा प्रदेशों से अनन्तगुण होना चाहिए,

---

१. संयोगपुरस्कारश्च नाम भाविनि हि युज्यते काले।
　न हि संयोगपुरस्कारो ह्यसतां केचिदुपपन्नः ॥१॥　　　　—प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १४१

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति पत्रांक १४१

इसका समाधान यह है कि द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध सबसे स्वल्प हैं, परमाणु आदि अत्यधिक हैं। आगे प्रज्ञापनासूत्र में कहा जाएगा[1]—"सबसे कम द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं, द्रव्यदृष्टि से परमाणुपुद्गल अनन्तगुणे हैं। द्रव्यदृष्टि से संख्यातप्रदेशी स्कन्ध संख्यातगुणे हैं और असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं।" इस पाठ के अनुसार जब समस्त पुद्गलास्तिकाय का प्रदेशदृष्टि से चिन्तन किया जाता है, तब अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अत्यन्त कम और परमाणु अत्यधिक तथा पृथक्-पृथक् द्रव्य होने से असंख्यप्रदेशी स्कन्ध परमाणुओं की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं। अतः प्रदेशों की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय असंख्यातगुणा ही हो सकता है, अनन्तगुणा नहीं।

कालद्रव्य के विषय में द्रव्य और प्रदेशों के अल्पबहुत्व को लेकर प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिए, क्योंकि काल के प्रदेश नहीं होते। काल सिर्फ द्रव्य ही है, उसके प्रदेश नहीं होते, क्योंकि जब परमाणु परस्पर सापेक्ष (एकमेक) होकर परिणत होते हैं, तभी उनका समूह स्कन्ध कहलाता है और उसके अवयव प्रदेश कहलाते हैं। यदि वे परमाणु परस्पर निरपेक्ष हों तो उनके समूह को स्कन्ध नहीं कह सकते। अद्धा-समय (काल) परस्पर निरपेक्ष हैं, स्कन्ध के समान परस्पर (पिंडित) सापेक्ष द्रव्य नहीं हैं। जब वर्तमान समय होता है तो उसके आगे-पीछे के समय का अभाव होता है। अतएव उनमें स्कन्धरूप परिणाम का अभाव है। अतएव अद्धा-समय (कालद्रव्य) के प्रदेश नहीं होते।

धर्मास्तिकायादि का एक साथ द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम द्रव्यदृष्टि से धर्मास्तिकाय आदि तीनों द्रव्य हैं, क्योंकि तीनों एक-एक द्रव्य हैं। इनकी अपेक्षा प्रदेशों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों तुल्य व असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि दोनों के प्रदेश असंख्यात-असंख्यात हैं। इन दोनों से जीवास्तिकाय द्रव्यदृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योंकि जीवद्रव्य अनन्त हैं। उनसे जीवास्तिकाय प्रदेशदृष्टि से असंख्यातगुणा है, क्योंकि प्रत्येक जीव के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश होते हैं। प्रदेशरूप जीवास्तिकाय से द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय अनन्तगुणा है, क्योंकि जीव के एक-एक प्रदेश के साथ अनन्त-अनन्त कर्मपुद्गलद्रव्य सम्बद्ध हैं। द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय से प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय असंख्यातगुणा है। इसका कारण पहले बताया जा चुका है। प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-समय (काल) द्रव्य और प्रदेश की दृष्टि से पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार अनन्तगुणा है, इसकी अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशों की दृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योंकि आकाशास्तिकाय सभी दिशाओं में अनन्त है, उसकी कहीं सीमा नहीं है; जबकि अद्धा-समय (काल) सिर्फ मनुष्यक्षेत्र में होता है।[2]

बाईसवाँ चरमद्वार : चरम और अचरम जीवों का अल्पबहुत्व—

२७४. एतेसि णं भंते ! जीवाणं चरिमाणं अचरिमाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा १, चरिमा अणंतगुणा २। दारं २२॥

---

१. 'सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।' —प्रज्ञापना: पद, ३ सू. ३३०

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४२-१४३

[२७४ प्र.] भगवन् ! इन चरम और अचरम जीवों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७४ उ.] गौतम ! अचरम जीव सबसे थोड़े हैं, (उनसे) चरम जीव अनन्तगुणे हैं।

बावीसवाँ (चरम) द्वार ॥२२॥

विवेचन—बावीसवाँ चरमद्वार—चरम और अचरम जीवों का अल्पबहुत्व-चरम और अचरम की व्याख्या—जिन जीवों का इस संसार में चरम—अन्तिम भव (जन्म-मरण) संभव हैं, वे चरम कहलाते हैं अथवा जो जीव योग्यता से भी चरम भव (निश्चितरूप से मोक्ष) के योग्य हैं, वे भव्य भी चरम कहलाते हैं। अचरम (चरमभव के अभाव वाले) अभव्य हैं या जिनका अब चरमभव (शेष) नहीं हैं, वे अचरम-सिद्ध कहलाते हैं।

चरम और अचरम का अल्पबहुत्व—सबसे कम अचरम जीव हैं, क्योंकि अभव्य और सिद्ध, दोनों प्रकार के अचरम मिलकर भी अजघन्योत्कृष्ट अनन्त होते हैं; जबकि उभयविध चरम (चरमशरीरी तथा भव्यजीव) उनकी अपेक्षा अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त-परिमाण हैं।[1]

तेईसवाँ जीवद्वार : जीवादि का अल्पबहुत्व—

२७५. एतेसि णं भंते ! जीवाणं पोग्गलाणं अद्धासमयाणं सव्वदव्वाणं सव्वपदेसाणं सव्वपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा १, पोग्गला अणंतगुणा २, अद्धासमया अणंतगुणा ३, सव्वदव्वा विसेसाहिया ४, सव्वपदेसा अणंतगुणा ५, सव्वपज्जवा अणंतगुणा ६। दारं २३॥

[२७५ प्र.] भगवन् ! इन जीवों, पुद्गलों, अद्धा-समयों, सर्वद्रव्यों, सर्वप्रदेशों और सर्वपर्यायों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२७५ उ.] गौतम ! १. सबसे अल्प जीव हैं, २. (उनसे) पुद्गल अनन्तगुणे हैं, ३. (उनसे) अद्धा-समय अनन्तगुणे हैं, ४. (उनसे) सर्वद्रव्य विशेषाधिक हैं, ५. (उनसे) सर्वप्रदेश अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ६. सर्वपर्याय अनन्तगुणे हैं।　　　　तेईसवाँ (जीव) द्वार ॥२३॥

विवेचन—तेईसवाँ जीवद्वार—प्रस्तुत सूत्र (२७५) में जीव, पुद्गल, काल, सर्वद्रव्य, सर्वप्रदेश और सर्वपर्याय, इनके परस्पर अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

जीवादि के अल्पबहुत्व की युक्तिसंगतता—सबसे कम जीव, उनसे अनन्तगुणे पुद्गल तथा उनसे भी अनन्तगुणे काल (अद्धासमय), इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त युक्ति से विचार कर लेना चाहिए। अद्धासमयों से सर्वद्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योंकि पुद्गलों से जो अद्धासमय अनन्तगुणे कहे गए हैं, वह प्रत्येक अद्धासमय द्रव्य हैं, अतः द्रव्य के निरूपण में वे भी ग्रहण किये जाते हैं। साथ ही अनन्त जीव-द्रव्यों, समस्त पुद्गल द्रव्यों, धर्म, अधर्म एवं आकाशास्तिकाय, इन सभी का द्रव्य में समावेश हो जाता है, ये सभी मिल कर भी अद्धासमयों से अनन्तवें भाग होने से उन्हें मिला देने पर भी सर्वद्रव्य, अद्धासमयों से विशेषाधिक हैं। उनकी अपेक्षा सर्वप्रदेश अनन्तगुणे हैं, क्योंकि आकाश अनन्त है।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४३

प्रदेशों से सर्वपर्याय अनन्तगुणे हैं, क्योंकि एक-एक आकाशप्रदेश में अनन्त-अनन्त अगुरुलघुपर्याय होते हैं।[1]

चौवीसवाँ क्षेत्रद्वार : क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवों का अल्प-वहुत्व—

२७६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा जीवा उड्ढलोयतिरियलोए १, अहेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६।

[२७६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सवसे कम जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेपाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में (तीनों लोकों में अर्थात् तीनों लोकों का स्पर्श करने वाले) असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२७७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा नेरइया तेलोक्के १, अहेलोकतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अहेलोए असंखेज्जगुणा ३।

[२७७] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सवसे थोड़े नैरयिकजीव त्रैलोक्य में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (और उनसे भी) अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं।

२७८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया उड्ढलोयतिरियलोए १, अहेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[२७८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सवसे अल्प तिर्यंचयोनिक (पुरुप) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) विशेपाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२७९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ तिरिक्खजोणिणीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२७९] क्षेत्र के अनुसार १. सवसे कम तिर्यंचिनी (तिर्यंचस्त्री) ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १४३

२८०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा मणुस्सा तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८०] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े मनुष्य त्रैलोक्य में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२८१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२८१] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोडी मनुष्यस्त्रियाँ (नारियाँ) त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

२८२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८२] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) असंख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२८३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६।

[२८३] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) असंख्यागुणी ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

२८४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा भवणवासी देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२८४] क्षेत्रानुसार १. सबसे थोड़े भवनवासी देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्व-लोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधो-लोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं।

२८५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ भवणवासिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ४, तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ५, अधोलोए असंखेज्जगुणाओ ६।

[२८५] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़ी भवनवासिनी देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) अधोलोक में असंख्यातगुणी हैं।

२८६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अहेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२८६] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२८७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ वाणमंतरीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखिज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखिज्जगुणाओ ३, अधोलोयतिरियलोए असंखिज्जगुणाओ ४, अधोलोए संखिज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखिज्जगुणाओ ६।

[२८७] क्षेत्रानुसार १. सबसे थोड़ी वाणव्यन्तर देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

२८८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा जोइसिया देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[२८८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्व-लोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधो-लोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

२८९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ जोइसिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ६ ।

[२८९] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प ज्योतिष्क देवियाँ ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं, ५ (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं ।

२९०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा[1] उड्ढलोयतिरियलोए १, तेलोक्के संखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, अधेलोए संखेज्जगुणा ४, तिरियलोए संखेज्जगुणा ५, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ६ ।

[२९०] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं ।

२९१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ वेमाणिणीओ देवीओ उड्ढलोयतिरियलोए १, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोए संखिज्जगुणाओ ४, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ५, उड्ढलोए असंखेज्जगुणाओ ६ ।

[२९१] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प वैमानिक देवियाँ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ४. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं, ५. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं, ६. (और उनसे भी) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणी हैं ।

२९२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६ ।

[२९२] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े एकेन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

२९३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६ ।

१. ग्रन्थाग्रम् २०००

[२९३] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम एकेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, और ६. (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२९४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा पज्जत्तगा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाहिया ६।

[२९४] क्षेत्र की अपेक्षा से १. एकेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे थोड़े ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. उनसे ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२९५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९५] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२९६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया अपज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखिज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखिज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में है, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२९७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेंदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखिज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९७] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं; ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

२९८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६ ।

[२९८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े त्रीन्द्रिय ऊर्ध्वलोक में है, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, और ६. (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं ।

२९९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया अपज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६ ।

[२९९] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं ।

३००. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया पज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६ ।

[३००] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं ।

३०१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६ ।

[३०१] क्षेत्र की दृष्टि से १. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं ।

३०२, खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६ ।

[३०२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३०३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अहेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अहोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[३०३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, ६. और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३०४. खेत्ताणुवातेणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३०४] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय त्रैलोक्य में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३०५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया अपज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३०५] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक त्रैलोक्य में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३०६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पंचिंदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३०६] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, २. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं ६. और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३०७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधो लोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३०७] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े पृथ्वीकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

३०८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाधिया ६ ।

[३०८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

३०९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पुढविकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६ ।

[३०९] क्षेत्र के अनुसार १. पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव सबसे अल्प ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

३१०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३१०] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे थोड़े अप्कायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६. (और इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं ।

३११. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३११] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम अप्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. अधोलोक में (उनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक हैं।

३१२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरिलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. अप्कायिक-पर्याप्त जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में सबसे कम हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा)ऊर्ध्वलोक में असंख्यागुणे हैं, ५. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ६. और (उनसे भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३१३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. तेजस्कायिक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, और ६. अधोलोक में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

३१४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

[३१४] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प तेजस्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनसे) विशेषाधिक हैं, ३. तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (इनसे) असंख्येयगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६. और (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं।

३१५. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेउक्काइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१५] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. तिर्यक्लोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और (उनकी अपेक्षा भी) ६. अधोलोक में विशेषाधिक हैं;।

३१६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३१६] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प वायुकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (इनसे) विशेषाधिक हैं, ३. तिर्यक्लोक में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (इनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. (इनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं, ६. और (इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं ।

३१७. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३१७] क्षेत्र की अपेक्षा से १. वायुकायिक-अपर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में है, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में अर्थात् तीनों लोकों का स्पर्श करने वाले जीव (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

३१८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३१८] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े वायुकायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (इनकी अपेक्षा) विशेषाधिक हैं, ३. (इनकी अपेक्षा) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. (इनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं, ५. (इनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक में हैं और (इनकी अपेक्षा भी) ६. अधोलोक में विशेषाधिक हैं ।

३१९. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६ ।

[३१९] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. (उनसे) विशेषाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ६. और अधोलोक में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं ।

३२०. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६ ।

[३२०] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं तथा ६. अधोलोक में (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक हैं।

३२१. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३२१] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, २. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनसे) विशेषाधिक हैं, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं, ४. त्रैलोक्य में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) असंख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक में हैं, ६. (और उनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक में हैं।

३२२. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अहेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३२२] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे थोड़े त्रसकायिक जीव त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में (इनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे हैं, ३. (इनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे अधोलोक-तिर्यक्लोक हैं, ४. ऊर्ध्वलोक में (इनसे) संख्यातगुणे हैं, ५. अधोलोक में (इनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे हैं, ६. और (इनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३२३. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३२३] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम त्रसकायिक अपर्याप्तक जीव त्रैलोक्य में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में हैं, ३. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे हैं, ४. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) संख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं और ६. (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

३२४. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए संखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए संखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६। दारं २४॥

[३२४] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे अल्प त्रसकायिक-पर्याप्तक जीव त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ३. अधोलोक-तिर्यक्लोक में (उनकी अपेक्षा) संख्यातगुणे हैं, ४. ऊर्ध्वलोक में (उनसे) संख्यातगुणे हैं, ५. अधोलोक में (उनसे) संख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ६. तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

—चौवीसवाँ (क्षेत्र) द्वार ॥२४॥

विवेचन—चौवीसवाँ क्षेत्रद्वार : क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवों का अल्प-बहुत्व—प्रस्तुत ४९ सूत्रों (सू. २७६ से ३२४ तक) में क्षेत्र के अनुसार ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक् तथा त्रैलोक्यादि विविध लोकों में चौवीसदण्डकवर्ती जीवों के अल्पवहुत्व की विस्तार से चर्चा की गई है।

'खेत्ताणुवाएणं' की व्याख्या—क्षेत्र के अनुपात अर्थात् अनुसार अथवा क्षेत्र की अपेक्षा से विचार करना क्षेत्रानुपात कहलाता है।

ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक आदि पदों की व्याख्या—जैनशास्त्रानुसार सम्पूर्ण लोक चतुर्दश रज्जू-परिमित है। उसके तीन विभाग किए जाते हैं—ऊर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक (मध्यलोक) और अधोलोक। रुचकों के अनुसार इनके विभाग (सीमा) निश्चित होते हैं। जैसे—रुचक के नौ सौ योजन नीचे और नौ सौ योजन ऊपर तिर्यक्लोक है। तिर्यक्लोक के नीचे अधोलोक है और तिर्यक्लोक के ऊपर ऊर्ध्व-लोक है। ऊर्ध्वलोक कुछ न्यून सात रज्जू-प्रमाण है और अधोलोक कुछ अधिक सात रज्जू-प्रमाण है। इन दोनों के मध्य में १८०० योजन ऊँचा तिर्यग्लोक है। ऊर्ध्वलोक का निचला आकाश-प्रदेशप्रतर और तिर्यक्लोक का सबसे ऊपर का आकाश-प्रदेशप्रतर है, वही ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक कहलाता है; अर्थात् रुचक के समभूभाग से नौ सौ योजन जाने पर, ज्योतिश्चक्र के ऊपर तिर्यग्लोकसम्बन्धी एक-प्रदेशी आकाशप्रतर है, वह तिर्यग्लोक का प्रतर है। इसके ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर ऊर्ध्व-लोक-प्रतर कहलाता है। इन दोनों प्रतरों को ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक कहते हैं। अधोलोक के ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर और तिर्यग्लोक के नीचे का एकप्रदेशी आकाशप्रतर अधोलोक-तिर्यक्लोक कहलाता है। त्रैलोक्य का अर्थ है—तीनों लोक; यानी तीनों लोकों को स्पर्श करने वाला। इस प्रकार क्षेत्र (समग्रलोक) के ६ विभाग समझने के लिए कर दिये हैं—(१) ऊर्ध्वलोक, (२) तिर्यग्लोक, (३) अधोलोक, (४) ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक, (५) अधोलोक-तिर्यक्लोक और (६) त्रैलोक्य।[1]

क्षेत्रानुसार लोक के उक्त छह विभागों में जीवों का अल्पवहुत्व—ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में सबसे कम जीव हैं, क्योंकि यहाँ का प्रदेश (क्षेत्र) वहुत थोड़ा है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि विग्रहगति करते हुए या वहीं पर स्थित जीव विशेषाधिक ही हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक में जीव असंख्यातगुणे है, क्योंकि ऊपर जिन दो क्षेत्रों का कथन किया गया है, उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक का विस्तार असंख्यातगुणा है। तिर्यग्लोक के जीवों की अपेक्षा तीनों लोकों का स्पर्श करने वाले जीव असंख्यातगुणे हैं। जो जीव विग्रहगति करते हुए तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं, उनकी अपेक्षा यह कथन समझना चाहिए। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे जीव इसलिए हैं कि उपपातक्षेत्र की वहाँ अत्यन्त वहुलता है। उनकी अपेक्षा अधोलोकवर्ती जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि अधोलोक का विस्तार सात रज्जू से कुछ अधिक प्रमाण है।[2]

क्षेत्रानुसार चार गतियों के जीवों का अल्पबहुत्व—(१) नरकगतीय अल्पबहुत्व—सवसे कम नरकगति के जीव त्रैलोक्य में अर्थात्—तीनों लोक को स्पर्श करने वाले हैं। यह शंका हो सकती है,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४४

२. (क) वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४४

(ख) 'सव्वत्थोवा जीवा नोपज्जत्ता-नोअपज्जत्ता, अपज्जत्ता अणंतगुणा, पज्जत्ता संखेज्जगुणा'

—प्रज्ञापना. मूलपाठ टिप्पण भा. १, पद ३

कि नारक जीव तीनों लोकों को स्पर्श करने वाले कैसे हो सकते हैं, क्योंकि वे तो अधोलोक में ही स्थित हैं, तथा वे सबसे कम कैसे हैं ? इसका समाधान यह है कि मेरुपर्वत के शिखर पर अथवा अंजन या दधिमुखपर्वतादि के शिखर पर जो वापिकाएँ हैं, उनमें रहने वाले जो मत्स्य आदि नरक में उत्पन्न होने वाले हैं, वे मरणकाल में इलिकागति से अपने आत्मप्रदेशों को फैलाते हुए तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं, और उस समय वे नारक ही कहलाते हैं, क्योंकि तत्काल ही उनकी उत्पत्ति नरक में होने वाली होती है, और वे नरकायु का वेदन करते हैं। ऐसे नारक थोड़े ही होते हैं, इसलिए उन्हें सबसे कम कहा है। त्रिलोकस्पर्शी नारकों की अपेक्षा पूर्वोक्त अधोलोकतिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे नारक हैं; क्योंकि असंख्यात द्वीप-समुद्रों में रहने वाले बहुत-से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जब नरकों में उत्पन्न होते हैं, तब इन दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं, इस कारण वे त्रैलोक्यस्पर्शी नारकों से असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका क्षेत्र असंख्यातगुणा है। मेरु आदि क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्ररूप क्षेत्र असंख्यातगुणा है। **(२) तिर्यंचगतिक अल्पबहुत्व**—सबसे कम तिर्यञ्च ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में हैं, क्योंकि ये तिर्यग्लोक के उपरिलोकवर्ती और ऊर्ध्वलोक के अधोलोकवर्ती दो प्रतरों में हैं, उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में—अधोलोक के ऊपरी और तिर्यग्लोक के निचले दो प्रतरों में—विशेषाधिक हैं। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक, त्रैलोक्य एवं ऊर्ध्वलोक में उत्तरोत्तर क्रमशः असंख्यातगुणे हैं। त्रैलोक्यसंस्पर्शी तिर्यंचों की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक (ऊर्ध्वलोकसंज्ञक प्रतर में) असंख्यातगुणे तिर्यञ्च हैं। इनकी अपेक्षा अधोलोक में विशेषाधिक हैं। **तिर्यंचस्त्रियाँ**—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम तिर्यंचिनी ऊर्ध्वलोक का स्पर्श करने वाली हैं, क्योंकि मेरु आदि की वापी आदि में भी पंचेन्द्रिय स्त्रियाँ विद्यमान हैं। उनका क्षेत्र अल्प है। अतएव वे सबसे कम कही गई हैं, इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में (ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक के दो प्रतरों को स्पर्श करने वाली) तिर्यंचस्त्रियाँ असंख्यातगुणी हैं। इसका कारण यह है कि सहस्रार देवलोक तक के देव, गर्भजपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च स्त्रियों में उत्पन्न हो सकते हैं और शेष काया के जीव भी उनमें उत्पन्न हो सकते हैं। जब सहस्रार देवलोक तक के देव या शेष काया के जीव ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में पंचेन्द्रिय तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे तिर्यंचस्त्री की आयु का वेदन करते हैं। इसके अतिरिक्त तिर्यक्लोकवर्ती पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-स्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक में देवरूप से या अन्य किसी रूप में उत्पन्न होने वाली होती हैं, तब वे मारणान्तिक समुद्घात करके अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशों को फैलाती हैं। उस समय वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों को स्पर्श करती हैं। उस समय वे तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ कहलाती हैं, अतएव असंख्यातगुणी कही गई हैं। इनकी अपेक्षा त्रैलोक्य में—त्रिलोक का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ तिर्यंचस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं। जब अधोलोक से भवनवासी, वाणव्यन्तर, नैरयिक तथा अन्यकायों के जीव ऊर्ध्वलोक में पंचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं, अथवा ऊर्ध्वलोक से कोई देवादि अधोलोक में तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं और वे समुद्घात करके अपने आत्मप्रदेशों को दण्डरूप में फैलाते हुए तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। ऐसे जीव बहुत हैं, अतएव त्रैलोक्य में तिर्यंच-स्त्री को संख्यातगुणी कहना सुसंगत है। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक का स्पर्श करने वाली तिर्यग्योनिकस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक हैं। बहुत-से नैरयिक आदि समुद्घात किये बिना ही तिर्यक्लोक में तिर्यञ्चपंचेन्द्रियस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं; तथा तिर्यग्लोकवर्ती जीव अधोलौकिक ग्रामों में तिर्यंचस्त्री के रूप में उत्पन्न होते हैं, उस समय वे पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं, और तिर्यंचस्त्री के आयुष्य का वेदन करते हैं, अतः उन्हें संख्यातगुणी कहा है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक में अर्थात् —अधोलोक के प्रतर में विद्यमान तिर्यञ्चस्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं। अधोलौकिक

ग्राम और सभी समुद्र एक हजार योजन अवगाह वाले हैं। अतः नौ सौ योजन से नीचे मत्सी आदि तिर्यञ्चयोनिकस्त्रियों के स्वस्थान होने से वे प्रचुर संख्या में हैं। इस कारण उन्हें संख्यातगुणी कहा है। उनका क्षेत्र भी संख्यातगुणा अधिक है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यक्लोक में तिर्यञ्चस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक हैं। (३) **मनुष्यगतिविषयक अल्पबहुत्व**—क्षेत्रापेक्षया विचार करने पर त्रैलोक्य में (त्रिलोकस्पर्शी) मनुष्य सबसे कम हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक से अधोलौकिक ग्रामों में उत्पन्न होने वाले और मारणान्तिक समुद्घात करने वालों में से कोई-कोई समुद्घातवश बाहर निकाले हुए स्वात्म-प्रदेशों से तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। कोई-कोई वैक्रिय या आहारक समुद्घात को प्राप्त होकर विशेष प्रयत्न के द्वारा बहुत दूर तक ऊपर और नीचे अपने आत्मप्रदेशों को फैलाते हैं, केवली-समुद्घात को प्राप्त थोड़े-से मानव तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं। इस कारण सबसे कम मनुष्य त्रिलोक में हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक संज्ञक दो प्रतरों को स्पर्श करने वाले मनुष्य असंख्यातगुणे हैं। वैमानिक देव अथवा अन्य काय वाले जीव यथासम्भव उर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में मनुष्यरूप में उत्पन्न होते हैं, तब वे पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं। इसके अतिरिक्त विद्याधर आदि भी जब मेरु आदि पर गमन करते हैं, तब उनके शुक्र, शोणित आदि पुद्गलों में सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति होती है, और वे विद्याधर रुधिरादिपुद्गलों के साथ सम्मिश्र होकर जब लौटते हैं, तब पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं, वे संख्या में अधिक होते हैं, इस कारण असंख्यातगुणे हैं। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरों को स्पर्श करने वाले मनुष्य संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलौकिक ग्रामों में स्वभावतः ही बहुत-से मनुष्यों का सद्भाव है। अतः जो तिर्यक्लोक से मनुष्यों या अन्य कायों से आकर अधोलौकिक ग्रामों में गर्भज मनुष्य या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप में उत्पन्न होने वाले हैं, अथवा अधोलौकिक ग्रामों से या अधोलोकवर्त्ती किसी अन्य स्थान से तिर्यक्लोक में गर्भज या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप में उत्पन्न होते हुए मनुष्य पूर्वोक्त दो प्रतरों का स्पर्श करते हैं। अतएव इन्हें संख्यातगुणे कहे हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में मनुष्य संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि सौमनस आदि वनों में क्रीड़ा आदि करने के लिए प्रचुरतर विद्याधरों एवं चारणमुनियों का गमनागमन होता है, और उनके यथायोग रुधिरादिपुद्गलों के योग से सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति होती है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक में संख्यातगुणे मनुष्य हैं; क्योंकि अधोलोक स्वस्थान होने से वहाँ अधिकता होनी स्वाभाविक है। इनकी अपेक्षा भी तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे मनुष्य अधिक हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक का क्षेत्र संख्यातगुणा अधिक है, और मनुष्यों का वह स्वस्थान है, इस कारण अधिकता सम्भव है।

मनुष्यस्त्रियों का क्षेत्र की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम मनुष्यस्त्रियाँ तीनों लोक को स्पर्श करने वाली हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में उत्पन्न होने वाली मारणान्तिक-समुद्घात-वश जब वे अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकालती हैं, अथवा जब वे वैक्रियसमुद्घात या केवली-समुद्घात करती हैं, तब तीनों लोकों का स्पर्श करती हैं और ऐसी मनुष्यस्त्रियाँ अत्यन्त कम होती हैं, इस कारण सबसे थोड़ी मनुष्यस्त्रियाँ त्रैलोक्य में बताई गई हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसंज्ञक दो प्रतरों का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ संख्यातगुणी होती हैं। वैमानिकदेव अथवा शेष कायवाले कोई जीव जब ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक में मनुष्यस्त्री के रूप में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तथा तिर्यग्लोकगत मनुष्यस्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होते समय मारणान्तिक समुद्घात करती हैं, तब दूर तक ऊपर अपने आत्मप्रदेशों को फैलाती हैं, फिर भी तब तक जो कालगत नहीं हुई हैं, वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करती हैं, और वे दोनों प्रकार की स्त्रियाँ बहुत अधिक होती

ते णं मिग १-महिस २-वराह ३-सीह ४-छगल ५-दद्दुर ६-हय ७-गयवइ ८-भुयग ९-खग्ग १०-उसभंक ११-विडिम १२-पागडियचिंधमउडा पसढिलवरमउड-किरीडधारिणो वर-कुंडलुज्जोइयाणणा मउडदित्तसिरया रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुहवण्ण-गंध-फासा उत्तमवेउव्विणो पवरवत्थ-गंध-मल्लाणुलेवणधरा महिड्ढीया महाजुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठगंडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्त-माला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाऽणुलेवणा भासरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डीए दिव्वाए जतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा। ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतनट्ट-गीय-वाइततंती-तल-ताल-तुडित-घणमुइंगपडुप्पवाइतरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१९६ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! वैमानिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९६ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एवं रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्कों के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड़ योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस विमान एवं विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाए हुए, रजरहित, निर्मल, पंक-(या कलंक) रहित, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय-रूपसम्पन्न और प्रतिरूप (अप्रतिम सुन्दर) हैं। इन्हीं (विमानावासों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

उनमें बहुत-से वैमानिक देव निवास करते हैं। वे (वैमानिक देव) इस प्रकार हैं—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक एवं (पांच) अनुत्तरौपपातिक देव।

वे (सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमशः)—१. मृग, २. महिष, ३. वराह (शूकर), ४. सिंह, ५. बकरा (छगल), ६. दर्दुर (मेंढक), ७. हय (अश्व), ८. गजराज, ९. भुजंग (सर्प), १०. खड्ग, (चौपाया वन्य जानवर या गैंडा), ११. वृषभ (बैल) और १२. विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलों से उद्योतित मुख वाले, मुकुट

उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोकतिर्यग्लोक नामक दो प्रतरों में असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि तिर्यग्लोकस्थभवनपतिदेव वैक्रियसमुद्घात करते हैं, तब वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते हैं, तथा तिर्यग्लोकस्थ जो भवनपति मारणान्तिकसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोक में सौधर्मादि देवलोकों में बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिक, बादरपर्याप्त-अप्कायिक एवं बादरपर्याप्त-वनस्पतिकायिक रूप से अथवा शुभमणि-प्रकारों में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे अपने भव की ही आयु का वेदन करते हैं, पारभविक पृथ्वीकायिकादि की आयु का नहीं; तब वे भवनपति ही कहलाते हैं उस समय वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते हैं। इस प्रकार के वे भवनपतिदेव ऊर्ध्वलोक में गमनागमन करने से और दोनों प्रतरों के समीपवर्ती उनका क्रीड़ास्थान होने से वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों को स्पर्श करते हैं, इसलिए ये पूर्वोक्त देवों से असंख्यातगुणे हैं। इनकी अपेक्षा त्रिलोकस्पर्शी भवनपति देव संख्यातगुणे होते हैं। ऊर्ध्वलोक में रहे हुए जो तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय भवनपति रूप से उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे तथा स्वस्थान में तथाविध प्रयत्न विशेष से वैक्रिय समुद्घात या मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब वे त्रैलोक्यस्पर्श करते हैं। वे संख्यातगुणे इसलिए हैं कि अन्य स्थान में समुद्घात करने वालों की अपेक्षा स्वस्थान में समुद्घात करने वाले संख्यातगुणे होते हैं। अधोलोक-तिर्यग्लोक संज्ञक प्रतरद्वय में इनकी अपेक्षा भी वे असंख्यातगुणे होते हैं। तिर्यग्लोक इनके स्वस्थान से निकटवर्ती होने से गमनागमन होने के कारण तथा स्वस्थान में स्थित रहते हुए भी क्रोधादि कषायसमुद्घातवश गमन होने से बहुत-से भवनपतिदेव पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में वे असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि तीर्थंकर समवसरणादि में वन्दननिमित्त, रमणीय द्वीपों में क्रीड़ा के निमित्त वे तिर्यग्लोक में आते है, और आते हैं तो चिरकाल तक भी रहते हैं उनकी अपेक्षा भी अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलोक तो भवनवासियों का स्वस्थान है। भवनवासीदेवों की तरह ही **भवनवासीदेवियों का अल्पबहुत्व** समझ लेना चाहिए। '**व्यन्तरदेव-देवियों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व**—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर व्यन्तर देव सबसे कम ऊर्ध्वलोक में हैं, पाण्डकवन आदि में कुछ ही व्यन्तरदेव पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक रूप दो प्रतरों में असंख्यातगुणे हैं कुछ व्यन्तरों के स्वस्थान के अन्तर्गत होने से तथा कई व्यन्तरों के स्वस्थान के निकट होने से तथा बहुत-से व्यन्तरों के मेरु आदि पर गमनागमन होने से उनके पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है। इन सब की सामूहिक रूप से विचारणा करने पर वे अत्यधिक हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा त्रिलोकवर्ती व्यन्तर संख्यातगुणे हैं, क्योंकि तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रिय समुद्घात करने पर वे आत्मप्रदेशों से तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं, और ऐसे व्यन्तरदेव पूर्वोक्त देवों से अत्यधिक हैं, इसलिए संख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक तिर्यग्लोक-संज्ञक प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि ये दोनों प्रतर बहुत-से व्यन्तरों के स्वस्थान हैं, इसलिए इनका स्पर्श करने वाले व्यन्तर बहुत अधिक होने से असंख्यातगुणे हैं। इनकी अपेक्षा अधोलोक में वे संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अधोलौकिक ग्रामों में उनका स्वस्थान है, तथा अधोलोक में बहुत से व्यन्तरों का क्रीड़ानिमित्त गमन भी होता है। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में वे संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है ही। इसी प्रकार **व्यन्तरदेवियों का अल्पबहुत्व** समझ लेना चाहिए। **ज्योतिष्कदेव पृथक्-पृथक् देवियों का अल्पबहुत्व**—क्षेत्र की अपेक्षा विचार करने पर सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योंकि कुछ ही ज्योतिष्क देवों का तीर्थंकरजन्ममहोत्सव निमित्त, या अंजन-दधिमुखादि पर अष्टाह्निका-निमित्त अथवा कतिपय देवों का मन्दराचलादि पर क्रीड़ानिमित्त गमन होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, उन दोनों प्रतरों

को कई ज्योतिष्कदेव स्वस्थान में स्थित रहे हुए स्पर्श करते हैं, कोई वैक्रियसमुद्घात करके आत्म-प्रदेशों से उनका स्पर्श करते हैं, कोई ऊर्ध्वलोक में जाते-आते उनका स्पर्श करते हैं। इस कारण दोनों प्रतरों का स्पर्श करने वाले ऊर्ध्वलोकगत देवों से असंख्यातगुणे हैं। उनसे त्रैलोक्यवर्ती ज्योतिष्क देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि जो ज्योतिष्कदेव तथाविध तीव्र प्रयत्नवश वैक्रिय समुद्घात करते हैं, वे तीनों लोकों को अपने आत्मप्रदेशों से स्पर्श करते हैं; वे स्वभावतः अत्यधिक हैं, इस कारण पूर्वोक्त देव संख्यातगुणे हैं। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय-संस्पर्शी ज्योतिष्कदेव असंख्यातगुणे हैं; क्योंकि बहुत-से देव अधोलौकिक ग्रामों में समवसरणादिनिमित्त या अधोलोक में क्रीड़ानिमित्त जाते-आते हैं, तथा बहुत-से देव अधोलोक से ज्योतिष्कदेवों में उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। इसलिए पूर्वोक्त देवों से ये देव असंख्यातगुणे हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में संख्यातगुणे हैं; क्योंकि बहुत-से देव अधोलोक में क्रीड़ा के लिए या अधो-लौकिक ग्रामों में समवसरणादि के लिए चिरकाल तक रहते हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है। इसी प्रकार **ज्योतिष्कदेवियों के अल्प-बहुत्व** का भी विचार कर लेना चाहिए। **वैमानिक देव-देवियों का पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व**—क्षेत्रा-नुसार विचार करने पर सबसे अल्प वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक संज्ञक प्रतरद्वय में हैं, क्योंकि अधोलोक-तिर्यग्लोकवर्ती जो जीव वैमानिकों में उत्पन्न होते हैं, तथा जो वैमानिक तिर्यग्लोक में गमनागमन करते हैं, एवं जो उक्त दोनों प्रतरों में स्थित क्रीड़ास्थान में आश्रय लेकर रहते हैं, और जो तिर्यग्लोक में रहे हुए ही वैक्रियसमुद्घात या मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, वे तथाविधप्रयत्न-विशेष से अपने आत्मप्रदेशों को ऊर्ध्वदिशा में निकालते हैं, तब पूर्वोक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, ऐसे वैमानिक देव बहुत ही अल्प होते हैं, इसलिए सबसे कम वैमानिक देव पूर्वोक्तप्रतरद्वय में हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यवर्ती वैमानिक पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार संख्यातगुणे अधिक हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक तिर्यग्लोक-संज्ञक दो प्रतरों में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि उनका अधोलौकिक ग्रामों में तीर्थंकर समवसरणादि में गमनागमन होने से तथा उक्त दो प्रतरों में होने वाले समवसरणादि में अवस्थान के कारण बहुत-से देवों के उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है, उनकी अपेक्षा अधोलोक तथा तिर्यग्लोक में उत्तरोत्तर क्रमशः संख्यातगुणे हैं, पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बहुत से देवों का उभयत्र समवसरणादि तथा क्रीड़ा-स्थानों में अवस्थान होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में वे असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक तो उनका स्वस्थान ही है, वहाँ तो अत्यधिक होना स्वाभाविक है।

वैमानिक देवियों का अल्पबहुत्व भी देवसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[1]

क्षेत्रानुसार एकेन्द्रियादि जीवों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(१) एकेन्द्रिय जीवों का अल्प-बहुत्व—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय अपर्याप्तक एवं एकेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसंज्ञक प्रतरद्वय में हैं। कई एकेन्द्रिय जीव वहीं स्थित रहते हैं, कई ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक में तथा तिर्यग्लोक से उर्ध्वलोक में उत्पन्न होने वाले जब मारणान्तिकसमुद्-घात करते हैं, तब वे उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं, वे बहुत अल्प होते हैं, इसलिए सबसे अल्प उक्त प्रतरद्वय में बताए गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं, क्योंकि अधो-लोक से तिर्यग्लोक में या तिर्यग्लोक से अधोलोक में इलिकागति से उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श करते हैं। वहीं रहने वाले एकेन्द्रिय भी ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में अधिक होते हैं, उनसे

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १४९ से १५१ तक

भी अधिक अधोलोक से तिर्यग्लोक में उत्पन्न होने वाले जीव पाए जाते हैं, इस कारण उक्त दोनों प्रतरों में विशेषाधिक हैं। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में एकेन्द्रिय असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उक्त प्रतरद्वय के क्षेत्र से तिर्यग्लोक का क्षेत्र असंख्यातगुणा अधिक है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी असंख्यातगुणे हैं। क्योंकि बहुत-से एकेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में और अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न होते हैं, और उनमें से बहुत-से मारणान्तिक-समुद्घातवश अपने आत्मप्रदेश-दण्डों को फैला कर तीनों लोकों को स्पर्श करते हैं, इस कारण वे असंख्यातगुणे हो जाते हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में वे असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उपपातक्षेत्र अत्यधिक है। उनसे अधोलोक में विशेषाधिक हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोकगत क्षेत्र से अधोलोकगत क्षेत्र विशेषाधिक है। एकेन्द्रिय अपर्याप्तक तथा पर्याप्तक के विषय में भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

(२) **द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक-पर्याप्तक जीवों का अल्पबहुत्व**—क्षेत्रानुसार विचार करने पर सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक के एकदेश—मेरुशिखर की वापी आदि में ही शंख आदि द्वीन्द्रिय पाए जाते हैं, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-संज्ञक प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि जो ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक में या तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक में द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होने वाले होते हैं, द्वीन्द्रियायु का अनुभव कर रहे होते हैं, तथा इलिकागति से उत्पन्न होते हैं, अथवा जो द्वीन्द्रिय तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक में, या ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक में द्वीन्द्रियरूप से या अन्य किसी रूप से उत्पन्न होने वाले हों, जिन्होंने पहले मारणान्तिकसमुद्घात किया हो, अतएव जो द्वीन्द्रियायु का वेदन कर रहे हों, समुद्घातवश अपने आत्मप्रदेशों को जिन्होंने दूर तक फैलाया हो, और जो प्रतरद्वय के अधिकृतक्षेत्र में ही रह रहे हैं, ऐसे जीव उक्त प्रतरद्वय का स्पर्श करते हैं, और वे अत्यधिक होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त से असंख्यातगुणे अधिक कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी द्वीन्द्रिय असंख्येयगुणे होते हैं, क्योंकि द्वीन्द्रियों के उत्पत्तिस्थान अधोलोक में बहुत हैं, तिर्यग्लोक में और भी अधिक हैं। उनमें से अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में द्वीन्द्रियरूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रिय पहले मारणान्तिक समुद्घात किये हुए होते हैं, वे समुद्घातवश अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशों को फैला देते हैं, तथा द्वीन्द्रियायु का वेदन करते हैं तथा जो द्वीन्द्रिय या शेष काय वाले ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होते हुए द्वीन्द्रियायु का अनुभव करते हैं, वे त्रैलोक्यस्पर्शी और अत्यधिक होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त से असंख्यातगुणे हैं। उनकी अपेक्षा पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार अधोलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं। उनसे उत्तरोत्तर-क्रमशः अधोलोक एवं तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं। जैसे औधिक द्वीन्द्रिय-अल्पबहुत्वसूत्र कहा गया है, वैसे ही त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इन सबके अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए।

औधिक पंचेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर सबसे कम पंचेन्द्रिय त्रैलोक्यसंस्पर्शी हैं, क्योंकि वे ही पंचेन्द्रियजीव तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं, जो ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हो रहे हों, पंचेन्द्रियायु का वेदन कर रहे हों और इलिकागति से उत्पन्न होते हों, अथवा ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में पंचेन्द्रियरूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होते हुए जिन्होंने मारणान्तिक समुद्घात किया हो, उस समुद्घात के समय अपने उत्पत्तिदेशपर्यन्त जिन्होंने आत्मप्रदेशों को फैलाया हो और जो पंचेन्द्रियायु का अनुभव करते हों। वे बहुत अल्प होते हैं, इसलिए उन्हें सब से थोड़े कहा गया है। उनकी अपेक्षा

ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय में संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उपपात या समुद्घात के द्वारा इन दो प्रतरों का स्पर्श करने वाले अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि अत्यधिक उपपात या समुद्घात द्वारा इन दोनों प्रतरों का अत्यधिक स्पर्श होता हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वहाँ वैमानिकों का अवस्थान हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में संख्यातगुणे अधिक इसलिए हैं कि वहाँ नैरयिकों का अवस्थान है। उनसे तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वहाँ सम्मूर्छिम, जलचर, खेचर आदि का, व्यन्तर व ज्योतिष्क देवों का तथा सम्मूर्छिम मनुष्यों का बाहुल्य है। इसी तरह **पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीवों** के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए। **पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव** सबसे कम हैं—ऊर्ध्वलोक में, क्योंकि वहां प्रायः वैमानिक देवों का ही निवास है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक-रूप प्रतरद्वय में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि उक्त प्रतरद्वय के निकटवर्ती ज्योतिष्कदेवों का तद्गतक्षेत्राश्रित व्यन्तर देवों का तथा तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों का, एवं वैमानिक, व्यन्तर, ज्योतिष्कों, तथा विद्याधर—चारणमुनियों तथा तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों का ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक में गमनागमन होता है, तब इन दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्य-स्पर्शी संख्यातगुणे हैं, क्योंकि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक तथा अधोलोकस्थ विद्याधर जब तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रियसमुद्घात करते हैं, और अपने आत्मप्रदेशों को ऊर्ध्वलोक में फैलाते हैं, तब वे तीनों लोकों का स्पर्श करते हैं। इस कारण वे संख्यातगुणे कहे गए हैं। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं। बहुत-से व्यन्तरदेव, स्वस्थान-निकटवर्ती होने से भवनपति, तिर्यग्लोक या ऊर्ध्वलोक में व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अधोलौकिक ग्रामों में समवसरणादि में, या अधोलोक में क्रीड़ार्थ गमनागमन करते हैं, तथा समुद्रों में किन्हीं-किन्हीं पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों का स्वस्थान निकट होने से तथा कतिपय तिर्यंचपंचेन्द्रियजीवों के वहीं रहने के कारण उक्त दोनों प्रतरों का स्पर्श होता है। अतएव ये संख्यातगुणे कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक में संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ नैरयिकों तथा भवनपतियों का अवस्थान है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वहाँ तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों, मनुष्यों, ज्योतिष्कों और व्यन्तरों का निवास है।[1]

पृथ्वीकायिक आदि पांच स्थावरों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—पृथ्वीकायिक आदि के औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक मिल कर १५ सूत्र हैं। इन १५ ही सूत्रों में उल्लिखित अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्वोक्त एकेन्द्रिय सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

त्रसकायिक जीवों का अल्पबहुत्व—त्रसकायिक औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक जीवों के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पंचेन्द्रियसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[2]

पच्चीसवाँ बन्धद्वार : आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्पबहुत्व—

३२५. एतेसि णं भंते ! जीवाणं आउयस्स कम्मस्स बंधगाणं अबंधगाणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं सुत्ताणं जागराणं समोहयाणं असमोहयाणं सातावेदगाणं असातावेदगाणं इंदियउवउत्ताणं नोइंदियउवउत्ताणं सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५१ से १५४ तक

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५५

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स बंधगा १, अपज्जत्तया संखेज्जगुणा २, सुत्ता संखेज्जगुणा ३, समोहता संखेज्जगुणा ४, सातवेदगा संखेज्जगुणा ५, इंदिओवउत्ता संखेज्जगुणा ६, अणागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ७, सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ८, नोइंदियउवउत्ता विसेसाहिया ९, असातावेदगा विसेसाहिया १०, असमोहता विसेसाहिया ११, जागरा विसेसाहिया १२, पज्जत्तया विसेसाहिया १३, आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया १४। दारं २५ ॥

[३२५ प्र.] भगवन् ! इन आयुष्यकर्म के वन्धकों और अवन्धकों, पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों, सुप्त और जागृत जीवों, समुद्घात करने वालों और न करने वालों, सातावेदकों और असातावेदकों, इन्द्रियोपयुक्तों और नो-इन्द्रियोपयुक्तों, साकारोपयोग में उपयुक्तों और अनाकारोपयोग में उपयुक्त जीवों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३२५ उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े आयुष्यकर्म के बन्धक जीव हैं, २. (उनकी अपेक्षा) अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) सुप्तजीव संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) समुद्घात वाले संख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) सातावेदक संख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) अनाकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं, ८. (उनकी अपेक्षा) साकारोपयुक्त संख्यातगुणे हैं, ९. (उनकी अपेक्षा) नो-इन्द्रियोपयुक्त जीव विशेषाधिक हैं, १०. (उनकी अपेक्षा) असातावेदक विशेषाधिक हैं, ११. (उनकी अपेक्षा) समुद्घात न करते हुए जीव विशेषाधिक हैं, १२. (उनकी अपेक्षा) जागृत विशेषाधिक हैं, १३. (उनसे) पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १४. (और उनकी अपेक्षा भी) आयुष्यकर्म के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

पच्चीसवाँ (वन्ध) द्वार ॥ २५ ॥

विवेचन—पच्चीसवाँ बन्धद्वार—बन्धद्वार के माध्यम से आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (३२५) में आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समुद्घात-कर्ता-अकर्ता, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नो-इन्द्रियोपयुक्त एवं साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त; सामूहिक रूप से इन सात युगलों के अल्पवहुत्व का विचार किया गया है।

अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण—आयुष्यकर्म के बन्धक जीव सबसे अल्प इसलिए हैं कि आयुष्यकर्म के बन्ध का काल प्रतिनियत और स्वल्प है। अनुभूयमान भव के आयुष्य का तीसरा भाग अवशेष रहने पर अथवा उस तीसरे भाग में से भी तीसरा भाग आदि अवशेष रहने पर ही जीव परभव का आयुष्य बांधते हैं। अत: त्रिभागों में से दो भाग अबन्धकाल और एक भाग बन्धकाल है और वह बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है। आयुष्यकर्म-बन्धकों की अपेक्षा अपर्याप्तक संख्यातगुणे कहे गए हैं। अपर्याप्तकों से सुप्त जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि सुप्तजीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक, दोनों में पाए जाते हैं और अपर्याप्तक की अपेक्षा पर्याप्तक संख्यातगुणे अधिक है। सुप्त जीवों की अपेक्षा समवहत (समुद्घात वाले) जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि बहुत-से पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव सदा मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाए जाते हैं। समवहत जीवों से सातावेदक जीव संख्यातगुणे हैं; क्योंकि आयुष्यबन्धक, अपर्याप्त और सुप्त जीवों में भी साता का वेदन करने वाले उपलब्ध होते हैं। सातावेदकों की अपेक्षा इन्द्रियोपयुक्त जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि इन्द्रियों का उपयोग लगाने वाले सातावेदकों के अतिरिक्त असातावेदकों में भी पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा

अनाकारोपयोगयुक्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि इन्द्रियोपयोग वालों और नो-इन्द्रियोपयोग वालों; दोनों में अनाकारोपयोग पाया जाता है। अनाकारोपयुक्तों की अपेक्षा साकारोपयुक्त जीव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि अनाकारोपयोग की अपेक्षा साकारोपयोग का काल अधिक है। साकारोपयुक्त जीवों की अपेक्षा नो-इन्द्रियोपयोग-उपयुक्त जीव विशेषाधिक हैं; क्योंकि इनमें नो-इन्द्रियोपयोग और अनाकारोपयोग वाले दोनों सम्मिलित हैं। इनकी अपेक्षा असातावेदक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इन्द्रियोपयोग-युक्त जीव भी असातावेदक होते हैं। असातावेदकों से असमवहत (समुद्घात न किये हुए) विशेषाधिक होते हैं; क्योंकि सातावेदक भी असमवहत होते हैं, इस कारण असमवहतों की विशेषाधिकता है। इनकी अपेक्षा जागृत विशेषाधिक हैं, क्योंकि कतिपय समवहत जीव भी जागृत होते हैं। जागृतों की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक हैं; क्योंकि कतिपय सुप्तजीव भी पर्याप्तक हैं। बहुत-से जीव ऐसे भी हैं, जो जागृत न होते हुए—अर्थात् सुप्त होते हुए भी पर्याप्तक हैं। जो जागृत हैं, वे तो पर्याप्त ही होते हैं, किन्तु सुप्त जीवों के विषय में ऐसा नियम नहीं है। पर्याप्तक जीवों की अपेक्षा आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि अपर्याप्तक भी आयुकर्म के अबन्धक होते हैं।[1]

प्रत्येक युगल का अल्पबहुत्व—(१) आयुष्यकर्म के बन्धक कम हैं, अबन्धक उनसे असंख्यातगुणे अधिक हैं; पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बन्धकाल की अपेक्षा अबन्धकाल अधिक है। बन्धकाल सिर्फ तीसरा भाग और वह भी अन्तर्मुहूर्त्त मात्र होता है। इस कारण बन्धकों की अपेक्षा अबन्धक संख्यातगुणे अधिक हैं। (२) **अपर्याप्तक जीव** अल्प हैं, पर्याप्तक उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं; यह कथन सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा से समझना चाहिए; क्योंकि सूक्ष्म जीवों में बाह्य व्याघात न होने से बहुसंख्यक जीवों की निष्पत्ति (उत्पत्ति) और अल्प जीवों की अनिष्पत्ति (अनुत्पत्ति) होती है। (३) सुप्त जीव कम हैं, जागृत जीव उनकी अपेक्षा संख्यातगुणे अधिक हैं। यह कथन सूक्ष्म एकेन्द्रियों की अपेक्षा से समझना चाहिए; क्योंकि अपर्याप्त जीव तो सुप्त ही पाए जाते हैं, जबकि पर्याप्त जागृत भी होते हैं। (४) **समवहत** जीव थोड़े हैं, उनकी अपेक्षा असमवहत जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं। यहाँ मारणान्तिक समुद्घात से **समवहत** ही लिये गए हैं और मारणान्तिक समुद्घात मरणकाल में ही होता है, शेष समय में नहीं; वह भी सब जीव नहीं करते। अतएव समवहत थोड़े ही कहे गए हैं; असमवहत अधिक, क्योंकि उनका जीवनकाल अधिक है। (५) इसी प्रकार सातावेदक जीव कम हैं, क्योंकि साधारणशरीरी जीव बहुत हैं और प्रत्येकशरीरी अल्प हैं। अधिकांश साधारणशरीरी जीव असातावेदक होते हैं, इस कारण सातावेदक कम हैं। प्रत्येकशरीरी जीवों में तो सातावेदकों की बहुलता है और असातावेदकों की अल्पता है। अतएव सातावेदक कम और असातावेदक उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं। (६) इन्द्रियोपयुक्त कम है, नो-इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि इन्द्रियोपयोग तो वर्तमानविषयक ही होता है, इस कारण उसका काल स्वल्प है। नो-इन्द्रियोपयोग अतीत-अनागतकाल-विषयक भी होता है। अतः उसका समय बहुत है, इस कारण नो-इन्द्रियोपयुक्त संख्यातगुणे कहे गए हैं। (७) अनाकार (दर्शन) उपयोग का काल अल्प होने से अनाकारोपयोग वाले अल्प हैं, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग वाले का काल संख्यातगुणा होने से साकारोपयोग वाले संख्यातगुणे अधिक हैं।[2]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५६-१५७

२. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५६

छव्वीसवाँ पुद्‌गलद्वार : पुद्‌गलों, द्रव्यों आदि का द्रव्यादि विविध अपेक्षाओं से अल्प-बहुत्व—

३२६. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा पोग्गला तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरिलोए अणंतगुणा २, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया ३, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३२६] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम पुद्‌गल त्रैलोक्य में हैं, २. ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक में (उनसे) अनन्तगुणे हैं, ३. अधोलोक-तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं, ४. तिर्यग्लोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ५. ऊर्ध्वलोक में (उनकी अपेक्षा) असंख्यातगुणे हैं, ६. (और उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३२७. दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पोग्गला उड्ढदिसाए १, अधेदिसाए विसेसाहिया २, उत्तर-पुरत्थिमेणं दाहिणपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा ३, दाहिणपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला विसेसाधिया ४, पुरत्थिमेणं असंखेज्जगुणा ५, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया ६, दाहिणेणं विसेसाहिया ७, उत्तरेणं विसेसाहिया ८।

[३२७] दिशाओं के अनुसार १. सबसे कम पुद्‌गल ऊर्ध्वदिशा में हैं, २. (उनसे) अधोदिशा में विशेषाधिक हैं, ३. उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम दोनों में तुल्य हैं, (पूर्वोक्त दिशा से) असंख्यात-गुणे हैं, ४. दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम दोनों में तुल्य हैं और (पूर्वोक्त दिशाओं से) विशेषाधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) पूर्वदिशा में असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) पश्चिमदिशा में विशेषाधिक हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) दक्षिण में विशेषाधिक हैं, (और उनकी अपेक्षा भी) ८. उत्तर में विशेषाधिक हैं।

३२८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाइं दव्वाइं तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए अणंतगुणाइं २, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहियाइं ३, उड्ढलोए असंखेज्जगुणाइं ४, अधेलोए अणंतगुणाइं ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाइं ६।

[३२८] क्षेत्र के अनुसार १. सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्य में (त्रिलोकस्पर्शी) हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्‌लोक में अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्‌लोक में विशेषाधिक हैं, ४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे अधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक में अनन्तगुणे हैं, ६. (और उनकी अपेक्षा भी) तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं।

३२९. दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवाइं दव्वाइं अधेदिसाए १, उड्ढदिसाए अणंतगुणाइं २, उत्तर-पुरत्थिमेणं दाहिणपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्लाइं असंखेज्जगुणाइं ३, दाहिणपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थि-मेण य दो वि तुल्लाइं विसेसाहियाइं ४, पुरत्थिमेणं असंखेज्जगुणाइं ५, पच्चत्थिमेणं विसेसाहियाइं ६, दाहिणेणं विसेसाहियाइं ७, उत्तरेणं विसेसाहियाइं ८।

[३२९] दिशाओं के अनुसार, १. सबसे थोड़े द्रव्य अधोदिशा में हैं, २. (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वदिशा में अनन्तगुणे हैं, ३. उत्तरपूर्व और दक्षिणपश्चिम दोनों में तुल्य हैं, (पूर्वोक्त ऊर्ध्वदिशा

से) असंख्यातगुणे हैं, ४. दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम, दोनों में तुल्य हैं तथा (पूर्वोक्त दो दिशाओं से) विशेषाधिक हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) पूर्व में असंख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) पश्चिम में विशेषाधिक हैं, ७. (उनसे) दक्षिण में विशेषाधिक हैं, ८. (और उनकी अपेक्षा भी) उत्तर में विशेषाधिक हैं।

३३०. एतेसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं संखेज्जपदेसियाणं असंखेज्जपदेसियाणं अणंतपदेसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए १, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठताए अणंतगुणा २, संखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४; पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा पएसट्ठयाए १, परमाणुपोग्गला अपदेसट्ठयाए अणंतगुणा २, संखेज्जपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपदेसिया खंधा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४; दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए १, ते चेव पदेसट्ठयाए अणंतगुणा २, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठअपदेसट्ठयाए अणंतगुणा ३, संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ५, असंखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ६, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ७।

[३३० प्र.] भगवन् ! इन १. परमाणुपुद्गलों तथा २. संख्यातप्रदेशिक, ३. असंख्यातप्रदेशिक और ४. अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से, और द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३० उ.] गौतम ! १. सबसे थोड़े द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध हैं, २. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—१. सबसे कम अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध प्रदेशापेक्षया हैं, २. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल अप्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—१. सबसे अल्प, द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध हैं, २. (उनकी अपेक्षा) वे (अनन्तप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल, द्रव्य एवं अप्रदेश की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) वे (संख्यातप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ६. (उनसे) असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ७. वे (असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध) प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं।

३३१. एतेसि णं भंते ! एगपदेसोगाढाणं संखेज्जपएसोगाढाणं असंखेज्जपएसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए १, संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए १, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठपएसट्ठयाए १, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ५ ।

[३३१ प्र.] भगवन् ! इन एकप्रदेशावगाढ़, संख्यातप्रदेशावगाढ़ और असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों में द्रव्य की अपेक्षा से प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३१ उ.] गौतम ! १. सबसे कम द्रव्य की अपेक्षा से एक प्रदेश में अवगाढ़ पुद्गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशों में अवगाढ़ पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातप्रदेशों में अवगाढ़ पुद्गल असंख्यात हैं। **प्रदेशों की दृष्टि से अल्पबहुत्व**—१. सबसे कम, प्रदेशों की अपेक्षा से, एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से, संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। **द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. सबसे कम एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) वे (संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल) ही प्रदेश की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (उनकी अपेक्षा) असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) वे (असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल) ही, प्रदेश की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं।

३३२. एतेसि णं भंते ! एगसमयठितीयाणं संखेज्जसमयठितीयाणं असंखेज्जसमयठितीयाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए १, संखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए १, संखेज्जसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असंखेज्जसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ३; दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठपदेसट्ठयाए १, संखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, ते चेव पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ५ ।

[३३२ प्र.] भगवन् ! इन एक समय की स्थिति वाले, संख्यात समय की स्थिति वाले और असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से एवं द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३२ उ.] गौतम ! १. द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प एक समय की स्थिति वाले पुद्गल हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। **प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. सबसे कम, एक समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से हैं, २. (उनकी अपेक्षा) संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं। **द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१. द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से सबसे कम पुद्गल, एक समय की स्थिति वाले हैं, २. संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ३. (इनकी अपेक्षा) वे (संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल) ही प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणे हैं, ४. (इनसे) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं, ५. (और इनसे भी) वे (असंख्यात-समयस्थितिक पुद्गल) ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

३३३. एतेसि णं भंते ! एगगुणकालगाणं संखेज्जगुणकालगाणं असंखेज्जगुणकालगाणं अणंतगुणकालगाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! जहा परमाणुपोग्गला (सु. ३३०) तहा भाणितव्वा । एवं संखेज्जगुणकालयाण वि । एवं सेसा वि वण्ण-गंध-रसा भाणितव्वा । फासाणं कक्खड-मउय-गरुय-लहुयाणं जधा एगपदेसोगाढाणं (सु. ३३१) भणितं तहा भाणितव्वं । अवसेसा फासा जधा वण्णा भणिता तधा भाणितव्वा । दारं २६ ॥

[३३३ प्र.] भगवन् ! इन एकगुण काले, संख्यातगुण काले, असंख्यातगुण काले और अनन्तगुण काले पुद्गलों में से, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३३ उ.] गौतम ! जिस प्रकार परमाणुपुद्गलों के विषय में (सू. ३३० में) कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। इसी प्रकार संख्यातगुण काले (एवं असंख्यातगुण काले तथा अनन्तगुण काले) पुद्गलों के विषय में भी (पूर्ववत् सू. ३३० के अनुसार) समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार शेष वर्ण (नीले, लाल, पीले आदि) तथा (समस्त) गन्ध एवं रस के (एकगुण से अनन्तगुण तक के) पुद्गलों के अल्पबहुत्व के सम्बन्ध में कहना चाहिए तथा कर्कश, मृदु (कोमल), गुरु और लघु स्पर्शो के (अल्पबहुत्व के) विषय में भी जिस प्रकार (सू. ३३१ में) एकप्रदेशावगाढ़ आदि का (अल्पबहुत्व) कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। अवशेष (चार) स्पर्शों के विषय में जैसे वर्णो का (अल्पबहुत्व) कहा है, वैसे ही कहना चाहिए। छव्वीसवाँ (पुद्गल) द्वार ॥२६॥

विवेचन—छव्वीसवाँ पुद्गलद्वार—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ३२६ से ३३३ तक) में पुद्गलद्वार के माध्यम से क्षेत्र एवं दिशा की अपेक्षा से पुद्गलों और द्रव्यों के तथा द्रव्य, प्रदेश, एवं द्रव्यप्रदेश की दृष्टि से परमाणुपुद्गल, संख्यातप्रदेशी आदि के एकप्रदेशावगाढ़ से असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों

तक के एकसमयस्थितिक से असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलों तक के तथा विविध वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के पुद्गलों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

क्षेत्रानुसार पुद्गलों का अल्पबहुत्व—त्रैलोक्यस्पर्शी पुद्गल द्रव्य सबसे थोड़े इसलिए बताए हैं कि महास्कन्ध ही त्रैलोक्यव्यापी होते हैं और वे अल्प ही हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-संज्ञक प्रतरद्वय में अनन्तगुणे पुद्गलद्रव्य हैं, क्योंकि इन दोनों प्रतरों में अनन्त संख्यातप्रदेशी, अनन्त असंख्यातप्रदेशी और अनन्त अनन्तप्रदेशी स्कन्ध स्पर्श करते हैं, इसलिए द्रव्यार्थतया वे अनन्तगुणे हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक नामक दो प्रतरों में वे विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनका क्षेत्र आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई-चौड़ाई) में कुछ विशेषाधिक है। उनसे तिर्यग्लोक में पुद्गल असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि इसका क्षेत्र (पूर्वोक्त से) असंख्यातगुणा है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणा हैं, क्योंकि तिर्यग्लोक के क्षेत्र से ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र असंख्यातगुणा अधिक है। उनसे अधोलोक में विशेषाधिक पुद्गलद्रव्य हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक का क्षेत्र कुछ अधिक है। ऊर्ध्वलोक कुछ कम ७ रज्जूप्रमाण है, जबकि अधोलोक कुछ अधिक ७ रज्जूप्रमाण है।

दिशाओं के अनुसार पुद्गलद्रव्यों का अल्पबहुत्व—सबसे कम पुद्गल ऊर्ध्वदिशा में है, क्योंकि रत्नप्रभापृथ्वी के समतल भूभाग वाले मेरुपर्वत के मध्य में जो अष्टप्रदेशात्मक रुचक से निकली हुई और लोकान्त को स्पर्श करने वाली चतुःप्रदेशात्मक (चार प्रदेश वाली) ऊर्ध्वदिशा है। उसमें सबसे कम पुद्गल हैं। अधोदिशा भी रुचक से निकलती है और वह चतुःप्रदेशात्मक और लोकान्त तक भी है, किन्तु ऊर्ध्वदिशा की अपेक्षा वह कुछ विशेषाधिक है, इसलिए वहाँ पुद्गल विशेषाधिक हैं। उनसे उत्तरपूर्व तथा दक्षिणपश्चिम में प्रत्येक में असंख्यातगुणे अधिक पुद्गल हैं, स्वस्थान में तो दोनों तुल्य हैं, यद्यपि ये दोनों दिशाएँ रुचक से निकली हैं तथा मुक्तावली के आकार की हैं, तथापि ये तिर्यग्लोक, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के अन्त तक जा कर समाप्त होती हैं, इसलिए इनका क्षेत्र असंख्यातगुणा होने से वहाँ पुद्गल भी असंख्यातगुणे हैं। इनसे दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम दोनों में प्रत्येक में विशेषाधिक पुद्गल हैं, स्वस्थान में तो ये परस्पर तुल्य हैं। इनमें विशेषाधिक पुद्गल होने का कारण यह है कि सौमनस एवं गंधमादन पर्वतों के सात-सात कूटों (शिखरों) पर तथा विद्युत्प्रभ और माल्यवान् पर्वतों के नौ-नौ कूटों पर कोहरे, ओस आदि के सूक्ष्मपुद्गल बहुत होते हैं, इसलिए इन दोनों दिशाओं में पूर्वोक्त दिशाओं से पुद्गल विशेषाधिक हैं। इनसे पूर्व दिशा में असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि पूर्व में क्षेत्र असंख्येयगुणा है। उनसे पश्चिम में विशेषाधिक हैं, क्योंकि अधोलोकिक ग्रामों में पोलार होने से वहाँ पुद्गल बहुत होते हैं। पश्चिम की अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ भवन तथा पोल अधिक हैं। उनसे उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं, क्योंकि उत्तर में संख्यातकोटा-कोटी योजन लम्बा-चौड़ा मानससरोवर है, जहाँ जलचर तथा काई, शैवाल आदि बहुत प्राणी हैं, उनके तैजस-कार्मणशरीर के पुद्गल अत्यधिक पाए जाते हैं। इस कारण पश्चिम से उत्तर में विशेषाधिक पुद्गल कहे गए हैं।[1]

क्षेत्रानुसार सामान्यतः द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्य-स्पर्शी हैं, क्योंकि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, महास्कन्ध और जीवास्तिकाय में से मारणान्तिक समुद्घात से अतीव समवहत जीव ही त्रैलोक्यस्पर्शी होते हैं और वे अल्प हैं। इसलिए ये सबसे कम हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरों में अनन्तगुणे द्रव्य हैं,

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १५८-१५९

क्योंकि इन दोनों प्रतरों को अनन्त पुद्गलद्रव्य और अनन्त जीवद्रव्य स्पर्श करते हैं। इन दोनों प्रतरों की अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक नामक प्रतरों में कुछ अधिक द्रव्य हैं। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे द्रव्य अधिक हैं, क्योंकि वह क्षेत्र असंख्यातगुणा विस्तृत है। उनकी अपेक्षा अधोलोक में अनन्तगुणे अधिक द्रव्य हैं, क्योंकि अधोलौकिक ग्रामों में काल है, जिसका सम्बन्ध विभिन्न परमाणुओं, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के पर्यायों के साथ होने के कारण प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य अनन्त प्रकार का होता है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे द्रव्य हैं, क्योंकि अधोलोकिक ग्राम-प्रमाण खण्ड कालद्रव्य के आधारभूत मनुष्यलोक में संख्यात पाए जाते हैं।

दिशाओं की अपेक्षा से सामान्यतः द्रव्यों का अल्पबहुत्व—सामान्यतया सबसे कम द्रव्य अधोदिशा में हैं, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वदिशा में अनन्तगुणे हैं, क्योंकि ऊर्ध्वलोक में मेरुपर्वत का पांच सौ योजन का स्फटिकमय काण्ड है, जिसमें चन्द्र और सूर्य की प्रभा के होने से तथा द्रव्यों के क्षण आदि काल का प्रतिभाग होने से तथा पूर्वोक्त नीति से प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्यों के साथ काल अनन्त होने से द्रव्य का अनन्तगुणा होना सिद्ध है। ऊर्ध्वदिशा की अपेक्षा उत्तरपूर्व—ईशानकोण में तथा दक्षिणपश्चिम—नैर्ऋत्यकोण में असंख्यातगुणे द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ के क्षेत्र असंख्यातगुणा हैं, किन्तु इन दोनों दिशाओं में बराबर-बराबर ही द्रव्य हैं, क्योंकि इन दोनों का क्षेत्र बराबर है। इन दोनों की अपेक्षा दक्षिणपूर्व—आग्नेयकोण में तथा उत्तरपश्चिम—वायव्यकोण में द्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योंकि इन दिशाओं में विद्युत्प्रभ एवं माल्यवान् पर्वतों के कूट के आश्रित कोहरे, ओस आदि श्लक्ष्ण पुद्गलद्रव्य बहुत होते हैं। इनकी अपेक्षा पूर्वदिशा में असंख्यातगुणा क्षेत्र अधिक होने से द्रव्य भी असंख्यातगुणे अधिक हैं। पूर्व की अपेक्षा पश्चिम दिशा में द्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योंकि वहाँ अधोलौकिक ग्रामों में पोल होने के कारण बहुत-से पुद्गलद्रव्यों का सद्भाव है। उसकी अपेक्षा दक्षिण में विशेषाधिक द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ बहुसंख्यक भुवनों के रन्ध्र (पोल) हैं। दक्षिण से उत्तरदिशा में विशेषाधिक द्रव्य हैं, क्योंकि वहाँ मानससरोवर में रहने वाले जीवों के आश्रित[1] तैजस और कार्मण वर्गणा के पुद्गल-स्कन्ध द्रव्य बहुत हैं।

संख्यात-असंख्यात-अनन्तप्रदेशी-परमाणुपुद्गलों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्रों में द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है। पाठ सुगम है। यहाँ सर्वत्र अल्प-बहुत्व-भावना में पुद्गलों का वैसा स्वभाव ही कारण माना गया है।

क्षेत्र की प्रधानता से पुद्गलों का अल्पबहुत्व—एकप्रदेश में अवगाढ़ (आकाश के एक प्रदेश में स्थित) पुद्गल (द्रव्यापेक्षया) सबसे कम हैं। यहाँ क्षेत्र की प्रधानता से विचार किया गया है। इसलिए आकाश के एक प्रदेश में जो भी परमाणु, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाढ़ हैं, उन सब को एक ही राशि में परिगणित करके 'एकप्रदेशावगाढ़' कहा गया है। इस दृष्टि से संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल पूर्वोक्त की अपेक्षा द्रव्यविवक्षा से संख्यातगुणे हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि आकाश के दो प्रदेशों में द्व्यणुक भी रहता है, त्र्यणुक भी और असंख्यात-प्रदेशी या अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी रहता है, किन्तु क्षेत्र की अपेक्षा से उन सबकी एक ही राशि है। इसी प्रकार तीन प्रदेशों में त्र्यणुक से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक रहते हैं, उनकी भी एक राशि समझनी चाहिए। इस दृष्टि से एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों की अपेक्षा द्विप्रदेशावगाढ़, द्विप्रदेशावगाढ़ की

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १५९

अपेक्षा त्रिप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल द्रव्य; इसी प्रकार चारप्रदेशावगाढ़, पंचप्रदेशावगाढ़, यावत् संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गलद्रव्य द्रव्य की विवक्षा से उत्तरोत्तर संख्यातगुणे अधिक हैं। उनकी अपेक्षा असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल द्रव्यविवक्षा से असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि असंख्यात के असंख्यात भेद कहे गए हैं। इसी प्रकार द्रव्यार्थतासूत्र, प्रदेशार्थतासूत्र एवं द्रव्यप्रदेशार्थता सूत्र सुगम होने से सर्वत्र घटित कर लेना चाहिए।

काल एवं भाव की दृष्टि से पुद्‌गलों का अल्पबहुत्व—काल की अपेक्षा से—एक समय की स्थिति से लेकर अनन्तसमयों तक की स्थिति वाले पुद्‌गलों का अल्पबहुत्व भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए। **भाव की अपेक्षा से**—काले आदि ५ वर्ण, दो गन्ध, तिक्त, कटु आदि पांच रस और शीत, उष्ण स्निग्ध और रूक्ष इन बोलों का अल्पबहुत्व मूलपाठ में कथित काले वर्ण के समान समझ लेना चाहिए। एकगुण काले पुद्‌गलों के अल्पबहुत्व की वक्तव्यता सामान्य पुद्‌गलों की तरह कहनी चाहिए। यथा—१. सबसे कम अनन्तप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले हैं, २. द्रव्य की अपेक्षा से परमाणुपुद्‌गल एकगुण काले अनन्तगुणे हैं, (उनसे) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले संख्यातगुणे हैं, उनसे असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार प्रदेश की अपेक्षा से समझना चाहिए। कर्कश, मृदु, गुरु और लघु स्पर्श का प्रत्येक का अल्पबहुत्व एकप्रदेश-अवगाढ के समान समझना चाहिए। यथा—एकप्रदेशावगाढ़ एकगुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से सबसे कम हैं, उनसे संख्यातप्रदेशावगाढ़ एकगुण कर्कशस्पर्श पुद्‌गल द्रव्यार्थरूप से संख्यातगुणे हैं, उनसे असंख्यातप्रदेशावगाढ़ एकगुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से असंख्यातगुणे हैं, इत्यादि। इसी प्रकार संख्यातगुण कर्कशस्पर्श असंख्यातगुण कर्कशस्पर्श एवं अनन्तगुण कर्कशस्पर्श के अल्पबहुत्व के विषय में समझ लेना चाहिए।[1]

सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : विभिन्न विवक्षाओं से सर्वजीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण—

३३४. अह भंते! सव्वजीवप्पबहुं महादंडयं वत्तइस्सामि—सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतिया मणुस्सा १, मणुस्सीओ संखेज्जगुणाओ २, बादरतेउक्काइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, अणुत्तरोववाइया देवा असंखेज्जगुणा ४, उवरिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ५, मज्झिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ६, हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ७, अच्चुते कप्पे देवा संखेज्जगुणा ८, आरणे कप्पे देवा संखेज्जगुणा ९, पाणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा १०, आणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा ११, अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १२, छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १३, सहस्सारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १४, महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १५, पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १६, लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १७, चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा १८, बंभलोए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा १९, तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा २०, माहिंदकप्पे देवा असंखेज्जगुणा २१, सणंकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा २२, दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा २३, सम्मुच्छिममणुस्सा असंखेज्जगुणा २४, ईसाणे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा २५, ईसाणे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ २६, सोहम्मे कप्पे देवा संखेज्जगुणा २७, सोहम्मे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ २८, भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा २९, भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ ३०, इमीसे रतणप्पभाए पुढवीए नेरइगा असंखेज्जगुणा ३१,

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १६१

खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा असंखेज्जगुणा ३२, खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ ३३, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा संखेज्जगुणा ३४, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ ३५, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा संखेज्जगुणा ३६, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ ३७, वाणमंतरा देवा संखेज्जगुणा ३८, वाणमंतरीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ ३९, जोइसिया देवा संखेज्जगुणा ४०, जोइसिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ ४१, खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४२, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४३, जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया संखेज्जगुणा ४४, चउरिंदिया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४५, पंचेंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४६, बेइंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४७, तेइंदिया पज्जतया विसेसाहिया ४८, पंचिंदिया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४९, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५०, तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५१, बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५१, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५३, बादरणिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५५, बादरआउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५६, बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५७, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५८, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५९, बादरणिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६०, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६१, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६२, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६३, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६४, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६५, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६६, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६७, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ६८, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ६९, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७०, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७१, सुहुमणिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७२, सुहुमणिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा ७३, अभवसिद्धिया अणंतगुणा ७४, परिवडितसम्मत्ता[1] अणंतगुणा ७५, सिद्धा अणंतगुणा ७६, बादरवणस्सतिकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा ७७, बादरपज्जत्तया विसेसाहिया ७८, बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७९, बादरअपज्जगा विसेसाहिया ८०, बादरा विसेसाहिया ८१, सुहुमवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८२, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया ८३, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ८४, सुहुमपज्जत्तया विसेसाहिया ८५, सुहुमा विसेसाहिया ८६, भवसिद्धिया विसेसाहिया ८७, निगोदजीवा विसेसाहिया ८८, वणप्फतिजीवा विसेसाहिया ८९, एगिंदिया विसेसाहिया ९०, तिरिक्खजोणिया विसेसाहिया ९१, मिच्छद्दिट्ठी विसेसाहिया ९२, अविरता विसेसाहिया ९३, सकसाई विसेसाहिया ९४, छउमत्था विसेसाहिया ९५, सजोगी विसेसाहिया ९६, संसारत्था विसेसाहिया ९७, सव्वजीवा विसेसाहिया ९८। दारं २७॥

॥ पण्णवणाए भगवईए तइयं बहुवत्तव्वयपयं समत्तं ॥

---

१. पाठान्तर—'सम्मत्ता' के स्थान में 'सम्मद्दिट्ठी' पद मिलता है।

[३३४] हे भगवन् ! अब मैं समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले महादण्डक का वर्णन करूंगा—१. सबसे कम गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) हैं, २. (उनसे) मानुषी (मनुष्यस्त्री) संख्यातगुणी अधिक हैं, ३. (उनकी अपेक्षा) बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४. (उनसे) अनुत्तरौपपातिक देव असंख्यातगुणे हैं, ५. (उनकी अपेक्षा) ऊपरी ग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) मध्यमग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं, ७. (उनकी अपेक्षा) निचले ग्रैवेयक देव संख्यातगुणे हैं, ८. अच्युतकल्प-देव (उनसे) संख्यातगुणे हैं, ९. आरणकल्प के देव (उनसे) संख्यातगुणे हैं, १०. (उनसे) प्राणतकल्प के देव संख्यातगुणे हैं, ११. (उनसे) आनतकल्प के देव संख्यातगुणे हैं, १२. (उनकी अपेक्षा) सबसे नीची सप्तम पृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, १३. (उनसे) छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, १४. (उसकी अपेक्षा) सहस्रारकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, १५. (उनकी अपेक्षा) महाशुक्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, १६. (उनकी अपेक्षा) पांचवीं धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, १७. (उनसे) लान्तककल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, १८. (उनकी अपेक्षा) चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, १९. (उनसे) ब्रह्मलोककल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, २०. (उनसे) तीसरी बालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, २१. (उनसे) माहेन्द्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, २२. (उनकी अपेक्षा) सनत्कुमारकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, २३. (उनसे) दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, २४. (उनकी अपेक्षा) सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यात गुणे हैं, २५. (उनसे) ईशानकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं, २६. ईशानकल्प की देवियां (उनसे) संख्यातगुणी हैं, २७. (उनकी अपेक्षा) सौधर्मकल्प के देव संख्यातगुणे हैं, २८. (उनकी अपेक्षा) सौधर्म-कल्प की देवियां संख्यातगुणी हैं, २९. (उनकी अपेक्षा) भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं, ३०. (उनसे) भवनवासी देवियां संख्यातगुणी हैं, ३१. (उनसे) प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं, ३२. (उनकी अपेक्षा) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-पुरुष असंख्यातगुणे हैं, ३३. (उनसे) खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक स्त्रियां असंख्यातगुणी हैं, ३४. (उनसे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं, ३५. (उनसे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, ७६. (उनकी अपेक्षा) जलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं, ३७. उनसे जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, ३८. (उनसे) वाणव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं, ३९. (उनकी-अपेक्षा) वाणव्यन्तर देवियाँ संख्यातगुणी हैं, ४०. (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देव संख्यातगुणे हैं, ४१. (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देवियाँ संख्यातगुणी हैं, ४२. (उनसे) खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं, ४३. (उनकी अपेक्षा) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं, ४४. (उनसे) जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकनपुंसक संख्यातगुणे अधिक हैं, ४५. (उनकी अपेक्षा) चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं. ४६. (उनकी अपेक्षा) पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४७. (उनकी अपेक्षा) द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४८. (उनकी अपेक्षा) त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४९. (उनकी अपेक्षा) पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५०. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५१. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५२. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५३. (उनकी अपेक्षा) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५५. बादर निगोद-पर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५४. (उनसे) बादर-पृथ्वी-कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५६. (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५७. (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५८. बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ५९. प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६०.

(उनसे) बादरनिगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६१. बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६२. बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असंख्यातगुणे हैं, ६३. (उनकी अपेक्षा) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६४. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६५. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६६. (उनकी-अपेक्षा) सूक्ष्म अप्कयिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६७. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६८. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ६९. (उनकी-अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७०. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७१. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ७४. (उनकी अपेक्षा) अभवसिद्धिक (अभव्य) अनन्तगुणे हैं, ७५. (उनसे) सम्यक्त्व से भ्रष्ट (प्रतिपतित) अनन्तगुणे हैं, ७६. (उनकी अपेक्षा) सिद्ध अनन्तगुणे हैं, ७७. (उनकी अपेक्षा) बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, ७८. (उनसे) बादरपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७९. (उनकी अपेक्षा) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८०. (उनकी अपेक्षा) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८१. (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं, ८२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८३. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८४. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, ८५. (उनसे) सूक्ष्म-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८६. (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, ८७. (उनसे) भवसिद्धिक (भव्य) विशेषाधिक हैं, ८८. (उनकी अपेक्षा) निगोद के जीव विशेषाधिक हैं, ८९. (उनसे) वनस्पति जीव विशेषाधिक हैं, ९०. (उनसे) एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, ९१. (उनसे) तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं, ९२. (उनसे) मिथ्यादृष्टि-जीव विशेषाधिक हैं, ९३. (उनसे) अविरत जीव विशेषाधिक हैं, ९४. (उनकी अपेक्षा) सकषायी जीव विशेषाधिक हैं, ९५. (उनसे) छद्मस्थ जीव विशेषाधिक हैं, ९६. (उनकी अपेक्षा) सयोगी जीव विशेषाधिक हैं, ९७. (उनकी अपेक्षा) संसारस्थ जीव विशेषाधिक हैं, ९८. (उनकी अपेक्षा) सर्वजीव विशेषाधिक हैं।

सत्ताईसवाँ (महादण्डक) द्वार ॥ २७ ॥

विवेचन—सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : सर्व जीवों के अल्पबहुत्व का विविध विवक्षाओं से निरूपण—प्रस्तुत सूत्र (३३४) में महादण्डकद्वार के निमित्त से विविध विवक्षाओं से समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है।

महादण्डक के वर्णन की अनुज्ञा—शिष्य को गुरु की अनुज्ञा लेकर ही शास्त्र प्ररूपणा या व्याख्या करनी चाहिए। इस दृष्टि से श्री गौतमस्वामी महादण्डक का वर्णन करने की अनुमति लेकर कहते हैं कि—भगवन्! मैं जीवों के अल्पबहुत्व के प्रतिपादक महादण्डक का वर्णन करता हूँ अथवा रचना करता हूँ।[1]

समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का क्रम—(१) गर्भज जीव सबसे कम इसलिए हैं कि उनकी संख्या संख्यात-कोटाकोटि परिमित है। (२) उनकी अपेक्षा मनुष्यस्त्रियाँ संख्यातगुणी अधिक हैं, क्योंकि मनुष्यपुरुषों की अपेक्षा सत्ताईसगुणी और सत्ताईस अधिक होती हैं।[2] (३) उनसे बादर

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६३

२. 'सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिआ चेव' —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १६३ में उद्धृत

तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे कतिपय वर्ग कम आवलिकाघन-समय-प्रमाण हैं। (४) उनकी अपेक्षा अनुत्तरौपपातिक देव असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। (५) उनकी अपेक्षा उपरितन ग्रैवेयकत्रिक के देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे बृहत्तर क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भाग में रहे हुए आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। इसे जानने का मापदण्ड है उत्तरोत्तर विमानों की अधिकता। अनुत्तर देवों के ५ विमान हैं, किन्तु ऊपर के तीन ग्रैवेयकों में सौ विमान हैं और प्रत्येक विमान में असंख्यात देव हैं। नीचे-नीचे के विमानों में अधिक-अधिक देव होते हैं, इसीलिए अनुत्तर-विमानवासी देवों की अपेक्षा ऊपरी तीन ग्रैवेयकों के देव संख्यातगुणे हैं। आगे भी आनतकल्प के देवों (६ से ११) तक उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। यद्यपि आरण और अच्युत कल्प समश्रेणी में स्थित हैं और दोनों की विमानसंख्या समान हैं तथापि स्वभावत: कृष्णपक्षी जीव प्राय: दक्षिणदिशा में उत्पन्न होते हैं, उत्तरदिशा में नहीं और कृष्णपाक्षिक जीव शुक्लपाक्षिकों की अपेक्षा अधिक होते हैं। इसलिए अच्युत से आरण प्राणत, और आनत कल्प के देव उत्तरोत्तर संख्यातगुणे अधिक हैं। (१२) उनकी अपेक्षा सप्तम नरकपृथ्वी के नैरयिक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि वे श्रेणी के असंख्यातवें भाग में स्थित आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं। उनसे उत्तरोत्तर क्रमश: (१३) छठी नरक के नारक, (१४) सहस्रारकल्प के देव, (१५) महाशुक्रकल्प के देव, (१६) पंचम धूमप्रभा नरक के नारक, (१७) लान्तककल्प के देव, (१८) चतुर्थ पंकप्रभानरक के नारक, (१९) ब्रह्मलोककल्प के देव, (२०) तृतीय वालुकाप्रभा नरक के नारक, (२१) माहेन्द्र-कल्प के देव, (२२) सनत्कुमारकल्प के देव, (२३) दूसरी शर्कराप्रभा नरक के नारक असंख्यात-असंख्यातगुणे हैं। सातवीं पृथ्वी से लेकर दूसरी पृथ्वी तक के नारक प्रत्येक अपने स्थान में प्ररूपित किये जाएँ तो सभी घनीकृत लोकश्रेणी के असंख्यातवें भाग में स्थित आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर हैं, मगर श्रेणी के असंख्यातवें भाग के भी असंख्यात भेद होते हैं। अत: इनमें सर्वत्र उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा अल्पबहुत्व कहने में कोई विरोध नहीं आता। शेष सब युक्तियाँ पूर्ववत् समझनी चाहिए। (२४) उनकी अपेक्षा सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अंगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के द्वितीय वर्गमूल से गुणित तीसरे वर्गमूल में जितनी प्रदेशराशि होती हैं, उतने प्रमाण में सम्मूर्च्छिम मनुष्य होते हैं। (२५) उनसे ईशानकल्प देव संख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए। (२६) ईशानकल्प की देवियाँ उनसे संख्यातगुणी अधिक हैं, क्योंकि देवियाँ देवों से बत्तीस गुणी और बत्तीस अधिक होती हैं। (२७) इनसे सौधर्मकल्प के देव संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि ईशानकल्प में अट्ठाईस लाख विमान हैं, जबकि सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमान हैं। (२८) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार सौधर्मकल्प की देवियाँ देवों से बत्तीस गुणी एवं बत्तीस अधिक होने से संख्यातगुणी हैं। (२९) इनकी अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं। अंगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के तीसरे वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल में जितने प्रदेशों की राशि होती है, उतनी प्रमाण वाली घनीकृत लोक की एक प्रदेश वाली श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतनी ही संख्या भवनपति देवों और देवियों की है। (३०) देवों की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुणी एवं बत्तीस अधिक होती हैं,[1] इस कारण भवनवासी देवियाँ संख्यातगुणी हैं। (३१) उनकी अपेक्षा

१. (क) 'बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया उ होंति देवीओ।'
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६४

रत्नप्रभापृथ्वी के नारक असंख्यातगुणे हैं। वे अंगुलमात्र परिमित क्षेत्र के प्रदेशों की राशि के द्वितीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल की जितनी प्रदेशराशि होती है उतनी श्रेणियों में रहे हुए आकाशप्रदेशों के बराबर हैं। (३२) उनकी अपेक्षा खेचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च पुरुष असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के आकाशप्रदेशों के बराबर हैं। (३३) उनकी अपेक्षा खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रियाँ संख्यातगुणी हैं, 'क्योंकि तिर्यञ्चों में पुरुष की अपेक्षा स्त्रियां तीन गुणी और तीन अधिक होती हैं।'[1] (३४) इनकी अपेक्षा स्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे बृहत्तर प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों की आकाश-प्रदेशराशि के बराबर हैं। (३५) इनकी अपेक्षा स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचस्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से संख्यातगुणी हैं। (३६) उनकी अपेक्षा जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यचपुरुष संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे बृहत्तम प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यातश्रेणियों की आकाशप्रदेशराशि के तुल्य हैं। (३७) उनकी अपेक्षा जलचर-तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से संख्यातगुणी हैं। (३८-३९) उनकी अपेक्षा वाणव्यन्तर देव एवं देवी उत्तरोत्तर क्रमशः संख्यातगुण हैं। क्योंकि संख्यात योजन कोटाकोटीप्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने ही सामान्य व्यन्तरदेव हैं। देवियाँ देवों से बत्तीसगुणा और बत्तीस अधिक होती हैं। (४०) उनकी अपेक्षा ज्योतिष्क देव (देवी सहित) संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि वे सामान्यतः २५६ अंगुलप्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने हैं।[2] (४१) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार इनसे ज्योतिष्क देवियाँ संख्यातगुणी हैं। (४२) इनकी अपेक्षा पर्याप्त चतुरिन्द्रिय संख्यातगुणे हैं, क्योंकि वे अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने हैं। (४३-४४-४५) उनकी अपेक्षा स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यंच नपुंसक, जलचर पंचेन्द्रियतिर्यंच-नपुंसक, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, क्रमशः उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हैं। (४६ से ५२) उनकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक, त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक और द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः विशेषाधिक हैं, क्योंकि ये सब अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर में होते हैं, उतने प्रमाण में होते हैं, किन्तु अंगुल के असंख्यातभाग के असंख्यात भेद होते हैं। अतः अपर्याप्त-द्वीन्द्रिय पर्यन्त उत्तरोत्तर अंगुल का असंख्यातवां भागकम अंगुल का असंख्यातवां भाग लेने पर कोई दोष नहीं। (५३ से ६८ तक) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक, बादर निगोद-पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, बादर अप्कायिक-पर्याप्तक, बादर वायुकायिक-पर्याप्तक, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक, प्रत्येकशरीर-बादर वनस्पति-कायिक-अपर्याप्तक, बादर निगोद-अपर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक, और सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः असंख्यातगुणे हैं, उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए तथा अपर्याप्तक सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्म स्वभावतः

---

१. (क) 'तिगुणा तिरूवअहिया तिरियाणं इत्थिओ मुणेयव्वा।'
   (ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्र.क १६५

२. (क) 'छप्पन्नदोसयंगुल सूइपएसेहिं भाइयं पयरं। जोइसिएहिं हीरइ।'
   (ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति. पत्रांक १६६

अधिक होते हैं। प्रज्ञापना की संग्रहणी में कहा गया है—बादर जीवों में अपर्याप्त अधिक होते हैं, तथा सूक्ष्म जीवों में समुच्चरूप से पर्याप्तक अधिक होते हैं। (६९ से ७३ तक) उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमशः विशेषाधिक हैं। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं तथा उनसे सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक-संख्यातगुणे अधिक हैं। यद्यपि अपर्याप्त तेजस्कायिक से लेकर पर्याप्त सूक्ष्म निगोद पर्यन्त जीव सामान्यरूप से असंख्यात लोकाकाशों की प्रदेशराशि प्रमाण (तुल्य) अन्यत्र कहे गए हैं, तथापि लोक का असंख्येयत्व भी असंख्यात भेदों से युक्त होने के कारण यह अल्पबहुत्व संगत ही है। ७४ उनकी अपेक्षा अभव्य अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे जघन्य युक्त-अनन्तक प्रमाण हैं। (७५) उनसे भ्रष्टसम्यग्दृष्टि अनन्तगुणे हैं, (७६) उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं, (७७) उनसे बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। (७८) उनकी अपेक्षा सामान्यतः बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें बादर पर्याप्तक-पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश हो जाता है। (७९) उनसे बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्येयगुणे हैं, क्योंकि एक एक बादर निगोद पर्याप्त के आश्रय से असंख्यात-असंख्यात बादर निगोद-अपर्याप्त रहते हैं। (८०) उनकी अपेक्षा बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश हो जाता है। (८१) उनसे सामान्यतः बादर विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें पर्याप्तक-अपर्याप्तक दोनों का समावेश हो जाता है। (८२) उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। (८३) उनसे सामान्यतः सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योंकि उनमें सूक्ष्म अपर्याप्तक पृथ्वीकायादि का भी समावेश हो जाता है। (८४) उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं, क्योंकि पर्याप्तक सूक्ष्म, अपर्याप्तक सूक्ष्म से स्वभावतः सदैव संख्यातगुणे पाये जाते हैं। (८५) उनकी अपेक्षा सामान्यरूप से सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि भी सम्मिलित हैं। (८६) उनसे भी पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषणरहित (सामान्य) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीव सम्मिलित हैं। (८७) उनकी अपेक्षा भव्य जीव विशेषाधिक है, क्योंकि जघन्य युक्त अनन्तक प्रमाण अभव्यों को छोड़कर शेष सभी जीव भव्य हैं। (८८) उनकी अपेक्षा निगोद जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि भव्य और अभव्य अतिप्रचुरता से सूक्ष्म और बादर निगोद जीवराशि में ही पाए जाते हैं, अन्यत्र नहीं। अन्य सभी मिलकर असंख्यात लोकाकाशप्रदेशों की राशि-प्रमाण ही होते हैं। (८९) उनकी अपेक्षा वनस्पतिजीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सामान्य वनस्पतिकायिकों में प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीव भी सम्मिलित हैं। (९०) वनस्पति जीवों की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि उनमें सूक्ष्म एवं बादर पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश है। (९१) एकेन्द्रियों की अपेक्षा तिर्यञ्चजीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि तिर्यञ्च सामान्य में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त सभी तिर्यञ्च सम्मिलित हैं। (९२) तिर्यञ्चों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि विशेषाधिक हैं, क्योंकि थोड़े-से अविरत सम्यग्दृष्टि आदि संज्ञी तिर्यञ्चों को छोड़कर शेष सभी तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि हैं, इसके अतिरिक्त अन्य गतियों के मिथ्यादृष्टि भी यहाँ सम्मिलित हैं, जिनमें असंख्यात नारक भी हैं। (९३) मिथ्यादृष्टि जीवों की अपेक्षा अविरत जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें अविरत सम्यग्दृष्टि भी समाविष्ट हैं। (९४) अविरत जीवों की अपेक्षा सकषाय जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सकषाय जीवों में देशविरत और दशम गुणस्थान तक के सर्वविरत जीव भी सम्मिलित हैं। (९५) उनकी अपेक्षा छद्मस्थ विशेषाधिक हैं, क्योंकि उपशान्तमोह आदि भी छद्मस्थों में सम्मिलित हैं। (९६) सकषाय जीवों

की अपेक्षा सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योंकि इनमें सयोगीकेवली गुणस्थान तक के जीवों का समावेश हो जाता है। (९७) सयोगियों की अपेक्षा संसारी जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि संसारी जीवों में अयोगीकेवली भी हैं और (९८) संसारी जीवों की अपेक्षा सर्वजीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि सर्वजीवों में सिद्धों का भी समावेश हो जाता है।[1]

॥ प्रज्ञापनासूत्र : तृतीय बहुवक्तव्यतापद समाप्त ॥

---

१ (क) 'तत्तो नपुंसग खहयरा संखेज्जा थलयर-जलयर-नपुंसगा चउरिन्दिय तओ पणवितिपज्जत्त किंचि अहिआ।' —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प. १६६ में उद्धृत

(ख) 'जीवाणमपज्जत्ता बहुतरगा वायराण विन्नेया।
सुहमाण य पज्जत्ता ओहेण य केवली विंति ॥' —प्रज्ञापना. म. वृत्ति, प. १६७ में उद्धृत

(ग) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १६६ से १६८ तक।

चउत्थं ठिइपयं

चतुर्थ स्थितिपद

प्राथमिक

※ प्रज्ञापनासूत्र के इस चतुर्थपद में जीवों के जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त नारक आदि पर्यायों में अव्यवच्छिन्न रूप से कितने काल तक अवस्थान (स्थिति या टिकना) होता है ?, इसका विचार किया गया है। अर्थात् इस पद में जीवों के जो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव आदि विविध पर्याय हैं, उनकी आयु का विचार है। यों तो जीवद्रव्य (आत्मा) नित्य है, परन्तु वह जो नानारूप (नाना जन्म) धारण करता है, वे पर्यायें अनित्य हैं। वे कभी-न-कभी तो नष्ट होती ही हैं। इस कारण उनकी स्थिति का विचार करना पड़ता है। यही तथ्य यहाँ प्रस्तुत किया गया है। 'स्थिति' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी इस प्रकार का है—आयुकर्म की अनुभूति करता हुआ जीव जिस (पर्याय) में अवस्थित रहता है, वह स्थिति है। इसलिए स्थिति, आयुःकर्मानुभूति और जीवन, ये तीनों पर्यायवाची शब्द हैं।[1]

※ यद्यपि मिथ्यात्वादि से गृहीत तथा ज्ञानावरणीयादि रूप में परिणत कर्मपुद्गलों का जो अवस्थान है, वह भी 'स्थिति' नाम से प्रसिद्ध है, तथापि यहाँ नारक आदि व्यपदेश की हेतु 'आयुष्यकर्मानुभूति' ही 'स्थिति' शब्द का वाच्य है, क्योंकि नरकगति आदि तथा पंचेन्द्रियजाति आदि नामकर्म के उदय के आश्रित नारकत्व आदि पर्याय कहलाती है, किन्तु यहाँ नरक आदि क्षेत्र को अप्राप्त जीव नरकायु आदि के प्रथम समय के संवेदनकाल से ही नारकत्व आदि कहलाने लगता है। अतः उस-उस गति के आयुष्यकर्म की अनुभूति को ही स्थिति मानी गई है। आयुष्य-कर्म की अनुभूति (आयु) सिर्फ संसारी जीवों को ही होती है, इसलिए इस पद में संसारी जीवों की ही स्थिति का विचार किया गया है। सिद्ध तो सादि-अपर्यवसित होते हैं, अतः उनकी आयु का विचार अप्राप्त होने से नहीं किया गया है तथा अजीवद्रव्य के पर्यायों की स्थिति का भी विचार इस पद में नहीं किया गया है; क्योंकि अजीवों के पर्याय जीवों की तरह आयु की अनुभूति पर आश्रित नहीं हैं और न उनके पर्याय जीवों की आयु की तरह काल की दृष्टि से अमुक सीमा में निर्धारित किये जा सकते हैं।

※ स्थिति (आयु) का विचार यहाँ सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट, दो प्रकार से किया गया है।

※ प्रस्तुत पद में स्थिति का निर्देशक्रम इस प्रकार है—सर्वप्रथम जीव की उन-उन सामान्य पर्यायों को लेकर, तत्पश्चात् उनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद करके आयु का विचार किया गया है।[2]

---

१. 'स्थीयते-अवस्थीयते अनया आयुःकर्मानुभूत्येति स्थितिः।
स्थितिरायुःकर्म्मानुभूतिर्जीवनमिति पर्यायाः। —प्रज्ञापना, म. वृत्ति, पृ. १६९

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक १६९ (ख) पण्णवणा. भा. २ प्रस्तावना, पृ. ५८

※ इस पद में सर्वप्रथम सामान्य नारक, तत्पश्चात् रत्नप्रभादि विशिष्ट नारकों की, भवनवासी देवों की, पृथ्वीकायादि पांच स्थावरों की, द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियों की, विभिन्न पंचेन्द्रियतिर्यंचों की, फिर विविध मनुष्यों की, समस्त वाणव्यन्तर देवों की, समस्त ज्योतिष्कदेवों की, तत्पश्चात् वैमानिक देवों की एवं नौ ग्रैवेयक तथा पंच अनुत्तरविमानवासी देवों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

※ स्थिति विषयक पाठ पर से फलित होता है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री की स्थिति (आयु) कम है। नारकों और देवों की स्थिति मनुष्य और तिर्यंच की अपेक्षा अधिक है। एकेन्द्रिय में तेजस्कायिक की सबसे कम और पृथ्वीकायिक की स्थिति सबसे अधिक है। द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय की तथा चतुरिन्द्रिय से भी त्रीन्द्रिय की स्थिति कम मानी गई है, यह रहस्य केवलिगम्य है।[1] □□

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ११२ से (ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, परिशिष्ट पृ. ५८

चउत्थं ठिइपयं

चतुर्थ स्थितिपद

नैरयिकों की स्थिति की प्ररूपणा

३३५. [१] नेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[३३५-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-१ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

[२] अपज्जत्तयनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है ।

[३] पज्जत्तयणेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-३ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

३३६. [१] रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सागरोवमं ।

[३३६-१ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३६-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम कही गई है ।

[२] अपज्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

[३] पज्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३३६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की कही गई है।

३३७. [१] सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं सागरोवमं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ।

[३३७-१ प्र.] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३७-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य एक सागरोपम की और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की कही गई है।

[२] अपज्जत्तयसक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३७-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की (कही गई) है।

३३८. [१] वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ।

[३३८-१ प्र.] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-१ उ.] गौतम ! जघन्य तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है ।

३३९. [१] पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता !
गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ।

[३३९-१ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[३३९-१ उ.] गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है ।

[२] अपज्जत्तयपंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।
[३] पज्जत्तयपंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३९-३ प्र.] भगवन् पर्याप्तक-पंकप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है ।

३४०. [१] धूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ।

[३४०-१ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४०-२ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४०-३ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की है।

३४१. [१] तमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ।

[३४१-१ प्र.] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४१-१ उ.] गौतम ! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयतमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४१-२ प्र.] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयतमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४१-३ प्र.] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-३ उ.] गौतम जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है।

३४२. [१] अधेसत्तमपुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[३४२-१ प्र.] भगवन् ! अध:सप्तम (तमस्तम:प्रभा) पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-१ उ.] गौतम ! जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की (कही गई) है।

[२] अपज्जत्तयअधेसत्तमपुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४२-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-अध:सप्तम(तमस्तम:प्रभा)पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयअधेसत्तमपुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-अध:सप्तमपृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

विवेचन—नैरयिकों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ३३५ से ३४२ तक) में सामान्य नारकों, सात नरकभूमियों में रहने वाले नारकों और फिर उनके अपर्याप्तकों तथा पर्याप्तकों की स्थिति पृथक्-पृथक् प्ररूपित की गई है।

अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा—अन्य संसारी जीवों की तरह नैरयिकों की भी दो दशाएँ हैं—अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा। अपर्याप्तदशा दो प्रकार से होती है—लब्धि से और करण से। नारक, देव तथा असंख्यातवर्षों की आयु वाले तिर्यञ्च एवं मनुष्य करण से ही अपर्याप्त होते हैं, लब्धि से नहीं। ये उपपात काल में ही कुछ काल तक करण से अपर्याप्त समझने चाहिए। शेष तिर्यञ्च या मनुष्य लब्धि और करण—दोनों प्रकार से उपपातकाल में अपर्याप्तक हो सकते हैं। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपर्याप्तक अवस्था जघन्यत: और उत्कृष्टत: अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहती है। उसके बाद पर्याप्तदशा आ जाती है। इसलिए सामान्य स्थिति में से अपर्याप्तदशा की अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति को कम कर देने पर शेष स्थिति पर्याप्तकों की रह जाती है। जैसे—प्रथम नरकपृथ्वी में सामान्य स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागरोपम की है। इसमें से अपर्याप्तदशा की

अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति कम कर देने पर पर्याप्त अवस्था की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की होती है। आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।[1]

पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति, आगे-आगे की जघन्य—पहले-पहले की नरकपृथ्वी की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही अगली-अगली नरकपृथ्वी की जघन्य स्थिति है। जैसे—प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है, वही द्वितीय शर्कराप्रभापृथ्वी की जघन्य स्थिति है।[2]

देवों और देवियों की स्थिति की प्ररूपणा—

३४३. [१] देवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[३४३-१ प्र.] भगवन् ! देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४३-१. उ.] गौतम ! (देवों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक देवों की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[३४३-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-देवों की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[३४३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है !

३४४. [१] देवीणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं ।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १७०

(ख) नारगदेवा तिरिमणुयगब्भजा जे असंखवासाऊ ।
एए अप्पज्जत्ता उववाए चेव वोद्धव्वा ॥१॥
सेसा य तिरिमणुया लद्धिं पप्पोववायकाले य ।
दुहओ वि य भयइयव्वा पज्जत्तियरे य जिणवयणे ॥२॥

—प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, प. १७० में उद्धृत

२. प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ४५०

[३४४-१ प्र.] भगवन् ! देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४४-१ उ.] गौतम ! (देवियों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तगदेवीणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४३-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयदेवीणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तणाइं ।

[३४४-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४४-३ उ.] गौतम ! (पर्याप्तक देवियों की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है।

विवेचन—देवों और देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ३४३-३४४) द्वारा देवों, देवियों और उनके अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

निष्कर्ष—देवों की अपेक्षा देवियों की स्थिति (आयु) कम है, यह इस पाठ पर से फलित होता है।

भवनवासियों की स्थिति की प्ररूपणा—

३४५. [१] भवणवासीणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं ।

[३४५-१ प्र.] भगवन् ! भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४५-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयभवणवासीणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पज्जत्तयभवणवासीणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक भवनवासी देवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३४५-३ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है ।

३४६. [१] भवणवासिणीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं ।

[३४६-१ प्र.] भगवन् ! भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४६-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की है ?

[२] अपज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३४६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तकभवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४६-३ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम साढ़े चार पल्योपम की है ।

३४७. [१] असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं ।

[३४७-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम की है ।

[२] अपज्जत्तयअसुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयअसुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३४७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है।

३४८. [१] असुरकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं।

[३४८-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४८-१ उ.] गौतम !, जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं असुरकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं असुरकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढ़े चार पल्योपम की है।

३४९. [१] णागकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं।

[३४९-१ प्र.] भगवन् ! नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) दो पल्योपमों की है।

[२] अपज्जत्तयाणं भंते ! णागकुमाराणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त नागकुमारों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं भंते ! णागकुमाराणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३४९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त नागकुमारों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की है।

३५०. [१] नागकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं ।

[३५०-१ प्र.] भगवन् ! नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं णागकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं णागकुमारीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त नागकुमार देवियों को स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम में अन्तर्मुहूर्त्त कम की है।

३५१. [१] सुवण्णकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं दो पलिश्रोवमाइं देसूणाइं।

[३५१-१ प्र.] भगवन् ! सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५१-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक सुपर्णकुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पलिश्रोवमाइं देसूणाइं श्रंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५१-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सुपर्णकुमार देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम देशोन दो पल्योपम की है।

३५२. [१] सुवण्णकुमारीणं भंते ! देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिश्रोवमं।

[३५२-१ प्र.] भगवन् ! सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३५२-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिश्रोवमं श्रंतोमुहुत्तूणं।

[३५२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम देशोन पल्योपम की है ।

३५३. एवं एएणं अभिलावेणं ओहिय-अपज्जत्त-पज्जत्तसुत्तत्तयं देवाण य देवीण य णेयव्वं जाव थणियकुमाराणं जहा णागकुमाराणं (सु. ३४९) ।

[३५३] इस प्रकार इस अभिलाप से (इसी कथन के अनुसार) औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक के तीन-तीन सूत्र (आगे के भवनवासी) देवों और देवियों के विषय में, यावत् स्तनितकुमार तक नागकुमारों (के कथन) की तरह समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—सामान्य देव-देवियों तथा भवनवासी देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ३४३ से ३५३ तक) में सामान्य देव-देवियों, औघिक भवनवासी देव-देवियों तथा असुरकुमार से स्तनितकुमार देव-देवियों (पर्याप्तक-अपर्याप्तकसहित) तक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है ।

एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३५४. [१] पुढविकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ।

[३५४-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तयपुढविकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है ।

[३] पज्जत्तयपुढविकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५४-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष की है ।

३५५. [१] सुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५५-१ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५५-१ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[२] अपज्जत्तयसुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-३ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३५६. [१] बादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ।

[६५६-१ प्र.] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५६-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तयबादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५६-२ प्र.] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयबादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है।

३५७. [१] आउकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ।

[३५७-१ प्र.] भगवन् ! अप्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?
[३५७-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त अप्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?
[३५७-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की है।

३५८. सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य जहा सुहुमपुढविकाइयाणं (सु. ३५५) तहा भाणितव्वं ।

[३५८] सूक्ष्म अप्कायिकों के औधिक (सामान्य), अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जैसी सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की (सू. ३५५ में) कही, वैसी कहनी चाहिए।

३५९. [१] बादरआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ।

[३५९-१ प्र.] भगवन् ! बादर अप्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[३५९-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयबादरआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५९-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की है।

३६०. [१] तेउकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं।

[३६०-१ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६०-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन (अहोरात्र) की है।

[२] अपज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६०-२ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक अपर्याप्तकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३६०-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है।

३६१. सुहुमतेउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६१] सूक्ष्म तेजस्कायिकों के औधिक (सामान्य), अपर्याप्त और पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६२. [१] बादरतेउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं।

[३६२-१ प्र.] भगवन् ! वादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रिदिन की है।

[२] अपज्जत्तयबादरतेउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६२-२ प्र.] भगवन् अपर्याप्त वादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त वादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है।

३६३. [१] वाउकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

[३६३-१ प्र.] भगवन् ! वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयवाउकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६३-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-३ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६४. [१] सुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-१ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-१ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[२] अपज्जत्तयसुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३६४-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-३ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३६५. [१] बादरवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं ।

[३६५-१ प्र.] भगवन् ! बादर वायुकायिकों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६५-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तबादरवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त तक की होती है ।

[३] पज्जत्तयबादरवाउकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-३ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है ।

३६६. [१] वणप्फइकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं ।

[३६६-१ प्र.] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तवणप्फतिकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयवणप्फइकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-३ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है ।

३६७. सुहुमवणप्फइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्ताणं पज्जत्ताण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६७] सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के औघिक, अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३६८. [१] बादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं ।

[३६८-१ प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३६८-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-३ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है।

विवेचन—एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति की प्ररूपणा—प्रस्तुत १५ सूत्रों (सू. ३५४ से ३६८ तक) में पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक औघिक, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सूक्ष्म, बादर आदि भेदों की स्थिति की पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की गई है।

इनमें तेजस्कायिक जीवों की तीन अहोरात्रि की उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है, उसका रहस्य यह है कि तेजस्कायिक जीव अग्नि के रूप में जलते और बुझते प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। इसी कारण अन्य एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा आयुष्य अत्यन्त अल्प है।

द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३६९. [१] बेइंदियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं।

[३६९-१ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३६९-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तबेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६९-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तबेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बारह वर्ष की है।

त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३७०. [१] तेइंदियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं रातिंदियाइं ।

[३७०-१ प्र.] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट उनपचास रात्रिदिन की है ।

[२] अपज्जत्ततेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्ततेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं रातिंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७०-२ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनपचास रात्रि-दिन की है ।

चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३७१. [१] चउरिंदियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[३७१-१ प्र.] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-१ उ.] गौतम ! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति छह मास की है ।

[२] अपज्जत्तयचउरिंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७१-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयचउरिंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७१-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छह मास की है ।

विवेचन—विकलेन्द्रियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ३६९ से ३७१ तक) में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३७२. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३७२-१ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७२-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

[२] अपज्जत्तयपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७२-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३७२-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३७२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३७३. [१] सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३७३-१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़ पूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३७४. [१] गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३७४-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है ।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है ।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७४-३ प्र.] भगवन् ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की है ?

[३७४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है ।

३७५. [१] जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३७५-१ प्र.] भगवन् ! जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३७५-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जत्तयजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितनी स्थिति कही गई है ?

[३७५-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **पज्जत्तयजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३७५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७६. [१] सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३७६-१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] **अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।**

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३७६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७७. [१] गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३७७-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७७-१ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़ पूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३७७-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३७७-३ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३७८. [१] चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३७८-१ प्र.] भगवन् ! चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७८-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तयचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३७८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है ।

३७९. [१] सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं ।

[३७९-१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७९-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एवं उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७९-२ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति भी और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासीइं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३७९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम चौरासी हजार वर्ष की है।

३८०. [१] गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

[३८०-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८०-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८०-२ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३८०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८०-३ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३८१. [१] उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३८१-१ प्र.] भगवन् ! उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जत्तयउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८१-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोणमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[४८१-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३८२. [१] सम्मुच्छिमसामण्णपुच्छा कायव्वा ।

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं ।

[३८२-१ प्र.] भगवन् ! सामान्य सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८२-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तिरेपन हजार वर्ष की है ।

[२] सम्मुच्छिमअपज्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८२-२ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तक उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८२-३ उ.] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तिरेपन हजार वर्ष की है।

३८३. [१] गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३८३-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड़पूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगगब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३८३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८४. [१] भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३८४-१ प्र.] भगवन् ! भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटी की है।

[२] अपज्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३८४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३८४-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३८५. [१] सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं ।

[३८५-१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-१ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बयालीस हजार वर्ष की है ।

३८६. [१] गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[३८६-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३८६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८७. [१] खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो।

[३८७-१ प्र.] भगवन् ! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३८७-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्येयभाग की है।

[२] अपज्जत्तयखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

[३८७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३८७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो।

[३८७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

३८८. [१] सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं।

[३८८-१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८८-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बहत्तर हजार वर्ष की है।

३८९. [१] गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागो ।

[३८९-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज-खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८९-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८९-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणो ।

[३८९-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है।

विवेचन—तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत १८ सूत्रों (सू. ३७२ से ३८९) में तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों के विभिन्न प्रकारों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

मनुष्यों की स्थिति की प्ररूपणा—

३९०. [१] मणुस्साणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३९०-१ प्र.] भगवन् ! मनुष्यों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३९०-१ उ.] गौतम ! (मनुष्यों की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तगमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९०-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की है ?

[३९०-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३९०-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९०-३ उ.] गौतम ! जघन्य 'अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३९१. सम्मुच्छिमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९१ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९१ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३९२. [१] गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३९२-१ प्र.] भगवन् ! गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९२-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३९२-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

विवेचन—मनुष्यों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. ३९० से ३९२ तक) में सामान्य, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सम्मूर्च्छिम तथा गर्भज (औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) मनुष्यों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

वाणव्यंतर देवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३९३. [१] वाणमंतराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

[३९३-१ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-१ उ.] गौतम ! (वाणव्यन्तर देवों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है, उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयवाणमंतराणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं वाणमंतराणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९३-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

३९४. [१] वाणमंतरीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

[३९४-१ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९४-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं भंते ! वाणमंतरीणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९४-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं भंते ! वाणमंतरीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९४-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध पल्योपम की है ।

विवेचन—वाणव्यन्तर देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ३९३-३९४) में वाणव्यन्तर देवों तथा देवियों (औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) की स्थिति का निरूपण किया गया है ।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३९५. [१] जोइसियाणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं ।

[३९५-१ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९५-१ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवाँ भाग है और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९५-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९५-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ।

[३९५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ।

३९६. [१] जोइसिणीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासवाससहस्समब्भहियं ।

[३९६-१ प्र.] भगवन्! ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९६-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं जोइसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९६-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं जोइसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहि अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९६-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

३९७. [१] चंदविमाणे णं भंते ! देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं।

[३९७-१ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में देवों की स्थिति कितने काल की है ?

[३९७-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चौथाई भाग है, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

[२] चंदविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तयदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९७-२ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] चंदविमाणे णं पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९७-३ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितनी कही गई है ?

[३९७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ।[1]

३९८. [१] चंदविमाणे णं भंते ! देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिमब्भहियं ।

[३९८-१ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग है और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है ।

[२] चंदविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९८-२ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] चंदविमाणे णं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९८-३ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है ।

३९९. [१] सूरविमाणे णं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं ।

[३९९-१ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

---

१. चन्द्रविमान में चन्द्रमा उत्पन्न होता है, इसलिए वह चन्द्रविमान कहलाता है । चन्द्रविमान में चन्द्र के अतिरिक्त सभी उसके परिवारभूत देव होते हैं । उन परिवारभूत देवों की जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट किन्हीं इन्द्र, सामानिक आदि की लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है । चन्द्रदेव की उत्कृष्ट स्थिति तो मूलपाठ में उक्त है ही । इसी प्रकार सूर्यादि के विमानों के विषय में समझ लेना चाहिए ।

—प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १७५

[३९९-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९९-२ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्स-मब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९९-३ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

४००. [१] सूरविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससतेहिं-मब्भहियं।

[४००-१ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-१ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) पल्योपम के चतुर्थभाग की है और उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४००-२ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससतेहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

[४००-३ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान में पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की है।

४०१. [१] गहविमाणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

[४०१-१ प्र.] भगवन् ! ग्रहविमान में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०१-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

[२] गहविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०१-२ प्र.] भगवन् ! ग्रहविमान में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०१-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] गहविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०१-३ प्र.] भगवन् ! ग्रहविमान में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०१-३ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

४०२. [१] गहविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

[४०२-१ प्र.] भगवन् ! ग्रहविमान में देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०२-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है।

[२] गहविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०२-२ प्र.] भगवन् ! ग्रहविमान में कितने काल की स्थिति अपर्याप्त देवियों की कही है ?

[४०२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं गहविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०२-३ प्र.] भगवन् ! ग्रहविमान में पर्याप्तक देवियों की कितने काल तक की स्थिति कही है ?

[४०२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्धपल्योपम की है।

४०३. [१] णक्खत्तविमाणे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं ।

[४०३-१ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०३-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है।

[२] णक्खत्तविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०३-२ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] णक्खत्तविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[४०३-३ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध-पल्योपम की है।

४०४. [१] नक्खत्तविमाणे देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगं चउभागपलिओवमं ।

[४०४-१ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०४-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चतुर्थभाग है और उत्कृष्ट कुछ अधिक चौथाई पल्योपम की है।

[२] णक्खत्तविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०४-२ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] नक्खत्तविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[४०४-३ प्र.] भगवन् ! नक्षत्रविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०४-३ उ.] गौतम ! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग से कुछ अधिक की है।

४०५. [१] ताराविमाणे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं ।

[४०५-१ प्र.] भगवन् ! ताराविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट चौथाई पल्योपम की है।

[२] ताराविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०५-२ प्र.] भगवन् ! ताराविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-२ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ताराविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[४०५-३ प्र.] भगवन् ! ताराविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-३ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का आठवाँ भाग है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है।

४०६. [१] ताराविमाणे देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं ।

[४०६-१ प्र] भगवन् ! ताराविमान में देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०६-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक की है।

[२] ताराविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०६-२ प्र.] भगवन् ! ताराविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ताराविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०६-३ प्र.] भगवन् ! ताराविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०६-३ उ.] गौतम ! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक है।

विवेचन—ज्योतिष्क देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत बारह सूत्रों (सू. ३९५ से ४०६ तक) में ज्योतिष्क देवों और देवियों के (औघिक, अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों) की तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा के विमानों के देव-देवियों (औघिक, अपर्याप्तकों के और पर्याप्तकों) की स्थिति का निरूपण किया गया है।

वैमानिक देवों की स्थिति की प्ररूपणा—

४०७. [१] वेमाणियाणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[४०७-१ प्र.] भगवन् ! वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है,?

[४०७-१ उ.] गौतम ! (वैमानिक देवों की स्थिति) जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट तत्तीस सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयवेमाणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०७-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक वैमानिक देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४०७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयवेमाणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४०७-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

४०८. [१] वेमाणिणीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं ।

[४०८-१ प्र.] भगवन् ! वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०८-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचपन पल्योपमों की है ।

[२] अपज्जत्तियाणं वेमाणिणीणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०८-२ प्र.] भगवन् ! वैमानिक अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाणं वेमाणिणीणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४०८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपमों की है ।

४०९. [१] सोहम्मे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ।

[४०९-१ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प (देवलोक) में, देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०९-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट दो सागरोपम की है ।

[२] सोहम्मे कप्पे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४०९-२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०९-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४०९-३ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम की है।

४१०. [१] सोहम्मे कप्पे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं।

[४१०-१ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचास पल्योपमों की है।

[२] सोहम्मे कप्पे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।[1]

[४१०-२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१०-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सोहम्मे कप्पे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१०-३ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प की पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमों की है।

४११. [१] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं।

[४११-१ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है।

[२] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४११-२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में परिगृहीता अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४११-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

---

१. ग्रन्थाग्रम् २५००

[४११-३ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में परिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-३ उ.] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात पल्योपम की है।

४१२. [१] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं।

[४१२-१ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट पचास पल्योपमों की है।

[२] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१२-२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१२-३ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-३ उ.] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमों की है।

४१३. [१] ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं।

[४१३-१ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१३-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-२ उ.] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ईसाणे कप्पे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१३-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की है ।

४१४. [१] ईसाणे कप्पे देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं ।

[४१४-१ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-१ उ.] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है ।

[२] ईसाणे कप्पे देवीणं अपज्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१४-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-२ उ.] गौतम जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ईसाणे कप्पे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१४-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है ।

४१५. [१] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं ।

[४१५-१ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-२ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की है ।

[२] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१५-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में परिगृहीता अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं नव पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१५-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में परिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम नौ पल्योपम की है ।

४१६. [१] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं ।

[४१६-१ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-१ उ.] गौतम ! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है ।

[२] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१६-२ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं पज्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१६-३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प में अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सातिरेक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है ।

४१७. [१] सणंकुमारे कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं।

[४१७-१ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१७-१ उ.] गौतम ! जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

[२] सणंकुमारे कप्पे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१७-२ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सणंकुमारे कप्पे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१७-३ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है।

४१८. [१] माहिंदे कप्पे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त साहियाइं सागरोवमाइं।

[४१८-१ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१८-१ उ.] गौतम ! जघन्य दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट सात सागरोपम से कुछ अधिक की है।

[२] माहिंदे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१८-२ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] माहिंदे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सातिरेगाइं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४१८-३ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम से कुछ अधिक की है ।

४१९. [१] बंभलोए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ।

[४१९-१ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-१ उ.] गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है ।

[२] बंभलोए अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४१९-२ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-२ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहुर्त्त की है ।

[३] बंभलोए पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१९-३ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प में पर्याप्त देवों को स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है ।

४२०. [१] लंतए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउदस सागरोवमाइं ।

[४२०-१ प्र.] भगवन् ! लान्तककल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२०-१ उ.] गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की है ।

[२] लंतए अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२०-२ प्र.] भगवन् ! लान्तककल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-२. उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] लंतए पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२०-३ प्र.] भगवन् ! लान्तककल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की है ।

४२१. [१] महासुक्के देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चोद्दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ।

[४२१-१ प्र.] भगवन् ! महाशुक्रकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२१-१ उ.] गौतम ! जघन्य चौदह सागरोपम की तथा उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की है ।

[२] महासुक्के अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२१-२ प्र.] भगवन् ! महाशुक्रकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२१-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहुर्त्त की है ।

[३] महासुक्के पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२१-३ प्र.] भगवन् ! महाशुक्रकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्रह सागरोपम की है ।

४२२. [१] सहस्सारे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ।

[४२२-१ प्र.] भगवन् ! सहस्रारकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-१ उ.] गौतम ! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की है ।

[२] सहस्सारे पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२२-२ प्र.] भगवन् ! सहस्रारकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सहस्सारे पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२२-३ प्र.] भगवन् ! सहस्रारकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की है।

४२३. [१] आणए देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एकूणवीसं सागरोवमाइं ।

[४२३-१ प्र.] भगवन् ! आनतकल्प के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की है।

[२] आणए अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२३-२ प्र.] भगवन् ! आनतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] आणए पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२३-३ प्र.] भगवन् ! आनतकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की है।

४२४. [१] पाणए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ।

[४२४-१ प्र.] भगवन् ! प्राणतकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-१ उ.] गौतम ! जघन्य उन्नीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट वीस सागरोपम की है।

[२] पाणए अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२४-२ प्र.] भगवन् ! प्राणतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२४-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पाणए पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२४-३ प्र.] भगवन् ! प्राणतकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम वीस सागरोपम की है।

४२५. [१] आरणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं।

[४२५-१ प्र.] भगवन् ! आरणकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२५-१ उ.] गौतम ! जघन्य वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की है।

[२] आरणे अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२५-२ प्र.] भगवन् ! आरणकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२५-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] आरणे पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२५-३ प्र.] भगवन् ! आरणकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की है।

४२६. [१] अच्चुए कप्पे देवाणं पच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

[४२६-१ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-१ उ.] गौतम ! जघन्य इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है।

[२] अच्चुए अपज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२६-२ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] अच्चुते पज्जत्ताणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२६-३ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प में पर्याप्तकदेवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है।

४२७. [१] हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं।

[४२७-१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन (सबसे निचले ग्रैवेयकत्रिक में नीचे वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

४२७-१ उ.] गौतम ! (सबसे निचली ग्रैवेयकत्रिक के नीचे के देवों की स्थिति) जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की है।

[२] हेट्ठिमहेट्ठिमअपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२७-२ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की है ?

[४२७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] हेट्ठिमहेट्ठिमपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२७-३ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२७-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की है ।

४२८ [१] **हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जदेवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं ।

[४२८-१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२८-१ उ.] गौतम ! जघन्य तेईस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम की है ।

[२] **हेट्ठिममज्झिमअपज्जत्तयदेवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२८-२ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२८-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] **हेट्ठिममज्जिमगेवेज्जदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२८-३ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की है ।

४२९. [१] **हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं पणुवीसं सागरोवमाइं ।

[४२९-१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन (सबसे नीचे के त्रिक में ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-१ उ.] गौतम ! जघन्य चौवीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम की है ।

[२] **हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२९-२ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणुवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२९-३ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की है।

४३०. [१] मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पणुवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं।

[४३०-१ प्र.] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन (बीच के त्रिक में सबसे निचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३०-१ उ.] गौतम ! जघन्य पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट छव्वीस सागरोपम की है।

[२] मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३०-२ प्र.] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक कही गई है ?

[४३०-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पणुवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३०-३ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३०-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छब्बीस सागरोपम की है।

४३१. [१] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं।

[४३१-१ प्र.] भगवन् ! मध्यम-मध्यम (बीच के त्रिक के बिचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक कही गई है ?

[४३०-१ उ.] गौतम ! जघन्य छव्वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की है ।

[२] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३१-२ प्र.] भगवन् ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३१-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३१-३ प्र.] भगवन् ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम छव्वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की है ।

४३२. [१] मज्झिमउवरिमगेवेज्जाणं देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ।

[४३२-१ प्र.] भगवन् ! मध्यम-उपरितन (बीच के त्रिक में सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४३२-१ उ.] गौतम ! जघन्य सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम की है ।

[२] मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३२-२ प्र.] भगवन् ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३२-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३२-३ प्र.] भगवन् ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की कितने काल की स्थिति कही है ?

[४३२-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की है।

४३३. [१] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं।

[४३३-१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-अधस्तन (ऊपर के त्रिक के निचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है।

[४३३-१ उ.] गौतम ! जघन्य अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट उनतीस सागरोपम की है।

[२] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३३-२ प्र.] भगवन् परितन-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३३-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३३-३ प्र.] भगवन् ! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई हैं ?

[४३३-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की है।

४३४. [१] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं।

[४३४-१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यम (ऊपर के त्रिक में बीच वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-१ उ.] गौतम ! जघन्य उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तीस सागरोपम की है।

[२] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३४-२ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३४-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३४-३ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की है ।

४३५. [१] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं ।

[४३५-१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन (ऊपर के त्रिक के सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक-देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-१ उ.] गौतम ! जघन्य तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की है ।

[२] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३५-२ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३५-३ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है ।

४३६. [१] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिएसु णं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

[४३६-१ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३६-१ उ.] गौतम ! (इन सब देवों की स्थिति) जघन्य इकतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम की है ।

[२] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३६-२ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में (स्थित) अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३६-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३६-३ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानों में स्थित पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३६-३ उ.] गौतम ! (इनकी स्थिति)जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है ।

४३७. [१] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ?

[४३७-१ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[४३७-१ उ.] गौतम ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

[२] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३७-२ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं पज्जत्ताणं [भंते !] केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ठिती पण्णत्ता ।

॥ पण्णवणाए भगवई चउत्थं ठिइपयं समत्तं ॥

[४३७-३ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-३ उ.] गौतम ! इनकी स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

विवेचन—वैमानिक देवगणों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत इकतीस सूत्रों (सू. ३०७ से ३३७ तक) में वैमानिक देवों के निम्नोक्त प्रकार से स्थिति का निरूपण किया गया है—(१) वैमानिक देवों (औघिक, अपर्याप्त एवं पर्याप्त) की, (२) वैमानिक देवियों (औघिक, अपर्याप्त एवं पर्याप्त) की (३) तथा सौधर्मकल्प से लेकर अच्युतकल्प तक के देवों (औघिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक) की तथा सौधर्म एवं ईशान कल्प की देवियों (औघिक, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, परिगृहीता, अपरिगृहीता) की और (४) नौ सूत्रों में नौ प्रकार के ग्रैवेयकों (औघिक, अपर्याप्त एवं पर्याप्त) की तथा (५) विजय, वैजयन्त, जयन्त एवं अपराजित देवों एवं सर्वार्थसिद्ध देवों (औघिक, अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक) की स्थिति।

।। प्रज्ञापनासूत्र : चतुर्थ स्थितिपद समाप्त ।।

□□

पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं)

पंचम विशेषपद (पर्यायपद)

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र का यह पंचम 'विशेषपद' अथवा 'पर्यायपद' है।

* 'विशेष' शब्द के दो अर्थ फलित होते हैं—(१) जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात्—प्रकार और (२) जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात्—पर्याय।

* प्रथम पद में जीव और अजीव, इन दो द्रव्यों के प्रकार, भेद-प्रभेद सहित बताये गए हैं। उसकी यहाँ भी संक्षेप में (सू. ४३९ एवं ५००-५०१ में) पुनरावृत्ति की गई है। वह इसलिए कि प्रस्तुत पद में यह बात स्पष्ट करनी है कि जीव और अजीव के जो प्रकार हैं, उनमें से प्रत्येक के अनन्त पर्याय हैं। यदि प्रत्येक के अनन्त पर्याय हों तो समग्र जीवों या समग्र अजीवों के अनन्त पर्याय हों, इसमें कहना ही क्या ?

* इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा जाने पर भी इस पद के सूत्रों में कहीं भी विशेष शब्द का प्रयोग नहीं किया गया, समग्र पद में 'पर्याय' शब्द उनके लिए प्रयुक्त हुआ है। जैनशास्त्रों में भी यत्र-तत्र 'पर्याय' शब्द को अधिक महत्त्व दिया गया है। इससे ग्रन्थकार ने एक बात सूचित कर दी है—वह यह है कि पर्याय या विशेष में कोई अन्तर नहीं है। जो नाना प्रकार के जीव या अजीव दिखाई देते हैं, वे सब द्रव्य के ही पर्याय हैं। फिर भले ही वे सामान्य के विशेषरूप—प्रकाररूप हों या द्रव्यविशेष के पर्याय रूप हों। जीव के जो नारकादि भेद बताए हैं, वे सभी प्रकार उस-उस जीव द्रव्य के पर्याय हैं, क्योंकि अनादिकाल से जीव अनेक बार उस-उस रूप में उत्पन्न होता है। जैसे किसी एक जीव के वे पर्याय हैं, वैसे समस्त जीवों की योग्यता समान होने से उन सब ने नरक, तिर्यञ्च आदि रूप में जन्म लिया ही है। इस प्रकार जिसे प्रकार या भेद अथवा विशेष कहा जाता है, वह प्रत्येक जीवद्रव्य की अपेक्षा से पर्याय ही है, वह जीव की एक विशेष अवस्था, पर्याय या परिणाम ही है।

प्रस्तुत में 'पर्याय' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—(१) प्रकार या भेद अर्थ में तथा (२) अवस्था या परिणाम अर्थ में। जीव-सामान्य के नारक आदि अनेक भेद-विशेष हैं, अतः उन्हें जीव के पर्याय कहे हैं और जीवसामान्य के अनेक परिणाम—पर्याय भी हैं, इस कारण उन्हें भी जीव के पर्याय कहे हैं। इसी प्रकार अजीव के विषय में भी समझ लेना चाहिए। इस प्रकार शास्त्रकार ने 'पर्याय' शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है तथा पर्याय और विशेष दोनों एकार्थक माने हैं। जैनागमों में पर्याय शब्द ही प्रचलित था, किन्तु वैशेषिकदर्शन में 'विशेष' शब्द का प्रयोग[1] होने लगा था, अतः उस शब्द का प्रयोग पर्याय अर्थ में एवं वस्तु

---

१. देखें, तर्कसंग्रह तथा वैशेषिकदर्शन

के भेद अर्थ में भी हो सकता है, यह सूचित करने हेतु आचार्य ने इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा हो, यह भी संभव है।

※ शास्त्रकारों ने पर्याय शब्द का प्रयोग करके सूचित किया है कि कोई भी द्रव्य पर्यायशून्य कदापि नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य किसी न किसी पर्यायावस्था में ही होता है। जिसे द्रव्य कहा जाता है, उस का भी प्रस्तुत पद में पर्याय के नाम से ही परिचय कराया गया है। सारांश यह है कि द्रव्य और पर्याय में अभेद है, इसे ध्वनित करने के लिए शास्त्रकार ने द्रव्य के प्रकार के लिए भी पर्याय शब्द का प्रयोग (सू. ४३९, ५०१ में) किया है।

※ यों द्रव्य और पर्याय का कथंचित् अभेद होते हुए भी शास्त्रकार को यह स्पष्ट करना था कि द्रव्य और पर्याय में भेद भी है। ये सब पर्याय या परिणाम किसी एक ही द्रव्य के नहीं हैं, इस की सूचना पृथक्-पृथक् द्रव्यों की संख्या और पर्यायों की संख्या में अन्तर बताकर की है। जैसे कि शास्त्रकार ने नारक असंख्यात (सू. ४३९) कहे, परन्तु नारक के पर्याय अनन्त कहे हैं। जीवों के जो अनेक प्रकार हैं, उनमें वनस्पति और सिद्ध, ये दो प्रकार ही ऐसे हैं, जिनके द्रव्यों की संख्या अनन्त है। इस कारण समग्रभाव से जीवद्रव्य अनन्त कहा जा सकता है, परन्तु उन-उन प्रकारों में उक्त दो के सिवाय सभी द्रव्य असंख्यात हैं, अनन्त नहीं। फिर भी उन सभी प्रकारों के पर्यायों की संख्या अनन्त है, यह इस पद में स्पष्ट प्रतिपादित है।[1]

※ वेदान्तदर्शन की तरह जैनदर्शन के अनुसार जीव द्रव्य एक नहीं, किन्तु अनन्त हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि इस दृष्टि से जीवसामान्य जैसी कोई स्वतंत्र एक वस्तु (इकाई) नहीं है, परन्तु अनेक जीवों में जो चैतन्यधर्म दिखाई देते हैं, वे ही हैं, तथा वे नाना हैं और उस-उस जीव में ही व्याप्त हैं और वे धर्म अजीव से जीव को भिन्न करने वाले हैं। इसलिए अनेक होते हुए भी समानरूप से अजीव से जीव को भिन्न सिद्ध करने का कार्य करने वाले होने से सामान्य कहलाते हैं। यह सामान्य तिर्यक्-सामान्य है जो एक समय में अनेक व्यक्तिनिष्ठ होता है। जैनदर्शनानुसार एक द्रव्य अनेकरूप में परिणत हो जाता है, जैसे—कोई एक जीव (द्रव्य) नारक आदि अनेक परिणामों (पर्यायों) को धारण करता है। ये परिणाम कालक्रम से बदलते रहते हैं, किन्तु जीव-द्रव्य ध्रुव है, उसका कभी नाश नहीं होता; नारकादि-पर्यायों के रूप में उसका नाश होता है। नारकादि अनेक पर्यायों को धारण करते हुए भी वह कभी अचेतन नहीं होता। इस जीवद्रव्य को सामान्य-ऊर्ध्वतासामान्य कहा है, जो अनेक कालों में एक व्यक्ति में निष्ठ होता है और उस सामान्य के नाना पर्याय-परिणाम या विशेष अथवा भेद हैं। इस अपेक्षा से व्यक्तिभेदों का सामान्य तिर्यक्सामान्य है, जबकि कालिकभेदों का सामान्य ऊर्ध्वतासामान्य है; जो द्रव्य के नाम से जाना जाता है और एक है तथा अभेदज्ञान में निमित्त बनता है, जबकि तिर्यक्सामान्य अनेक है, और समानता में निमित्त बनता है। निष्कर्ष यह है कि जीवसामान्य अनेक जीवों की अपेक्षा से तिर्यक्सामान्य है, जबकि एक ही जीव के नानापर्यायों की अपेक्षा से वह ऊर्ध्वता-सामान्य है।[2]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं मूल, सू. ४३८ से ४५४,

(ख) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १७९. २०२

२. न्यायावतार वार्तिक वृत्ति-प्रस्तावना पृ. २५-३१, आगम युग का जैनदर्शन, पृ. ७६-८६,

इसी प्रकार अजीवद्रव्य कोई पृथक् एक ही द्रव्य नहीं है, परन्तु अनेक अजीव (अचेतन) द्रव्य हैं, वे सब जीव से भिन्न हैं, अत: उस अर्थ में उनकी समानता (एकता नहीं, अमुक अपेक्षा से एकता)[१] अजीवद्रव्य कहने से व्यक्त होती है। इस कारण वह सामान्य अजीवद्रव्यतिर्यक्-सामान्य है। तथा इस तिर्यक्सामान्य के पर्याय, विशेष या भेद वे ही प्रस्तुत में जीव और अजीव के पर्याय, विशेष या भेद हैं, यह समझना चाहिए।[२]

※ संसारी जीवों में कर्मकृत जो अवस्थाएँ, जिनके आधार से जीव पुद्गलों से सम्बद्ध होता है, उस सम्बन्ध को लेकर जीव की विविध अवस्थाएँ—पर्याय बनती हैं। वे पौद्गलिक पर्यायें भी व्यवहारनय से जीव की पर्याय मानी गई हैं। संसारी अवस्था में जीव और पुद्गल अभिन्न-से प्रतीत होते हैं, यह मानकर जीव के पर्यायों का वर्णन है। जैसे स्वतंत्र रूप से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की विविधता के कारण पुद्गल के अनन्त पर्याय (सू. ५१९ में) बताए हैं, वैसे ही जब वे ही पुद्गल जीव से सम्बद्ध होते हैं, तब वे सब जीव के पर्याय (सू. ४४० में) माने गए हैं, क्योंकि जब वे जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, तब पुद्गल में होने वाले परिणमन में जीव भी कारण है, इस कारण वे पर्याय पुद्गल के होते हुए भी जीव के माने गए हैं। संसारी अवस्था में अनादिकाल से प्रचलित जीव और पुद्गल का कथंचित् अभेद भी है। कर्मोदय के कारण ही जीवों में आकार, रूप आदि की विविधता है, और नाना पर्यायों का सर्जन होता है। अत: जीव ज्ञानादिस्वरूप होते हुए भी वह अनन्तपर्याययुक्त है।

※ प्रस्तुत पद में जीव और अजीव द्रव्यों के भेदों और पर्यायों का निरूपण है। जीव-अजीव के भेदों के विषय में तो प्रथमपद में निरूपण था ही, किन्तु उन प्रत्येक भेदों में जो अनन्तपर्याय हैं, उनका प्रतिपादन करना इस पंचम पद की विशेषता है। प्रथम पद में भेद बताए गए, तीसरे पद में उनकी संख्या बताई गई, किन्तु तृतीयपद में संख्यागत तारतम्य का निरूपण मुख्य होने से किस विशेष की कितनी संख्या है, यह बताना बाकी था, अत: प्रस्तुत पद में उन-उन भेदों की तथा बाद में उन-उन भेदों के पर्यायों की संख्या भी बता दी गई है। सभी द्रव्यभेदों की पर्यायसंख्या तो अनन्त है, किन्तु भेदों की संख्या में कितने ही संख्यात हैं, असंख्यात हैं, तो कई अनन्त (वनस्पतिकायिक और सिद्धजीव) भी हैं।[३]

※ जीवद्रव्य के नारक आदि भेदों के पर्यायों का विचार अनेक प्रकार से, अनेक दृष्टियों से किया गया है, और उनमें जैनदर्शनसम्मत अनेकान्त दृष्टि का उपयोग स्पष्ट है। जैसे—जीव के नारकादि जिन भेदों के पर्यायों का निरूपण है, उसमें निम्नोक्त दस दृष्टियों का सापेक्ष वर्णन किया गया है, अर्थात्—नारकादि जीवों के अनन्तपर्यायों की संगति बताने के लिए इन दसों दृष्टियों से पर्यायों की संख्या बताई गई है। उसमें कितनी ही दृष्टियों से संख्यात, तो कई दृष्टियों से असंख्यात और कई दृष्टियों से अनन्त संख्या होती है। अनन्तदर्शक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए शास्त्रकार ने नारकादि प्रत्येक के पर्यायों को अनन्त कहा है, क्योंकि उस दृष्टि से सबसे अधिक पर्याय घटित होते हैं। तथा उन-उन संख्याओं का सीधा प्रतिपादन नहीं किया

१. 'एगे आया' इत्यादि स्थानांगसूत्र वाक्य कल्पित एकता के हैं।

२. पण्णवणासुत्तं मूल. सू. ४३९, ५९१

३. पण्णवणा. मूल, सू. ४४०

गया, किन्तु एक नारक की दूसरे नारक के साथ तुलना करके वह संख्या फलित की गई है। जैसे कि दस दृष्टियों के क्रम से वर्णन इस प्रकार है—(१) **द्रव्यार्थता**—द्रव्य दृष्टि से कोई नारक, अन्य नारकों से तुल्य है। अर्थात्—द्रव्यापेक्षया कोई नारक एक द्रव्य है, वैसे ही अन्य नारक भी एक द्रव्य है। निष्कर्ष यह कि किसी भी नारक को द्रव्य दृष्टि से एक ही कहा जाता है, उसकी संख्या एक से अधिक नहीं होती, अतः वह संख्यात है। (२) **प्रदेशार्थता**—प्रदेश की अपेक्षा से भी नारक जीव परस्पर तुल्य हैं। अर्थात्—जैसे एक नारक जीव के प्रदेश असंख्यात हैं, वैसे अन्य नारक के प्रदेश भी असंख्यात हैं, न्यूनाधिक नहीं। (३) **अवगाहनार्थता**—अवगाहना (जीव के शरीर की ऊँचाई) की दृष्टि से विचार किया जाए तो एक नारक अन्य नारक से हीन, तुल्य या अधिक भी होता है, और वह असंख्यात-संख्यात भाग हीनाधिक या संख्यात-असंख्यातगुण हीनाधिक होता है। निष्कर्ष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से नारक के असंख्यात प्रकार के पर्याय बनते हैं। (४) **स्थिति की अपेक्षा**: से विचारणा भी अवगाहना की तरह ही है। अर्थात्—वह पूर्वोक्त प्रकार से चतुःस्थान हीनाधिक या तुल्य होती है। निष्कर्ष यह है कि स्थिति की दृष्टि से भी नारक के असंख्यात प्रकार के पर्याय बनते हैं। (५ से ८) **कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, एवं स्पर्श की अपेक्षा से**—वर्णादि की अपेक्षा से भी नारक के अनन्तपर्याय बनते हैं, क्योंकि एकगुण कृष्ण आदि वर्ण तथैव गन्ध, रस और स्पर्श से लेकर अनन्तगुण कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, और स्पर्श होना सम्भव है। इस प्रकार वर्णादि चारों के प्रत्येक प्रकार की दृष्टि से नारक के अनन्त पर्याय घटित हो सकने से उसके अनन्त पर्याय कहे हैं। (९-१०) **ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से**—ज्ञान (अज्ञान) और दर्शन की दृष्टि से भी नारक के अनन्त पर्याय हैं, ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। आचार्य मलयगिरि कहते हैं—इन दसों दृष्टियों का समावेश चार दृष्टियों में किया जा सकता है। जैसे—द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता का **द्रव्य में**, अवगाहना का **क्षेत्र में**, स्थिति का **काल में** तथा वर्णादि एवं ज्ञानादि का **भाव में** समावेश हो सकता है।[१]

* इसी प्रकार आगे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि और ज्ञानादि को लेकर चौवीस दण्डक के जीवों के पर्यायों की विचारणा की गई है।[२]

* इसके पश्चात्—अजीव के दो भेद—अरूपी अजीव और रूपी अजीव करके रूपी अजीव के परमाणु, स्कन्ध, स्कन्धदेश और स्कन्धप्रदेश, यों चार प्रकार होते हुए भी यहाँ मुख्यतया परमाणुपुद्गल (निरंशी अंश) और स्कन्ध (अनेक परमाणुओं का एकत्रित पिण्ड) दो के ही पर्यायों का निरूपण किया गया है।

* प्रथमपद में पुद्गल (रूपी अजीव), जो नाना प्रकारों में परिणत होता है, उसका निरूपण है, जबकि इस पद में, बताए गए रूपी अजीव-भेदों के पर्यायों की संख्या का निरूपण है। सर्वप्रथम समग्रभाव से रूपी अजीव के पर्यायों की संख्या अनन्त बता कर फिर परमाणु द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी स्कन्ध, यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध, संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के प्रत्येक के अनन्त पर्याय कहे हैं। इन सबके पर्यायों का विचार जीव की तरह द्रव्य,

---

१. पण्णवणासुत्तं मू. पा. सू. ४५५ से ४९९ तक तथा पण्णवणासुत्तं भा. २ पंचमपद-प्रस्तावना पृ. ६३-६४

२. पण्णवणासुत्तं मूल पा. सू. ५१९, ५४० तथा पण्णवणासुत्तं भा. २ पंचमपद की प्रस्तावना पृ. ६२

क्षेत्र, काल, और भाव अथवा पूर्वोक्त दस दृष्टियों से किया गया है। परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी पुद्गलस्कन्ध तक के पर्यायों का निरूपण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है, तथापि अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक से लेकर असंख्यातप्रदेश में समा सकता है। इसे प्रदीप के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। इसी प्रकार परमाणु की तरह स्कन्धों की स्थिति एक समय से लेकर असंख्यात काल से अधिक नहीं है। वर्णादि पर्याय भी अनन्त हैं। तदनन्तर स्थिति, अवगाहना और वर्णादिकृत भेदों में भी जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम, इन तीन प्रकारों की अपेक्षा से भी पर्याय का विचार किया है।[1]

अन्य दर्शनीय मान्यता से अन्तर—यह है कि द्रव्य के यदि पर्याय (परिणाम) होते हैं तो वह द्रव्य कूटस्थनित्य नहीं, किन्तु परिणामिनित्य मानना चाहिए। परमाणुवादी नैयायिक वैशेषिक परमाणु को कूटस्थनित्य मानते हैं जबकि जैनदर्शन परिणामिनित्य मानता है। तथा स्कन्ध और परमाणु में अवयव-अवयवी का आत्यन्तिक भेद भी जैनदर्शन नहीं मानता, न ही परमाणु में पार्थिवपरमाणु आदि के रूप में जाति-भेद मानता है, तथा परमाणु में रूप रसादि चारों का होना अनिवार्य मानता है।[2]

---

१. पण्णवणासुत्तं मू. पा सू. ५०० से ५५८ तक तथा प्रज्ञापना. म. वृत्ति पत्रांक २४२,

२. पण्णवणासुत्तं भा. २, पंचमपद प्रस्तावना, पृ. ६७

पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं)

पांचवाँ विशेषपद (पर्यायपद)

पर्यायों के प्रकार और अनन्तजीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण—

४३८. कतिविहा णं भंते ! पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पज्जवा पण्णत्ता । तं जहा—जीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य ।

[४३८ प्र.] भगवन् ! पर्यव या पर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[४३८ उ.] गौतम ! पर्यव (पर्याय) दो प्रकार के कहे गये हैं । वे इस प्रकार—(१) जीवपर्याय और (२) अजीवपर्याय ।

जीव-पर्याय

४३९. जीवपज्जवा णं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा ! णो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जीवपज्जवा नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता ?

गोयमा ! असंखेज्जा नेरइया, असंखेज्जा असुरा, असंखेज्जा णागा, असंखेज्जा सुवण्णा, असंखेज्जा विज्जुकुमारा, असंखेज्जा अग्गिकुमारा, असंखेज्जा दीवकुमारा, असंखेज्जा उदहिकुमारा, असंखेज्जा दिसाकुमारा, असंखेज्जा वाउकुमारा, असंखेज्जा थणियकुमारा, असंखेज्जा पुढविकाइया, असंखेज्जा आउकाइया, असंखेज्जा तेउकाइया, असंखेज्जा वाउकाइया, अणंता वणप्फइकाइया, असंखेज्जा बेइंदिया, असंखेज्जा तेइंदिया, असंखेज्जा चउरिंदिया, असंखेज्जा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, असंखेज्जा मणुस्सा, असंखेज्जा वाणमंतरा, असंखेज्जा जोइसिया, असंखेज्जा वेमाणिया, अणंता सिद्धा, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति ते णं णो संखेज्जा णो असंखेज्जा, अणंता ।

[४३९ प्र.] भगवन् ! जीवपर्याय क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

[४३९ उ.] गौतम ! (वे) न (तो) संख्यात हैं, और न असंख्यात हैं, (किन्तु) अनन्त हैं ।

[प्र.] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीवपर्याय, न संख्यात हैं, न असंख्यात (किन्तु) अनन्त हैं ?

[उ.] गौतम ! असंख्यात नैरयिक हैं, असंख्यात असुर (असुरकुमार) हैं, असंख्यात नाग (नागकुमार) हैं, असंख्यात सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार हैं, असंख्यात विद्युत्कुमार हैं, असंख्यात अग्निकुमार हैं, असंख्यात द्वीपकुमार हैं, असंख्यात उदधिकुमार हैं, असंख्यात दिशाकुमार हैं, असंख्यात वायुकुमार हैं, असंख्यात स्तनितकुमार हैं, असंख्यात पृथ्वीकायिक हैं, असंख्यात अप्कायिक हैं, असंख्यात तेजस्कायिक हैं, असंख्यात वायुकायिक हैं, अनन्त वनस्पतिकायिक हैं, असंख्यात द्वीन्द्रिय हैं, असंख्यात

त्रीन्द्रिय हैं, असंख्यात चतुरिन्द्रिय हैं, असंख्यात पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक हैं, असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यन्तर देव हैं, असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं, असंख्यात वैमानिक देव हैं और अनन्त-सिद्ध हैं।

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि वे (जीवपर्याय) संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, (किन्तु) अनन्त हैं।

विवेचन—पर्याय के प्रकार और अनन्त जीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ४३८-४३९) में पर्याय के दो प्रकारों तथा जीवपर्याय की अनन्तता का युक्तिपूर्वक निरूपण किया गया है।

पर्याय : स्वरूप और समानार्थक शब्द—यद्यपि पिछले पद में नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि के रूप में जीवों की स्थितिरूप पर्याय का प्रतिपादन किया गया है, तथापि औदयिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भावरूप जीवपर्यायों का तथा पुद्गल आदि अजीव-पर्यायों का निश्चय करने के लिए इस पद का प्रतिपादन किया गया है। जीव और अजीव दोनों द्रव्य हैं। द्रव्य का लक्षण 'गुण-पर्यायवत्त्व' कहा गया है। इसीलिए इस पद में जीव और अजीव दोनों के पर्यायों का निरूपण किया गया है। पर्याय, पर्यव, गुण, विशेष और धर्म; ये प्रायः समानार्थक शब्द हैं।

पर्यायों का परिमाण जानने की दृष्टि से गौतम स्वामी इस प्रकार का प्रश्न करते हैं कि जीव के पर्याय संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ? भगवान् ने जीव के पर्याय अनन्त इसलिए बताए कि जब पर्याय वाले (वनस्पतिकायिक, सिद्ध जीव आदि) अनन्त हैं तो पर्याय भी अनन्त हैं। यद्यपि वनस्पतिकायिकों और सिद्धों को छोड़ कर नैरयिक आदि सभी असंख्यात-असंख्यात हैं, किन्तु उक्त दोनों अनन्त हैं, इस अपेक्षा से जीव के पर्याय समुच्चय रूप से अनन्त ही कहे जाएंगे। संख्यात या असंख्यात नहीं।[1]

नैरयिकों के अनन्तपर्याय : क्यों और कैसे ?

४४०. नेरइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले; ओगाहणट्ठताए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीने वा, अह अब्भहिए असंखेज्जभागब्भहिए वा संखेज्जभागब्भहिए वा संखेज्जगुणमब्भहिए वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा; ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जइ हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जइभागमब्भहिए वा संखेज्जइभागमब्भहिए वा संखेज्जइगुणब्भहिए वा असंखेज्जइगुणब्भहिए वा; कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जदि हीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्जइभागहीणे वा संखेज्जइभागहीणे वा संखिज्जइगुणहीणे वा असंखिज्जइगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणंतभाग-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १७९

मब्भहिए वा असंखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जगुणमब्भहिए वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा; णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सुयणाणपज्जवेहिं ओहिणाणपज्जवेहिं मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं विभंगणाणपज्जवेहिं चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति नेरइयाणं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[४४० प्र.] भगवन् ! नैरयिकों के कितने पर्याय (पर्यव) कहे गए हैं ?

[४४० उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! आप किस हेतु से ऐसा कहते हैं कि नैरयिकों के पर्याय अनन्त हैं ?

[उ.] गौतम ! एक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है। प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है; अवगाहना की अपेक्षा से—कथंचित् (स्यात्) हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक (अभ्यधिक) है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है; या संख्यातगुणा हीन है, अथवा असंख्यातगुणा हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है या संख्यातभाग अधिक है; अथवा संख्यातगुणा अधिक या असंख्यातगुणा अधिक है।

स्थिति की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन या संख्यातभाग हीन है; अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन है। अगर अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक है; अथवा संख्यातगुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक है।

कृष्णवर्ण-पर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है, तो अनन्तभाग हीन, असंख्यातभाग हीन या संख्यातभाग हीन होता है; अथवा संख्यातगुण हीन, असंख्यातगुण हीन या अनन्तगुण हीन होता है। यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक, असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक होता है; अथवा संख्यातगुण अधिक, असंख्यातगुण अधिक या अनन्तगुण अधिक होता है।

नीलवर्णपर्यायों, रक्तवर्णपर्यायों, पीतवर्णपर्यायों, हारिद्रवर्णपर्यायों और शुक्लवर्णपर्यायों की अपेक्षा से—(विचार किया जाए तो एक नारक, दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। सुगन्धपर्यायों और दुर्गन्धपर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक है। तिक्तरसपर्यायों, कटुरसपर्यायों, काषायरसपर्यायों, आम्लरसपर्यायों तथा मधुररसपर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। कर्कशस्पर्श-पर्यायों, मृदु-स्पर्शपर्यायों, गुरुस्पर्शपर्यायों, लघुस्पर्शपर्यायों, शीतस्पर्शपर्यायों, उष्णस्पर्शपर्यायों, स्निग्धस्पर्श-

पर्यायों तथा रूक्ष-स्पर्शपर्यायों की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है ।

(इसी प्रकार) आभिनिबोधिकज्ञानपर्यायों, श्रुतज्ञानपर्यायों, अवधिज्ञानपर्यायों, मति-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत-अज्ञानपर्यायों, विभंगज्ञानपर्यायों, चक्षुदर्शनपर्यायों, अचक्षुदर्शनपर्यायों तथा अवधिदर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से— (एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है ।

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है, कि 'नारकों के पर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त कहे हैं ।'

विवेचन—नैरयिकों के अनन्त पर्याय : क्यों और कैसे ?—प्रस्तुत सूत्र में अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं क्षायोपशमिकभावरूप ज्ञानादि के पर्यायों की अपेक्षा से हीनाधिकता का प्रतिपादन करके नैरयिकों के अनन्तपर्यायों को सिद्ध किया गया है ।

प्रश्न का उद्भव और समाधान—सामान्यतः जहाँ पर्यायवान् अनन्त होते हैं, वहाँ पर्याय भी अनन्त होते हैं, किन्तु जहाँ पर्यायवान्(नारक) अनन्त न हों (असंख्यात हों), वहाँ पर्याय अनन्त कैसे होते हैं ? इस आशय से यह प्रश्न श्रीगौतमस्वामी द्वारा उठाया गया है । भगवान् के द्वारा उसका समाधान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के पर्यायों की अपेक्षा से किया गया है ।

द्रव्य की अपेक्षा से नारकों में तुल्यता—प्रत्येक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की दृष्टि से तुल्य है, अर्थात्—प्रत्येक नारक एक-एक जीव-द्रव्य है । द्रव्य की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं है । इस कथन के द्वारा यह भी सूचित किया है कि प्रत्येक नारक अपने आप में परिपूर्ण एवं स्वतंत्र जीव द्रव्य है । यद्यपि कोई भी द्रव्य, पर्यायों से सर्वथा रहित कदापि नहीं हो सकता, तथापि पर्यायों की विवक्षा न करके केवल शुद्ध द्रव्य की विवक्षा की जाए तो एक नारक से दूसरे नारक में कोई विशेषता नहीं है ।

प्रदेशों की अपेक्षा से भी नारकों में तुल्यता—प्रदेशों की अपेक्षा से भी सभी नारक परस्पर तुल्य हैं, क्योंकि प्रत्येक नारक जीव लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेशी होता है । किसी भी नारक के जीवप्रदेशों में किञ्चित् भी न्यूनाधिकता नहीं है । सप्रदेशी और अप्रदेशी का भेद केवल पुद्गलों में है, परमाणु अप्रदेशी होता है, तथा द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि स्कन्ध सप्रदेशी होते हैं ।

क्षेत्र (अवगाहना) की अपेक्षा से नारकों में हीनाधिकता—अवगाहना का अर्थ सामान्यतया आकाशप्रदेशों को अवगाहन करना—उनमें समाना होता है । यहाँ उसका अर्थ है—शरीर की ऊँचाई । अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) की अपेक्षा से सब नारक तुल्य नहीं हैं । जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल की है । आगे-आगे की नरकपृथ्वियों में उत्तरोत्तर दुगुनी-दुगुनी अवगाहना होती है । सातवीं नरकपृथ्वी में अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की है । इस दृष्टि से किसी नारक से किसी नारक की अवगाहना हीन है, किसी की अधिक है, जबकि किसी की तुल्य भी है । यदि कोई नारक अवगाहना से हीन (न्यून) होगा तो वह असंख्यातभाग या संख्यातभाग हीन होगा, अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन होगा, किन्तु यदि कोई नारक अवगाहना में अधिक होगा तो असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक

होगा, अथवा संख्यातगुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक होगा। यह हीनाधिकता चतु:स्थानपतित कहलाती है। नारक असंख्यातभाग हीन या संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातभाग अधिक या असंख्यातभाग अधिक इस प्रकार से होते हैं, जैसे—एक नारक की अवगाहना ५०० धनुष की है और दूसरे की अवगाहना है—अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की। अंगुल का असंख्यातवाँ भाग पांच सौ धनुष का असंख्यातवाँ भाग है। अत: जो नारक अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है, वह पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक की अपेक्षा **असंख्यातभाग हीन** है, और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला दूसरे नारक से **असंख्यातभाग अधिक** है। इसी प्रकार एक नारक ५०० धनुष की अवगाहना वाला है, जबकि दूसरा उससे दो धनुष कम है, अर्थात् ४९८ धनुष की अवगाहना वाला है। दो धनुष पांच सौ धनुष का संख्यातवाँ भाग है। इस दृष्टि से दूसरा नारक पहले नारक से **संख्यातभाग हीन** हुआ, जबकि पहला (पांच सौ धनुष वाला) नारक दूसरे नारक (४९८ धनुष वाले) से **संख्यातभाग अधिक** हुआ। इसी प्रकार कोई नारक एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाला है और दूसरा पूरे पांच-सौ धनुष की अवगाहना वाला है। एक सौ पच्चीस धनुष के चौगुने पांच सौ धनुष होते हैं। इस दृष्टि से १२५ धनुष की अवगाहना वाला, ५०० धनुष की अवगाहना वाले नारक से **संख्यातगुण हीन** हुआ और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला, एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाले नारक से **संख्यातगुण अधिक** हुआ। इसी प्रकार कोई नारक अपर्याप्त अवस्था में अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाला है और दूसरा नारक पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है। अंगुल का असंख्यातवाँ भाग असंख्यात से गुणित होकर पांच सौ धनुष बनता है। अत: अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाला नारक परिपूर्ण पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक से **असंख्यातगुण हीन** हुआ और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला नारक, अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाले नारक से **असंख्यातगुण अधिक** हुआ।

काल (स्थिति) की अपेक्षा से नारकों की न्यूनाधिकता—स्थिति (आयुष्य की अनुभूति) की अपेक्षा से कोई नारक किसी दूसरे नारक से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। अवगाहना की तरह स्थिति की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से असंख्यातभाग या संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातगुणा या असंख्यातगुणा हीन होता है, अथवा असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक अथवा संख्यातगुणा या असंख्यातगुणा अधिक स्थिति वाला चतु:स्थानपतित होता है। उदाहरणार्थ—एक नारक पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नारक एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है। अत: एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से **असंख्यातभाग हीन** हुआ, जबकि परिपूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, एक दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से **असंख्यातभाग अधिक** हुआ; क्योंकि एक-दो समय, सागरोपम के असंख्यातवें भाग मात्र हैं। इसी प्रकार एक नारक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, और दूसरा है—पल्योपम कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस कोटाकोटी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। इस दृष्टि से पल्योपमों से हीन स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम स्थिति वाले नारक से **संख्यातभाग हीन** स्थिति वाला हुआ, जबकि दूसरा, पहले से **संख्यातभाग अधिक** स्थिति वाला हुआ। इसी प्रकार एक नारक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा है—एक सागरोपम की स्थिति वाला। इनमें एक सागरोपम-स्थिति वाला, तेतीस सागरोपम-स्थिति वाले नारक से संख्यातगुण-हीन हुआ,

क्योंकि एक सागर को तेतीस सागर से गुणा करने पर तेतीस सागर होते हैं। इसके विपरीत तेतीस सागरोपम-स्थिति वाला नारक एक सागरोपम स्थिति वाले नारक से **संख्यातगुण अधिक** हुआ। इसी प्रकार एक नारक दस हजार वर्ष की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नारक है—तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस हजार को असंख्यात वार गुणित करने पर तेतीस सागरोपम होते हैं। अतएव दस हजार वर्ष की स्थिति वाला नारक, तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक की अपेक्षा **असंख्यातगुण हीन** स्थिति वाला हुआ, जबकि उसकी अपेक्षा तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला **असंख्यातगुण अधिक स्थिति** वाला हुआ।

भाव की अपेक्षा से नारकों की षट्स्थानपतित हीनाधिकता—(१) कृष्णादि वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से—पुद्गल-विपाकी नामकर्म के उदय से होने वाले औदयिक भाव का आश्रय लेकर वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की हीनाधिकता की प्ररूपणा की गई है। यथा—(१) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से एक नारक दूसरे नारक से अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन संख्यातभागहीन होता है, अथवा संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन या अनन्तगुणहीन होता है। यदि अधिक होता है तो अनन्तभाग, असंख्यातभाग या संख्यात भाग अधिक होता है अथवा संख्यातगुण, असंख्यातगुण या अनन्तगुण अधिक होता है। यह षट्स्थानपतित हीनाधिकता है। इस षट्स्थानपतित हीनाधिकता में जो जिससे अनन्तभाग-हीन होता है, वह सर्वजीवानन्तक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उसे अनन्तवें भाग से हीन समझना चाहिए। जो जिससे असंख्यातभाग हीन है, असंख्यात लोकाकाश-प्रदेश प्रमाणराशि से भाग करने पर जो लब्ध हो, उतने भाग कम समझना चाहिए। जो जिससे संख्यातभाग हीन हो, उसे उत्कृष्टसंख्यक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उससे हीन समझना चाहिए। गुणनसंख्या में जो जिससे संख्येयगुणा होता है, उसे उत्कृष्टसंख्यक के साथ गुणित करने पर जो (गुणनफल) राशिलब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे असंख्यातगुणा है, उसे असंख्यात-लोकाकाश प्रदेशों के प्रमाण जितनी राशि से गुणित करना चाहिए और गुणाकार करने पर जो राशि लब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे अनन्तगुणा है, उसे सर्वजीवानन्तक से गुणित करने पर जो संख्या लब्ध हो, उतना समझना चाहिए। इसी तरह नीलादि वर्णों के पर्यायों की अपेक्षा से एक नारक से दूसरे नारक की षट्स्थानपतित हीनाधिकता घटित कर लेनी चाहिए।

इसी प्रकार सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक की अपेक्षा षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। वह भी पूर्ववत् समझना लेना चाहिए। तिक्तादिरस के पर्यायों की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है, इसी तरह कर्कश आदि स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा भी हीनाधिकता होती है, यह समझ लेना चाहिए।

क्षायोपशमिक भावरूप पर्यायों की अपेक्षा से हीनाधिकता—मति आदि तीन ज्ञान, मति अज्ञानादि तीन अज्ञान और चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से भी कोई नारक किसी अन्य नारक से हीन, अधिक या तुल्य होता है। इनकी हीनाधिकता भी वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से उक्त हीनाधिकता की तरह षट्स्थानपतित के अनुसार समझ लेनी चाहिए। आशय यह है कि जिस प्रकार पुद्गलविपाकी नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले औदयिकभाव को लेकर नारकों को षट्स्थानपतित कहा है, उसी प्रकार जीवविपाकी ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८१-१८२

होने वाले क्षायोपशमिक भाव को लेकर आभिनिवोधिक ज्ञान आदि पर्यायों की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित हानि-वृद्धि समझ लेनी चाहिए।[1]

षट्स्थानपतितत्व का स्वरूप—यद्यपि कृष्णवर्ण के पर्यायों का परिमाण अनन्त, है, तथापि असत्कल्पना से उसे दस हजार मान लिया जाए और सर्वजीवानन्तक को सौ मान लिया जाए तो दस हजार में सौ का भाग देने पर सौ की संख्या लब्ध होती है। इस दृष्टि से एक नारक के कृष्ण-वर्णपर्यायों का परिमाण मान लो दस सहस्र है और दूसरे के सौ कम दस सहस्र है। सर्वजीवानन्तक में भाग देने पर सौ की संख्या लब्ध होने से वह अनन्तवाँ भाग है, अतः जिस नारक के कृष्णवर्ण के पर्याय सौ कम दस सहस्र हैं वह पूरे दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायों वाले नारक की अपेक्षा **अनन्तभागहीन** कहलाता है। उसकी अपेक्षा से दूसरा पूर्ण दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायों वालों नारक **अनन्तभाग-अधिक** है। इसी प्रकार दस सहस्र परिमित कृष्णवर्ण के पर्यायों में लोकाकाश के प्रदेशों के रूप में कल्पित पचास से भाग दिया जाए तो दो सौ संख्या आती है, यह असंख्यातवाँ भाग कहलाता है। इस दृष्टि से किसी नारक के कृष्णवर्ण-पर्याय दो सौ कम दस हजार हैं और किसी के पूरे दस हजार हैं। इनमें से दो सौ कम दस हजार कृष्णवर्ण-पर्याय वाला नारक पूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक से **असंख्यातभागहीन** कहलाता है और परिपूर्ण कृष्ण वाला नारक, दो सौ कम दस सहस्र वाले की अपेक्षा **असंख्यातभागअधिक** कहलाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त दस सहस्रसंख्यक कृष्णवर्ण-पर्यायों में संख्यातपरिमाण के रूप में कल्पित दस संख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र संख्या लब्ध होती है। यह संख्या दस हजार का संख्यातवाँ भाग है। मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय में संख्यात परिमाण के रूप में कल्पित दस संख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र संख्या लब्ध होती है। यह संख्या दस हजार का संख्यातवाँ भाग है। मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय ९ हजार हैं और दूसरे नारक के दस हजार हैं, तो नौ हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक, पूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्यायवाले नारक से **संख्यातभागहीन** हुआ; तथा उसकी अपेक्षा परिपूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्यायवाला नारक **संख्यातभाग-अधिक** हुआ। इसी प्रकार एक नारक के कृष्णवर्णपर्याय एक सहस्र हैं, दूसरे नारक के दस सहस्र हैं। यहाँ उत्कृष्ट संख्या के रूप में कल्पित दस संख्या को हजार से गुणाकार करने पर दससहस्रसंख्या आती है। इस दृष्टि से एक सहस्र कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक, दससहस्रसंख्यक कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक से **संख्यातगुणहीन** है और उसकी अपेक्षा दस सहस्र कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक **संख्यातगुण-अधिक** है। इसी प्रकार एक नारक के कृष्णवर्णपर्यायों का परिमाण दो सौ है, और दूसरे के कृष्णवर्णपर्यायों का परिमाण दस हजार है। दो सौ का यदि असंख्यात रूप में कल्पित पचास के साथ गुणा किया जाए तो दस हजार होता है। अतः दो सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्णवर्ण-पर्याय वाले नारक की अपेक्षा **असंख्यातगुण हीन** है और उसकी अपेक्षा दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक **असंख्यातगुणा अधिक** है। इसी प्रकार मान लो, एक नारक के कृष्णवर्णपर्याय सौ हैं, और दूसरे के दस हजार हैं। सर्वजीवान्तक परिमाण के रूप में परिकल्पित सौ को सौ से गुणाकार किया जाए तो दस हजार संख्या होती है। अतएव सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्ण वर्णवाले नारक से **अनन्तगुणा हीन** हुआ और उसकी अपेक्षा दूसरा **अनन्तगुणा अधिक** हुआ।[2]

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८२

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८३

निष्कर्ष—यहाँ कृष्णवर्ण आदि पर्यायों को लेकर जो षट्स्थानपतित हीनाधिक्य बताया गया है, उससे स्पष्ट ध्वनित हो जाता है कि जब एक कृष्णवर्ण को लेकर ही अनन्तपर्याय होते हैं तो सभी वर्णों के पर्यायों का तो कहना ही क्या ? इसके द्वारा यह भी सूचित कर दिया है कि जीव स्वनिमित्तक एवं परनिमित्तक विविध परिणामों से युक्त होता है। कर्मोदय से प्राप्त शरीर के अनुसार उसके (जीव के) आत्मप्रदेशों में संकोच-विस्तार तो होता है, किन्तु हीनाधिकता नहीं होती।[1]

असुरकुमार आदि भवनवासी देवों के अनन्त पर्याय—

४४१. असुरकुमाराणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठितीए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहिं, सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहिं तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीतफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सुतणाणपज्जवेहिं ओहिणाणपज्जवेहिं, मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं विभंगणाणपज्जवेहिं, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[४४१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[४४१ उ.] गौतम ! उनके अनन्तपर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'असुरकुमारों के पर्याय अनन्त हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्णपर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; इसी प्रकार नीलवर्ण-पर्यायों, रक्त(लोहित)वर्ण-पर्यायों, हारिद्रवर्ण-पर्यायों, शुक्लवर्ण-पर्यायों की अपेक्षा से; तथा सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से; तिक्तरस-पर्यायों, कटुरस-पर्यायों, काषायरस-पर्यायों, आम्लरस-पर्यायों एवं मधुरस-पर्यायों की अपेक्षा से; तथा कर्कशस्पर्श-पर्यायों, मृदुस्पर्श-पर्यायों, गुरुस्पर्श-पर्यायों, लघुस्पर्श-पर्यायों, शीतस्पर्श-पर्यायों, उष्णस्पर्श-पर्यायों, स्निग्धस्पर्श-पर्यायों, और रूक्षस्पर्श-पर्यायों की अपेक्षा से तथा आभिनिवोधिकज्ञान-पर्यायों, श्रुतज्ञान-पर्यायों, अवधिज्ञान-पर्यायों, मति-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत-अज्ञान-पर्यायों, विभंगज्ञान-पर्यायों, चक्षुदर्शनपर्यायों, अचक्षुदर्शन-पर्यायों और अवधि-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८४

दर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है। हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि असुरकुमारों के पर्याय अनन्त कहे हैं।

४४२. एवं जहा नेरइया जहा असुरकुमारा तहा नागकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

[४४२] इसी प्रकार जैसे नैरयिकों के (अनन्तपर्याय कहे गए हैं,) और असुरकुमारों के कहे हैं, उसी प्रकार नागकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों के (अनन्तपर्याय कहने चाहिए।)

विवेचन—असुरकुमार आदि भवनपतिदेवों के अनन्तपर्याय—प्रस्तुत दो सूत्रों (४४१-४४२) में असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपतियों के अनन्तपर्यायों का, नैरयिकों के अतिदेशपूर्वक सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

असुरकुमारों के पर्यायों की अनन्तता—एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से पूर्वोक्त सूत्रानुसार द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना और स्थिति के पर्यायों की दृष्टि के पूर्ववत् चतुःस्थानपतित हीनाधिक हैं तथा कृष्णादिवर्ण, सुगन्ध-दुर्गन्ध, तिक्त आदि रस, कर्कश आदि स्पर्श एवं ज्ञान, अज्ञान एवं दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित हैं। आशय यह है कि कृष्णवर्ण को लेकर अनन्तपर्याय होते हैं, तो सभी वर्णों के पर्यायों का तो कहना ही क्या ? इस हेतु से असुरकुमारों के[1] अनन्तपर्याय सिद्ध हो जाते हैं।

पांच स्थावरों (एकेन्द्रियों) के अनन्तपर्यायों की प्ररूपणा—

४४३. पुढविकाइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पुढविकाइए पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भइए—जदि हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जतिभागअब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भहिए वा असंखेज्जगुणअब्भहिए वा; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असंखेज्जभागअब्भतिए वा संखेज्जभागअब्भतिए वा संखेज्जगुणअब्भतिए वा; वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं, मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[४४३ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, (आत्म) प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है,

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका, भा-२, पृ. ५७६ से ५७९ तक

अथवा संख्यातगुण हीन है, या असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक हैं या संख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है अथवा असंख्यातगुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है, या संख्यातभाग हीन है, अथवा संख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है, या संख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है। वर्णों (के पर्यायों) गन्धों, रसों और स्पर्शों (के पर्यायों) की अपेक्षा से, मति-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत-अज्ञानपर्यायों एवं अचक्षुदर्शनपर्यायों की अपेक्षा से (एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से) षट्स्थानपतित है।

४४४. आउकाइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति आउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! आउकाइए आउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४४ प्र.] भगवन् ! अप्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[४४४ उ.] गौतम (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि अप्कायिक जीवों के अनन्तपर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक अप्कायिक दूसरे अप्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित (हीनाधिक) है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४५. तेउक्काइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति तेउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तेउक्काइए तेउक्काइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४५ प्र.] भगवन् ! तेजस्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४५ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस हेतु से कहा जाता है कि तेजस्कायिक जीवों के अनन्तपर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक तेजस्कायिक, दूसरे तेजस्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है।

स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) ह, तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

४४६. वाउक्काइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वाउकाइए वाउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४४६ प्र.] भगवन् ! वायुकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४६ उ.] गौतम ! (वायुकायिक जीवों के) अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'वायुकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक वायुकायिक, दूसरे वायुकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है । स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है । वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

४४७. वणप्फइकाइयाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति वणप्फइकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वणप्फइकाइए वणप्फइकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति वणस्सतिकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४४७ प्र.] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४७ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक वनस्पतिकायिक दूसरे वनस्पतिकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है किन्तु वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान

और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित(हीनाधिक) है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

विवेचन—पांच स्थावरों के अनन्तपर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. ४४३ से ४४७ तक) में पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पांचों एकेन्द्रिय स्थावरों के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त पर्यायों का निरूपण किया गया है।

पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों के पर्यायों की अनन्तता : विभिन्न अपेक्षाओं से—मूलपाठ में पूर्ववत् अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित तथा समस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से एवं मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित हीनाधिकता बता कर इन सब एकेन्द्रिय जीवों के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्तपर्याय सिद्ध किये गए हैं। जहाँ (अवगाहना में) चतु:स्थानपतित हीनाधिकता है, वहाँ एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से असंख्यातभाग, संख्यातभाग अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण हीन होता है, अथवा असंख्यातभाग, संख्यातभाग, या संख्यातगुण अथवा असंख्यातगुण अधिक होता है। यद्यपि पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग-प्रमाण होती है, किन्तु अंगुल के असंख्यातवें भाग के भी असंख्यात भेद होते हैं, इस कारण पृथ्वी-कायिक जीवों की पूर्वोक्त चतु:स्थानपतित हीनाधिकता में कोई विरोध नहीं है।

जहाँ (स्थिति में) **त्रिस्थानपतित हीनाधिकता** होती है, वहाँ पृथ्वीकायिकादि में हीनाधिकता इस प्रकार समझनी चाहिए—एक एकेन्द्रिय दूसरे एकेन्द्रिय से असंख्यातभाग या संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातगुणा हीन होता है अथवा असंख्यातभाग अधिक, संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है। इनकी स्थिति में चतु:स्थानपतित हीनाधिकता नहीं होती, क्योंकि इनमें असंख्यात-गुणहानि और असंख्यातगुणवृद्धि सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि की सर्वजघन्य आयु क्षुल्लकभवग्रहणपरिमित है। क्षुल्लकभव का परिमाण दो सौ छप्पन आवलिकामात्र है। दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है। और इस एक मुहूर्त्त में ६५५३६ भव होते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि की उत्कृष्ट स्थिति भी संख्यात वर्ष की ही होती है। अत: इनमें असंख्यातगुणा हानि-वृद्धि (न्यूनाधिकता) नहीं हो सकती। अब रही बात असंख्यातभाग, संख्यातभाग और संख्यातगुणा हानिवृद्धि की, वह इस प्रकार है। जैसे—एक पृथ्वीकायिक की स्थिति परिपूर्ण २२ हजार वर्ष की है, और दूसरे की एक समय कम २२००० वर्ष की है, इनमें से परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक की अपेक्षा, एक समय कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक असंख्यातभाग हीन कहलाएगा, जबकि दूसरा असंख्यातभाग अधिक कहलाएगा। इसी प्रकार एक की परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति है, जबकि दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त आदि कम २२००० वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि बाईस हजार वर्ष का संख्यातवाँ भाग है। अतः पूर्ण २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२ हजार वर्ष की स्थिति वाला संख्यात-भाग हीन है और उसकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला संख्यातभाग अधिक है। इसी प्रकार एक पृथ्वीकायिक की पूरी २२००० वर्ष की स्थिति है, और दूसरे की अन्तर्मुहूर्त की, एक मास की, एक वर्ष की या एक हजार वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि किसी नियत सख्या से गुणाकार करने पर २२००० वर्ष की संख्या होती है। अत: अन्तर्मुहूर्त्त आदि की आयुवाला पृथ्वीकायिक, पूर्ण बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा संख्यातगुण-हीन है और इसकी अपेक्षा २२००० वर्ष की

स्थिति वाला पृथ्वीकायिक संख्यातगुण अधिक है। इसी प्रकार अप्कायिक से वनस्पतिकायिक तक के एकेन्द्रिय जीवों की अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

भावों (वर्णादि या मति-अज्ञानादि के पर्यायों) की अपेक्षा से षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता होती है, वहाँ उसे इस प्रकार समझना चाहिए—एक पृथ्वीकायिक आदि, दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन और संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुण-हीन और अनन्तगुणहीन तथा अनन्तभाग-अधिक, असंख्यातभाग-अधिक और संख्यातभाग-अधिक तथा संख्यातगुणा, असंख्यातगुणा और अनन्तगुणा अधिक है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव के वर्णादि या मतिअज्ञानादि विभिन्न भावपर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिकता की तरह अप्कायिक आदि एकेन्द्रियजीवों की षट्स्थानपतित हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

इन सब दृष्टियों से पृथ्वीकायिकादि प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव के पर्यायों की अनन्तता सिद्ध होती है।[1]

विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्यायों का निरूपण—

४४८. बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बेइंदिए बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्ज-गुणमब्भइए वा असंखेज्जगुणमब्भइए वा; ठितीए तिट्ठाणवडिते; वण्ण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहि-यणाण-सुतणाण-मतिअण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४८ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४८ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक द्वीन्द्रिय जीव दूसरे द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि हीन होता है, (तो) या तो असंख्यातभाग हीन होता है, या संख्यातभाग-हीन होता है, अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन होता है। अगर अधिक होता है तो असंख्यातभाग अधिक, या संख्यातभाग अधिक, अथवा संख्यातगुणा या असंख्यातगुणा अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्था-नपतित हीनाधिक होता है, तथा वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के तथा आभिनि-

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक १८६

बोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित (हीनाधिक) है।

४४९. एवं तेइंदिया वि।

[४४९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों के (पर्यायों की अनन्तता के) विषय में समझना चाहिए।

४५०. एवं चउरिंदिया वि। णवरं दो दंसणा-चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं च।

[४५०[इसी तरह चतुरिन्द्रिय जीवों (के पर्यायों) की अनन्तता होती है। विशेष यह है कि इनमें चक्षुदर्शन भी होता है। (अतएव इनके पर्यायों की अपेक्षा से भी चतुरिन्द्रिय की अनन्तता समझ लेनी चाहिए।)

४५१. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जवा जहा नेरइयाणं तहा भाणितव्वा।

[४५१] पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के पर्यायों का कथन नैरयिकों के समान (४४० सूत्रानुसार) कहना चाहिए।

विवेचन—विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंचपंचेन्द्रिय जीवों के अनन्तपर्यायों का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ४४८ से ४५१ तक) में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्यायों का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

विकलेन्द्रिय एवं तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों के अनन्तपर्यायों के हेतु—इन सब में द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा परस्पर समानता होने पर भी अवगाहना की दृष्टि से पूर्ववत् चतुःस्थानपतित, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित एवं वर्णादि के तथा मतिज्ञानादि के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थान-पतित न्यूनाधिकता होती है, इस कारण इनके पर्यायों की अनन्तता स्पष्ट है।[1]

मनुष्यों के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा—

४५२. मणुस्साणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! मणुस्से मणुस्सस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-वडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहियणाण-सुतणाण-ओहिणाण-मणपज्ज-वणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाण-वडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले।

[४५२ प्र.] भगवन् ! मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५२ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मनुष्यों के अनन्तपर्याय हैं ?'

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १८६

[उ.] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की दृष्टि से भी चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिवोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्यवज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा केवलज्ञान के पर्यायों की दृष्टि से तुल्य है, तीन अज्ञान तथा तीन दर्शन (के पर्यायों) की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन—मनुष्यों के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४५२) में अवगाहना और स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिवोधिक आदि चार ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिकता वता कर तथा द्रव्य, प्रदेश तथा केवलज्ञान-केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से परस्पर तुल्यता वता कर मनुष्यों के अनन्त पर्याय सिद्ध किये गए हैं।[1]

चार ज्ञान, तीन अज्ञान, और तीन दर्शनों की हीनाधिकता—पांच ज्ञानों में से चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन क्षायोपशमिक हैं। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सव मनुष्यों का क्षयोपशम समान नहीं होता। क्षयोपशम में तरतमता को लेकर अनन्तभेद होते हैं। अतएव इनके पर्याय षट्स्थानपतित हीनाधिक कहे गये हैं, किन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिक हैं। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के सर्वथा क्षीण होने पर ही उत्पन्न होते हैं, अतएव उनमें किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं होती। जैसा एक मनुष्य का केवलज्ञान या केवलदर्शन होता है, वैसा ही सभी का होता है, इसीलिए केवलज्ञान और केवलदर्शन के पर्याय तुल्य कहे हैं।[2]

स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित कैसे—पंचेन्द्रियतिर्यंचों और मनुष्यों की स्थिति अधिक से अधिक तीन पल्योपम की होती है। पल्योपम असंख्यात हजार वर्षों का होता है। अतः उसमें असंख्यातगुणी वृद्धि और हानि सम्भव होने से उसे चतुःस्थानपतित कहा गया है।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा—

४५३. वाणमंतरा ओगाहणट्ठयाए ठितीए य चउट्ठाणवडिया, वण्णादीहिं छट्ठाणवडिता।

[४५३] वाणव्यन्तर देव अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) कहे गए हैं तथा वर्ण आदि (के पर्यायों) की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४५४. जोइसिय-वेमाणिया वि एवं चेव। णवरं ठितीए तिट्ठाणवडिता।

[४५४[ज्योतिष्क और वैमानिक देवों (के पर्यायों) की हीनाधिकता भी इसी प्रकार (पूर्वसूत्रानुसार समझनी चाहिए।) विशेषता यह है कि इन्हें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) समझना चाहिए।

---

१. पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण युक्त), पृ. १३९-१४०

२. (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलयवृत्ति, पत्रांक १८६, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६१२-६१३

विवेचन--वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के अनन्त पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रों (४५३, ४५४) में वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के अनन्त पर्याय बताने हेतु उनकी यथायोग्य चतु:स्थानपतित षट्स्थानपतित तथा त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है।[1]

वाणव्यन्तरों की चतुःस्थानपतित तथा ज्योतिष्क-वैमानिकों की त्रिस्थानपतित हीनाधिकता—वाणव्यन्तरों की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, अतः वह भी चतु:स्थानपतित हो सकती है, किन्तु ज्योतिष्कों और वैमानिकों की स्थिति में त्रिस्थान पतित हीनाधिकता ही होती है; क्योंकि ज्योतिष्कों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है। अतएव उनमें असंख्यातगुणी हानि-वृद्धि संभव नहीं है। वैमानिकों की स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। एक सागरोपम दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का होता है। अतएव वैमानिकों में भी असंख्यातगुणी हानिवृद्धि संभव नहीं है। इसी कारण ज्योतिष्क और वैमानिकदेव स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होते हैं।[2]

विभिन्न अपेक्षाओं से जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारकों के पर्याय—

४५५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए नेरइए जहण्णोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिते।

[४५५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले नारकों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है; अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है; (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थान पतित (हीनाधिक) है, और वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसोगाहणयाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति उक्कोसोगाहणयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

---

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. १४०

२. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १८६

गोयमा ! उक्कोसोगाहणए णेरइए उक्कोसोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जइभागअब्भइए वा संखेज्जइभागअब्भइए वा; वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५५-२ प्र.] भगवन् ! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-२ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक, दूसरे उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है; किन्तु स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है या संख्यातभाग हीन है । यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यातभाग अधिक है । वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णुक्कोसोगाहणए णेरइए अजहण्णुक्कोसोगाहणगस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असंखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जगुणअब्भतिए वा असंखेज्जगुणअब्भतिए वा; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भतिए—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भइए असंखेज्जतिभागअब्भइए वा संखेज्जतिभागअब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भइए वा असंखेज्जगुणअब्भहिए वा; वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४५५-३ प्र.] भगवन् ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-३ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! मध्यम अवगाहना वाला एक नारक, अन्य मध्यम अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो, असंख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है, या संख्यातगुण हीन है, अथवा असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है अथवा संख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक है, या असंख्यातगुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है, अथवा संख्यातभाग हीन है; अथवा संख्यातगुण हीन है, या असंख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक है अथवा संख्यातभाग अधिक है, या संख्यातगुण अधिक है, अथवा असंख्यातगुण अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे हैं।'

४५६. [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहण्णट्ठितीयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णट्ठितीए नेरइए जहण्णट्ठितीयस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिते।

[४५६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले नारकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५६-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एवं तीन दर्शनों की अपेक्षा षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसट्ठितीए वि।

[४५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले नारक (के विषय में भी यथायोग्य तुल्य, चतुःस्थानपतित, षट्स्थानपतित आदि कहना चाहिए।

[३] अजहण्णुक्कोसट्ठितीए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[४५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले नारक के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

४५७. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए नेरइए जहण्णगुणकालगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४५७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले नैरियकों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला नैरयिक, दूसरे जघन्यगुण काले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है किन्तु अवशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया कि 'जघन्यगुण काले नारकों के अनन्त पर्याय कहे हैं ।'

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[४५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (नारकों के पर्यायों के विषय में भी) समझ लेना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । णवरं कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५७-३] इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले नैरयिक के पर्यायों के विषय में जान लेना चाहिए । विशेष इतना ही है कि काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) होता है ।

४५८. एवं अवसेसा चत्तारि वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा ।

[४५८] यों काले वर्ण के पर्यायों की तरह शेष चारों वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श की अपेक्षा से भी (समझ लेना चाहिए ।)

४५९. [१] जहण्णाभिणिवोहियणाणीणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिवोहियणाणीणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णाभिणिवोहियणाणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी णेरइए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-पज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुतणाणओहिणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५९-१ उ.] गौतम ! जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी, दूसरे जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी नैरयिक से *द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुः-*स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से (भी) चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा तीन दर्शनों की अपेक्षा (भी) षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि ।

[४५९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी नैरयिकों के (पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव । नवरं आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४५९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से भी स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४६०. एवं सुतणाणी ओहिणाणी वि । णवरं जस्स णाणा तस्स अण्णाणा णत्थि ।

[४६०] श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार (आभिनिबोधिकज्ञानीपर्यायवत्) जानना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके ज्ञान होता है, उसके अज्ञान नहीं होता ।

४६१. जहा नाणा तहा अण्णाणा वि भाणितव्वा । नवरं जस्स अण्णाणा तस्स नाणा न भवंति ।

[४६१] जिस प्रकार त्रिज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में कहा, उसी प्रकार त्रिअज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके अज्ञान होते हैं, उसके ज्ञान नहीं होते ।

४६२. [१] जहण्णचक्खुदंसणीणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णचक्खुदंसणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णचक्खुदंसणी णं नेरइए जहण्णचक्खुदंसणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं छट्ठाणवडिते, चक्खुदंसणपज्जवेहिं तुल्ले, अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४६२-२ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक के अनन्त-पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक, दूसरे जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है; वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तथा तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की अपेक्षा से, षट्स्थानपतित है । चक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसचक्खुदंसणी वि ।

[४६२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टचक्षुदर्शनी नैरयिकों (के पर्यायों के विषय में भी समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसचक्खुदंसणी वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४६२-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) चक्षुदर्शनी नैरयिकों के (पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।) विशेष इतना ही है कि स्वस्थान में भी वह षट्स्थानपतित होता है ।

४६३. एवं चक्खुदंसणी वि ओहिदंसणी वि ।

[४६३] चक्षुदर्शनी नैरयिकों के पर्यायों की तरह ही अचक्षुदर्शनी नैरयिकों एवं अवधि-दर्शनी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में जानना चाहिए ।

विवेचन—जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारकों के विभिन्न अपेक्षाओं से पर्याय—प्रस्तुत ९ सूत्रों (सू. ४५५ से ४६३ तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि से युक्त नारकों के पर्यायों का कथन किया गया है ।

जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य—जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना वाला एक नारक, दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, क्योंकि 'प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याय वाला होता है,' इस न्याय से नारकजीवद्रव्य एक होते हुए भी अनन्तपर्याय

वाला हो सकता है। अनन्तपर्याय वाला होते हुए भी वह द्रव्य से एक है, जैसे कि अन्य नारक एक-एक हैं। इसी प्रकार प्रत्येक नारक जीव लोकाकाशप्रमाण असंख्यात प्रदेशों वाला होता है, इसलिए प्रदेशों की अपेक्षा से भी वह तुल्य है; तथा अवगाहना की दृष्टि से भी तुल्य है, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का एक ही स्थान है, उसमें तरतमता-हीनाधिकता संभव नहीं है।

स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाले नारकों की स्थिति में समानता का नियम नहीं है। क्योंकि एक जघन्य अवगाहना वाला नारक १० हजार वर्ष की स्थितिवाला रत्नप्रभापृथ्वी में होता है और एक उत्कृष्ट स्थितिवाला नारक सातवीं पृथ्वी में होता है। इसलिए जघन्य या उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक स्थिति की अपेक्षा असंख्यातभाग या संख्यात-भाग हीन अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण हीन भी हो सकता है। अथवा असंख्यातभाग या संख्यातभाग अधिक अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण अधिक भी हो सकता है। इसलिए स्थिति की अपेक्षा से नारक चतुःस्थानपतित होते हैं।

जघन्य अवगाहना वाले नारक को तीन ज्ञान या तीन अज्ञान कैसे ?—कोई गर्भज-संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव नारकों में उत्पन्न होता है, तब वह नरकायु के वेदन के प्रथम समय में ही पूर्वप्राप्त औदारिकशरीर का परिशाटन करता है, उसी समय सम्यग्दृष्टि को तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को तीन अज्ञान उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् अविग्रह से या विग्रह से गमन करके वह वैक्रियशरीर धारण करता है, किन्तु जो सम्मूर्च्छिम असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव नरक में उत्पन्न होता है, उसे उस समय विभंगज्ञान नहीं होता। इस कारण जघन्य अवगाहना वाले नारक को भजना से दो या तीन अज्ञान होते हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित—उत्कृष्ट अवगाहना वाले सभी नारकों की स्थिति समान ही हो, या असमान ही हो, ऐसा नियम नहीं है। असमान होते हुए यदि हीन हो तो वह या तो असंख्यातभागहीन होता है या संख्यातभागहीन और अगर अधिक हो तो असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक होता है। इस प्रकार स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित हीनाधिकता समझनी चहिए। यहाँ संख्यातगुण और असंख्यातगुण हीनाधिकता नहीं होती, इसलिए चतुःस्थानपतित सम्भव नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक ५०० धनुष्य की ऊँचाई वाले सप्तम नरक में ही पाए जाते हैं; और वहाँ जघन्य बाईस और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति है। अतएव इस स्थिति में संख्यात-असंख्यातभाग हानिवृद्धि हो सकती है, किन्तु संख्यात-असंख्यातगुण हानि-वृद्धि की संभावना नहीं है।[1]

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियम से—उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमतः होते हैं, भजना से नहीं क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारकों में सम्मूर्च्छिम असंज्ञीपंचेन्द्रिय की उत्पत्ति नहीं होती। अतः उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक यदि सम्यग्दृष्टि हो तो तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि हो तो तीन अज्ञान नियमतः होते हैं।

मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना का अर्थ—जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के बीच की अवगाहना अजघन्य-अनुत्कृष्ट या मध्यम अवगाहना कहलाती है। इस अवगाहना का जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के समान नियत एक स्थान नहीं है। सर्वजघन्य अवगाहना अंगुल के

---

१. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८८, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ६३२ से ६३८

असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य की होती है। इन दोनों के बीच की जितनी भी अवगाहनाएं होती हैं, वे सब मध्यम अवगाहना की कोटि में आती हैं। तात्पर्य यह है कि मध्यम अवगाहना सर्वजघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग अधिक से लेकर अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की समझनी चाहिए। यह अवगाहना सामान्य नारक की अवगाहना के समान चतुःस्थानपतित हो सकती है।[1]

जघन्यस्थिति वाले नारक स्थिति की अपेक्षा से तुल्य—जघन्य स्थिति वाले एक नारक से, जघन्यस्थिति वाला दूसरा नारक स्थिति की दृष्टि से समान होता है; क्योंकि जघन्य स्थिति का एक ही स्थान होता है, उसमें किसी प्रकार की हीनाधिकता संभव नहीं है।

जघन्य स्थिति वाले नारक अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित—एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से अवगाहना में पूर्वोक्त व्याख्यानुसार चतुःस्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योंकि उनमें अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर उत्कृष्ट ७ धनुष तक पाई जाती है।

मध्यम स्थिति वाले नारकों की स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हीनाधिकता—जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों की स्थिति तो परस्पर तुल्य कही गई है, मगर मध्यम स्थिति वाले नारकों की स्थिति में परस्पर चतुःस्थानपतित हीनाधिक्य है, क्योंकि मध्यम स्थिति तारतम्य से अनेक प्रकार की है। मध्यमस्थिति में एक समय अधिक दस हजार वर्ष से लेकर एक समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति परिगणित है। इसलिए इसका चतुःस्थानपतित हीनाधिक होना स्वाभाविक है।[2]

कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से नारकों की तुल्यता—जिस नारक में कृष्णवर्ण का सर्वजघन्य अंश पाया जाता है, वह दूसरे सर्वजघन्य अंश कृष्णवर्ण वाले के तुल्य ही होता है, क्योंकि जघन्य का एक ही रूप है, उसमें विविधता या हीनाधिकता नहीं होती।

ज्ञान और अज्ञान दोनों एक साथ नहीं रहते—जिस नारक में ज्ञान होता है, उसमें अज्ञान नहीं होता और जिसमें अज्ञान होता है उसमें ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को अज्ञान होता है। जो सम्यग्दृष्टि होता है, वह मिथ्यादृष्टि नहीं होता और जो मिथ्यादृष्टि होता है, वह सम्यक् दृष्टि नहीं होता।[3]

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनपति देवों के पर्याय—

४६४. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! असुरकुमाराणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए असुरकुमारे जहण्णोगाहणगस्स असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले,

---

१. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८८, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६३८ से ६३९

२. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८९, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६४४ से ६४७

३. (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १८९, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ. ६४९, ६५४

पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वन्नादीहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाण-सुतणाण-ओहिणाणपज्जवेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिते।

[४६४-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४६४-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असुरकुमार, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है; (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, वर्ण आदि की दृष्टि से षट्स्थानपतित है; आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान के पर्यायों, तीन अज्ञानों तथा तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि। एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए वि। नवरं उक्कोसोगाहणए वि असुरकुमारे ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[४६४-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमारों के (पर्यायों के) विषय में (समझ लेना चाहिए।) तथा इसी प्रकार मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना वाले असुरकुमारों के (पर्यायों के सम्बन्ध में जान लेना चाहिए।) विशेष यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमार भी स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४६५. एवं जाव थणियकुमारा।

[४६५] असुरकुमारों (के पर्यायों की वक्तव्यता) की तरह ही यावत् स्तनितकुमारों तक (के पर्यायों की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।)

विवेचना—जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनवासियों के पर्याय—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ४६४-४६५) में असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना वाले दशाविध भवनपतियों के अनन्त पर्यायों का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट एकेन्द्रियों के पर्याय—

४६६. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पुढविकाइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पुढविकाइए जहण्णोगाहणगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४६६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय प्ररूपित किये गए है ?

[४६६-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय प्ररूपित किये गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्तपर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! जघन्य अवगाहना वाला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, दो अज्ञानों की अपेक्षा से एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की दृष्टि से षट्-स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि।

[४६६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों का कथन भी करना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[४६६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीव स्वस्थान में अर्थात् अवगाहना की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

४६७. [१] जहण्णट्ठितीयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णट्ठितीयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पुढविकाइए जहण्णठितीयस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठताए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं मति-अण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४६७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

[४६७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[४६७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे तिट्ठाणवडिते ।

[४६७-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि वे स्वस्थान में त्रिस्थानपतित हैं ।

४६८. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पुढविकाइए जहण्णगुणकालगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६८-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले पृथ्वीकायिक जीवों (के पर्यायों के परिमाण) की पृच्छा है !

[४६८-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! जघन्य गुण काला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित हैं, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है; काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; तथा अवशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; एवं दो अज्ञानों और अचक्षुदर्शन के पर्यायों से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[४६८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के (पर्यायों के विषय में कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४६८-३] मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४६९. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा ।

[४६९] इसी प्रकार (पृथक्-पृथक् जघन्य-मध्यम-उत्कृष्टगुण वाले) पांच वर्णों, दो गन्धों,

पांच रसों और आठ स्पर्शों (से युक्त पृथ्वीकायिकों के पर्यायों) के विषय में (पूर्वोक्तसूत्रानुसार) कहना चाहिए।

४७०. [१] जहण्णमतिअण्णाणीणं भंते ! पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णमतिअण्णाणीणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णमतिअण्णाणी पुढविकाइए जहण्णमतिअण्णाणिस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, मतिअण्णाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयअण्णाणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७०-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित है; तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; मति-अज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; (किन्तु) श्रुत-अज्ञान के पर्यायों तथा अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसमतिअण्णाणी वि।

[४७०-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट-मति-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में कथन करना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसमइअण्णाणी वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४७०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट-मति-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों) के विषय में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि यह स्वस्थान अर्थात् मति-अज्ञान के पर्यायों में भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४७१. एवं सुयअण्णाणी वि। अचक्खुदंसणी वि एवं चेव।

[४७१] (जिस प्रकार जघन्यादियुक्त मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में कहा गया है) उसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी तथा अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक जीवों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।

४७२. एवं जाव वणप्फइकाइयाणं।

[४७२] (जिस प्रकार जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम मति-श्रुताज्ञानी एवं अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक-पर्यायों के विषय में कहा गया है,) उसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।)

विवेचन—जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादियुक्त पृथ्वीकायिक आदि पंच स्थावरों की पर्यायविषयक प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रों (सू-४६६ से ४७२ तक) में जघन्य मध्यम एवं उत्कृष्ट अवगाहना से लेकर अचक्षुदर्शन तक से युक्त पृथ्वीकायिक आदि पांच एकेन्द्रिय जीवों का पर्याय-विषयक कथन किया गया है।

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक आदि का अवगाहना की दृष्टि से पर्याय-परिमाण—जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से परस्पर तुल्य होते हैं। किन्तु मध्यम अवगाहना वाले दो पृथ्वीकायिकादि अवगाहना की अपेक्षा से स्वस्थान में परस्पर चतुःस्थानपतित होते हैं। अर्थात्-एक मध्यम अवगाहना वाला पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहनावाले पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थान-पतित होता है, क्योंकि सामान्यरूप से मध्यम अवगाहना होने पर भी वह विविध प्रकार की होती है। जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना की भांति उसका एक ही स्थान नहीं होता। कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि के भव में पहले उत्पत्ति हुई हो, उसे स्वस्थान कहते हैं। इस प्रकार के स्वस्थान में असंख्यात वर्षों का आयुष्य संभव होने से असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन या असंख्यातगुणहीन होता है, अथवा असंख्यातभाग अधिक, संख्यात भाग अधिक या संख्यातगुण अधिक अथवा असंख्यातगुण अधिक होता है; इस प्रकार चतुःस्थानपतित होता है। इसी प्रकार स्थिति, वर्णादि, मति-श्रुताज्ञान एवं अचक्षुदर्शन से युक्त पृथ्वीकायिकादि की हीनाधिकता अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होती है।[1]

जघन्यादि स्थिति आदि वाले पृथ्वीकायिकादि का विविध अपेक्षाओं से पर्याय-परिमाण—स्थिति की अपेक्षा से एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से तुल्य होता है, किन्तु अवगाहना, वर्णादि, तथा मति-श्रुताज्ञान के एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य नहीं होता है; क्योंकि पृथ्वीकायिक आदि की स्थिति संख्यातवर्ष की होती है, यह बात पहले समुच्चय पृथ्वीकायिकों की वक्तव्यता के प्रसंग में कही जा चुकी है। इसलिए जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले पृथ्वीकायिक आदि परस्पर यदि हीन हो तो असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन होता है, यदि अधिक हो तो असंख्यातभाग-अधिक, संख्यातभाग-अधिक अथवा संख्यातगुण-अधिक होता है। वह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार असंख्यातगुण हीन या अधिक नहीं होता।[2]

पूर्वोक्त पृथ्वीकायिक आदि में दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा क्यों?—पृथ्वीकायिक आदि में सभी मिथ्यादृष्टि होते हैं; इनमें सम्यक्त्व नहीं होता, और न सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वीकायिकादि में उत्पन्न होता है। अतएव उनमें दो अज्ञान ही पाए जाते हैं। इसी कारण यहाँ

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६७५ से ६७८

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६७९-६८०

दो अज्ञानों की ही प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि में चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से चक्षुदर्शन भी नहीं होता। इसलिए यहां केवल अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा की गई है।[1]

मध्यम वर्णादि से युक्त गुण वाले पृथ्वीकायिकादि का पर्यायपरिमाण—जैसे जघन्य और उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण आदि का स्थान एक ही होता है, उनमें न्यूनाधिकता का सम्भव नहीं, उस प्रकार से मध्यम कृष्णवर्ण का स्थान एक नहीं है। एक अंश काला कृष्णवर्ण आदि जघन्य होता है और सर्वाधिक अंशों वाला कृष्ण वर्ण आदि उत्कृष्ट कहलाता है। इन दोनों के मध्य में कृष्णवर्ण आदि के अनन्त विकल्प होते हैं। जैसे—दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, दस गुण काला, संख्यातगुण काला, असंख्यातगुण काला, अनन्तगुण काला। इसी प्रकार अन्य वर्णों तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के वारे में समझ लेना चाहिए। अतएव जघन्य गुण काले से ऊपर और उत्कृष्ट गुण काले से नीचे कृष्ण वर्ण के मध्यम पर्याय अनन्त हैं। तात्पर्य यह है कि जघन्य और उत्कृष्टगुण वाले कृष्णादि वर्ण रस इत्यादि का पर्याय एक है, किन्तु मध्यमगुण कृष्णवर्ण आदि के पर्याय अनन्त हैं। यही कारण है कि दो पृथ्वीकायिक जीव यदि मध्यमगुण कृष्णवर्ण हों, तो भी उनमें अनन्तगुणहीनता और अधिकता हो सकती है। इसी अभिप्राय से यहाँ स्वस्थान में भी सर्वत्र षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता बताई है। इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित समझ लेना चाहिए।[2]

पृथ्वीकायिकों की तरह अन्य एकेन्द्रियों का पर्याय-विषयक निरूपण—सूत्र ४७२ में बताये अनुसार पृथ्वीकायिक सूत्र की तरह अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीवों के जघन्य, उत्कृष्ट एवं मध्यम, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान-अज्ञानादि की दृष्टि से पर्यायों की यथायोग्य हीनाधिकता समझ लेनी चाही।[3]

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट विकलेन्द्रियों के पर्याय—

४७३. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए बेइंदिए जहण्णोगाहणगस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७३-१ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६८२

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६८२ से ६८४ तक

३. (क) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका, भा. २, पृ. ६८८

जीव से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य हैं, प्रदेश की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित हैं, वर्ण, गंध रस एवं स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, दो अज्ञानों तथा अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि। णवरं णाणा णत्थि।

[४७३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना वाले में ज्ञान नहीं होता, इतना अन्तर है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए जहा जहण्णोगाहणए। णवरं सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाणवडिते।

[४७३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों की तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

४७४. [१] जहण्णठितीयाणं भंते! बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति जहण्णठितीयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठितीए बेइंदिए जहण्णठितीयस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७४-१ प्र.] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय हैं?

[४७४-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन्! किस दृष्टि से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय के अनन्त पर्याय कहे हैं?

[उ.] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है; तथा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो अज्ञानों एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि। णवरं दो णाणा अब्भइया।

[४७४-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियजीवों का भी (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि इनमें दो ज्ञान अधिक कहना चाहिए

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए जहा उक्कोसठितीए। णवरं ठितीए तिट्ठाणवडिते।

[४७४-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय के विषय में कहा गया

है, उसी प्रकार मध्यम स्थिति वाले द्वीन्द्रियों के पर्याय के विषय में कहना चाहिए। अन्तर इतना ही है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है।

४७५. [१] जहण्णगुणकालयाणं वेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं वेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए वेइंदिए जहण्णगुणकालयस्स वेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाण-वडिते।

[४७५-१ प्र.] जघन्यगुण कृष्णवर्ण वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्यगुण काले द्वीन्द्रियों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला द्वीन्द्रिय जीव, दूसरे जघन्यगुण काले द्वीन्द्रिय जीव से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित (न्यूनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्णों तथा गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से; दो ज्ञान, दो अज्ञान एवं अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[४७५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले द्वीन्द्रियों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४७५-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट गुण काले द्वीन्द्रिय जीवों का (पर्यायविषयक कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

४७६. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा।

[४७६] इसी तरह पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्शों का (पर्याय विषयक) कथन करना चाहिए।

४७७. [१] जहण्णाभिणिवोहियणाणीणं भंते ! बेंदियाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिवोहियणाणी वेइंदिए जहण्णाभिणिवोहियणाणिस्स वेइंदियस्स दव्वट्ठ-

याए तुल्ल, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४७७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य-आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४७७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य आभिनिवोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य आभिनिवोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य आभिनिवोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षया तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा अचक्षुदर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि ।

[४७७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिवोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के (पर्यायों के विषय में कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४७७-३] मध्यम-आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार से करना चाहिए किन्तु वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४७८. एवं सुतणाणी वि, सुतअण्णाणी वि, मतिअण्णाणी वि, अचक्खुदंसणी वि । णवरं जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि । जत्थ दंसणं तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि ।

[४७८] इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, मति-अज्ञानी और अचक्षुदर्शनी द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए । विशेषता यह है कि जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ अज्ञान नहीं होते, जहाँ अज्ञान होता है, वहाँ ज्ञान नहीं होते । जहाँ दर्शन होता है, वहाँ ज्ञान भी हो सकते हैं और अज्ञान भी।

४७९. एवं तेइंदियाण वि ।

[४७९] द्वीन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कई अपेक्षाओं से कहा गया है, उसी प्रकार त्रीन्द्रिय के पर्याय-विषय में भी कहना चाहिए ।

४८०. चउरिंदियाण वि एवं चेव । णवरं चक्खुदंसणं अब्भहियं ।

[४८०] चतुरिन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । अन्तर केवल इतना है कि इनके चक्षुदर्शन अधिक है । (शेष सब बातें द्वीन्द्रिय की तरह हैं ।)

विवेचन—जघन्यादिविशिष्ट विकलेन्द्रियों का विविध अपेक्षाओं से पर्याय-परिमाण—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ४७३ से ४८० तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के अनन्तपर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है।

मध्यम अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय चतुःस्थानपतित क्यों ? मध्यम अवगाहना वाला एक द्वीन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले दूसरे द्वीन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य नहीं होता, अपितु चतुःस्थानपतित होता है, क्योंकि मध्यम अवगाहना सब एक-सी नहीं होती, एक मध्यम अवगाहना दूसरी मध्यम अवगाहना से संख्यातभाग हीन, असंख्यातभाग हीन, संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन तथा इसी प्रकार चारों प्रकार से अधिक भी हो सकती है। मध्यम अवगाहना अपर्याप्त अवस्था के प्रथम समय के अनन्तर ही प्रारम्भ हो जाती है। अतएव अपर्याप्तदशा में भी उसका सद्भाव होता है। इस कारण सास्वादनसम्यक्त्व भी मध्यम अवगाहना के समय संभव है। इसी से यहाँ दो ज्ञानों का भी सद्भाव हो सकता है। जिन द्वीन्द्रियों में सास्वादन सम्यक्त्व नहीं होता, उनमें दो अज्ञान होते हैं।

जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रियों में दो अज्ञान की ही प्ररूपणा—जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों में दो अज्ञान ही पाए जाते हैं, दो ज्ञान नहीं, क्योंकि जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय जीव लब्धि-अपर्याप्तक होता है, लब्धि-अपर्याप्तकों के सास्वादनसम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता, इसका कारण यह है कि लब्धिअपर्याप्तक जीव अत्यन्त संक्लिष्ट होता है और सास्वादन सम्यक्त्व किंचित् शुभ-परिणामरूप है। अतएव सास्वादन सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय रूप में उत्पाद नहीं होता।

उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों में दो ज्ञानों की प्ररूपणा—उत्कृष्टस्थितिक द्वीन्द्रिय जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व वाले जीव भी उत्पन्न हो सकते हैं। अतएव जो वक्तव्यता जघन्यस्थितिक द्वीन्द्रियों के पर्यायविषय में कही है, वही उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियों की भी समझनी चाहिए, किन्तु उनमें दो ज्ञानों के पर्यायों की भी प्ररूपणा करना चाहिए।

मध्यमस्थिति वाले द्वीन्द्रियों की वक्तव्यता—इनसे सम्बन्धित पर्यायपरिमाण की वक्तव्यता उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियों के समान समझनी चाहिए, किन्तु इसमें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित कहना चाहिए, क्योंकि सभी मध्यमस्थिति वालों की स्थिति तुल्य नहीं होती।

जघन्यगुणकृष्ण द्वीन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित—एक जघन्यगुण कृष्ण, दूसरे जघन्यगुण कृष्ण से स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, क्योंकि द्वीन्द्रिय की स्थिति संख्यात-वर्षों की होती है, इसलिए वह चतुःस्थानपतित नहीं हो सकता।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय की पर्याय-प्ररूपणा—इसकी और सब प्ररूपणा तो जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी के समान ही है, किन्तु विशेषता इतनी ही है कि वह स्वस्थान में भी षट्स्थान-पतित हीनाधिक होता है। जैसे उत्कृष्ट और जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का एक-एक ही पर्याय है, वैसे मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का नहीं, क्योंकि उसके तो अनन्त हीनाधिकरूप

पर्याय होते हैं ।[1] त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की प्ररूपणा यथायोग्य द्वीन्द्रियों की तरह समझ लेना चाहिए ।

जघन्य अवगाहनादि वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों की विविध अपेक्षाओं से पर्याय प्ररूपणा—

४८१. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णोगाहणयस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८१-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८१-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता कि 'जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना को अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, अज्ञानों और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । णवरं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८१-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार कहना चाहिए, विशेषता इतनी ही है कि तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि । णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए ।

[४८१-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों का (पर्यायविषयक) कथन (किया गया) है, उसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय-

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १९३

(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी भा. २, पृ. ७०१ से ७०७ तक

तिर्यञ्चों (से सम्बन्धित पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि ये अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं, तथा स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित हैं।

४८२. [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नठितीयस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, श्रोगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फास-पज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४८२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८२-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्यस्थिति वाला पंचेन्द्रियतिर्यञ्च दूसरे जघन्यस्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो अज्ञान एवं दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसठितीए वि एवं चेव। नवरं दो नाणा दो अन्नाणा दो दंसणा।

[४८२-२] उत्कृष्टस्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यचों का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि इसमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शनों (की प्ररूपणा करनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते, तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा, तिण्णि दंसणा।

[४८२-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का (पर्याय विषयक कथन भी) इसी प्रकार (पूर्ववत् करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से (यह) चतुःस्थानपतित हैं, तथा (इनमें) तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनों (की प्ररूपणा करना चाहिए।)

४८३. [१] जहण्णगुणकालगाणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णगुणकालगस्स पंचदियतिरिक्ख-

जोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, श्रोगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणकृष्ण पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के कितने पर्याय हैं ?

[४८३-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि 'जघन्यगुणकृष्ण पंचेन्द्रियतिर्यंचों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य गुण काला पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, दूसरे जघन्यगुण काले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एवं तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[४८३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के पर्यायों के विषय में भी समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के (पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि वे स्वस्थान (कृष्णगुणपर्याय) में भी षट्-स्थानपतित हैं ।

४८४. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा ।

[४५४] इस प्रकार पांचों वर्णों, दो गन्धों, पांच रसों और आठ स्पर्शों से (युक्त तिर्यञ्च-पंचेन्द्रियों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए ।)

४८५. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४८५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य आभिनिवोधिकज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि 'जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, दूसरे जघन्य आभिनि-वोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसाभिणिवोहियणाणी वि । णवरं ठितीए तिट्ठाणवडिते, तिण्णि णाणा, तिण्णि दंसणा, सट्ठाणे तुल्ले, सेसेसु छट्ठाणवडिते ।

[४८५-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तीन ज्ञान, तीन दर्शन तथा स्वस्थान में तुल्य है, शेष सव में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] अजहण्णुक्कोसाभिणिवोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिवोहियणाणी । णवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते, सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८५-३] मध्यम आभिनिवोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों का पर्यायविषयक कथन, उत्कृष्ट आभिनिवोधिकज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों की तरह समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है; तथा स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

४८६. एवं सुतणाणी वि ।

[४८६] जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) आभिनिवोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कहा है,) उसी प्रकार (जघन्यादियुक्त) श्रुतज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए ।

४८७. जहण्णोहिणाणीणं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोहिणाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णोहिणाणिस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणि-यस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाते तुल्ले, ओगाहणट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं आभिणिवोहियणाण-सुतणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, ओहिणाणपज्जवेहिं तुल्ले, अण्णाणा णत्थि, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४८७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि 'जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों और आभिनिवोधिकज्ञान तथा श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है। (इसमें) अज्ञान नहीं कहना चाहिए। चक्षुदर्शन-पर्यायों और अचक्षुदर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोहिणाणी वि ।

[४८७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवधिज्ञानी पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों का (पर्याय-विषयक कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८७-३] मध्यम अवधिज्ञानी (पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों) की (भी पर्यायप्ररूपणा) इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४८८. जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य । जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहिणाणी । ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी । जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि अत्थि त्ति भाणितव्वं ।

[४८८] जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता है, उसी प्रकार मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी की है; जैसी अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय-प्ररूपणा है, वैसी ही विभंगज्ञानी की है। चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता) आभिनिवो-धिकज्ञानी की तरह है। अवधिदर्शनी की (पर्याय-वक्तव्यता) अवधिज्ञानी की तरह है। (विशेष बात यह है कि) जहां ज्ञान हैं, वहां अज्ञान नहीं हैं; जहां अज्ञान हैं, वहाँ ज्ञान नहीं हैं; जहाँ दर्शन हैं, वहाँ ज्ञान भी हो सकते हैं, अज्ञान भी हो सकते हैं, ऐसे कहना चाहिए।

विवेचन—जघन्य-अवगाहनादि विशिष्ट पंचेन्द्रियतिर्यंचों की विविध अपेक्षाओं से पर्याय-प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रों (सू. ५८१ से ५८८ तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों की, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि, ज्ञानाज्ञानदर्शनयुक्त आदि विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय आयु सम्बन्धी कालमर्यादा (स्थिति) की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, चतुःस्थानपतित नहीं; क्योंकि जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च संख्यात वर्षों की आयु वाला

ही होता है, असंख्यातवर्षों की आयु वाले के जघन्य अवगाहना नहीं होती। इसी कारण यहां जघन्य अवगाहनावान् तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित कहा गया है, जिसका स्वरूप पहले बताया जा चुका है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपंचेन्द्रिय में अवधि या विभंगज्ञान नहीं—जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त होता है, और अपर्याप्त होकर अल्पकाय वाले जीवों में उत्पन्न होता है, इसलिए उसमें अवधिज्ञान या विभंगज्ञान संभव नहीं। इस कारण से यहाँ दो ज्ञानों और दो अज्ञानों का ही उल्लेख है। यद्यपि आगे कहा जाएगा कि कोई जीव विभंगज्ञान के साथ नरक से निकल कर संख्यात वर्षों की आयु वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचों में उत्पन्न होता है, किंतु वह महाकायवालों में ही उत्पन्न हो सकता है, अल्पकाय वालों में नहीं। इसलिए कोई विरोध नहीं समझना चाहिए। अवगाहना में षट्स्थानपतित होता नहीं है।

मध्यम अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच अवगाहना एवं स्थिति की दृष्टि से चतु:स्थानपतित—चूंकि मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की होती है; अत: उसमें संख्यात-असंख्यातगुणहीनाधिकता हो सकती है तथा मध्यम अवगाहना वाला असंख्यातवर्ष की आयुवाला भी हो सकता है, इसलिए स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतु:स्थानपतित है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की पर्यायवक्तव्यता—उत्कृष्ट स्थिति वाले पंचेन्द्रियतिर्यंच तीन पल्योपम की स्थिति वाले होते हैं। अत: उनमें दो ज्ञान दो अज्ञान होते हैं। जो ज्ञान वाले होते हैं, वे वैमानिक की आयु बांध लेते हैं, तब दो ज्ञान होते हैं। इस आशय से उनमें दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान कहे हैं।[1]

मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित—मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपंचेन्द्रिय संख्यात अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाला भी हो सकता है, क्योंकि एक समय कम तीन पल्योपम की आयुवाला भी मध्यमस्थितिक कहलाता है। अत: वह चतु:स्थानपतित है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित—असंख्यात वर्ष की आयु वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में भी अपनी भूमिका के अनुसार जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान पाए जाते हैं। इसी प्रकार संख्यातवर्ष की आयु वालों में जघन्य मतिश्रुतज्ञान संभव होने से यहाँ स्थिति की अपेक्षा से इसे चतु:स्थानपतित कहा है।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से षट्स्थानपतित—क्योंकि आभिनिबोधिक ज्ञान के तरतमरूप पर्याय अनन्त होते हैं। अतएव उनमें अनन्तगुणहीनता-अधिकता भी हो सकती हैं।

मध्यम अवधिज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय स्वस्थान में षट्स्थानपतित—इसका मतलब है—वह स्वस्थान अर्थात् मध्यम अवधिज्ञान में षट्स्थानपतित होता है। एक मध्यम अवधिज्ञानी दूसरे मध्यम-अवधिज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय से षट्स्थानपतितहीना अधिक हो सकता है।

विभंगज्ञानी तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—चूंकि अवधिज्ञान और विभंगज्ञान असंख्यातवर्ष की आयु वाले को नहीं होता, अत:अवधिज्ञान और विभंगज्ञान में नियम से[2] त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९३-१९४, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी. भा. २, पृ. ७२१ से ७२७ तक

२ (क) प्रज्ञापना म. वृत्ति, पत्रांक १९४, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी. भा. २, पृ. ७२८ से ७३७ तक

जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादि वाले मनुष्यों की पर्यायप्ररूपणा—

४८९. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए मणूसे जहण्णोगाहणगस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८९-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता हैं कि 'जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, एवं तीन ज्ञान, दो अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । नवरं ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते— जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे, अह अब्भहिए असंखेज्जतिभागमब्भहिते; दो णाणा दो अण्णाणा दो दंसणा ।

[४८९-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो असंख्यातभाग हीन होता है, यदि अधिक हो तो असंख्यात भाग अधिक होता है । उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणाए वि एवं चेव । णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, आइल्लेहिं चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले ।

[४८९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले मनुष्यों का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९०. [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णठितीए मणुस्से जहण्णठितीयस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४९०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९०-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य हैं, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, दो अज्ञानों और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि । नवरं दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दंसणा ।

[४९०-२] उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों के (पर्यायों के विषय में) भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि (उनमें) दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन (पाए जाते) हैं ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, आदिल्लेहिं चउनाणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले ।

[४९०-३] मध्यमस्थिति वाले मनुष्यों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, एवं तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९१. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए मणूसे जहण्णगुणकालगस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, चउहिं णाणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले ।

[४९१-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९१-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्यगुण काले मनुष्यों के अनन्त-पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला मनुष्य दूसरे जघन्यगुण काले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है; तथा अवशिष्ट वर्णो, गन्धों, रसों और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[४९१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले मनुष्यों के (पर्यायों के) विषय में भी (समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४९१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले मनुष्यों का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं ।

४९२. एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा ।

[४९२] इसी प्रकार पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस एवं आठ स्पर्श वाले मनुष्यों का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए ।

४९३. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी मणूसे जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुतणाणपज्जवेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४९३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९३-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक-ज्ञानी

मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसाभिणिवोहियणाणी वि। नवरं आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, तिहिं णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४९३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिवोधिकज्ञानी (मनुष्यों की पर्यायों के विषय में जानना चाहिए।) विशेष यह है कि वह आभिनिवोधिकज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा तीन ज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी। णवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते, सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४९३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) आभिनिवोधिकज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में उत्कृष्ट आभिनिवोधिकज्ञानी मनुष्यों की तरह ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित हैं, तथा स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

४९४. एवं सुतणाणी वि।

[४९४] इसी प्रकार (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) श्रुतज्ञानी (मनुष्यों) के (पर्यायों के) विषय में (सारा पाठ कहना चाहिए।)

४९५. [१] जहण्णोहिणाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोहिणाणी मणुस्से जहण्णोहिणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठिईए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए, ओहिणाणपज्जवेहिं तुल्ले, मणपज्जवणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

[४९५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९५-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं (कि जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के अनन्त-पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित (पाठान्तर की दृष्टि से 'त्रिस्थानपतित') है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध,

रस और स्पर्श के पर्यायों एवं दो ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, मनःपर्यवज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

[४९५-२] इसी प्रकार का (कथन) उत्कृष्ट अवधिज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के विषय में (करना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

[४९५-३] इसी प्रकार मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि पाठान्तर की अपेक्षा से—'अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्वस्थान में वह षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४९६. जहा ओहिणाणी तहा मणपज्जवणाणी वि भाणितव्वे। नवरं ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए। जहा आभिणिवोहियणाणी तहा मतिअण्णाणी सुतअण्णाणी य भाणितव्वे। जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि भाणियव्वे। चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिवोहियणाणी। ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी। जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि।

[४९६] जैसा (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) अवधिज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के विषय में कहा, वैसा ही (जघन्यादियुक्त) मनःपर्यायज्ञानी (मनुष्यों) के (पर्यायों के) विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से (वह) त्रिस्थानपतित है। जैसा (जघन्यादियुक्त) आभिनिवोधिक ज्ञानियों के पर्यायों के विषय में कहा है, वैसा ही मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के विषय में (कहना चाहिए।) जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) अवधिज्ञानी (मनुष्यों) का (पर्याय-विषयक) कथन किया है, उसी प्रकार विभंगज्ञानी (मनुष्यों) का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए।

चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी (मनुष्यों) का (पर्यायविषयक) कथन आभिनिवोधिकज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायों) के समान है। अवधिदर्शनी का (पर्यायविषयक) कथन अवधिज्ञानी (मनुष्यों के पर्यायविषयक कथन) के समान है। जहाँ ज्ञान होते हैं, वहाँ अज्ञान नहीं होते जहाँ अज्ञान होते हैं, वहां ज्ञान नहीं होते और जहाँ दर्शन हैं, वहां ज्ञान एवं अज्ञान दोनों में से कोई भी संभव है।

४९७. केवलणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ केवलणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! केवलनाणी मणूसे केवलणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं केवलदंसणपज्जवेहि य तुल्ले।

[४९७ प्र.] भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४९७ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि 'केवलज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक केवलज्ञानी मनुष्य, दूसरे केवलज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, एवं केवलज्ञान के पर्यायों और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९८. एवं केवलदंसणी वि मणूसे भाणियव्वे ।

[४९८] (जैसे केवलज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में कहा गया,) वैसे ही केवलदर्शनी मनुष्यों के (पर्यायों के) विषय में कहना चाहिए ।

विवेचन—मनुष्यों के पर्यायों की विभिन्न अपेक्षाओं से प्ररूपणा—प्रस्तुत दस सूत्रों (सू. ४८९ से ४९८ तक) में जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान आदि वाले मनुष्य के पर्यायों की विविध अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है ।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्य स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य नियम से संख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है, इस दृष्टि से वह त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होता है, अर्थात् वह असंख्यात-संख्यातभाग एवं संख्यातगुण हीनाधिक ही होता है ।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्यों में तीन ज्ञानों और दो अज्ञानों की प्ररूपणा—किसी तीर्थंकर का अथवा अनुत्तरौपपातिक देव का अप्रतिपाती अवधिज्ञान के साथ जघन्य अवगाहना में उत्पाद होता है, तब जघन्य अवगाहना में भी अवधिज्ञान पाया जाता है । अतएव यहाँ तीन ज्ञानों का कथन किया गया है, किन्तु नरक से निकले हुए जीव का जघन्य अवगाहना में उत्पाद नहीं होता, क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है । इसलिए जघन्य अवगाहना में विभंगज्ञान नहीं पाया जाता; इस कारण यहाँ (मूलपाठ में) दो अज्ञानों की ही प्ररूपणा की गई है ।

उत्कृष्ट अवगाहनावाले मनुष्य की स्थिति की दृष्टि से हीनाधिकतुल्यता—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों की अवगाहना तीन गव्यूति (कोस) की होती है और उनकी स्थिति होती है—जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट पूरे तीन पल्योपम की । तीन पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग, तीन पल्योपमों का असंख्यातवाँ ही भाग है । अतएव पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम तीन पल्योपम वाला मनुष्य, तीन पल्योपम की स्थिति वाले मनुष्य से असंख्यात भागहीन होता है और पूर्ण तीन पल्योपम वाला मनुष्य उससे असंख्यातभाग अधिक स्थिति वाला होता है । इनमें अन्य किसी प्रकार की हीनता या अधिकता सम्भव नहीं है । इस प्रकार के किन्हीं दो मनुष्यों में कदाचित् स्थिति की तुल्यता भी होती है ।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में दो ज्ञान और दो अज्ञान की प्ररूपणा—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में मति और श्रुत, ये दो ही ज्ञान अथवा मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान, ये दो ही अज्ञान और दो ही दर्शन पाए जाते हैं । इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य

असंख्यातवर्ष की आयु वाले ही होते हैं, और असंख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्य में न तो अवधिज्ञान ही हो सकता है और न ही विभंगज्ञान, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है।

मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य अवगाहनापेक्षया चतुःस्थानपतित—मध्यम अवगाहना संख्यातवर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है और असंख्यतावर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है। असंख्यातवर्ष की आयु वाला मनुष्य भी एक या दो गव्यूत (गाऊ) की अवगाहना वाला होता है। अतः अवगाहना की अपेक्षा से इसे चतुःस्थानपतित कहा गया है।

चारों ज्ञानों की अपेक्षा से मध्यम-अवगाहनायुक्त मनुष्य षट्स्थानपतित—मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव, ये चारों ज्ञान द्रव्य आदि की अपेक्षा रखते हैं तथा क्षयोपशमजन्य हैं। क्षयोपशम में विचित्रता होती है, अतएव उनमें तरतमता होना स्वाभाविक है। इसी कारण चारों ज्ञानों की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्यों में षट्स्थानपतित हीनाधिकता बताई गई है।[1]

केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से वे तुल्य हैं—समस्त आवरणों के पूर्णतया क्षय से उत्पन्न होने वाले केवलज्ञान में किसी प्रकार की तरतमता नहीं होती; इसलिए केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्य तुल्य हैं।

जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों में दो अज्ञान ही क्यों?—सिद्धान्तानुसार सम्मूर्च्छिम मनुष्य ही जघन्य स्थिति के होते हैं और वे नियमतः मिथ्यादृष्टि होते हैं। इस कारण जघन्यस्थिति वाले मनुष्यों में दो अज्ञान ही हो सकते हैं, ज्ञान नहीं। अतः यहाँ ज्ञानों का उल्लेख नहीं किया गया है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों में दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन क्यों?—उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम की होती है। अतएव उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ही पाए जाते हैं। जो ज्ञान वाले होते हैं वे वैमानिक की आयु का बन्ध करते हैं, तब उनमें दो ज्ञान होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में अवधिज्ञान, अवधिदर्शन या विभंगज्ञान का अभाव होता है। इस कारण इनमें दो ज्ञानों, दो अज्ञानों और दर्शनों का उल्लेख किया गया है; तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों का नहीं।

मध्यमगुण कृष्ण मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित—मध्यमगुण कृष्णवर्ण के अनन्त तरतमरूप होते हैं, इस कारण वह स्वस्थान में भी षट्स्थानपतित होता है।

जघन्य और उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यों में ज्ञानादि का अन्तर—जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य के प्रबल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होने से उसमें अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान नहीं होते जबकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य में तीन ज्ञान और तीन दर्शन होते हैं।

उत्कृष्ट आभिनिबोधिक मनुष्य त्रिस्थानपतित—चूंकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य नियमतः संख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है। संख्यातवर्ष की आयुवाला मनुष्य स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित ही होता है; किन्तु जो असंख्यातवर्ष की आयुवाला होता है, उसे भवस्वभाव के कारण उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञान नहीं होता।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित—जैसे एक उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य, दूसरे उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी से तुल्य होता है, वैसे मध्यम आभिनिबो-

१. (क) प्रज्ञापना. म, वृत्ति, पत्रांक १९४, (ख) प्रज्ञापनाधिनो प्रमेयबो. टीका भा. २, पृ. ७५३ से ७५९ तक

धिकज्ञानी, मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी के तुल्य ही हो, ऐसा नियम नहीं है। इसलिए उनमें स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिकता सम्भव है।

जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित क्यों?— मनुष्यों में सर्वजघन्य अवधिज्ञान पारभविक (पूर्वभव से साथ आया हुआ) नहीं होता, किन्तु वह तद्भव (उसी भव) सम्बन्धी होता है और वह भी पर्याप्त-अवस्था में, अपर्याप्त अवस्था में उसके योग्य विशुद्धि नहीं होती तथा उत्कृष्ट अवधिज्ञान भाव से चारित्रवान् मनुष्य को होता है। इस कारण जघन्यावधिज्ञानी और उत्कृष्टावधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित ही होते हैं, किन्तु मध्यम अवधिज्ञानी चतुःस्थानपतित होता है, क्योंकि मध्यम अवधिज्ञान पारभविक भी हो सकता है, अतएव अपर्याप्त अवस्था में भी सम्भव है।

स्थिति की अपेक्षा से जघन्यादियुक्त अवधिज्ञानी मनुष्य त्रिस्थानपतित क्यों?—अवधिज्ञान असंख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्यों में सम्भव नहीं, वह संख्यातवर्ष की आयु वालों को ही होता है। अतः जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों में संख्यातवर्ष की आयु की दृष्टि से त्रिस्थान-पतित हीनाधिकता ही हो सकती है, चतुःस्थानपतित नहीं।

जघन्यादियुक्त मनःपर्यवज्ञानी स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—मनःपर्यायज्ञान चारित्रवान् मनुष्यों को ही होता है, और चारित्रवान् मनुष्य संख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते हैं। अतः जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट मनःपर्यायज्ञानी मानव स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित ही होते हैं।[1]

केवलज्ञानी मनुष्य अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित क्यों और कैसे?—यह कथन केवलीसमुद्घात की अपेक्षा से है, क्योंकि केवलीसमुद्घात करता हुआ केवलज्ञानी मनुष्य, अन्य केवली मनुष्यों की अपेक्षा असंख्यातगुणी अधिक अवगाहना वाला होता है और उसकी अपेक्षा अन्य केवली असंख्यातगुणहीन अवगाहना वाले होते हैं। अतः अवगाहना की दृष्टि से केवलज्ञानी मनुष्य चतुः-स्थानपतित होते हैं।

स्थिति की अपेक्षा केवलीमनुष्य त्रिस्थानपतित—सभी केवली संख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते हैं, अतएव उनमें चतुःस्थानपतित हीनाधिकता संभव नहीं है। इस कारण वे त्रिस्थानपतित हीनाधिक हैं।[2]

वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की पर्याय-प्ररूपणा—

४९९. [१] वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

[४९९-१] वाणव्यन्तर देवों में (पर्यायों की प्ररूपणा) असुरकुमारों के समान (समझ लेनी चाहिए।)

[२] एवं जोइसिया वेमाणिया। नवरं सट्ठाणे ठितीए तिट्ठाणवडिते भाणितव्वे। से त्तं जीवपज्जवा।

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९४-१९५-१९६, (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, भा-२, पृ. ७६०-७७०

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक १९६, (ख) प्रज्ञापना प्र. बोध. टीका भा-२, पृ. ७७२

[४९९-२] ज्योतिष्कों और वैमानिक देवों में (पर्यायों की प्ररूपणा भी इसी प्रकार की समझनी चाहिए)। विशेष बात यह है कि वे स्वस्थान में स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

यह जीव के पर्यायों को प्ररूपणा समाप्त हुई।

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४९९) में पूर्वोक्तसूत्रानुसार तीनों प्रकार के देवों के पर्यायों के कथन अतिदेशपूर्वक किया गया है।

अजीव-पर्याय

अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या—

५००. अजीवपज्जवा णं भंते कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—रूविअजीवपज्जवा य अरूविअजीवपज्जवा य ।

[५०० प्र.] भगवन् ! अजीवपर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[५०० उ.] गौतम ! (अजीवपर्याय) दो प्रकार के कहे हैं; वे इस प्रकार—(१) रूपी अजीव के पर्याय और अरूपी अजीव के पर्याय ।

५०१. अरूविअजीवपज्जवा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता । तं जहा—धम्मत्थिकाए १, धम्मत्थिकायस्स देसे २, धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मत्थिकाए ४, अधम्मत्थिकायस्स देसे ५, अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ६, आगासत्थिकाए ७, आगासत्थिकायस्स देसे ८, आगासत्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १० ।

[५०१ प्र.] भगवन् ! अरूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[५०१ उ.] गौतम ! वे दस प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) धर्मास्तिकाय, (२) धर्मास्तिकाय का देश, (३) धर्मास्तिकाय के प्रदेश, (४) अधर्मास्तिकाय, (५) अधर्मास्तिकाय का देश, (६) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, (७) आकाशास्तिकाय, (८) आकाशास्तिकाय का देश, (९) आकाशास्तिकाय के प्रदेश और (१०) अद्धासमय (काल) के पर्याय ।

५०२. रूविअजीवपज्जवा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउविहा पण्णत्ता । तं जहा—खंधा १, खंधदेसा २, खंधपदेसा ३, परमाणुपोग्गले ४ ।

[५०२ प्र.] भगवन् ! रूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[५०२ उ.] गौतम ! वे चार प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) स्कन्ध, (२) स्कन्धदेश, (३) स्कन्ध-प्रदेश और (४) परमाणुपुद्गल (के पर्याय) ।

५०३. ते णं भंते ! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?

गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा ! अणंता परमाणुपोग्गला, अणंता दुपदेसिया खंधा जाव अणंता दसपदेसिया खंधा, अणंता संखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता असंखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता अणंतपदेसिया खंधा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति—ते णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

[५०३ प्र.] भगवन् ! क्या वे (पूर्वोक्त रूपीअजीवपर्याय-चतुष्टय) संख्यात हैं, असंख्यात हैं, अथवा अनन्त हैं ?

[५०३ उ.] गौतम ! वे संख्यात नहीं असंख्यात नहीं, (किन्तु) अनन्त हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि वे (पूर्वोक्त चतुर्विध रूपी अजीवपर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, (किन्तु) अनन्त हैं ?

[उ.] गौतम ! परमाणु-पुद्गल अनन्त हैं; द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, यावत् दशप्रदेशिक-स्कन्ध अनन्त हैं, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, और अनन्त-प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वे न संख्यात हैं, न ही असंख्यात हैं, किन्तु अनन्त हैं ।

विवेचन—अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या—प्रस्तुत चार सूत्रों (सू. ५०० से ५०३ तक) में अजीवपर्याय, उसके मुख्य दो प्रकार, तथा अरूपी और रूपी अजीव-पर्याय के भेद एवं रूपी अजीवपर्यायों की संख्या का निरूपण किया गया है ।

रूपी और अरूपी अजीवपर्याय की परिभाषा—रूपी—जिसमें रूप हो, उसे रूपी कहते हैं । यहाँ 'रूप' शब्द से 'रूप' के अतिरिक्त 'गन्ध', रस और स्पर्श का भी उपलक्षण से ग्रहण किया जाता है । आशय यह है कि जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श हो, वह रूपी कहलाता है । रूपयुक्त अजीव को रूपी अजीव कहते हैं । रूपी अजीव पुद्गल ही होता है, इसलिए रूपी अजीव के पर्याय का अर्थ हुआ—पुद्गल के पर्याय । अरूपी का अर्थ है—जिसमें रूप (रस, गन्ध और स्पर्श) का अभाव हो, जो अमूर्त हो । अतः अरूपी अजीव-पर्याय का अर्थ हुआ—अमूर्त्त अजीव के पर्याय ।

धर्मास्तिकायादि की व्याख्या—धर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय का असंख्यातप्रदेशों का सम्पूर्ण (अखण्डित) पिण्ड (अवयवी द्रव्य) । धर्मास्तिकायदेश—धर्मास्तिकाय का अर्द्ध आदि भाग । धर्मा-स्तिकायप्रदेश—धर्मास्तिकाय के निरंश (सूक्ष्मतम) अंश । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशा-स्तिकाय आदि के त्रिकों को समझ लेना चाहिए । अद्धासमय अप्रदेशी कालद्रव्य ।[1]

द्रव्यों का कथन या पर्याय का ?—पर्यायों की प्ररूपणा के प्रसंग में यहाँ पर्यायों का कथन करना उचित था, उसके बदले द्रव्यों का कथन इसलिए किया गया है कि पर्याय और पर्यायी (द्रव्य) कथंचित् अभिन्न हैं, इस बात की प्रतीति हो । वस्तुतः धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकायदेश आदि पदों के उल्लेख से उन-उन धर्मास्तिकायादि त्रिकों तथा अद्धासमय के पर्याय ही विवक्षित हैं, द्रव्य नहीं ।[2]

परमाणुपुद्गल आदि की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता—

५०४. परमाणुपोग्गलाणं भंते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

---

१. प्रज्ञापना मलय. वृत्ति, पत्रांक २०२

२. वही, मलय. वृत्ति, पत्रांक २०२

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाते तुल्ले, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिगुणहीणे वा असंखेज्जतिगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असंखेज्जतिभागअब्भहिए वा संखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भहिए वा असंखेगुणअब्भहिते वा; कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा अणंतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणंतभागमब्भहिते वा असंखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भहिते वा संखेज्जगुणमब्भहिए वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा अणंतगुणमब्भहिए वा; एवं अवसेसवण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, फासा णं सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५०४ प्र.] भगवन् ! परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०४ उ.] गौतम ! परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक परमाणुपुद्गल, दूसरे परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है; अवगाहना की दृष्टि से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अभ्यधिक है । यदि हीन है, तो असंख्यातभाग हीन है, संख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातगुण हीन है, अथवा असंख्यातगुण हीन है; यदि अधिक है, तो असंख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातभाग अधिक है, या संख्यातगुण अधिक है, अथवा असंख्यातगुण अधिक है । कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो अनन्तभाग हीन है, या असंख्यातभाग-हीन है अथवा संख्यातभाग हीन है; अथवा संख्यातगुण हीन है, असंख्यातगुण हीन है या अनन्तगुण-हीन है । यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक है, असंख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातभाग अधिक है । अथवा संख्यातगुण अधिक है, असंख्यातगुण अधिक है, या अनन्तगुण अधिक है । इसी प्रकार अवशिष्ट (काले वर्ण के सिवाय बाकी के) वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । स्पर्शों में शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा गया है कि परमाणु-पुद्गलों के अनन्त पर्याय प्ररूपित हैं ।

५०५. दुपदेसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! दुपदेसिए दुपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भहिते पदेसमब्भहिते; ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादीहिं उवरिल्लेहिं चउहिं फासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५०५ प्र.] भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०५ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया हैं कि द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य हैं, अवगाहना की अपेक्षा कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है। यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित होता है, वर्ण आदि की अपेक्षा से और उपर्युक्त चार (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष) स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

५०६. एवं तिपएसिए वि। नवरं ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे पएसहीणे वा दुपएसहीणे वा, अह अब्भहिते पएसमब्भहिते वा दुपएसमब्भहिते वा।

[५०६] इसी प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्धों के (पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।) विशेषता यह हैं कि अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेशहीन या द्विप्रदेशों से हीन होता है। यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक अथवा दो प्रदेश अधिक होता है।

५०७. एवं जाव दसपएसिए। नवरं ओगाहणाए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपएसिए णवपएसहीणे त्ति।

[५०७] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशिक स्कन्धों तक का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से प्रदेशों की (क्रमशः) वृद्धि करना चाहिए; यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध नौ प्रदेश-हीन तक होता है।

५०८. संखेज्जपदेसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! संखेज्जपएसिए खंधे संखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले; पदेसट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भइए एवं चेव; ओगाहणट्ठयाए वि दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५०८ प्र.] भगवन् ! संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०८ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से

तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो, संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन होता है। यदि अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक यासंख्यात गुण अधिक होता है। अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित होता है। वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

५०९. असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! असंखेज्जपएसिए खंधे असंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५०९ प्र.] भगवन् ! असंख्यातप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५०९ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि असंख्यातप्रदेशिक स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५१०. अणंतपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५१० प्र.] भगवन् ! अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१० उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५११. एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! एगपएसोगाढ-पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५११ प्र.] भगवन् ! एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५११ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक प्रदेश में अवगाढ एक पुद्गल, दूसरे एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा मे चतु:स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१२. एवं दुपएसोगाढे वि जाव दसपएसोगाढे ।

[५१२] इसी प्रकार द्विप्रदेशावगाढ से दशप्रदेशावगाढ स्कन्धों तक के पर्यायों की वक्तव्यता समझ लेना चाहिए ।

५१३. संखेज्जपएसोगाढाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! संखेज्जपएसोगाढे पोग्गले संखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णाइ-उवरिल्ल-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५१३ प्र.] भगवन् ! संख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि संख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धों (पुद्गलों) के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१४. असंखेज्जपएसोगाढाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले असंखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५१४ प्र.] भगवन् ! असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१४ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.[गौतम ! एक असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१५. एगसमयठितीयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! एगसमयठितीए पोग्गले एगसमयठितीयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासेहि छट्ठाणवडिते ।

[५१५ प्र.] भगवन् ! एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१५ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक समय की स्थिति वाला एक पुद्गल, दूसरे एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१६. एवं जाव दससमयठिईए ।

[५१६] इस प्रकार यावत् दस समय की स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए ।

५१७. संखेज्जसमयठितीयाणं एवं चेव । नवरं ठितीए दुट्ठाणवडिते ।

[५१७] संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है ।

५१८. असंखेज्जसमयठितीयाणं एवं चेव । नवरं ठिईए चउट्ठाणवडिते ।

[५१८] असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार है । विशेषता यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है ।

५१९. एगगुणकालगाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! एगगुणकालए पोग्गले[1] एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, अट्ठहिं फासेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५१९ प्र.] भगवन् ! एकगुण काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१९ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक गुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक गुण काला एक पुद्गल, दूसरे एक गुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवशिष्ट (कृष्णवर्ण के अतिरिक्त अन्य) वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एवं अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से (भी) षट्स्थानपतित है ।

५२०. एवं जाव दसगुणकालए ।

[५२०] इसी प्रकार यावत् दश गुण काले (पुद्गलों) की (पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए ।)

५२१. संखेज्जगुणकालए वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिते ।

[५२१] संख्यातगुण काले (पुद्गलों) का (पर्याय विषयक कथन) भी इसी प्रकार (जानना चाहिए ।) विशेषता यह है कि (वे) स्वस्थान में द्विस्थानपतित हैं ।

---

१. ग्रन्थाग्रम् ३०००

५२२. एवं असंखेज्जगुणकालए वि। णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[५२२] इसी प्रकार असंख्यातगुण काले (पुद्गलों) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान में चतुःस्थानपतित हैं।

५२३. एवं अणंतगुणकालए वि। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५२३] इसी तरह अनन्तगुण काले (पुद्गलों) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

५२४. एवं जहा कालवण्णस्स वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण-गंध-रस-फासाणं वत्तव्वया भाणितव्वा जाव अणंतगुणलुक्खे।

[५२४] इसी प्रकार जैसे कृष्णवर्ण वाले (पुद्गलों) की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता कही है,) वैसे ही शेष सब वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों (वाले पुद्गलों) की (पर्यायसम्बन्धी) वक्तव्यता यावत् अनन्तगुण रूक्ष (पुद्गलों) की (पर्यायों सम्बन्धी) वक्तव्यता तक कहनी चाहिए।

विवेचन—परमाणुपुद्गल आदि की पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रों (सू. ५०४ से ५२४ तक) में विविध प्रकार के पुद्गलों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है।

रूपी-अजीव-पर्यायप्ररूपणा का क्रम—(१) परमाणुपुद्गल तथा द्वि-त्रि-दश-संख्यात-असंख्यात-अनन्तप्रदेशिक पुद्गलों के विषय में, (२) आकाशीय एकप्रदेशावगाढ से लेकर असंख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गलों के विषय में, (३) एकसमयस्थितिक से असंख्यातसमयस्थितिक पुद्गलों के विषय में, (४) एकगुण कृष्ण से अनन्तगुण कृष्ण पुद्गलों के विषय में तथा शेष वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श पुद्गलों के विषय में पर्याय-प्ररूपणा क्रमशः की गई है।[1]

परमाणुपुद्गलों में अनन्तपर्यायों की सिद्धि—प्रस्तुत में यह प्रतिपादन किया गया है कि परमाणु द्रव्य और प्रत्येक द्रव्य अनन्त पर्यायों से युक्त होता है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य होता है, क्योंकि प्रत्येक परमाणु एक-एक स्वतंत्र द्रव्य है। वह निरंश ही होता है तथा नियमतः आकाश के एक ही प्रदेश में अवगाहन करके रहता है। इसलिए इन तीनों की अपेक्षा से वह तुल्य है। किन्तु स्थिति की अपेक्षा से एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतुःस्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योंकि परमाणु की जघन्य स्थिति एक समय की और उत्कृष्ट असंख्यात काल की है, अर्थात्—कोई पुद्गल परमाणुरूप पर्याय में कम से कम एक समय तक रहता है और अधिक से अधिक असंख्यात काल तक रह सकता है। इसलिए सिद्ध है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतुःस्थानपतित हीन या अधिक होता है तथा वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श, विशेषतः चतुःस्पर्शों की अपेक्षा परमाणु-पुद्गल में षट्स्थानपतित हीनाधिकता होती है। अर्थात्—वह असंख्यात-संख्यात-अनन्तभागहीन, या संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुण हीन अथवा असंख्यात-संख्यात-अनन्तभाग अधिक अथवा संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुण अधिक है।

---

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठटिप्पणयुक्त) भाग १, पृ. १५१ से १५४ तक

प्रदेशहीन परमाणु में अनन्त पर्याय कैसे ?—परमाणु को जो 'अप्रदेशी' कहा गया है, वह सिर्फ द्रव्य की अपेक्षा से है, काल और भाव की अपेक्षा से वह अप्रदेशी या निरंश नहीं है।

परमाणु: चतु:स्पर्शी और षट्स्थानपतित—एक परमाणु में आठ स्पर्शों में से सिर्फ चार स्पर्श ही होते हैं। वे ये हैं—शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष। बल्कि असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक में ये चार ही स्पर्श होते हैं। कोई-कोई अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी चार स्पर्श वाले होते हैं। इसी प्रकार एक-प्रदेशावगाढ से लेकर संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल (स्कन्ध) भी चार स्पर्शों वाले होते हैं। अत: इन अपेक्षाओं से परमाणु को षट्स्थानपतित समझना चाहिए।[1]

द्विप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से हीन, अधिक और तुल्य : क्यों और कैसे ?—जब दो द्विप्रदेशी स्कन्ध आकाश के दो-दो प्रदेशों या दोनों—एक-एक प्रदेश में अवगाढ हों, तब उनकी अवगाहना तुल्य होती है। किन्तु जब एक द्विप्रदेशी स्कन्ध एक प्रदेश में अवगाढ हो और दूसरा दो प्रदेशों में, तब उनमें अवगाहना की दृष्टि से हीनाधिकता होती है। जो एक प्रदेश में अवगाढ है, वह दो प्रदेशों में अवगाढ स्कन्ध की अपेक्षा एकप्रदेश हीन अवगाहना वाला कहलाता है, जबकि दो प्रदेशों में अवगाढ स्कन्ध एकप्रदेशावगाढ की अपेक्षा एकप्रदेश-अधिक अवगाहना वाला कहलाता है। द्विप्रदेशी स्कन्धों की अवगाहना में इससे अधिक हीनाधिकता सभव नहीं है।

त्रिप्रदेशी स्कन्धों में हीनाधिकता : अवगाहना की दृष्टि से—तीन प्रदेशों का पिण्ड त्रिप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। वह आकाश के एक प्रदेश में भी रह सकता है, दो प्रदेशों में भी और तीन आकाश प्रदेशों में भी रह सकता है। तीन आकाशप्रदेशों से अधिक में उसकी अवगाहना संभव नहीं। ऐसी स्थिति में यदि त्रिप्रदेशी स्कन्धों की अवगाहना में हीनता और अधिकता हो तो एक या दो आकाशप्रदेशों की ही हो सकती है, अधिक की नहीं।

दशप्रदेशी स्कन्ध तक की हीनाधिकता : अवगाहना की दृष्टि से—जब दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध तीन-तीन प्रदेशों में, दो-दो प्रदेशों में या एक-एक प्रदेश में अवगाढ होते हैं, तब वे अवगाहना की दृष्टि से परस्पर तुल्य होते हैं, किन्तु जब एक त्रिप्रदेशीस्कन्ध त्रिप्रदेशावगाढ और दूसरा द्विप्रदेशाव-गाढ होता है, तब वह एकप्रदेशहीन होता है। यदि दूसरा एकप्रदेशावगाढ होता है तो वह द्विप्रदेशहीन होता है और वह त्रिप्रदेशावगाढ़ द्विप्रदेशावगाढ़ से एकप्रदेशाधिक और एकप्रदेशावगाढ से द्विप्रदेशाधिक होता है। इस प्रकार एक-एक प्रदेश बढ़ा कर चारप्रदेशी से दशप्रदेशी तक के स्कन्धों में अवगाहना की अपेक्षा से हानिवृद्धि का कथन कर लेना चाहिए। इस दृष्टि से दशप्रदेशी स्कन्ध में हीनाधिकता इस प्रकार कही जाएगी—दशप्रदेशी स्कन्ध जब हीन होता है तो एकप्रदेशहीन, द्विप्रदेशहीन यावत् नौप्रदेशहीन होता है और अधिक तो एकप्रदेशाधिक यावत् नवप्रदेशाधिक होता है।[2]

संख्यातप्रदेशी स्कन्ध की अनन्तपर्यायता—संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य-दृष्टि से तुल्य होता है। वह द्रव्य है, इस कारण अनन्तपर्याय वाला भी है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याययुक्त होता है। प्रदेशों की दृष्टि से वह हीन, तुल्य या अधिक भी हो सकता है। यदि हीन या अधिक हो तो संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन अथवा संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०१, (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी पृ. ७९८-८०१

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०१, (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका पृ. ८०६-८०७

अधिक होता है। इसीलिए इसे द्विस्थानपतित कहा है। अवगाहना की दृष्टि से भी वह द्विस्थानपतित है। स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है। वर्णादि में तथा पूर्वोक्त चतु:स्पर्शों में षट्स्थानपतित समझना चाहिए।

अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित ही क्यों? अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित ही होता है, षट्स्थानपतित नहीं, क्योंकि लोकाकाश के असंख्यातप्रदेश ही हैं और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अधिक से अधिक असंख्यात प्रदेशों में ही अवगाहन करता है। अतएव उसमें अनन्तभाग एवं अनन्तगुण हानि-वृद्धि की सम्भावना नहीं है। इस कारण वह षट्स्थानपतित नहीं हो सकता। हाँ, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से वर्णादि की दृष्टि से अनन्त-असंख्यात-संख्यातभाग हीन, अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण हीन, अनन्तगुण हीन और इसी प्रकार अधिक भी हो सकता है। इसलिए इसमें षट्स्थानपतित हो सकता है।[1]

एकप्रदेशावगाढ़ परमाणु प्रदेशों की दृष्टि से षट्स्थानपतित हानिवृद्धिशील—द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य होने पर भी प्रदेशों की अपेक्षा से इसमें षट्स्थानपतित हीनाधिकता है; क्योंकि एकप्रदेशी परमाणु भी एक प्रदेश में रहता है और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक ही प्रदेश में रह सकता है। किन्तु अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है। स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है तथा वर्णादि एवं चतु:स्पर्शों की दृष्टि से षट्स्थानपतित होता है।

असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित—चूंकि लोकाकाश के असंख्यात ही प्रदेश हैं, जिनमें पुद्गलों का अवगाहन है। अत: अनन्तप्रदेशों में किसी भी पुद्गल की अवगाहना संभव नहीं है।[2]

संख्यातगुण काला पुद्गल स्वस्थान में द्विस्थानपतित—संख्यातगुण काला पुद्गल या तो संख्यातभाग हीन कृष्ण होता है अथवा संख्यातगुण हीन कृष्ण होता है। अगर अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है।

अनन्तगुण काला पुद्गल स्वस्थान में षट्स्थानपतित—अनन्तगुण काले एक पुद्गल में दूसरा अनन्तगुण काला पुद्गल अनन्तभाग हीन, असंख्यातभाग हीन, संख्यातभाग हीन अथवा संख्यातगुण हीन, असंख्यातगुण हीन अनन्तगुण हीन होता है। यानी वह षट्स्थानपतित होता है।[3]

जघन्यादि विशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक की पर्यायप्ररूपणा—

५२५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! दुपएसियाणं पुच्छा।
गोयमा ! अणंता।
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

---

१. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०२, (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८११ से ८१३
२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०३, (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८१४ से ८१९ तक
३. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०३-२०४, (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८२१-८२२

गोयमा ! जहण्णोगाहणए दुपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स दुपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सेसवण्ण-गंध-रसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोतमा ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाणं दुपएसियाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५२५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्‌गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५२५-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्ण वर्ण के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, शेष वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित है तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशिक पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव ।

[५२५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले [द्विप्रदेशी पुद्‌गल-(स्कन्धों) के पर्यायों] के विषय में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणओ नत्थि ।

[५२५-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध नहीं होते ।

५२६. [१] जहण्णोगाहणयाणं भंते ! तिपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहा दुपएसिते जहण्णोगाहणते ।

[५२६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्‌गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५२६-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! जैसे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी (पुद्‌गलों की पर्यायविषयक वक्तव्यता कही है,) वैसी ही (वक्तव्यता) जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्‌गलों के विषय में कहनी चाहिए ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

[५२६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि।

[५२६-३] इसी तरह मध्यम अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के (पर्यायों के) विषय में (कहना चाहिए।)

५२७. [१] जहण्णोगाहणयाणं भंते ! चउपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहा जहण्णोगाहणए दुपएसिते तहा जहण्णोगाहणए चउपएसिते।

[५२७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय कितने कहे हैं ?

[५२७-१ उ.] गौतम ! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गल-पर्याय जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय की तरह (समझना चाहिए।)

[२] एवं जहा उक्कोसोगाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पएसिए वि।

[५२७-२] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों का कथन किया गया है, उसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गल-पर्यायों का कथन करना चाहिये।

[३] एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि चउप्पएसिते। णवरं ओगाहणट्ठयाते सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भइए—जति हीणे पएसहीणे, अहऽब्भइते पएसब्भतिए।

[५२७-३] इसी प्रकार मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी स्कन्ध का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य, कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है।

५२८. एवं जाव दसपएसिए णेयव्वं। णवरमजहण्णुक्कोसोगाहणए पदेसपरिवुड्ढी कातव्वा, जाव दसपएसियस्स सत्त पएसा परिवड्ढिज्जंति।

[५२८] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले में एक-एक प्रदेश की परिवृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार यावत् दशप्रदेशी तक सात प्रदेश बढ़ते हैं।

५२९. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! संखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणगे संखेज्जपएसिए जहण्णोगाहणगस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पएसट्ठयाते दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिए, वण्णादि-चउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५२९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५२९-१ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'जघन्य अवगाहना वाले संख्यात-प्रदेशी पुद्गलों (स्कन्धों) के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्णादि चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि ।

[५२९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले (संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिते ।

[५२९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय-विषयक कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्वस्थान में (अवगाहना की अपेक्षा से) द्विस्थानपतित है ।

५३०. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता !

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए असंखेज्जपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स असंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाण-वडिते, वण्णादि-उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३०-१ उ.] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात-प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसोगाहणए वि ।

[५३०-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय) के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते ।

[५३०-३] मध्यम अवगाहना वाले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों) का (पर्याय-विषयक कथन भी) इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि (वह) स्वस्थान में चतु:स्थानपतित है ।

५३१. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए अणंतपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहिं छट्ठाणवडिए ।

[५३१-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३१-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । नवरं ठितीए वि तुल्ले ।

[५३१-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का (पर्यायविषयक कथन) भी इसी प्रकार (समझना चाहिए ।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा भी तुल्य है ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए अणंतपएसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५३१-३ प्र.] भगवन् ! मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३५-३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! मध्यम अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५३२. [१] जहण्णठितीयाणं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए परमाणुपोग्गले जहण्णठितीयस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-दुफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल के कितने पर्याय कहे गए हैं ?
[५३२-१ उ.] गौतम ! (उसके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)
[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है तथा स्थिति की अपेक्षा से (भी) तुल्य है एवं वर्णादि तथा दो स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[५३२-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलों के पर्यायों) के विषय में (समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३२-३] मध्यम स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलों के पर्यायों) के विषय में भी इसी प्रकार (कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है ।

५३३. [१] जहण्णठितीयाणं दुपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! ?

गोयमा ! जहण्णठितीए दुपएसिते जहण्णठितीयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए । जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पदेसब्भतिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?
[५३३-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।
[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन और यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है और वर्णादि तथा चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि।

[५३३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[५३३-३] मध्यम स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से वह चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है।

५३४. एवं जाव दसपदेसिते। नवरं पदेसपरिवुड्ढी कातव्वा। ओगाहणट्ठयाए तिसु वि गमएसु जाव दसपएसिए णव पएसा वड्ढिज्जंति।

[५३४] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि इसमें एक-एक प्रदेश की क्रमशः परिवृद्धि करनी चाहिए। अवगाहना के तीनों गमों (आलापकों) में यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक ऐसे ही कहना चाहिए। (क्रमशः) नौ प्रदेशों की वृद्धि हो जाती है।

५३५. [१] जहण्णट्ठितीयाणं भंते ! संखेज्जपदेसियाणं पुच्छा।
गोयमा ! अणंता।
से केणट्ठेणं ?
गोयमा ! जहण्णट्ठितीए संखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णठितीयस्स संखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३५-१ प्र.] जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?
[५३५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे गए हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा चतुःस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[५३५-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसट्ठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३५-३] मध्यम स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है ।

५३६. [१] जहण्णठितीयाणं असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए असंखेज्जपएसिए जहण्णठितीयस्स असंखेज्जपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-उवरिल्ल-चउप्फासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३६-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठिईए वि ।

[५३६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३६-३] मध्यम स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है ।

५३७. [१] जहण्णठितीयाणं अणंतपदेसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए अणंतपएसिए जहण्णठितीयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३७-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से तुल्य है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[५३७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्यायों के विषय में समझना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एवं चेव । नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३७-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है ।

विवेचन—जघन्यादिविशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रों (सू. ५२५ से ५३७ तक) में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना एवं स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों तथा द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, यावत् संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है ।

जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों में शीत, उष्ण, रूक्ष और स्निग्ध, ये चार स्पर्श ही पाए जाते हैं, इनमें शेष कर्कश, कठोर, हलका (लघु) और भारी (गुरु), ये चार स्पर्श नहीं पाए जाते । इनमें षट्स्थानपतित हीनाधिकता पाई जाती है ।

द्विप्रदेशीस्कन्ध में मध्यम अवगाहना नहीं होती—दो परमाणुओं का पिण्ड द्विप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है । उसकी अवगाहना या तो आकाश के एक प्रदेश में होगी अथवा अधिक से अधिक दो आकाशप्रदेशों में होगी । एक प्रदेश में जो अवगाहना होती है, वह जघन्य अवगाहना है और दो प्रदेशों में जो अवगाहना है, वह उत्कृष्ट है । इन दोनों के बीच की कोई अवगाहना नहीं होती । अतएव मध्यम अवगाहना का अभाव है ।

मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी स्कन्धों की हीनाधिकता—चतुःप्रदेशी स्कन्ध की जघन्य अवगाहना एक प्रदेश में और उत्कृष्ट अवगाहना चार प्रदेशों में होती है । मध्यम अवगाहना दो प्रकार की है—दो प्रदेशों में और तीन प्रदेशों में । अतएव मध्यम अवगाहना वाले एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध से दूसरा चतुःप्रदेशी स्कन्ध यदि अवगाहना से हीन होगा तो एकप्रदेशहीन ही होगा और अधिक होगा तो एकप्रदेशाधिक ही होगा । इससे अधिक हीनाधिकता उनमें नहीं हो सकती ।

मध्यमावगाहनाशील चतुःप्रदेशी से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक-प्रदेशवृद्धि-हानि—मध्यम अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्ध से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश की वृद्धि-हानि होती है। तदनुसार चतु:प्रदेशी स्कन्ध में एक, पंचप्रदेशी स्कन्ध में दो, षट्प्रदेशी स्कन्ध में तीन, सप्तप्रदेशी स्कन्ध में चार, अष्टप्रदेशी स्कन्ध में पांच, नवप्रदेशी स्कन्ध में छह और दशप्रदेशी स्कन्ध में सात प्रदेशों की वृद्धि-हानि होती है।

जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों से द्विस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी एक स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से संख्यातभाग प्रदेशहीन या संख्यातगुण प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यातभागप्रदेशाधिक अथवा संख्यातगुणप्रदेशाधिक होता है। इसीलिए इसे प्रदेशों की दृष्टि से द्विस्थानपतित कहा गया है।

मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध स्वस्थान में द्विस्थानपतित—एक मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे मध्यम अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की दृष्टि से संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन होता है, अथवा संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है।

मध्यम अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा—इसकी पर्याय-प्ररूपणा जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा के समान ही है। मध्यम अवगाहना वाले अर्थात्—आकाश के दो से लेकर असंख्यात प्रदेशों में स्थित पुद्गलस्कन्ध की पर्यायप्ररूपणा इसी प्रकार है, किन्तु विशेष बात यह है कि स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का अर्थ—आकाश के दो आदि प्रदेशों से लेकर असंख्यातप्रदेशों में रहे हुए मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कहलाते हैं।[1]

जघन्यस्थितिक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की दृष्टि से द्विस्थानपतित—यदि हीन हो तो संख्यातभाग हीन या संख्यातगुण हीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यातभाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है। इसलिए यह द्विस्थानपतित है।[2]

जघन्यादियुक्त वर्णादियुक्त पुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा—

५३८. [१] जहण्णगुणकालयाणं परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए परमाणुपोग्गले जहण्णगुणकालगस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसा वण्णा णत्थि, गंध-रस-फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३८. १ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३८-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०३, (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका, पृ. ८४१ से ८५८ तक

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति, पत्रांक २०४, (ख) प्रज्ञापना प्र. बो. टीका, पृ. ८५९-८६०

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्ण नहीं होते तथा गन्ध, रस और दो स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५३८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा समझनी चाहिए ।)

[३] एवमजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५३८-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले परमाणुपुद्गलों की भी पर्याय-प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए । विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

५३९. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! दुपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए दुपएसिए जहण्णगुणकालगस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भतिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पएसमब्भतिए; ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसवण्णादि-उवरिल्ल-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३९-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले द्विप्रदेशिक स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

[५३९-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले (द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है; अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है । स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५३९-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा समझनी चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५३९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित कहना चाहिए।

५४०. एवं जाव दसपएसिते। णवरं पएसपरिवुड्ढी, ओगाहणा तहेव।

[५४०] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए। अवगाहना से उसी प्रकार है।

५४१. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! संखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं?

गोयमा! जहण्णगुणकालए संखेज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पएसट्ठयाते दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५४१-१ प्र.] भगवन्! जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे हैं?

[५४१-१ उ.] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र:] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि (जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं?)

[उ.] गौतम! एक जघन्यगुण काला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[५४१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५४१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट(मध्यम) गुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।) विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५४२. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते! असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा! अणंता।

से केणट्ठेणं?

गोयमा! जहण्णगुणकालए असंखेज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स असंखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठ-

याए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५४२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५४२-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि (जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला असंख्यातप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतु:स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है तथा कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५४२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय-विषयक कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४२-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले (असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए ।) विशेष इतना है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

५४३. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए अणंतपएसिए जहण्णगुणकालयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५४३-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणकाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५४३-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवशिष्ट वर्ण आदि एवं अष्टस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५४३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में जानना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४३-३] इसी प्रकार (का पर्याय-विषयक कथन) मध्यमगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का करना चाहिए ।)

५४४. एवं नील-लोहित-हालिद्द-सुक्किल्ल-सुब्भिगंध-दुब्भिगंध-तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुर-रसपज्जवेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा । नवरं परमाणुपोग्गलस्स सुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो न भण्णति, दुब्भिगंधस्स सुब्भिगंधो न भण्णति, तित्तस्स अवसेसा ण भण्णंति । एवं कडुयादीण वि । सेसं तं चेव ।

[५४४] इसी प्रकार नील, रक्त, हारिद्र (पीत), शुक्ल (श्वेत), सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त (तीखा), कटु, काषाय, आम्ल (खट्टा), मधुर रस के पर्यायों से भी अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि सुगन्ध वाले परमाणुपुद्गल में दुर्गन्ध नहीं कहा जाता और दुर्गन्ध वाले परमाणुपुद्गल में सुगन्ध नहीं कहा जाता । तिक्त (तीखे) रस वाले में शेष रस का कथन नहीं करना चाहिए, कटु आदि रसों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए । शेष सब बातें उसी तरह (पूर्ववत्) ही हैं ।

५४५. [१] जहण्णगुणकक्खडाणं अणंतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकक्खडे अणंतपएसिए जहण्णगुणकक्खडस्स अणंतपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रसेहिं छट्ठाणवडिते, कक्खडफासपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५४५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[५४५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र.] भगवन् ! किस आशय से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है एवं वर्ण, गन्ध एवं रस की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, कर्कशस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हैं ।

[२] एवं उक्कोसगुणकक्खडे वि ।

[५४५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकक्खडे वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४५-३] मध्यमगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५४६. एवं मउय-गरुय-लहुए वि भाणितव्वे ।

[५४६] मृदु, गुरु (भारी) और लघु (हलके) स्पर्श वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय-विषय में भी इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

५४७. [१] जहण्णगुणसीयाणं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते परमाणुपोग्गले जहण्णगुणसीतस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रसेहिं छट्ठाण-वडिते, सीतफासपज्जवेहि य तुल्ले, उसिणफासो न भण्णति, णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५४७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५४८-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध और रसों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायों से तुल्य है। इसमें उष्णस्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए। स्निग्ध और रूक्षस्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोगुणसीते वि ।

[५४७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (परमाणुपुद्गलों) के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४७-३] मध्यमगुण शीत (परमाणुपुद्गलों) के (पर्यायों के सम्बन्ध में भी) इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

५४८. [१] जहण्णगुणसीयाणं दुपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहन्नगुणसीते दुपएसिए जहण्णगुणसीयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जइ हीणे पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसमब्भतिए; ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

[५४८-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५४८-१उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एवं शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीए वि।

[५४८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (द्विप्रदेशी स्कन्धों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

[५४८-३] मध्यमगुणशीत (द्विप्रदेशी स्कन्धों) का पर्यायसम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

५४९. एवं जाव दसपएसिए। नवरं ओगाहणट्ठयाए पदेसपरिवड्ढी कायव्वा जाव दसपएसियस्स णव पएसा वड्ढिज्जंति।

[५४९] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्धों तक का (पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्य समझ लेना चाहिए।) विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से पर्यायों की वृद्धि करनी चाहिए। (इस दृष्टि से) यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक नौ प्रदेश बढ़ते हैं।

५५०. [१] जहण्णगुणसीयाणं संखेज्जपएसियाणं भंते ! पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते संखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णाईहिं छट्ठाणवडिए, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खेहिं छट्ठाणवडिए।

[५५०-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५०-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है; स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रुक्ष स्पर्श की दृष्टि से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीए वि।

[५५०-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण शीत(संख्यातप्रदेशी स्कन्धों की भी पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा समझनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

[५५०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण शीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय सम्बन्धी कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५५१. [१] जहण्णगुणसीताणं असंखेज्जपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते असंखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स असंखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादिपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५५१-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५१-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एवं उक्कोसगुणसीते वि ।

[५५१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५५१-३] मध्यमगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित होता है ।

५५२. [१] जहण्णगुणसीताणं अणंतपदेसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते अणंतपदेसिए जहण्णगुणसीतस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते वण्णादिपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५५२-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५२-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणसीते वि ।

[५५२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एवं चेव । नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५५२-३] मध्यमगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा भी इसी प्रकार करनी चाहिए । विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है ।

५५३. एवं उसिणे णिद्धे लुक्खे जहा सीते । परमाणुपोग्गलस्स तहेव पडिवक्खो, सव्वेसिं न भण्णइ त्ति भाणितव्वं ।

[५५३] जिस प्रकार [जघन्यादियुक्त] शीतस्पर्श-स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहा गया

है, उसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों [वाले उन-उन स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।) इसी प्रकार परमाणुद्गल में इन सभी का प्रतिपक्ष नहीं कहा जाता, यह कहना चाहिए।

विवेचना—जघन्यादियुक्त वर्णादि-पुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा—प्रस्तुत सोलह सूत्रों (सू. ५३८ से ५५३ तक) में कृष्णादि वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्शों के परमाणुपुद्गलों, द्विप्रदेशी से संख्यात-असंख्यात-अनन्त प्रदेशी स्कन्धों तक के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

कृष्णादि वर्णों तथा गन्ध-रस-स्पर्शों के पर्याय—कृष्ण, नील आदि पाँच वर्णों, दो प्रकार के गन्धों, पांच प्रकार के रसों और आठ प्रकार के स्पर्शों के प्रत्येक के तरतमभाव की अपेक्षा से अनन्त-अनन्त विकल्प होते हैं। तदनुसार कृष्ण आदि अनन्त-अनन्त प्रकार के हैं।

जघन्यगुण उत्कृष्टगुण एवं मध्यमगुण कृष्णादि वर्ण की व्याख्या—कृष्णवर्ण की सबसे कम मात्रा जिसमें पाई जाती है, वह पुद्गल **जघन्यगुण काला** कहलाता है। यहाँ गुणशब्द अंश या मात्रा के अर्थ में प्रयुक्त है। जघन्यगुण का अर्थ है—सबसे कम अंश। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिस पुद्गल में केवल एक डिग्री का कालापन हो—जिससे कम कालापन का सम्भव ही न हो, वह **जघन्यगुण काला** समझना चाहिए। जिसमें कालेपन के सबसे अधिक अंश पाए जाएँ, वह उत्कृष्टगुण काला है। एक अंश कालेपन से अधिक और सबसे अधिक (अन्तिम) कालेपन से एक अंश कम तक का काला मध्यमगुणकाला कहलाता है। कृष्णवर्ण की तरह ही जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यमगुणयुक्त नीलादि वर्णों, तथा गन्धों, रसों एवं स्पर्शों के विषय में समझना चाहिए।[1]

अवगाहना की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध की हीनाधिकता—एक द्विप्रदेशी स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की अपेक्षा से यदि हीन हो तो एक-एक प्रदेश कम अवगाहना वाला हो सकता है और यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक अवगाहना वाला हो सकता है। तात्पर्य यह है कि द्विप्रदेशी स्कन्ध की अवगाहना में एक प्रदेश से अधिक न्यूनाधिक अवगाहना का सम्भव नहीं है।

द्विप्रदेशी स्कन्ध से दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर प्रदेशवृद्धि—इनकी पर्याय-वक्तव्यता द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान है, किन्तु उनमें उत्तरोत्तर प्रदेशों की वृद्धि करनी चाहिए। अर्थात्—दशप्रदेशी स्कन्ध तक क्रमशः नौ प्रदेशों की वृद्धि कहनी चाहिए।

जघन्यगुण कृष्ण संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेश एवं अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित—प्रदेशों की अपेक्षा से वह द्विस्थानपतित होता है, अर्थात्—वह संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन या संख्यातभाग-अधिक अथवा संख्यातगुण-अधिक होता है। इसी प्रकार अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित है।[2]

परस्पर विरोधी गन्ध, रस और स्पर्श का परमाणुपुद्गल में अभाव—जिस परमाणुपुद्गल में सुरभिगन्ध होती है, उनमें दुरभिगन्ध नहीं होती, और जिसमें दुरभिगन्ध होती है, उसमें सुरभिगन्ध नहीं होती, क्योंकि परमाणु एक गन्ध वाला ही होता है। इसलिए जिस गन्ध का कथन किया जाए, वहाँ दूसरी गन्ध का अभाव कहना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ एक रस का कथन हो, वहाँ दूसरे रसों का अभाव समझना चाहिए। अर्थात्—जहाँ तिक्त रस हो, वहाँ शेष कटु आदि रस नहीं होते; क्योंकि

---

१. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ८८५-८८६

२. प्रज्ञापनासूत्र; प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ८८७ से ८९० तक

उनमें परस्पर विरोध है। इसी प्रकार जहाँ पुद्‌गल परमाणु में शीतस्पर्श का कथन हो, वहाँ उष्णस्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों स्पर्श परस्पर विरोधी हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्पर्शों के बारे में समझ लेना चाहिए। जैसे—स्निग्ध और रूक्ष, मृदु और कर्कश, लघु और गुरु परस्पर विरोधी स्पर्श हैं। एक ही परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चाहिए।[1]

जघन्यादि सामान्य पुद्‌गल स्कन्धों की विविध अपेक्षाओं से पर्यायप्ररूपणा—

५५४. [१] जहण्णपदेसियाणं भंते ! खंधाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णपदेसिते खंधे जहण्णपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले; पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय मब्भहिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पदेसमब्भतिए; ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस- उवरिल्लचउफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५५४-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५४-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्यप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्यप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, और यदि अधिक हो तो भी एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्ण, गन्ध, रस तथा ऊपर के चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसपएसियाणं भंते खंधाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ल, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५४-२ प्र.] भगवन् उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५४-२ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस अपेक्षा से आप ऐसा कहते हैं (कि उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से

---

१. प्रज्ञापनासूत्र प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ८९५

तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित है, किन्तु वर्णादि तथा अष्टस्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसपदेसियाणं भंते ! खंधाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसपदेसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसपदेसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५४-३ प्र.] भगवन् ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५४-३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यमप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त-पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक मध्यमप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यमप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५५५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पोग्गले जहण्णोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५५-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५५-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्य अवगाहनावाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] 'गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पुद्गल दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, तथा वर्णादि और ऊपर के स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। नवरं ठितीए तुल्ले।

[५५५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पुद्गल-पर्यायों के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए पोग्गले अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि छट्ठाणवडिते ।

[५५५-३ प्र.] भगवन् ! मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५५-३ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं) ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ.] गौतम ! एक मध्यम अवगाहना वाला पुद्गल, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है; प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५५६. [१] जहण्णट्ठितीयाणं भंते ! पोग्गलाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पोग्गले जहण्णठितीयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५५६-१ प्र.] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे हैं ?

[५५६-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है; प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि ।

[५५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए एवं चेव। नवरं ठितीए वि चतुट्ठाणवडिते।

[५५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार कहनी चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतुःस्थानपतित है।

५५७. [१] जहण्णगुणकालयाणं भंते ! पोग्गलाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पोग्गले जहण्णगुणकालयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[५५७-१ प्र.] भगवन् ! जघन्यगुण काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५७-१ उ.] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय (कहे हैं)।

[प्र.] भगवन् किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यगुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ.] गौतम ! एक जघन्यगुण काला पुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है; अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है; स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है; कृष्णवर्ण के पर्यायों की दृष्टि से तुल्य है, शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे हैं।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि।

[५५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पुद्गलों की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५५७-३] मध्यमगुण काले पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। वशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

५५८. एवं जहा कालवण्णपज्जवाणं वत्तव्वया भणिता तहा सेसाण वि वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवाणं वत्तव्वया भाणितव्वा, जाव अजहण्णमणुक्कोसलुक्खे सट्ठाणे छट्ठाणवडिते। से त्तं रूविअजीवपज्जवा। से त्तं अजीवपज्जवा।

॥ पण्णवणाए भगवईए पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं) समत्तं ॥

[५५८] जिस प्रकार कृष्णवर्ण के पर्यायों के विषय में वक्तव्यता कही है उसी प्रकार शेष वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए; यावत् अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण रूक्षस्पर्श स्वस्थान में षट्स्थानपतित है, यहाँ तक कहना चाहिए।

यह हुई रूपी-अजीव-पर्यायों की प्ररूपणा। और इस प्रकार अजीवपर्याय-सम्बन्धी निरूपण भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—जघन्यादियुक्त सामान्य पुद्गल-स्कन्धों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्याय-प्ररूपणा— प्रस्तुत पांच सूत्रों (सू. ५५४ से ५५८ तक) में जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों, तथा जघन्यादि गुण विशिष्ट अवगाहना, स्थिति, तथा कृष्णादि वर्णों, गन्ध-रस-स्पर्शों के पर्यायों की विभिन्न अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है।

मध्यमगुण काले पुद्गल स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिक—एक मध्यमगुण काले पुद्गल से दूसरे मध्यमगुण काले पुद्गल में कृष्णवर्ण की अनन्तभागहीनता या अनन्तगुणहीनता, तथैव अनन्तभाग-अधिकता अथवा अनन्तगुण-अधिकता भी हो सकती है, क्योंकि मध्यमगुण के अनन्त विकल्प हैं।

इसी तरह मध्यमगुण वाले सभी वर्णादि स्पर्शपर्यन्त स्वस्थान में षट्स्थानपतित होते हैं।[1]

उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कंध की स्थिति तुल्य क्यों?—उत्कृष्ट अवगाहना वाला, अनन्तप्रदेशी स्कंध सर्वलोकव्यापी होता है वह या तो अचित्त महास्कंध होता है अथवा केवली-समुद्घात की अवस्था में कर्मस्कंध हो सकता है। इन दोनों का काल दण्ड, कपाट, प्रतर और अन्तर-पूरण रूप चार समय का ही होता है। अतएव इसकी स्थिति समान कही गई है।

॥ प्रज्ञापनासूत्र : पंचम विशेषपद (पर्यायपद) समाप्त ॥

---

१. प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ९२७

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

प्राथमिक

※ प्रज्ञापनासूत्र का यह छठा व्युत्क्रान्तिपद है।

※ प्रस्तुत पद का विषय नाना प्रकार के जीवों की 'व्युत्क्रान्ति'—अर्थात्—उस-उस गति में उत्पत्ति और उस-उस गति में से अन्यत्र उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रश्नों की चर्चा करना है। संक्षेप में, जीवों की गति और आगति से सम्बन्धित विचारणा इस पद में की गई है।

※ यह विचारणा निम्नोक्त आठ द्वारों के माध्यम से प्रस्तुत पद में की गई है—(१) **द्वादश द्वार** (उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल), (२) **चतुर्विंशतिद्वार**—(जीव के प्रभेदों के उपपात और उद्वर्तन का विरहकाल), (३) **सान्तरद्वार** (जीवप्रभेदों का सान्तर एवं निरन्तर उपपात और उद्वर्तन-सम्बन्धी विचार), (४) **एकसमयद्वार** (एक समय में कौन से कितने जीवों का उपपात और उद्वर्तन होता है, यह विचार), (५) **कुतःद्वार**—(जीव उन-उन पर्यायों मेंक हाँ-कहाँ से मरकर उत्पन्न होता है, इसकी प्ररूपणा), (६) **उद्वर्तनाद्वार**—(जीव वर्तमान भव से मर कर किस-किस भव में जाता है, इसकी विचारणा), (७) **पारभविकायुष्यद्वार**—आगामी नये भव का आयुष्य जीव वर्तमान भव में कब बांधता है?, इसका चिन्तन, और (८) **आकर्ष द्वार**—(आयुष्यबन्ध के ६ प्रकार, कितने आकर्षों में जीव जाति आदि नाम विशिष्ट आयुकर्म बांधता है? तथा न्यूनाधिक आकर्षों वाले जीवों के अल्पबहुत्व का विचार)।[1]

※ **प्रथम द्वार** का नाम 'बारस' (द्वादश) इसलिए रखा गया है कि इसमें नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चारों गतियों के जीवों का उपपातविरह (नरकादि जीव उस-उस रूप में उत्पन्न होते रहते हैं, उनमें बीच में उत्पत्तिशून्य) काल तथा उद्वर्तनाविरह (नरकादि जीव मरते रहते हैं, उनमें बीच में मरणशून्य) काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट १२ मुहूर्त्त का है।

※ **द्वितीय द्वार** का नाम 'चउवीसा' (चतुर्विंशति) इसलिए रखा गया है कि नरकादि गतियों के प्रभेदों की दृष्टि से प्रथम नरक में उपपातविरहकाल और उद्वर्तनाविरहकाल जघन्य एक

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा. १, पृ. १६३
(ख) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५
(ग) पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ. ६७

समय और उत्कृष्ट २४ मुहूर्त्त है। यद्यपि चतुर्गतिक जीवों के प्रभेदों में सबका उपपातविरह काल और उद्वर्त्तनाविरहकाल २४ मुहूर्त्त का नहीं है, किन्तु प्रथम रत्नप्रभा नरक के उपपात एवं उद्वर्तन के विरह का काल चौबीस ही मुहूर्त्त है, इस दृष्टि से प्रारम्भ का पद पकड़ कर इस द्वार का नाम 'चौबीस' रखा गया है।

* **तृतीय सान्तर द्वार**—उन-उन जीवों के प्रभेदों में जीवों का उपपात और उद्वर्तन निरन्तर होता रहता है या उसमें बीच में व्यवधान (अन्तर) भी आ जाता है ? इसका स्पष्टीकरण अनेकान्त दृष्टि से इस द्वार में किया गया है कि पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष सभी जीवों का निरन्तर भी उत्पाद एवं उद्वर्तन होता रहता है और सान्तर भी। यद्यपि षट्खण्डागम के अन्तरानुगम-प्रकरण में इसका विचार किया गया है, परन्तु वहाँ इस दृष्टि से 'अन्तर' का विचार किया गया है कि एक जीव उस-उस गति आदि में भ्रमण करके उसी गति में पुन: कब आता है ? तथा अनेक जीवों की अपेक्षा से अन्तर है या नहीं ? तथा नाना जीवों की अपेक्षा से नरक आदि में नारक जीव आदि कितने काल तक रह सकते हैं ? इस प्रकार का विचार किया गया है।[1]

* **चौथे द्वार** में यह बताया गया है कि एक समय में उस-उस गति के जीवों के प्रभेदों में कितने जीवों का उपपात और उद्वर्तन होता है ? इस सम्बन्ध में वनस्पतिकाय तथा पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष समस्त जीवों में एक समय में जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात जीवों की उत्पत्ति तथा उद्वर्तना का निरूपण है। वनस्पतिकायिकों में स्वस्थान में निरन्तर अनन्त तथा परस्थान में निरन्तर असंख्यात का तथा पृथ्वीकायिकादि में निरन्तर असंख्यात का विधान है।[2]

* **पाँचवें द्वार** में जीवों की आगति का वर्णन है। चारों गतियों के जीवों के प्रभेदों में किन-किन जीवों में से मर कर आते हैं ? अर्थात्—किस जीव में मर कर कहाँ-कहाँ उत्पन्न होने की योग्यता है ? इसका निर्णय प्रस्तुत द्वार में किया गया है।

* **छठे द्वार** में उद्वर्तना अर्थात् —जीवों के निकलने का वर्णन है। अर्थात्—कौन-से जीव मर कर कहाँ-कहाँ (किस-किस गति एवं योनि में) जाते हैं ? मर कर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? इसका निर्णय इस द्वार में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि पाँचवें द्वार को उलटा करके पढ़ें तो छठे द्वार का विषय स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि पांचवें में बताया गया है—जीव कहाँ से आते हैं ? उस पर से ही स्पष्ट हो जाता है कि जीव मर कर कहाँ जाते हैं ? तथापि स्पष्ट रूप से समझाने के लिए इस छठे द्वार का उपक्रम किया गया है।

* **सप्तम द्वार** में बताया गया है कि जीव पर भव का अर्थात्—आगामी भव का आयुष्य कब बांधता है ? अर्थात्—किस जीव की वर्तमान आयु का कितना भाग शेष रहने या कितना भाग बीतने पर वह आगामी भव का आयुष्य बांधता है ? नारक और देव तथा असंख्यातवर्षायुष्क (मनुष्य-तिर्यञ्च) आगामी आयुष्यबन्ध ६ मास पूर्व ही कर लेते हैं, जबकि शेष समस्त जीव

---

१. षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ. १८७, ४६२; पुस्तक ५, अन्तरानुगमप्रकरण पृ. १

२. षट्खण्डागम पु. ६, पृ. ४१८ से गति-आगति की चर्चा

(मनुष्यों में चरमशरीरी एवं उत्तमपुरुष को छोड़कर) सोपक्रम एवं निरुपक्रम, दोनों ही प्रकार का आयुर्वन्ध करते हैं। निरुपक्रमी जीव आयु का तृतीय भाग शेष रहते और सोपक्रमी वर्त्तमान आयु का त्रिभाग, अथवा त्रिभाग का त्रिभाग या त्रिभाग के त्रिभाग का त्रिभाग शेष रहते आगामी भव का आयुष्य बांधते हैं। इस प्रकार परभविक आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा की गई है।

※ **अष्टमद्वार** में जातिनामनिधत्तायु गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानाम-निधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभाव-नामनिधत्तायु, यों आयुवन्ध के ६ प्रकार बताकर यह स्पष्ट किया गया है कि जातिनामादि विशिष्ट आयुवन्ध कौन जीव कितने-कितने आकर्ष से करता है? जातिनामनिधत्तायु आदि से युक्त आयुवन्ध सामान्य जीव तथा नैरयिकादि वैमानिकपर्यन्त जीव जघन्य एक, दो, तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से करते हैं, यह प्ररूपणा की गई है। अन्त में, एक से आठ आकर्षों से आयुवन्ध करने वालों के अल्पवहुत्व की चर्चा की गई है।[1]

---

१. (क) पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना—पृ. ६७ से ७४ तक

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २०५

(ग) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ९२९ से ९३१ तक

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार

५५९. बारस १, चउवीसाइं २, सअंतरं ३, एगसमय ४, कत्तो य ५ ।
उव्वट्टण ६, परभवियाउयं ७, च अट्ठेव आगरिसा ८ ॥१८२॥

[५५९ गाथार्थ—] १. द्वादश (बारह), २. चतुर्विंशति (चौवीस), ३. सान्तर (अन्तर-सहित), ४. एक समय, ५. कहाँ से ? ६. उद्वर्त्तना, ७. परभव-सम्बन्धी आयुष्य और ८. आकर्ष, ये आठ द्वार (इस व्युत्क्रान्तिपद में) हैं ।

विवेचन—व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार—प्रस्तुत सूत्र में एक संग्रहणीगाथा के द्वारा व्युत्क्रान्ति-पद के ८ द्वारों का उल्लेख किया गया है ।

प्रथम द्वादशद्वार : नरकादि गतियों में उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल-निरूपण—

५६०. निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६० प्र.] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६० उ.] गौतम ! (वह) जघन्य (कम से कम) एक समय तक और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है ।)

५६१. तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६१ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६१ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है ।)

५६२. मणुयगती णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६२ प्र.] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६२ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है ।)

---

१. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५

५६३. देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६३ प्र.] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६३ उ.] गौतम ! (देवगति का उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक का है ।

५६४. सिद्धगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता सिज्झणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[५६४ प्र.] भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक सिद्धि से रहित कही गई है ?

[५६४ उ.] गौतम ! (सिद्धगति का सिद्धिविरहित काल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीनों तक का है ।

५६५. निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६५ प्र.] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६५ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।)

५६६. तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६६ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६६ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्ववर्त्तना-विरहित रहती है ।)

५६७. मणूयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६७ प्र.] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६७ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ।)

५६८. देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता । दारं १ ।।

[५६८ प्र.] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६८ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।) प्रथम द्वार ।। १ ।।

विवेचन—प्रथम द्वादश (बारस=बारह) द्वार : चार गतियों के उपपात और उद्वर्त्तना का विरहकाल-निरूपण—प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. ५६० से ५६८ तक) में नरकादि चार गतियों और पांचवीं सिद्धगति के जघन्य-उत्कृष्ट उपपातविरहकाल का तथा उन के उद्वर्त्तनाविरहकाल का निरूपण किया गया है।

निरयगति आदि चारों गतियों के लिए एकवचनप्रयोग क्यों? निरयगति अर्थात्—नरकगति नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले जीव का औदयिक भाव। इसी प्रकार तिर्यञ्चादि-गति के विषय में समझना चाहिए। वह औदयिकभाव सामान्य की अपेक्षा से सभी गतियों में अपना-अपना एक है। नरकगति का औदयिकभाव सातों पृथ्वियों में व्यापक है, इसलिए नरकगति आदि चारों गतियों में प्रत्येक में एकवचन का प्रयोग किया गया है।

उपपात और उसका विरहकाल—किसी अन्य गति से मर कर नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव या सिद्ध के रूप में उत्पन्न होना उपपात कहलाता है। नरकगति में उपपात के विरहकाल का अर्थ है—जितने समय तक किसी भी नये नारक का जन्म नहीं होता; दूसरे शब्दों में—नरकगति नये नारक के जन्म से रहित जितने काल तक होती है, वह नरकगति में उपपात-विरहकाल है। इसी प्रकार अन्य गतियों में उपपातविरहकाल का अर्थ समझ लेना चाहिए। नरकादि गतियाँ कम से कम एक समय और अधिक से अधिक १२ मुहूर्त्त तक उपपात से रहित होती हैं। बारह मुहूर्त्त के बाद कोई न कोई जीव नरकादि गतियों में उत्पन्न होता ही है। सिद्धगति का उपपातविरहकाल उत्कृष्टतः छह मास का बताया है, उसका कारण यह है कि एक जीव के सिद्ध होने के पश्चात् संभव है कोई जीव अधिक से अधिक छह मास तक सिद्ध न हो। छह मास के अनन्तर अवश्य ही कोई न कोई सिद्ध (मुक्त) होता है।

चौबीस मुहूर्त्त-प्रमाण उपपातविरह क्यों नहीं?—आगे कहा जाएगा कि उपपातविरह-काल चौबीस मुहूर्त्त का है, किन्तु यहाँ जो बारह मुहूर्त्त का उपपातविरहकाल बताया है, वह सामान्य-रूप से नरकगति का उपपातविरहकाल है, किन्तु जब रत्नप्रभा आदि एक-एक नरकपृथ्वी के उपपात-विरहकाल की विवक्षा की जाती है, तब वह चौबीस मुहूर्त्त का ही होता है। इसी प्रकार अन्य गतियों के विषय में समझ लेना चाहिए।[1]

उद्वर्त्तना और उसका विरहकाल—नरकादि किसी गति से निकलना उद्वर्त्तना है, प्रश्न का आशय यह है कि ऐसा कितना समय है, जबकि कोई भी जीव नरकादि गति से न निकले? यह उद्वर्त्तनाविरहित काल कहलाता है। उद्वर्त्तना-विरहकाल चारों गतियों का उत्कृष्टतः १२ मुहूर्त्त का है। सिद्धगति में उद्वर्त्तना नहीं होती, क्योंकि सिद्धगति में गया हुआ जीव फिर कभी वहाँ से निकलता नहीं है। इसलिए सिद्धगति में उद्वर्त्तना नहीं होती। अतएव वहाँ उद्वर्त्तना का विरहकाल भी नहीं है। वहाँ तो सदैव उद्वर्त्तनाविरह है, क्योंकि सिद्धपर्याय सादि होने पर भी अनन्त (अन्तरहित) है, सिद्ध जीव सदाकाल सिद्ध ही रहते हैं।[2]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०५,　　(ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ९३५ से ९३७

२. (क) प्रज्ञापना. म. वृत्ति. पत्रांक २०५,　　(ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ८३७

द्वितीय चतुर्विंशतिद्वार : नैरयिकों से अनुत्तरौपपातिकों तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की प्ररूपणा—

५६९. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५६९ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५६९ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक का (कहा गया है ।)

५७०. सक्करप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं सत्त रातिंदियाणि ।

[५७० प्र.] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७० उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्टतः सात रात्रि-दिन तक (उपपात से विरहित रहते हैं ।)

५७१. वालुयप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धमासं ।

[५७१ प्र.] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अर्द्धमास तक (उपपात से विरहित रहते हैं ।)

५७२. पंकप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं मासं ।

[५७२ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७२ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः एक मास तक (उपपात-विरहित रहते हैं ।

५७३. धूमप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो मासा ।

[५७३ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७३ उ] गौतम ! जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः दो मास तक (उपपात से विरहित होते हैं ।)

५७४. तमापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चत्तारि मासा ।

[५७४ प्र.] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७४ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः चार मास तक (उपपात-विरहित रहते हैं ।)

५७५. अधेसत्तमापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[५७५ प्र.] भगवन् ! सबसे नीची तमस्तमा नामक सप्तम पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से रहित कहे गए हैं ?

[५७५ उ.] गौतम ! वे एक समय तक और उत्कृष्ट छह मास तक (उपपात से विरहित रहते हैं ।)

५७६. असुरकुमारा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[८७६ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः एक समय तक और उत्कृष्टतः चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपातविरहित रहते हैं ।)

५७७. णागकुमारा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५७७ प्र.] भगवन् ! नागकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७७ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का है ।

५७८. एवं सुवण्णकुमाराणं विज्जुकुमाराणं अग्गिकुमाराणं दीवकुमाराणं उदहिकुमाराणं दिसाकुमाराणं वाउकुमाराणं थणियकुमाराण य पत्तेयं पत्तेयं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५७८] इसी प्रकार सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधि-कुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार देवों का प्रत्येक का उपपातविरहकाल एक समय का तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का है ।

५७९. पुढविकाइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणुसमयमविरहियं उववाएणं पण्णत्ता ।

[५७९ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिकजीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७९ उ.] गौतम ! (वे) प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं। अर्थात् उनका उपपात निरन्तर होता ही रहता है।

५८०. एवं आउकाइयाण वि तेउकाइयाण वि वाउकाइयाण वि वणप्फइकाइयाण वि अणुसमयं अविरहिया उववाएणं पण्णत्ता ।

[५८० प्र.] इसी प्रकार अप्कायिक भी तेजस्कायिक भी, वायुकायिक भी, एवं वनस्पतिकायिक जीव भी प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए हैं।

५८१. बेइंदिया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

[५८१ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[५८१ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक (उनका उपपात-विरहकाल रहता है।)

५८२. एवं तेइंदिय-चउरिंदिया ।

[५८२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय के उपपातविरहकाल के विषय में समझ लेना चाहिए।)

५८३. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

[५८३ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८३ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरह) जघन्य एक समय तक का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक का है।

५८४. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५८४ प्र.] भगवन् ! गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८४ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहते हैं।)

५८५. सम्मुच्छिममणुस्सा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८५ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८५ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

५८६. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५८६ प्र.] भगवन् ! गर्भज मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

५८७. वाणमंतराणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८७ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए हैं ।)

५८८. जोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८८ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात-विरहित कहे हैं ।)

५८९. सोहम्मे कप्पे देवा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८९ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे हैं ?

[५८९ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

५९०. ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५९० प्र] गौतम ! ईशानकल्प में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९० उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए हैं ।)

५९१. सणंकुमारदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं नव राँतिदियाइं वीसा य मुहुत्ता ।

[५९१ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमार देवों का उपपातविरहकाल कितना कहा गया है ?

[५९१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट नौ रात्रि दिन और बीस मुहूर्त्त तक (उपपातविरहित कहे हैं ।)

५९२. माहिंददेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस राइंदियाइं दस मुहुत्ता ।

[५९२ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्र देवों का उपपातविरहितकाल कितना कहा गया है ?

[५९२ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट बारह रात्रिदिन और दस मुहूर्त्त का है ।

५९३. बंभलोए देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धतेवीसं राँतिदियाइं ।

[५९३ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोक में देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट साढ़े बाईस रात्रिदिन तक (उपपातविरहित रहते हैं ।)

५९४. लंतगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पणतालीसं राँतिदियाइं ।

[५९४ प्र.] भगवन् ! लान्तक देवों का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[५९४ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट पैंतालीस रात्रिदिन तक (उपपात से रहित कहे हैं ।)

५९५. महासुक्कदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असीतिं राँतिदियाइं ।

[५९५ प्र.] भगवन् ! महाशुक्र देवों का उपपातविरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९५ उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट अस्सी रात्रिदिन तक का है ।

५९६. सहस्सारदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं राँतिदियसतं ।

[५९६ प्र.] भगवन् ! सहस्रार देवों का (उपपातविरहकाल) (कितना कहा गया है) ?

[५९६ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक का तथा उत्कृष्ट सौ रात्रिदिन का (उनका उपपातविरह काल कहा गया है ।

५९७. आणयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा मासा ।

[५९७ प्र.] भगवन् ! आनतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९७ उ.] गौतम ! उनका उपपातविरह काल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट संख्यात मास तक का है ।

५९८. पाणयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा मासा ।

[५९८ प्र.] भगवन् ! प्राणतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात मास तक उपपात से विरहित कहे हैं ।

५९९. आरणदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा वासा ।

[५९९ प्र.] भगवन् ! आरणदेवों का उपपातविरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९९ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात वर्ष तक (उपपात-विरहित रहते हैं ।)

६००. अच्चुयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जा वासा ।

[६०० प्र.] भगवन् ! अच्युतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०० उ.] गौतम ! (उनका उपपातविरह) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात वर्ष तक रहता है ।

६०१. हेट्ठिमगेवेज्जाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससताइं ।

[६०१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात सौ वर्ष तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

६०२. मज्झिमगेवेज्जाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं ।

[६०२ प्र.] भगवन् ! मध्यम ग्रैवेयकदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०२ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष तक (उपपातविरहित कहे हैं ।

६०३. उवरिमगेवेज्जगदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससतसहस्साइं ।

[६०३ प्र.] भगवन् ! ऊपरी ग्रैवेयक देवों का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०३ उ.] गौतम ! (उनका उपपात-विरहकाल) जघन्यतः एक समय का तथा उत्कृष्टतः संख्यातलाख वर्ष का है ।

६०४. विजय-वेजयंत-जयंताऽपराजियदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।

[६०४ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों का उपपातविरह कितने काल तक का कहा है ?

[६०४ उ.] गौतम ! (इनका उपपात-विरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट असंख्यातकाल का है ।

६०५. सव्वट्ठसिद्धगदेवा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उववाएणं पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स संखेज्जइभागं ।

[६०५ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध देवों का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०५ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट पल्योपम का संख्यातवां भाग है ।

६०६. सिद्धा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया सिज्झणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[६०६ प्र.] भगवन् ! सिद्ध जीवों का उपपात-विरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[६०६ उ.] गौतम ! उनका उपपात-विरहकाल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट छह मास का है ।

६०७. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ?

[६०७ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभा के नैरयिक कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कहे गए हैं ?

[६०७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक उद्वर्त्तना से विरहित कहे हैं ।

६०८. एवं सिद्धवज्जा उव्वट्टणा वि भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइय त्ति । नवरं जोइसिय-वेमाणिएसु चयणं ति अहिलावो कायव्वो । दारं २ ॥

[६०८] जिस प्रकार उपपात-विरह का कथन किया है, उसी प्रकार सिद्धों को छोड़ कर अनुत्तरौपपातिक देवों तक (पूर्ववत्) उद्वर्त्तनाविरह भी कह लेना चाहिए। विशेषता यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के निरूपण में (उद्वर्त्तना के स्थान पर) 'च्यवन' शब्द का अभिलाप (प्रयोग) करना चाहिए।

विवेचन—द्वितीय चतुर्विशतिद्वार : नैरयिकों से लेकर अनुत्तरौपपातिक जीवों तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की प्ररूपणा—प्रस्तुत ४० सूत्रों (सू. ५६९ से ६०८ तक) में विभिन्न विशेषण युक्त विशेष नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवों के उपपातरहितकाल एवं उद्वर्तनाविरहकाल की प्ररूपणा की गई है।

पृथ्वीकायिकादि प्रतिसमय उपपादविरहरहित—पृथ्वीकायिक आदि जीव प्रति समय उत्पन्न होते रहते हैं। कोई एक भी समय ऐसा नहीं, जब पृथ्वीकायिकों का उपपात न होता हो।[1] इसलिए उन्हें उपपातविरह से रहित कहा गया है।

ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में उद्वर्तना नहीं—ज्योतिष्क और वैमानिक इन दोनों जातियों के देवों के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। च्यवन का अर्थ है नीचे आना। ज्योतिष्क और वैमानिक इस पृथ्वी से ऊपर हैं, अतएव देव मर कर ऊपर से नीचे आते हैं, नीचे से ऊपर नहीं जाते।[2]

तीसरा सान्तरद्वार : नैरयिकों से सिद्धों तक की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर-निरन्तर-निरूपण—

६०९. नेरइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६०९ प्र.] भगवन् ! नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६०९ उ.] गौतम (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१०. तिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६१० प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

---

१. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७,
   (ख) देखिये, संग्रहणीगाथा, मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७
   (ग) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका. भा. २, पृ. ९५८

२. (क) प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २०७
   (ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ९७०

[६१० उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६११. मणुस्सा णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६११ प्र.] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६११ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर की उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१२. देवा णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१२ प्र.] भगवन् ! देव सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१२ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१३. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१३ प्र.] भगवन् ! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नारक सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१३ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१४. एवं जाव अहेसत्तमाए संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१४] इसी प्रकार सातवीं नरकपृथ्वी तक (के नैरयिक) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१५. असुरकुमारा णं भंते ! देवा किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

[६१५ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

[६१५ उ.] गौतम ! वे सान्तर भो होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१६. एवं जाव थणियकुमारा संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति।

[६१६] इसी प्रकार स्तनितकुमार देवों तक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१७. पुढविकाइया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! नो संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति।

[६१७ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१७ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

६१८. एवं जाव वणस्सइकाइया नो संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जंति ।

[६१८] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों तक सान्तर उत्पन्न नहीं होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं (ऐसा कहना चाहिए) ।

६१९. वेइंदिया णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६१९ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१९ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६२०. एवं जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[६२०] इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तक कहना चाहिए ।

६२१. मणुस्सा णं भंते ! किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६२१ प्र.] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६२१ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६२२. एवं वाणमंतरा जोइसिया सोहम्म-ईसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-हेट्ठिमगेवेज्जग-मज्झिमगेवेज्जग-उवरिमगेवेज्जग-विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजित-सव्वट्ठसिद्धदेवा य संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

[६२२] इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक, उपरितन ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६२३. सिद्धा णं भंते ! किं संतरं सिज्झंति ? निरंतरं सिज्झंति ?

गोयमा ! संतरं पि सिज्झंति, निरंतरं पि सिज्झंति ।

[६२३ प्र.] भगवन् ! सिद्ध क्या सान्तर सिद्ध होते हैं अथवा निरन्तर सिद्ध होते हैं ?

[६२३ उ.] गौतम ! (वे) सान्तर भी सिद्ध होते हैं, निरन्तर भी सिद्ध होते हैं ।

६२४. नेरइया णं भंते ! किं संतरं उव्वट्टंति ? निरंतरं उव्वट्टंति ?

गोयमा ! संतरं पि उव्वट्टंति, निरंतरं पि उव्वट्टंति ।

[६२४ प्र.] भगवन् ! नैरयिक सान्तर उद्वर्त्तन करते हैं अथवा निरन्तर उद्वर्त्तन करते हैं ?

[६२४ उ.] गौतम ! वे सान्तर भी उद्वर्त्तन करते हैं और निरन्तर भी उद्वर्त्तन करते हैं ।

६२५. एवं जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव वेमाणिता। नवरं जोइसिय-वेमाणिएसु चवणं ति अभिलावो कातव्वो। दारं ३॥

[६२५] इस प्रकार जैसे उपपात (के विषय में) कहा गया है, वैसे ही सिद्धों को छोड़कर उद्वर्त्तना (के विषय में) भी यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्कों और वैमानिकों के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए।

तृतीय सान्तर द्वार ॥ ३ ॥

विवेचन—तीसरा सान्तरद्वार—नैरयिकों से लेकर सिद्धों तक की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर-निरन्तरनिरूपण—प्रस्तुत १७ सूत्रों (सू. ६०९ से ६२५ तक) में नैरयिक से लेकर वैमानिक देव पर्यन्त चौवीस दण्डकों और सिद्धों की सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति एवं उद्वर्त्तना की प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पांच प्रकार के एकेन्द्रियों को छोड़ कर समस्त संसारी एवं सिद्ध जीवों की सान्तर और निरन्तर दोनों प्रकार से उत्पत्ति और उद्वर्त्तना होती है। किन्तु सिद्धों की उत्पत्ति भी सान्तर-निरन्तर होती है, किन्तु उद्वर्त्तना कभी नहीं होती।[1]

सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति की व्याख्या—वीच-वीच में कुछ समय छोड़कर व्यवधान से उत्पन्न होना सान्तर उत्पन्न होना है, और प्रतिसमय लगातर—विना व्यवधान के उत्पन्न होना, वीच में कोई भी समय खाली न जाना निरन्तर उत्पन्न होना है।[2]

चतुर्थ एकसमयद्वार : चौबीसदण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों की एक समय में उत्पत्ति और उद्वर्तना की संख्या की प्ररूपणा—

६२६. नेरइया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति।

[६२६ प्र.] भगवन् ! एक समय में कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं ?

[६२६ उ.] गौतम ! जघन्य (कम से कम) एक, दो या तीन और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) संख्यात अथवा असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

६२७. एवं जाव अहेसत्तमाए।

[६२७] इसी प्रकार सातवीं नरकपृथ्वी तक समझ लेना चाहिए।

६२८. असुरकुमारा णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा।

[६२८ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

---

१. पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. १६६ से १६८ तक

२. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २०८, (ख) प्रज्ञापना प्र. वो. टीका भा. २, पृ. ९७६-९७७

[६२८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात (उत्पन्न होते हैं ।)

६२९. एवं णागकुमारा जाव थणियकुमारा वि भाणियव्वा ।

[६२९] इसी प्रकार नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक कहना चाहिए ।

६३०. पुढविकाइया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! अणुसमयं अविरहियं असंखेज्जा उववज्जंति ।

[६३० प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३० उ.] गौतम ! (वे) प्रतिसमय विना विरह (अन्तर) के असंख्यात उत्पन्न होते हैं ।

६३१. एवं जाव वाउकाइया ।

[६३१] इसी प्रकार वायुकायिक जीवों तक कहना चाहिए ।

६३२. वणप्फतिकाइया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! सट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया अणंता उववज्जंति, परट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया असंखेज्जा उववज्जंति ।

[६३२ प्र.] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३२ उ.] गौतम ! स्वस्थान (वनस्पतिकाय) में उपपात (उत्पत्ति) की अपेक्षा से प्रतिसमय विना विरह के अनन्त (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते रहते हैं तथा परस्थान में उपपात की अपेक्षा से प्रतिसमय विना विरह के असंख्यात (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते हैं ।

६३३. बेइंदिया णं भंते ! केवतिया एगसमएणं उववज्जंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा ।

[६३३ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[६३३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात (उत्पन्न होते हैं ।)

६३४. एवं तेइंदिया चउरिंदिया सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया सम्मुच्छिममणूसा वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लंतग-सुक्क-सहस्सारकप्पदेवा, एते जहा नेरइया ।

[६३४] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र एवं सहस्रार कल्प के देव, इस सब की प्ररूपणा नैरयिकों के समान समझनी चाहिए ।

६३५. गब्भवक्कंतियमणूस-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्जग-अणुत्तरोववाइया य एते जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति।

[६३५] गर्भज मनुष्य, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक, (पांच) अनुत्तरौपपातिक देव; ये सब जघन्यतः एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्टतः संख्यात उत्पन्न होते हैं।

६३६. सिद्धा णं भंते ! एगसमएणं केवतिया सिज्झंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्ठसतं।

[६३६ प्र.] भगवन् ! सिद्ध भगवन् एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ?

[६३६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः एक, दो, अथवा तीन और उत्कृष्टतः एक सौ आठ सिद्ध होते हैं।

६३७. नेरइया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया उव्वट्टंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उव्वट्टंति।

[६३७ प्र.] भगवन् ! नैरयिक एक समय में कितने उद्वर्त्तित होते (मर कर निकलते) हैं ?

[६३७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात उद्वर्त्तित होते (मरते) हैं।

६३८. एवं जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइया। णवरं जोइसिय-वेमाणियाणं चयणेणं अभिलावो कातव्वो। दारं ४॥

[६३८] इसी प्रकार जैसे उपपात के विषय में कहा, उसी प्रकार सिद्धों को छोड़ कर अनुत्तरौपपातिक देवों तक की उद्वर्तना के विषय में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए (उद्वर्त्तना के वदले) 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए।

—चतुर्थ एकसमयद्वार ॥४॥

विवेचन—चतुर्थ एकसमय-द्वार: चौवीस दण्डकवर्ती जीवों और सिद्धों की एक समय में उत्पत्ति तथा उद्वर्त्तना की संख्या की प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रों (सू. ६२६ से ६३८ तक) में एक समय में समस्त संसारी जीवों की उत्पत्ति एवं उद्वर्त्तना तथा सिद्धों की सिद्धिप्राप्ति की संख्या के सम्बन्ध में प्ररूपणा की गई है।

वनस्पतिकायिकों के स्वस्थान-उपपात एवं परस्थान-उपपात की व्याख्या—यहाँ स्वस्थान का अर्थ 'वनस्पतिभव' समझना चाहिए। जो वनस्पतिकायिक जीव मर कर पुनः वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न होते हैं, उनका उत्पाद स्वस्थान में उत्पाद कहलाता है और जव पृथ्वीकाय आदि किसी अन्य काय का जीव वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है, तव उसका उत्पाद परस्थान-उत्पाद कहलाता है। स्वस्थान में उत्पत्ति की अपेक्षा प्रत्येक समय में निरन्तर अनन्त वनस्पतिकायिक जीव उत्पन्न होते रहते हैं; क्योंकि प्रत्येक निगोद में असंख्यातभाग का निरन्तर उत्पाद और उद्वर्त्तन होता रहता है, और वे वनस्पतिकायिक अनन्त होते हैं। परस्थान-उत्पाद की अपेक्षा से प्रतिसमय निरन्तर असंख्यात जीवों का उपपात होता रहता है, क्योंकि पृथ्वीकाय आदि के जीव असंख्यात हैं। तात्पर्य यह है कि

एक समय में वनस्पतिकाय से मर कर वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न होने वाले जीव अनन्त होते हैं एवं अन्य कायों से मर कर वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने वाले असंख्यात हैं।[1]

गर्भज मनुष्य तथा आनतादि का एक समय में संख्यात ही उत्पाद क्यों ? आनतादि देवलोकों में मनुष्य उत्पन्न होते हैं, जो कि संख्यात ही हैं। तिर्यंच उनमें नहीं उत्पन्न होते।

पंचम कुतोद्वार : चातुर्गतिक जीवों की पूर्वभवों से उत्पत्ति (आगति) की प्ररूपणा—

६३९. [१] नेरइया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइया नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति।

[६३९-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिकों में से उत्पन्न होते हैं ? तिर्यग्योनिकों में से उत्पन्न होते हैं ? मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) देवों में से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१ उ.] गौतम ! नैरयिक, नैरयिकों में से उत्पन्न नहीं होते, (वे) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (तथा) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) देवों में से उत्पन्न नहीं होते।

[२] जदि तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? बेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? तेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो एगिंदिय० नो बेंदिय० नो तेइंदिय० नो चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२ प्र.] भगवन् ! यदि (नैरयिक) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, द्वीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, त्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२ उ.] गौतम ! (वे) न तो एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से, न द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से, न ही त्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोतिकों से और न चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं।

[३] जति पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २०८, २०९, (ख) प्रज्ञापना. प्र. बो. टीका भा. २, पृ ९९२

गोयमा ! जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-३ प्र.] भगवन् ! यदि (नैरयिक) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ? स्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?, (अथवा) खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-३ उ.] गौतम ! (वे नैरयिक) जलचरपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं, स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[४] जइ जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-४ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे नारक) जलचरपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ? या गर्भज जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-४ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[५] जति सम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-५ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे नारक) सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-५ उ.] गौतम ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[६] जति गब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तयगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगगब्भवक्कंतियजलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-६ प्र.] भगवन् ! यदि गर्भज जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से (नारक) उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अपर्याप्तक-गर्भजजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[३३९-६ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तकगर्भ-जजलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से नहीं उत्पन्न होते ।

[७] जइ थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-७ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?, (अथवा) परिसर्प्पस्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-७ उ] गौतम ! (वे) चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और परिसर्प्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[८] जदि चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतियचउप्पएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-८ प्र.] भगवन् ! यदि चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ? अथवा गर्भज-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-८ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं, और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[९] जइ सम्मुच्छिमचउप्पएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-९ प्र.] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-९ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से नहीं उत्पन्न होतें ।

[१०] जति गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउगगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिनहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१० प्र.] (भगवन्)! यदि गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (नारक) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१० उ.] गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से नहीं उत्पन्न होते ।

[११] जति संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तयसंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-११ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे नारक) संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क गर्भज चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अपर्याप्तक-संख्यात-वर्षायुष्क गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-११ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-संख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से नहीं उत्पन्न होते ।

[१२] जति परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१२ प्र.] भगवन् ! यदि (वे) परिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न

होते हैं, तो क्या उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) भुजपरिसर्प स्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१२ उ.] गौतम ! वे दोनों से ही—अर्थात्—उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से भी उत्पन्न होते हैं, और भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१३] जदि उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमेहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१३ प्र.] भगवन् ! यदि उर:परिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं, अथवा गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१३ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१४] जति सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तगसम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१४ प्र.] भगवन् ! यदि (वे) सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१४ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंगयोनिकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[१५] जति गब्भवक्कंतियउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो ? अपज्जत्तएहिंतो ?

गोयमा ! पज्जत्तगगब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिउरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१५ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, या अपर्याप्तक गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१५ उ.] गौतम ! पर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-उर:परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[१६] जति भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६३९-१६ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१६ उ.] गौतम ! (वे) दोनों से (सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी, तथा गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से) भी उत्पन्न होते हैं।

[१७] जति सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-१७ प्र.] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१७ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[१८] जति गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

[६३९-१८ प्र.] (भगवन् !) यदि गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे नारक) पर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उप्पन्न होते हैं, या अपर्याप्त-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१८ उ.] गौतम ! पर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[१९] जति खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६३९-१९ प्र.] (भगवन् !) यदि खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, या गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१९ उ.] गौतम ! दोनों से (सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से तथा गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से) उत्पन्न होते हैं ।

[२०] जति सम्मुच्छिमखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२० प्र.] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२० उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[२१] जति गब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं संखिज्जवासा-उएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२१ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२१ उ.] गौतम ! (वे) संख्यातवर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्-योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[२२] जति संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-२२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न

होते हैं, अथवा अपर्याप्तक असंख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२२ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिकों से उत्पन्न होते हैं (किन्तु) अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[२३] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२३ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२३ उ.] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते, गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[२४] जइ गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ? अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२४ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२४ उ.] गौतम ! (वे) कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं; (किन्तु) न तो अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

[२५] जति कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति।

[६३९-२५ प्र.] (भगवन् !) यदि कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२५ उ.] गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते।

[२६] जति संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३६-२६ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६३६-२६ उ.] गौतम ! पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते ।

६४०. एवं जहा ओहिया उववाइया तहा रयणप्पभापुढविनेरइया वि उववाएयव्वा ।

[६४०] इसी प्रकार जैसे औघिक (सामान्य) नारकों के उपपात (उत्पत्ति) के विषय में कहा गया है, वैसे ही रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के उपपात के विषय में कहना चाहिए ।

६४१. सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! एते वि जहा ओहिया तहेवोववाएयव्वा । नवरं सम्मुच्छिमेहिंतो पडिसेहो कातव्वो ।

[६४१ प्र.] शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में पृच्छा ?

[६४१ उ.] गौतम ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकों का उपपात भी औघिक (सामान्य) नैरयिकों के उपपात की तरह ही समझना चाहिए । विशेष यह है कि सम्मूर्च्छिमों से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४२. वालुयप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जहा सक्करप्पभापुढविनेरइया । नवरं भुयपरिसप्पेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४२ प्र.] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४२ उ.] गौतम ! जैसे शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि भुजपरिसर्प (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४३. पंकप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहा वालुयप्पभापुढविनेरइया । नवरं खहयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४३ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४३ उ.] गौतम ! जैसे वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि खेचर (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४४. धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहा पंकप्पभापुढविनेरइया । नवरं चउप्पएहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४४ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४४ उ.] गौतम ! जैसे पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के उत्पाद के विषय में कहा, उसी प्रकार इनके उत्पाद के विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि चतुष्पद (स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४५. [१] तमापुढविनेरइया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जहा धूमप्पभापुढविनेरइया । नवरं थलयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४५-१ प्र.] भगवन् ! तम:प्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४१-१ उ.] गौतम ! जैसे धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में कहा, वैसे ही इस पृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के विषय में समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों से इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए ।

[२] इमेणं अभिलावेणं—जति पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? थलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ? खहयरपंचिदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जलयरपंचेंदिएहिंतो उववज्जंति, नो थलयरेहिंतो नो खहयरेहिंतो उववज्जंति ।

[६४५-२ प्र.] इस (पूर्वोक्त) अभिलाप (कथन) के अनुसार—यदि वे (धूमप्रभापृथ्वी-नारक) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?, या स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ? अथवा खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-२ उ.] गौतम ! (वे) जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं और न ही खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ।

[३] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमएहिंतो अकम्मभूमएहिंतो अंतरदीवएहिंतो ?

गोयमा ! कम्मभूमएहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमएहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवएहिंतो ।

[६४५-३ प्र] भगवन् ! यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज मनुष्यों से या अकर्मभूमिज मनुष्यों से अथवा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-३ उ.] गौतम ! (वे) कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो अकर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ।

[४] जति कम्मभूमएहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६४५-४ प्र.] भगवन् ! यदि कर्मभूमिज मनुष्यों स उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-४ उ.] गौतम ! (वे) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से नहीं उत्पन्न होते ।

[५] जति संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

[६४५-५. प्र.] (भगवन्) ! यदि (तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक) संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-५ उ.] गौतम ! पर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं, अपर्याप्तकों से उत्पन्न नहीं होते ।

[६] जति पज्जत्तयसंखेज्जवासाउयकम्मभूमएहिंतो उववज्जंति किं इत्थीहिंतो उववज्जंति ? पुरिसेहिंतो उववज्जंति ? नपुंसएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! इत्थीहिंतो वि उववज्जंति, पुरिसेहिंतो वि उववज्जंति, नपुंसएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६४५-६ प्र.] (भगवन् !) यदि वे पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या स्त्रियों से उत्पन्न होते हैं ? या पुरुषों से उत्पन्न होते हैं ? अथवा नपुंसकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-६ उ.] गौतम ! (वे) स्त्रियों से भी उत्पन्न होते हैं, पुरुषों से भी उत्पन्न होते हैं और नपुंसकों से भी उत्पन्न होते हैं ।

६४६. अधेसत्तमापुढविनेरइया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एवं चेव । नवरं इत्थीहिंतो [वि] पडिसेधो कातव्वो ।

[६४६ प्र.] भगवन् ! अधःसप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते हैं ?

[६४६ उ.] गौतम ! इनकी उत्पत्ति-सम्बन्धी प्ररूपणा इसी प्रकार (छठी तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के समान) समझनी चाहिए । विशेष यह है कि स्त्रियों से इनके उत्पन्न होने का निषेध करना चाहिए ।

६४७. अस्सण्णी खलु पढमं, दोच्चं च सिरीसिवा, तइयं पक्खी ।
सीहा जंति चउत्थिं, उरगा पुण पंचमीपुढविं ।। १८३ ।।
छट्ठि च इत्थियाओ, मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं ।
एसो परमुववाओ बोधव्वो नरयपुढवीणं ।। १८४ ।।

[६४७ संग्रहगाथार्थ—] असंज्ञी निश्चय ही पहली (नरकभूमि) में, सरीसृप (रेंग कर चलने वाले सर्प आदि) दूसरी (नरकपृथ्वी) तक, पक्षी तीसरी (नरकपृथ्वी) तक, सिंह चौथी (नरक-

पृथ्वी) तक, उरग पांचवीं पृथ्वी तक, स्त्रियां छठी (नरकभूमि) तक और मत्स्य एवं मनुष्य (पुरुष) सातवीं (नरक) पृथ्वी तक उत्पन्न होते हैं। नरकपृथ्वियों में (पूर्वोक्त जीवों का) यह परम (उत्कृष्ट) उपपात समझना चाहिए ।। १८३-१८४ ।।

६४८. असुरकुमारा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुएहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति। एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ तेहिंतो असुरकुमाराण वि भाणितव्वो । नवरं असंखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अंतरदीवगमणुस्सतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति । सेसं तं चेव ।

[६४८ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६४८ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों से उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं परन्तु देवों से उत्पन्न नहीं होते । इसी प्रकार जिन-जिन से नारकों का उपपात कहा गया है, उन-उन से असुरकुमारों का भी उपपात कहना चाहिए । विशेषता यह है कि (ये) असंख्यातवर्ष की आयु वाले, अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों और तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं । शेष सब बातें वही (पूर्ववत्) समझनी चाहिए ।

६४९. एवं जाव थणियकुमारा ।

[६४९] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक के उपपात के विषय में कहना चाहिए ।

६५०. [१] पुढविकाइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो मणुयजोणिएहिंतो देवेहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारकों से, तिर्यंचों से, मनुष्यों से अथवा देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१ उ.] गौतम ! (वे) नारकों से उत्पन्न नहीं होते (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों से, मनुष्ययोनिकों से तथा देवों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[२] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों से (आ कर) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-२ उ.] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[३] जति एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पुढविकाइएहिंतो जाव वणप्फइकाइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पुढविकाइएहिंतो वि जाव वणप्फइकाइएहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-३ प्र] (भगवन् !) यदि एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिकों से यावत् वनस्पतिकायिकों से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-३ उ.] गौतम ! वे पृथ्वीकायिकों से भी यावत् वनस्पतिकायिकों से भी (आकर) उत्पन्न होते हैं।

[४] जति पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति किं सुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ? बादरपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-४ प्र.] (भगवन् !) यदि पृथ्वीकायिकों से (आकर) उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं या बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-४ उ] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनों से उत्पन्न होते हैं।

[५] जति सुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तसुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-५ प्र.] (भगवन् !) यदि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से (आकर वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-५ उ.] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनों से ही (आकर) उत्पन्न होते हैं।

[६] जति बादरपुढविकाइएहिंतो उववज्जंति कि पज्जत्तएहिंतो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-६ प्र.] (भगवन् !) यदि बादर पृथ्वीकायिकों से (आकर) वे उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-६ उ.] गौतम ! (पूर्वोक्त) दोनों से ही (वे) उत्पन्न होते हैं।

[७] एवं जाव वणप्फतिकाइया चउक्कएणं भेदेणं उववाएयव्वा।

[६५०-७] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों तक चार-चार भेद करके उनके उपपात के विषय में कहना चाहिए।

[८] जति बेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-८ प्र.] (भगवन् !) यदि द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से (आकर) वे (एकेन्द्रिय जीव) उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-८ उ.] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनों से भी उत्पन्न होते हैं ।

[९] एवं तेइंदिय-चउरिंदिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से भी (वे) उत्पन्न होते हैं ।

[१०] जति पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयरपंचेंदियेहिंतो उववज्जंति ?

एवं जेहिंतो नेरइयाणं उववाओ भणितो तेहिंतो एतेसिं पि भाणितव्वो । नवरं पज्जत्तग-अपज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जंति, सेसं तं चेव ।

[६५०-१० प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं (या अन्य स्थलचर आदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते हैं ?)

[६५०-१० उ.] (गौतम !) एवं जिन-जिन से नैरयिकों के उपपात के विषय में कहा है, उन-उन से इनका (पृथ्वीकायिकों से लेकर वनस्पतिकायिकों तक का) भी उपपात कह देना चाहिए । विशेष यह है कि पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों से भी उत्पन्न होते हैं । शेष (सब निरूपण) पूर्ववत् समझना चाहिए ।

[११] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणूसेहिंतो उववज्जंति ? गब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-११ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-११ उ.] गौतम ! पृथ्वीकायिक दोनों (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) से उत्पन्न होते हैं ।

[१२] जति गब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति ?

सेसं जहा नेरइयाणं (सु. ६३९ [४-२६]) । नवरं अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५०-१२ प्र.] (भगवन् !) यदि गर्भज मनुष्यों से (आकर) उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१२ उ.] (गौतम !) शेष जो (कथन) नैरयिकों के (उपपात के) सम्बन्ध में (सू. ६३९-४ से २४ तक में) कहा है, वही (पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रियों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।) विशेष यह है कि (ये) अपर्याप्तक (कर्मभूमिज गर्भज) मनुष्यों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१३] जति देवेहिंतो उववज्जंति किं भवणवासि-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो ?

गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१३ प्र.] (भगवन् !) यदि देवों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१३ उ.] गौतम ! भवनवासी देवों से भी उत्पन्न होते हैं, यावत् वैमानिक देवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१४] जति भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति किं असुरकुमारदेवेहिंतो जाव थणियकुमार-देवेहिंतो उववज्जंति।

गोयमा ! असुरकुमारदेवेहिंतो वि जाव थणियकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१४ प्र.] (भगवन् !) यदि (ये) भवनवासी देवों से उत्पन्न होते हैं तो असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक (दस प्रकार के भवनवासी देवों में से) किनसे उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१४ उ.] गौतम ! (ये) असुरकुमार देवों से यावत् स्तनितकुमार देवों तक से भी (दस ही प्रकार के भवनवासी देवों से) उत्पन्न होते हैं।

[१५] जति वाणमंतरेहिंतो उववज्जंति किं पिसाएहिंतो जाव गंधव्वेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पिसाएहिंतो वि जाव गंधव्वेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१५ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) वाणव्यन्तर देवों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पिशाचों से यावत् गन्धर्वों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१५ उ.] गौतम ! (वे) पिशाचों से यावत् गन्धर्वो (तक के सभी प्रकार के वाण-व्यन्तर देवों) से उत्पन्न होते हैं।

[१६] जइ जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति किं चंदविमाणेहिंतो जाव ताराविमाणेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! चंदविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि जाव ताराविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[६५०-१६ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्क देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१६ उ.] गौतम ! चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवों से भी उत्पन्न होते हैं तथा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्कदेवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[१७] जति वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ? कप्पातीतगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति, नो कप्पातीयवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ।

[६५०-१७ प्र.] (भगवन् !) यदि वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं या कल्पातीत वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१७ उ.] गौतम ! (वे) कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते ।

[१८] जति कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति किं सोहम्मेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति ।

गोयमा ! सोहम्मीसाणेहिंतो उववज्जंति, नो सणंकुमार जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति ।

[६५०-१८ प्र.] (भगवन् !) यदि कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे (पृथ्वीकायिक) सौधर्म (कल्प के देवों) से यावत् अच्युत (कल्प तक के) देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१८ उ.] गौतम ! (वे) सौधर्म और ईशान कल्प के देवों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प तक के देवों से उत्पन्न नहीं होते ।

६५१. एवं आउक्काइया वि ।

[६५१] इसी प्रकार अप्कायिकों की उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए ।

६५२. एवं तेउ-वाऊ वि । नवरं देववज्जेहिंतो उववज्जंति ।

[६५२] इसी प्रकार तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों की उत्पत्ति के विषय में समझना चाहिए । विशेष यह है कि (ये दोनों) देवों को छोड़कर (दूसरों—नारकों, तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों—से) उत्पन्न होते हैं ।

६५३. वणस्सइकाइया जहा पुढविकाइया ।

[६५३] वनस्पतिकायिकों की उत्पत्ति के विषय में कथन, पृथ्वीकायिकों के उत्पत्ति-विषयक कथन की तरह समझना चाहिए ।

६५४. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरेंदिया एते जहा तेउ-वाऊ देववज्जेहिंतो भाणितव्वा ।

[६५४] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति तेजस्कायिकों और वायुकायिकों की उत्पत्ति के समान समझनी चाहिए । देवों को छोड़ कर (अन्यों—नारकों, तिर्यञ्चों तथा मनुष्यों से) इनकी उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

६५५. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ? जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो वि तिरिक्खजोणिएहिंतो वि मणूसेहिंतो वि देवेहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५५-१ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं, तिर्यञ्चयोनिकों से भी, मनुष्यों से भी और देवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[२] जति नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति ? जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५५-२ प्र.] (भगवन् !) यदि नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी (तक) के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-२ उ.] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमी-पृथ्वी के नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

[३] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदिएहिंतो उववज्जंति ? जाव पंचेंदिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एगिंदिएहिंतो वि जाव पंचेंदिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५५-३ प्र.] (भगवन् !) यदि तिर्यञ्चयोनिकों से (वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं, (या) यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-३ उ.] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चों से भी यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से भी उत्पन्न होते हैं।

[४] जति एगिंदिएहिंतो उववज्जंति किं पुढविकाइएहिंतो उववज्जंति ?

एवं जहा पुढविकाइयाणं उववाओ भणितो तहेव एएसिं पि भाणितव्वो । नवरं देवेहिंतो जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति, नो आणयकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५५-४ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) एकेन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पृथ्वीकायिकों से उत्पन्न होते हैं या यावत् वनस्पतिकायिकों (तक) से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-४ उ.] गौतम ! इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिकों का उपपात कहा है, वैसे ही इनका (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का) भी उपपात कहना चाहिए। विशेष यह है कि देवों से—यावत् सहस्रार-कल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक से भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु आनतकल्पोपपन्न वैमानिक देवों से लेकर अच्युतकल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक से (वे) उत्पन्न नहीं होते।

६५६. [१] मणुस्सा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव देवेहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५६-१ प्र.] भगवन् ! मनुष्य कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५६-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों से भी उत्पन्न होते हैं और यावत् देवों से भी उत्पन्न होते हैं।

[२] जति नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो जाव अहेसत्तमापुढविनेरएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! रतणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव तमापुढविनेरएहिंतो वि उववज्जंति, नो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति।

[६५६-२ प्र.] (भगवन् !) यदि नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५६-२ उ.] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से लेकर यावत् तमःप्रभापृथ्वी तक के नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अधःसप्तमीपृथ्वी के नैरयिकों से उत्पन्न नहीं होते।

[३] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

एवं जेहिंतो पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं उववाओ भणितो तेहिंतो मणुस्साण वि णिरवसेसो भाणितव्वो। नवरं अधेसत्तमापुढविनेरइय-तेउ-वाउकाइएहिंतो ण उववज्जंति। सव्वदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा जाव कप्पातीतगवेमाणिय-सव्वट्ठसिद्धदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा।

[६५६-३ प्र.] (भगवन् !) यदि मनुष्य तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं, (या यावत् पंचेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चयोनिकों से उत्पन्न होते हैं ?)

[६५६-३ उ.] (गौतम !) जिन-जिनसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का उपपात (उत्पत्ति) कहा गया है, उन-उनसे मनुष्यों का भी समग्र उपपात उसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि (मनुष्य) अधःसप्तमीनरकपृथ्वी के नैरयिकों, तेजस्कायिकों और वायुकायिकों से उत्पन्न नहीं होते। (दूसरी विशेषता यह है कि मनुष्य का) उपपात सर्व देवों से कहना चाहिए, यावत् कल्पातीत वैमानिक देवों—सर्वार्थसिद्धविमान तक के देवों से भी (मनुष्यों की) उत्पत्ति समझनी चाहिए।

६५७. वाणमंतरदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! जेहिंतो असुरकुमारा।

[६५७ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५७ उ.] गौतम ! जिन-जिनसे असुरकुमारों की उत्पत्ति कही है, उन-उनसे वाणव्यन्तर देवों की भी उत्पत्ति कहनी चाहिए।

६५८. जोइसियदेवा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! एवं चेव । नवरं सम्मुच्छिमअसंखेज्जवासाउयखहयर-अंतरदीवमणुस्सवज्जेहिंतो उववज्जावेयव्वा ।

[६५८ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देव किन (कहाँ) से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५८ उ.] गौतम ! इसी प्रकार (ज्योतिष्क देवों का उपपात भी पूर्ववत् असुरकुमारों के उपपात के समान ही) समझना चाहिए । विशेषता यह है कि ज्योतिष्कों की उत्पत्ति सम्मूर्च्छिम असंख्यातवर्षायुष्क-खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकों को तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों को छोड़कर कहनी चाहिए । अर्थात् इनसे निकल कर कोई जीव सीधा ज्योतिष्क देव नहीं होता ।

६५९. वेमाणिया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं णेरइएहिंतो, तिरिक्खजोणिएहिंतो, मणुस्सेहिंतो, देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो देवेहिंतो उववज्जंति ।

एवं चेव वेमाणिया वि सोहम्मीसाणगा भाणितव्वा ।

[६५९ प्र.] भगवन् ! वैमानिक देव किनसे उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिकों से या तिर्यञ्चयोनिकों से अथवा मनुष्यों से या देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५९ उ.] गौतम ! (वे) नारकों से उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों से तथा मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं । देवों से उत्पन्न नहीं होते ।

इसी प्रकार सौधर्म और ईशान कल्प के वैमानिक देवों (की उत्पत्ति के विषय में) कहना चाहिए ।

६६०. एवं सणंकुमारगा वि । णवरं असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमगवज्जेहिंतो उववज्जंति ।

[६६०] सनत्कुमार देवों के उपपात के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेषता यह है कि ये असंख्यातवर्षायुष्क अकर्मभूमिकों को छोड़कर (पूर्वोक्त सबसे) उत्पन्न होते हैं ।

६६१. एवं जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवा भाणितव्वा ।

[६६१] सहस्रारकल्प तक (अर्थात् माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार कल्प) के देवों का उपपात भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

६६२. [१] आणयदेवा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, नो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो ।

[६६२-१ प्र.] भगवन् ! आनत देव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से (अथवा) यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों से उत्पन्न नहीं होते, तिर्यञ्चयोनिकों से भी उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं। देवों से (उत्पन्न) नहीं (होते।)

[२] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो ।

[६६२-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-२ उ.] गौतम ! (वे आनत देव) गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते ।

[३] जति गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ? अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ? अंतरदीवगेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति, नो अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति, नो अंतरदीवगेहिंतो ।

[६६२-३ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (या) अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-३ उ.] गौतम ! (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ।

[४] जइ कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ? असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउएहिंतो, नो असंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ।

[६६२-४ प्र.] (भगवन्) यदि (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या संख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, या असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-४ उ.] गौतम ! (वे) संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक-गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते ।

[५] जति संखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो ।

[६६२-५ प्र.] (भगवन्) यदि संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से (वे आनत देव) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तकों से या अपर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-५ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते ।

[६] जति पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति किं सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति ? मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ? सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जंति, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति ।

[६६२-६ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ? (या) मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-६ उ.] गौतम ! सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से भी (वे) उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से भी उत्पन्न होते हैं; (किन्तु) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते ।

[७] जति सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संजतसम्मद्दिट्ठीहिंतो ? असंजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो ? संजयासंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! तीहिंतो वि उववज्जंति ।

[६६२-७ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) संयत सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं अथवा संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-७ उ.] गौतम ! (वे आनत देव) (उपर्युक्त) तीनों से ही (संयतसम्यग्दृष्टियों से, असंयतसम्यग्दृष्टियों से तथा संयतासंयतसम्यग्दृष्टियों से) उत्पन्न होते हैं ।

६६३. एवं जाव अच्चुओ कप्पो ।

[६६३] अच्युतकल्प के देवों तक (के उपपात के विषय में) इसी प्रकार कहना चाहिए ।

६६४. एवं गेवेज्जगदेवा वि । णवरं असंजत-संजतासंजतेहिंतो वि एते पडिसेहेयव्वा ।

[६६४] इसी प्रकार (नौ) ग्रैवेयकदेवों के उपपात के विषय में भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि असंयतों और संयतासंयतों से इनकी (ग्रैवेयकों की) उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

६६५. [१] एवं जहेव गेवेज्जगदेवा तहेव अणुत्तरोववाइया वि । णवरं इमं णाणत्तं— संजया चेव ।

[६६५-१] इसी प्रकार जैसी (वक्तव्यता) ग्रैवेयक देवों की उत्पत्ति (के विषय में) कही, वैसी ही उत्पत्ति (-वक्तव्यता) पांच अनुत्तर विमानों के देवों की समझनी चाहिए। विशेष यह है कि संयत ही अनुत्तरौपपातिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

[२] जति संजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जंति किं पमत्तसंजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो अपमत्तसंजतेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! अपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति, नो पमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति ।

[६६५-२] (भगवन् !) यदि (वे) संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं ?

[६६५-२ उ.] गौतम ! (पूर्वोक्त तथारूप) अप्रमत्तसंयतों से (वे) उत्पन्न होते हैं किन्तु (तथारूप) प्रमत्तसंयतों से उत्पन्न नहीं होते।

[३] जति अपमत्तसंजएहिंतो उववज्जंति किं इड्डिपत्तअपमत्तसंजतेहिंतो उववज्जंति ? अणिड्डिपत्तअपमत्तसंजतेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति । दारं ५ ॥

[६६५-३ प्र.] (भगवन् !) यदि वे (अनुत्तरौपपातिक देव) (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) अप्रमत्तसंयतों से उत्पन्न होते हैं, तो क्या ऋद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसंयतों से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अनृद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसंयतों से (वे) उत्पन्न होते हैं ?

[६६५-३ उ.] गौतम ! (वे) उपर्युक्त दोनों (ऋद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसंयतों तथा अनृद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसंयतों) से भी उत्पन्न होते हैं।

—पंचम कुतोद्वार ॥ ५ ॥

विवेचन—पंचम कुतोद्वार : नारकादि चारों गतियों के जीवों की पूर्वभवों (आगति) से उत्पत्ति की प्ररूपणा—प्रस्तुत सत्ताईस सूत्रों में कुतः (कहाँ से या किन-किन भवों से) द्वार के माध्यम से जीवों की उत्पत्ति के विषय में विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

किनकी उत्पत्ति, किन-किनसे ? का क्रम—इस द्वार का क्रम इस प्रकार है— १. सामान्य नारकों की उत्पत्ति किन-किनसे ?, २. रत्नप्रभादि पृथ्वियों के नारकों की उत्पत्ति, ३. असुर-

कुमारादि भवनवासी देवों की उत्पत्ति, ४. पृथ्वीकायिकादि पंचविध एकेन्द्रियों की उत्पत्ति, ५. त्रिविध विकलेन्द्रियों की उत्पत्ति, ६. पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों की उत्पत्ति, ७. मनुष्यों की उत्पत्ति, (८) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की उत्पत्ति।

निष्कर्ष—सामान्य नैरयिकों और रत्नप्रभा के नैरयिकों में देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पांच एकेन्द्रिय स्थावर, त्रिविध विकलेन्द्रिय तथा असंख्यातवर्षायुष्क चतुष्पद खेचरों तथा शेष पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में भी अपर्याप्तकों एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों तथा गर्भजों में अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज मनुष्यों तथा कर्मभूमिजों में जो भी असंख्यातवर्षायुष्कों तथा संख्यातवर्षायुष्कों में भी अपर्याप्तक मनुष्यों से उत्पन्न होने का निषेध किया है, शेष से उत्पत्ति का विधान है। शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में सम्मूर्च्छिमों से, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में भुजपरिसर्पो से, पंकप्रभा के नैरयिकों में खेचरों से, धूमप्रभा-नैरयिकों में चतुष्पदों से, तम:प्रभा-नैरयिकों में उर:परिसर्पों से तथा तमस्तमा-पृथ्वी के नैरयिकों में स्त्रियों से (आकर) उत्पन्न होने का निषेध है। भवनवासियों में देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पांच, त्रिविध विकलेन्द्रिय, अपर्याप्त तिर्यक्पंचेन्द्रियों तथा सम्मूर्च्छिम एवं अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है, शेष का विधान है। पृथ्वी-जल-वनस्पतिकायिकों में सर्व नैरयिक तथा सनत्कुमारादि देवों से एवं तेजो-वायु-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियों में सर्व नारकों, सभी देवों से उत्पत्ति का तिर्यक् पंचेन्द्रियों में आनतादि देवों से उत्पत्ति का निषेध है। मनुष्यों में सप्तमनरकपृथ्वी के नारकों तथा तेजोवायुकायिकों से उत्पत्ति का निषेध है। व्यन्तरदेवों में देव, नारक, पृथ्वी आदि पंचक, विकलेन्द्रियत्रिक, अपर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा सम्मूर्च्छिम एवं अपर्याप्त गर्भज मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है। ज्योतिष्कदेवों में सम्मूर्च्छिम तिर्यक् पंचेन्द्रिय, असंख्यातवर्षायुष्क खेचर तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है। सौधर्म और ईशानकल्प के देवों में तथा सनत्कुमार से सहस्रारकल्प तक के देवों में अकर्मभूमिक मनुष्यों से भी उत्पत्ति का, आनत आदि में तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों से, नौ ग्रैवेयकों में असंयतों तथा संयतासंयतों एवं विजयादि पंच अनुत्तरौपपातिकों में मिथ्यादृष्टि मनुष्यों तथा प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों से उत्पत्ति का निषेध है।[1]

'कुतोद्वार' की प्ररूपणा का उद्देश्य—कौन-कौन जीव कहाँ से, अर्थात्—किन-किन भवों से उद्वर्त्तना (मृत्यु प्राप्त) करके नारकादि पर्यायों में (आकर) उत्पन्न होते हैं? यही प्रतिपादन करना कुतोद्वार का उद्देश्य और विशेष अर्थ है।[2]

छठा उद्वर्त्तनाद्वार : चातुर्गतिक जीवों के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद की प्ररूपणा—

६६६. [१] नेरइया णं भंते ! अणंतरं उववट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ? मणुस्सेसु उववज्जंति ? देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! णो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, नो देवेसु उववज्जंति।

[६६६-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिक जीव अनन्तर (साक्षात् या सीधा) उद्वर्त्तन करके (निकल

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २१४

२. प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनीटीका भा. २, पृ. १००७

कर) कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं अथवा तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ? मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६६-१ उ.] गौतम ! (नैरयिक जीव अनन्तर उद्वर्त्तन करके) नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं या मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं; (किन्तु) देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

[२] जति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिय जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! नो एगिंदिएसु जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जंति, पंचिंदिएसु उववज्जंति।

[६६६-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होते हैं, (अथवा) यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६६-२ उ.] गौतम ! (वे) न तो एकेन्द्रियों में और न ही द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं।

[३] एवं जेहिंतो उववाओ भणितो तेसु उव्वट्टणा वि भाणितव्वा। णवरं सम्मुच्छिमेसु ण उववज्जंति।

[६६६-३] इस प्रकार जिन-जिनसे उपपात कहा गया है, उन-उनमें ही उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेष यह है कि वे सम्मूर्च्छिमों में उत्पन्न नहीं होते।

६६७. एवं सव्वपुढवीसु भाणितव्वं। नवरं अहेसत्तमाओ मणुस्सेसु ण उववज्जंति।

[६६७] इसी प्रकार समस्त (नरक-)पृथ्वियों में उद्वर्त्तना का कथन करना चाहिए। विशेष बात यह है कि सातवीं नरकपृथ्वी से मनुष्यों में नहीं उत्पन्न होते।

६६८. [१] असुरकुमारा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? जाव देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! णो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, नो देवेसु उववज्जंति।

[६६८-१ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार साक्षात् (अनन्तर) उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं किन्तु देवों में उत्पन्न नहीं होते।

[२] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! एगिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, नो बेइंदिएसु[1] जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जंति, पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ।

[६६८-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या वे एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रियों तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-२ उ.] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं, किन्तु द्वीन्द्रियों में, त्रीन्द्रियों में और चतुरिन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते, (वे) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं ।

[३] जति एगिंदिएसु उववज्जंति किं पुढविकाइयएगिंदिएसु जाव वणस्सइकाइयएगिंदिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! पुढविकाइयएगिंदिएसु वि आउकाइयएगिंदिएसु वि उववज्जंति, नो तेउकाइएसु नो वाउकाइएसु उववज्जंति, वणस्सइकाइएसु उववज्जंति ।

[६६८-३ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियों में यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-३ उ.] गौतम ! (वे) पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, अप्कायिक एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो तेजस्कायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं और न वायुकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ।

[४] जति पुढविकाइएसु उववज्जंति किं सुहुमपुढविकाइएसु उववज्जंति ? बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति, नो सुहुमपुढविकाइएसु ।

[६६८-४ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं या बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-४ उ.] गौतम ! (वे) बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न नहीं होते ।

[५] जइ बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति किं पज्जत्तगबादरपुढविकाइएसु उववज्जंति ? अपज्जत्तयबायरपुढविकाइएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! पज्जत्तएसु उववज्जंति, नो अपज्जत्तएसु ।

[६६८-५ प्र.] भगवन् ! यदि बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-५ उ.] गौतम ! (वे) पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तकों में उत्पन्न नहीं होते ।

---

१. ग्रन्थाग्रम् ३५००

[६] एवं आउ-वणस्सतीसु वि भाणितव्वं ।

[६६८-६] इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों में (उत्पत्ति के विषय में) भी कहना चाहिए ।

[७] पंचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूसेसु य जहा नेरइयाणं उव्वट्टणा सम्मुच्छिमवज्जा तहा भाणितव्वा ।

[६६८-७] पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में (असुरकुमारों की उत्पत्ति के विषय में) उसी प्रकार कहना चाहिए, जिस प्रकार सम्मूर्च्छिम को छोड़कर नैरयिकों की उद्वर्त्तना कही है ।

[८] एवं जाव थणियकुमारा ।

[६६८-८] इसी प्रकार (असुरकुमारों की तरह) स्तनितकुमारों तक की उद्वर्त्तना समझ लेनी चाहिए ।

६६९. [१] पुढविकाइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिय-मणूसेसु उववज्जंति, नो देवेसु ।

[६६९-१ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सीधे निकल कर (अनन्तर उद्वर्त्तन करके) कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारकों में यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६६९-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ।

[२] एवं जहा एतेसिं चेव उववाओ तहा उव्वट्टणा वि[1] भाणितव्वा ।

[६६९-२] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी (देवों को छोड़कर) कहनी चाहिए ।

६७०. एवं आउ-वणस्सइ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरेंदिया वि ।

[६७०] इसी प्रकार अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियों (की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए ।)

६७१. एवं तेऊ वाऊ वि । णवरं मणुस्सवज्जेसु उववज्जंति ।

[६७१] इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए । विशेष यह है कि (वे) मनुष्यों को छोड़ कर उत्पन्न होते हैं ।

६७२. [१] पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

---

१. पाठान्तर-'देववज्जा' यह अधिक पाठ किसी-किसी प्रति में है ।

गोयमा ! नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ।

[६७२-१ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक अनन्तर उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, (अथवा) यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं ।

[२] जदि णेरइएसु उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति ।

[६७२-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् अधःसप्तमीपृथ्वी के नैरयिकों में (से किन्हीं में) उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-२ उ.] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अधः-सप्तमीपृथ्वी के नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं ।

[३] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु जाव पंचिंदिएसु ?

गोयमा ! एगिंदिएसु वि उववज्जंति जाव पंचेंदिएसु वि उववज्जंति ।

[६७२-३ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रियों में यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-२ उ.] गौतम ! (वे) एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं ।

[४] एवं जहा एतेसिं चेव उववाओ उव्वट्टणा वि तहेव भाणितव्वा । नवरं असंखेज्जवासाउएसु वि एते उववज्जंति ।

[६७२-४] यों जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि ये *असंख्यातवर्षों* की आयु वालों में भी उत्पन्न होते हैं ।

[५] जति मणुस्सेसु उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु उववज्जंति गब्भवक्कंतियमणूसेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! दोसु वि उववज्जंति ।

[६७२-५ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-५ उ.] गौतम ! (वे) दोनों में ही उत्पन्न होते हैं ।

[६] एवं जहा उववाओ तहेव उव्वट्टणा वि भाणितव्वा । नवरं अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउएसु वि एते उववज्जंति त्ति भाणितव्वं ।

[६७२-६] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए । विशेषतया अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और असंख्यातवर्षायुष्क मनुष्यों में भी ये उत्पन्न होते हैं, यह कहना चाहिए ।

[७] जति देवेसु उववज्जंति किं भवणवतीसु उववज्जंति ? जाव किं वेमाणिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जंति ।

[६७२-७ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) देवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या भवनपति देवों में उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् वैमानिकों में भी उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-७ उ.] गौतम ! (वे) सभी (प्रकार के) देवों में उत्पन्न होते हैं ।

[८] जति भवणवतीसु उववज्जंति किं असुरकुमारेसु उववज्जंति ? जाव थणियकुमारेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जंति ।

[६७२-८ प्र.] (भगवन् !) यदि (वे) भवनपति देवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् स्तनितकुमारों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-८ उ.] गौतम ! (वे) सभी (भवनपतियों) में उत्पन्न होते हैं ।

[९] एवं वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु निरंतरं उववज्जंति जाव सहस्सारो कप्पो त्ति ।

[६७२-९] इसी प्रकार वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और सहस्रारकल्प तक के वैमानिक देवों में निरन्तर उत्पन्न होते हैं ।

६७३. [१] मणुस्सा णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइएसु वि उववज्जंति जाव देवेसु वि उववज्जंति ।

[६७३-१ प्र.] भगवन् ! मनुष्य अनन्तर उद्वर्त्तन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं ?

[६७३-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं ।

[२] एवं निरंतरं सव्वेसु ठाणेसु पुच्छा ।

गोयमा ! सव्वेसु ठाणेसु उववज्जंति, ण कहिंचि पडिसेहो कायव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धदेवेसु वि उववज्जंति, अत्थेगतिया सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति ।

[६७३-२ प्र] भगवन् ! क्या (मनुष्य) नैरयिक आदि सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं ?

[६७३-२ उ.] गौतम ! वे (इन) सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं, कहीं भी इनके उत्पन्न होने का निषेध नहीं करना चाहिए; यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों तक में भी (मनुष्य) उत्पन्न होते हैं और कई मनुष्य सिद्ध होते हैं, बुद्ध (केवलबोधप्राप्त) होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण प्राप्त को करते हैं और सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

६७४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया सोहम्मीसाणा य जहा असुरकुमारा। नवरं जोइसियाणं वेमाणियाण य चयंतीति अभिलावो कातव्वो।

[६७४] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म एवं ईशान देवलोक के वैमानिक देवों की उद्वर्त्तन-प्ररूपणा असुरकुमारों के समान, समझनी चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए ('उद्वर्त्तना करते हैं के बदले) 'च्यवन करते हैं', यों कहना चाहिए।

६७५. सणंकुमारदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहा असुरकुमारा। नवरं एगिंदिएसु ण उववज्जंति। एवं जाव सहस्सारगदेवा।

[६७५ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमार देव अनन्तर च्यवन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[६७५ उ.] इनकी (च्यवनानन्तर उत्पत्तिसम्बन्धी) वक्तव्यता असुरकुमारों के (उपपात-सम्बन्धी वक्तव्य के) समान समझनी चाहिए। विशेष यह है कि (ये) एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार की वक्तव्यता सहस्रार देवों तक की कहनी चाहिए।

६७६. आणय जाव अणुत्तरोववाइया देवा एवं चेव। णवरं णो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणूसेसु पज्जत्तगसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेसु उववज्जंति। दारं ६॥

[६७६] आनत देवों से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक (च्यवनानन्तर उत्पत्ति-सम्बन्धी) वक्तव्यता इसी प्रकार समझनी चाहिए। विशेष यह है कि (ये देव) तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न नहीं होते, मनुष्यों में भी पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

—छठा उद्वर्तनाद्वार ॥६॥

विवेचन—छठा उद्वर्त्तनाद्वार : चातुर्गतिक जीवों के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रों (सू. ६६६ से ६७६ तक) में नैरयिकों से लेकर देवों तक के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एवं उपपात के सम्बन्ध में सूक्ष्म ऊहापोहपूर्वक प्ररूपणा की गई है।

उद्वर्त्तना की परिभाषा—नारकादि जीवों का अपने भव से निकलकर (मरकर या च्यवकर) सीधे (बीच में कहीं अन्तर-व्यवधान न करके) किसी भी अन्य गति या योनि में जाना और उत्पन्न होना[1] उद्वर्त्तना कहलाता है।

निष्कर्ष—अपने भव से (मृत या च्युत होकर) निकले हुए नैरयिकों का सीधा (साक्षात्) उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यक्पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में होता है; सातवीं नरकपृथ्वी के नैरयिकों

१. प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ११०९

का उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों में होता है, असुरकुमारादि भवनपति, वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ईशान कल्प के वैमानिक देवों का उत्पाद बादर पर्याप्त पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक एवं वनस्पतिकायिकों में तथा गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों एवं मनुष्यों में होता है। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक तथा द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवों का उत्पाद तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति में तथा तेजस्कायिक-वायुकायिकों का केवल तिर्यञ्चगति में ही होता है। तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों का उत्पाद नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देवगति में, विशेषतः सहस्रार-कल्पपर्यन्त वैमानिकों में होता है। मनुष्यों का उत्पाद चारों गतियों के सभी स्थानों में होता है तथा सनत्कुमार से लेकर सहस्रार देव पर्यन्त वैमानिक देवों का उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंचपंचेन्द्रियों एवं मनुष्यों में होता है, और आनत कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक के देवों का उत्पाद गर्भज संख्यातवर्षायुष्क मनुष्यों में ही होता है।[1]

सप्तम परभविकायुष्यद्वार : चातुर्गतिक जीवों की पारभविकायुष्यसम्बन्धी प्ररूपणा—

६७७. नेरइया णं भंते ! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ।

[६७७ प्र.] भगवन् ! आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर नैरयिक परभव (आगामी जन्म) की आयु (का बन्ध) करते हैं ?

[६७७ उ.] गौतम ! (वे) नियम से छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।

६७८. एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा ।

[६७८] इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक (का परभविक-आयुष्यबन्ध सम्बन्धी कथन करना चाहिए।)

६७९. पुढविकाइया णं भंते ! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सोवक्कमाउया य निरुवक्कमाउया य । तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति । तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते सिय तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ।

[६७९ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बांधते हैं ?

[६७९ उ.] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार—(१) सोप-क्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले। इनमें से जो निरुपक्रम (उपक्रमरहित) आयु वाले हैं, वे नियम से आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं तथा इनमें जो सोपक्रम (उपक्रमसहित) आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २१६

आयुष्यबन्ध करते हैं और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं।

६८०. आउ-तेउ-वाउ-वणप्फइकाइयाणं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण वि एवं चेव।

[६८०] अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकों तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियों (के पारभविक-आयुष्यबन्ध) का कथन भी इसी प्रकार (करना चाहिए)।

६८१. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—संखेज्जवासाउया य असंखेज्जवासाउया य। तत्थ णं जे ते असंखेज्जवासाउया ते नियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते संखेज्जवासाउया ते दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सोवक्कमाउया य निरुवक्कमाउया य। तत्थ णं जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते णं सिय तिभागे परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागे य परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभागतिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

[६८१ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं ?

[६८१ उ.] गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) संख्यातवर्षायुष्क और (२) असंख्यातवर्षायुष्क। उनमें से जो असंख्यात वर्ष की आयु वाले हैं, वे नियम से छह मास आयु शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर लेते हैं और जो इनमें संख्यातवर्ष की आयु वाले हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) सोपक्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले। इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले हैं, वे नियमतः आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं। जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुष्यबन्ध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुबन्ध करते हैं।

६८२. एवं मणूसा वि।

[६८२] मनुष्यों का (पारभविक आयुष्यबन्ध-सम्बन्धी कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।)

६८३. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया। दारं ७॥

[६८३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों (के परभव का आयुष्यबन्ध) नैरयिकों के (पारभविक आयुष्यबन्ध के) समान (छह मास शेष रहने पर) कहना चाहिए।

सप्तम पारभविकायुष्यद्वार ॥७॥

विवेचन—सप्तम पारभविकायुष्यद्वार : चातुर्गतिक जीवों को पारभविक आयुष्यबन्ध-सम्बन्धी

प्ररूपणा—नरकादि चारों गतियों के जीवों की आयु का कितना भाग शेष रहते परभवसंबंधी आयुष्य बन्ध होता है ? इस विषय में प्रस्तुत सात सूत्रों (सू. ६७७ से ६८३ तक) में प्ररूपणा की गई है।

पारभविकायुष्यद्वार का तात्पर्य—वर्तमान भव में नारकादिपर्याय वाले जीव अपने वर्तमान भव सम्बन्धी आयु का कितना भाग शेष रहते अथवा आयुष्य का कितना भाग बीत जाने पर अगले जन्म (आगामी-परभव) की आयु का बन्ध करते हैं ? यही बताना इस द्वार का आशय है।

सोपक्रम और निरुपक्रम की व्याख्या—जो आयु उपक्रमयुक्त हो, वह सोपक्रम कहलाती है और जो आयु उपक्रम से प्रभावित न हो सके, वह निरुपक्रम कहलाती है। आयु का विघात करने वाले तीव्र विष, शस्त्र, अग्नि, जल आदि उपक्रम कहलाते हैं। इन उपक्रमों के योग से दीर्घकाल में धीरे-धीरे भोगी जाने वाली आयु बन्धकालीन स्थिति से पहले (शीघ्र) ही भोग ली जाती है। अर्थात् इन उपक्रमों के निमित्त से जो आयु बीच में ही टूट जाती है, जिस आयु का भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा से कम हो, उसे अकालमृत्यु, सोपक्रम आयु अथवा अपवर्तनीय आयु भी कहते हैं। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके, अर्थात्—जिसका भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा के समान हो, वह निरुपक्रम या अनपवर्तनीय आयु कहलाती है। औपपातिक (नारक और देव), चरमशरीरी, उत्तमपुरुष और असंख्यातवर्षजीवी (मनुष्य-तिर्यञ्च), ये अनपवर्तनीय-निरुपक्रम आयु वाले होते हैं।

निष्कर्ष—निरुपक्रमी जीवों में औपपातिक और असंख्यातवर्षजीवी अनपवर्तनीय आयु वाले होते हैं। वे आयुष्य के ६ मास शेष रहते आगामी भव का आयुष्यबन्ध करते हैं, जैसे—नैरयिक, सब प्रकार के देव और असंख्यातवर्षजीवी मनुष्य-तिर्यञ्च। पृथ्वीकायिकादि से लेकर मनुष्यों तक दोनों ही प्रकार की आयु वाले होते हैं। इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले होते हैं, वे आयु (स्थिति) के दो भाग व्यतीत हो जाने पर और तीसरा भाग शेष रहने पर आगामी भव का आयुष्य बांधते हैं, किन्तु जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् वर्तमान आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं, किन्तु यह नियम नहीं है कि वे तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर ही लें। अतएव जो जीव उस समय आयुबन्ध नहीं करते, वे अवशिष्ट तीसरे भाग के तीन भागों में से दो भाग व्यतीत हो जाने पर और एक भाग शेष रहने पर आयु का बन्ध करते हैं। कदाचित् इस तीसरे भाग में भी पारभविक आयु का बन्ध न हुआ तो शेष आयु का तीसरा भाग शेष रहते आयु का बन्ध करते हैं। अर्थात् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग के तीसरे भाग में आयुष्यबन्ध करते हैं। कोई-कोई विद्वान् इसका अर्थ यों करते हैं कि कभी आयु का नौवां भाग शेष रहने पर अथवा कभी आयु का सत्ताईसवां भाग शेष रहने पर सोपक्रम आयु वाले जीव आगामी भव का आयुष्य बांधते हैं।[1]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा. २, पृ. ११४२-११४३
(ख) तत्त्वार्थसूत्र (विवेचन, पं. सुखलालजी, नवसंस्करण)
'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।' २.२५
—तत्त्वार्थसूत्र अ. २, सू. ५२ पर विवेचन। पृ. ७९-८०
(ग) श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़े, प्रथम भाग, पृ. १५०
(घ) 'कभी-कभी अपनी आयु के २७ वें भाग का तीसरा भाग यानी ८१ वां भाग शेष रहने पर, कभी ८१ वें भाग का तीसरा भाग यानी २४३ वां भाग और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग यानी ७२९ वां भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।' —किन्हीं आचार्यों का मत
—श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़े, प्रथमभाग पृ. १५०, प्रज्ञापना प्र. बो. टीका भा. २, पृ. ११४४-४५

अष्टम आकर्षद्वार : सर्वजीवों के षड्विध आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की संख्या और अल्पबहुत्व—

६८४. कतिविधे णं भंते ! आउयबंधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विधे आउयबंधे पण्णत्ते । तं जहा—जातिणामणिहत्ताउए १ गइनामनिहत्ताउए २ ठितीनामनिहत्ताउए ३ ओगाहणाणामणिहत्ताउए ४ पदेसणामणिहत्ताउए ५ अणुभावणामणिहत्ताउए ६ ।

[६८४ प्र.] भगवन् ! आयुष्य का बन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८४ उ.] गौतम ! आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८५. नेरइयाणं भंते ! कतिविहे आउयबंधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते । तं जहा—जातिनामनिहत्ताउए १ गतिणामनिहत्ताउए २ ठितीणामणिहत्ताउए ३ ओगाहणानामनिहत्ताउए ४ पदेसणामनिहत्ताउए ५ अणुभावनामनिहत्ताउए ६ ।

[६८५ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों का आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८५ उ.] गौतम ! (नैरयिकों का) आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८६. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[६८६] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारों से लेकर) यावत् वैमानिकों तक के आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा समझनी चाहिए ।

६८७. जीवा णं भंते ! जातिणामणिहत्ताउयं कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं ।

[६८७ प्र.] भगवन् ! जीव जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं ?

[६८७ उ.] गौतम ! (जीव जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से (बांधते हैं ।)

६८८. नेरइया णं भंते ! जाइनामनिहत्ताउयं कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठहिं ।

[६८८ प्र.] भगवन् ! नारक जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं ?

[६८८ उ.] गौतम ! (नारक जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बांधते हैं ।

६८९. एवं जाव वेमाणिया ।

[६८९] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारों से लेकर) यावत् वैमानिक तक (के जातिनाम-निधत्तायु की आकर्ष-संख्या का कथन करना चाहिए ।)

६९०. एवं गतिणामणिहत्ताउए वि ठितीणामनिहत्ताउए वि ओगाहणाणामनिहत्ताउए वि पदेसणामनिहत्ताउए वि अणुभावणामनिहत्ताउए वि ।

[६९०] इसी प्रकार (समस्त जीव) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानाम-निधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभावनामनिधत्तायु का (बन्ध) भी जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से करते हैं ।

६९१. एतेसि णं भंते ! जीवाणं जातिनामनिहत्ताउयं जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणाणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा जातिणामणिहत्ताउयं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा, सत्तहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा, छहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखेज्जगुणा, एवं पंचहिं संखेज्जगुणा, चउहिं संखेज्जगुणा, तिहिं संखेज्जगुणा, दोहिं संखेज्जगुणा, एगेणं आगरिसेणं पगरेमाणा संखेज्जगुणा ।

[६९१ प्र.] भगवन् ! इन जीवों में जघन्य एक, दो और तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बन्ध करने वालों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[६९१ उ.] गौतम ! सबसे कम जीव जातिनामनिधत्तायु को आठ आकर्षों से बांधने वाले हैं, सात आकर्षों से बांधने वाले (इनसे) संख्यातगुणे हैं, छह आकर्षों से बांधने वाले (इनसे) संख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार पांच (आकर्षों से बांधने वाले इनसे) संख्यातगुणे हैं, चार (आकर्षों से बांधने वाले इनसे) संख्यातगुणे हैं, तीन (आकर्षों से बांधने वाले, इनसे) संख्यातगुणे हैं, दो (आकर्षों से बांधने वाले, इनसे) संख्यातगुणे हैं और एक आकर्ष से बांधने वाले, (इनसे भी) संख्यातगुणे हैं ।

६९२. एवं एतेणं अभिलावेणं जाव अणुभावनिहत्ताउयं । एवं एते छ प्पि य अप्पाबहुदंडगा जीवादीया भाणियव्वा । दारं ८ ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए छट्ठं वक्कंतिपयं समत्तं ॥

[६९२] इसी प्रकार इस अभिलाप से (ऐसा ही अल्पबहुत्व का कथन) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और यावत् अनुभावनामनिधत्तायु को बांधने वालों का (जान लेना चाहिए ।) इस प्रकार ये छहों ही अल्पबहुत्वसम्बन्धी दण्डक जीव से आरम्भ करके कहने चाहिए ।

—आठवां आकर्षद्वार ॥८॥

विवेचन—आठवां आकर्षद्वार : सभी जीवों के छह प्रकार के आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की संख्या और अल्पबहुत्व—प्रस्तुत अष्टमद्वार में नौ सूत्रों (सू. ६८४ से ६९२ तक) द्वारा तीन तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं—

१. जीवसामान्य के तथा नारकों से वैमानिकों तक का छह प्रकार का आयुष्यबन्ध।

२. जीवसामान्य तथा नारकादि वैमानिकपर्यन्त जीवों द्वारा जातिनामनिधत्तायु आदि छहों का जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बन्ध की प्ररूपणा।

३. जातिनामनिधत्तायु आदि प्रत्येक आयु को जघन्य-उत्कृष्ट आकर्षों से बांधने वाले जीवों का अल्पबहुत्व।

आयुष्यबन्ध के छह प्रकारों का स्वरूप—(१) जातिनामनिधत्तायु—जैनदृष्टि से एकेन्द्रियादि-रूप पांच प्रकार की जातियां हैं। वे नामकर्म की उत्तरप्रकृतिविशेष रूप है, उस 'जातिनाम' के साथ निधत्त अर्थात्—निषिक्त जो आयु हो, वह **'जातिनामनिधत्तायु'** है। 'निषेक' कहते हैं—कर्मपुद्‌गलों के अनुभव करने के लिए रचनाविशेष को। वह रचना इस प्रकार की होती है—अपने अबाधाकाल को छोड़कर (क्योंकि अबाधाकाल में कर्मपुद्‌गलों का अनुभव नहीं होता, इसलिए उसमें कर्मदलिकों की रचना नहीं होती।) प्रथम—जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तरूप स्थिति में बहुतर द्रव्य होता है। एक आकर्ष में ग्रहण किये हुए कर्मदलिकों में बहुत-से जघन्य स्थिति वाले ही होते हैं। शेष एक समय आदि से अधिक अन्तर्मुहूर्त्तादि स्थिति में विशेष हीन (कम) द्रव्य होता है, एवं यावत् उत्कृष्ट स्थिति में उत्कृष्टतः (विशेषहीन अर्थात्—सर्वहीन = सबसे कम) दलिक होते हैं। **(२) गतिनामनिधत्तायु**—गतियां चार हैं—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। गतिरूप नामकर्म 'गतिनाम' है। उनके साथ निधत्त (निषिक्त) आयु **''गतिनामनिधत्तायु'** कहलाती है। **(३) स्थितिनामनिधत्तायु**—उस-उस भव में (आयुष्यबल से) स्थित रहना स्थिति है। स्थितिप्रधान नाम (नामकर्म) स्थितिनाम है। उसके साथ निधत्त आयु **'स्थितिनामनिधत्तायु'** है। जो जिस भव में उदयप्राप्त रहता है, वह स्थितिनाम है; जो कि गति, जाति तथा पांच शरीरों से भिन्न है। **(४) अवगाहनानामनिधत्तायु**—जिसमें जीव अवगाहन करे, उसे अवगाहना कहते है। औदारिकादि शरीर, उनका निर्माण करने वाला औदारि-कादि शरीरनामकर्म—अवगाहनानाम है। उसके साथ निधत्त आयु **'अवगाहनानामनिधत्तायु'** कहलाती है। **(५) प्रदेशनामनिधत्तायु**—प्रदेश कहते हैं—कर्मपरमाणुओं को। वे प्रदेश संक्रम से भी भोगे जाने वाले ग्रहण किये जाते हैं। उन (प्रदेशों) की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) प्रदेशनाम कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जो जिस भव में प्रदेश से विपाकोदय के बिना ही भोगा (अनुभव किया) जाता है, वह प्रदेशनाम कहलाता है। उक्त प्रदेशनाम के साथ निधत्त आयु को **'प्रदेशनामनिधत्तायु'** कहते हैं। **(६) अनुभावनामनिधत्तायु**—अनुभाव कहते हैं—विपाक को। यहाँ प्रकर्ष अवस्था को प्राप्त विपाक ही ग्रहण किया जाता हे। उस अनुभाव-विपाक की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) 'अनुभाव-नाम' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जिस भव में जो तीव्र विपाक वाला नामकर्म भोगा जाता है, वह अनुभावनाम कहलाता है। जैसे—नरकायु में अशुभ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, उपघात, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति आदि नामकर्म हैं। अतः अनुभावनाम के साथ निधत्त आयु **'अनुभावनामनिधत्तायु'** कहलाती है।

प्रस्तुत में आयुकर्म की प्रधानता प्रकट करने के लिए जाति, गति, स्थिति, अवगाहना नामकर्म

आदि को आयु के विशेषण के रूप में कहा है। नारक आदि की आयु का उदय होने पर ही जाति आदि नामकर्मों का उदय होता है। अन्यथा नहीं, अतएव आयु की ही यहाँ प्रधानता है।[1]

आकर्ष का स्वरूप—आकर्ष कहते हैं—विशेष प्रकार के प्रयत्न से जीव द्वारा होने वाले कर्म-पुद्‌गलों के उपादान—ग्रहण को। प्रस्तुत सूत्रों (सू. ६८७ से ६९० तक) में इस विषय की चर्चा की गई है कि जीवसामान्य तथा नारक से लेकर वैमानिक तक कितने आकर्षों यानी प्रयत्नविशेषों से जातिनामनिधत्तायु आदि षड्विध आयुष्यकर्म-पुद्‌गलों का ग्रहण, बन्ध करने हेतु, करते हैं? उदाहरणार्थ—जैसे—कई गायें एक ही घूंट में पर्याप्त जल पी लेती हैं, कई भय के कारण रुक-रुक कर दो, तीन या चार अथवा सात-आठ घूंटों में जल पीती हैं। उसी प्रकार कई जीव उन-उन जातिनाम आदि से निधत्त आयुकर्म के (बन्धहेतु) पुद्‌गलों का तीव्र अध्यवसायवश एक ही मन्द आकर्ष में ग्रहण कर लेते हैं, दूसरे दो या तीन मन्दतर आकर्षों में या चार या पांच मन्दतम आकर्षों में या फिर छह, सात या आठ अत्यन्त मन्दतम आकर्षों में ग्रहण करते हैं। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि आयु के साथ बन्धने वाले जाति आदि नामों (नामकर्मों) में ही आकर्ष का नियम है; शेष काल में नहीं। कई प्रकृतियाँ 'ध्रुवबन्धिनी' होती हैं और कई 'परावर्तमान' होती हैं। उनका बहुत काल तक बन्ध सम्भव होने से उनमें आकर्षों का नियम नहीं है।[2]

आकर्ष करने वाले जीवों का तारतम्य—बन्ध के हेतु आयुष्यकर्मपुद्‌गलों का ग्रहण अधिक-से-अधिक आठ आकर्षों में करने वाले जीव सबसे कम हैं, उनसे क्रमशः कम आकर्ष करने वाले जीव उत्तरोत्तर संख्यातगुणे अधिक हैं, सबसे अधिक जीव एक आकर्ष करने वाले हैं।[3]

॥ प्रज्ञापनासूत्रः छठा व्युत्क्रान्तिपद समाप्त ॥

---

१. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २१७-२१८
२. प्रज्ञापना. मलय. वृत्ति, पत्रांक २१८
३. पण्णवणासुत्तं भा. २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ. ७४

सत्तमं उस्सासपयं

(सप्तम उच्छ्वासपद)

प्राथमिक

※ प्रज्ञापनासूत्र के सप्तम 'उच्छ्वासपद' में सिद्ध जीवों के सिवाय समस्त संसारी जीवों के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की चर्चा है।

※ जीवनधारण के लिए प्रत्येक प्राणी को श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता है। चाहे वह मुनि हो, चक्रवर्ती हो, राजा हो अथवा किसी भी प्रकार का देव हो, नारक हो अथवा एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय तक किसी भी जाति का प्राणी हो। इसलिए श्वासोच्छ्वासरूप प्राण का अत्यन्त महत्त्व है और यह 'जीवतत्त्व' से विशेषरूप से सम्बन्धित है। इस कारण शास्त्रकार ने इस पद की रचना करके प्रत्येक प्रकार के जीव के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की प्ररूपणा की है।

※ इस पद के प्रत्येक सूत्र के मूलपाठ में 'आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा यों चार क्रियापद हैं। वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि 'आणमंति' और 'ऊससंति' को तथा 'पाणमंति' और 'नीससंति' को एकार्थक मानते हैं, परन्तु उन्होंने अन्य आचार्यों का मत भी दिया है। उसके अनुसार प्रथम के दो क्रियापदों को बाह्य श्वासोच्छ्वास क्रिया के अर्थ में माना गया है।

※ प्रस्तुत पद में सर्वप्रथम नैरयिकों के उच्छ्वासनिःश्वास-विरहकाल की, तत्पश्चात् दस भवनपति देवों, पृथ्वीकायिकादि पांच एकेन्द्रियों, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियों तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों, मनुष्यों के श्वासोच्छ्वास-विरहकाल की चर्चा की है। अन्त में वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों, सौधर्मादि वैमानिकों एवं नौ ग्रैवेयकों तथा पांच अनुत्तरविमानवासी देवों के उच्छ्वास-निःश्वास-विरहकाल की पथक्-पृथक् प्ररूपणा की है।[1]

※ समस्त संसारी जीवों के उच्छ्वास-निःश्वास-विरहकाल की इस प्ररूपणा पर से एक बात स्पष्ट फलित होती है, जिस की ओर वृत्तिकार ने ध्यान खींचा है। वह यह कि जो जीव जितने अधिक दुःखी होते हैं, उन जीवों की श्वासोच्छ्वासक्रिया उतनी ही अधिक और शीघ्र चलती है और अत्यन्त दुःखी जीवों के तो यह क्रिया सतत अविरत रूप से चला करती है। जो जीव जितने-जितने अधिक, अधिकतर या अधिकतम सुखी होते हैं, उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तरोत्तर देर से चलती है। अर्थात् उनका श्वासोच्छ्वास-विरहकाल उतना ही अधिक, अधिकतर और अधिकतम है; क्योंकि श्वासोच्छ्वास क्रिया अपने आप में दुःखरूप है, यह बात स्वानुभव से भी सिद्ध है, शास्त्रसमर्थित भी है।[2]

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२०-२२१ (ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. १८४ से १८७ तक।

२. (क) प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २२० (ख) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट प्रस्तावनात्मक) भा. २, पृ. ७५

सत्तमं उस्सासपयं

सप्तम उच्छ्वासपद

६९३. नेरइया णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! सततं संतयामेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ।

[६९३ प्र.] भगवन् ! नैरयिक कितने काल से अन्तःस्फुरित उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास (ऊँचा श्वास) और निःश्वास (नीचा श्वास) लेते हैं ? (अथवा उच्छ्वास अर्थात् श्वास लेते और निःश्वास अर्थात् श्वास छोड़ते हैं ।)

[६९३ उ.] गौतम ! वे सतत सदैव निरन्तर अन्तःस्फुरित उच्छ्वास-निःश्वास एवं बाह्य-स्फुरित उच्छ्वास-निःश्वास लेते रहते हैं ।

६९४. असुरकुमारा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं सातिरेगस्स पक्खस्स वा आणमंति वा जाव नीससंति वा ।

[६९४ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया करते हैं ?

[६९४ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः सात स्तोक में और उत्कृष्टतः सातिरेक एक पक्ष में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ।

६९५. णागकुमारा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स ।

[६९५ प्र.] भगवन् ! नागकुमार कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं ?

[६९५ उ.] गौतम ! वे जघन्य सात स्तोक में और उत्कृष्टतः मुहूर्त्तपृथक्त्व में (अन्तः-स्फुरित) उच्छ्वास और निश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ।

६९६. एवं जाव थणियकुमाराणं ।

[६९६ प्र.] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक के उच्छ्वास-निःश्वास के विषय में समझ लेना चाहिए ।

६९७. पुढविकाइया णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! वेमायाए आणमंति वा जाव नीससंति वा ।

[६९७ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते हैं एवं (बाह्य) उच्छ्वास तथा निःश्वास लेते हैं ?

[६९७ उ.] गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीव) विमात्रा (अनियत काल) से (अन्तःस्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते हैं एवं (बाह्य) उच्छ्वास तथा निःश्वास लेते हैं ।

६९८. एवं जाव मणूसा ।

[६९८] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् मनुष्यों तक (के आन्तरिक एवं बाह्य श्वासोच्छ्वास के विषय में जानना चाहिए ।)

६९९. वाणमंतरा जहा णागकुमारा ।

[६९९] वाणव्यन्तर देवों के (आन्तरिक एवं बाह्य उच्छ्वास और निःश्वास के विषय में) नागकुमारों के (उच्छ्वास-निःश्वास) के समान (कहना चाहिए ।)

७००. जोइसिया णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं वि मुहुत्तपुहुत्तस्स जाव नीससंति वा ।

[७०० प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास-निःश्वास एवं (बाह्य) श्वासोच्छ्वास कितने काल से लेते हैं ?

[७०० उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः मुहूर्त्तपृथक्त्व और उत्कृष्टतः भी मुहूर्त्तपृथक्त्व से (आन्तरिक और बाह्य) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं ।

७०१. वेमाणिया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७०१ प्र.] भगवन् ! वैमानिक देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ?

[७०१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः मुहूर्त्तपृथक्त्व में और उत्कृष्टतः तेतीस पक्ष में (आन्तरिक एवं बाह्य) उच्छ्वास तथा निःश्वास लेते हैं ।

७०२. सोहम्मगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ।

गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७०२ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०२ उ.] गौतम ! जघन्य मुहूर्त्तपृथक्त्व में, उत्कृष्ट दो पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०३. ईसाणगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगस्स मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं सातिरेगाणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०३ प्र.] भगवन् ! ईशानकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः सातिरेक (कुछ अधिक) मुहूर्त्तपृथक्त्व में और उत्कृष्टतः सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०४. सणंकुमारदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं दोण्हं पक्खाणं जाव णीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०४ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमार देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०४ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः दो पक्ष में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं और उत्कृष्टतः सात पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०५. माहिंदगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगाणं दोण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सातिरेगाणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०५ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०५ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षों में और उत्कृष्टतः सातिरेक (कुछ अधिक) सात पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०६. बंभलोगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०६ प्र.] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७०६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः सात पक्षों में और उत्कृष्टतः दस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०७. लंतगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०७ प्र.] भगवन् ! लान्तककल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य दस पक्षों में और उत्कृष्ट चौदह पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि:श्वास लेते हैं।

७०८. महासुक्कदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०८ प्र.] भगवन् ! महाशुक्रकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत: चौदह पक्षों में और उत्कृष्टत: सत्रह पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७०९. सहस्सारगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०९ प्र.] भगवन् ! सहस्रारकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ?

[७०९ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य सत्रह पक्षों में और उत्कृष्ट अठारह पक्षों में (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७१०. आणयदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एक्कूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१० प्र.] भगवन् ! आनतकल्प के देव कितने काल से (अन्त:स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं ?

[७१० उ.] गौतम ! (वे) जघन्य अठारह पक्षों में और उत्कृष्ट उन्नीस पक्षों में (अन्त:-स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि:श्वास लेते हैं।

७११. पाणयदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७११ प्र.] भगवन् ! प्राणतकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७११ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः उन्नीस पक्षों में और उत्कृष्टतः बीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७१२. आरणदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एगवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१२ प्र.] भगवन् ! आरणकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७१२ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः बीस पक्षों में और उत्कृष्टतः इक्कीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७१३. अच्चुयदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं बावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१३ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प के देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७१३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः इक्कीस पक्षों में और उत्कृष्टतः बाईस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७१४. हेट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ।

गोयमा ! जहन्नेणं बावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तेवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१४ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१४ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः बाईस पक्षों में और उत्कृष्टतः तेईस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७१५. हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं चउवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७१५ उ.] भगवन् ! अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१५ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः तेईस पक्षों में और उत्कृष्टतः चौवीस पक्षों में (अन्तः-स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (वाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७१६. हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगा देवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं पणुवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१६ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (वाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१६ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः चौवीस पक्षों में और उत्कृष्टतः पच्चीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास, यावत् (वाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७१७. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं पणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं छव्वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१७ प्र.] भगवन् ! मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (वाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः पच्चीस पक्षों में और उत्कृष्टतः छव्वीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (वाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७१८. मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं छव्वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१८ प्र.] भगवन् ! मध्यम-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (वाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१८ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः छव्वीस पक्षों में और उत्कृष्टतः सत्ताईस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (वाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७१९. मज्झिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१९ प्र.] भगवन् ! मध्यम-उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (वाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७१९ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः सत्ताईस पक्षों में और उत्कृष्टतः अट्ठाईस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (वाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७२०. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एगूणतीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा ।

[७२० प्र.] भगवन् ! उपरितन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२० उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः अट्ठाईस पक्षों में और उत्कृष्टतः उनतीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ।

७२१. उवरिममज्झिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७२१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२१ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः उनतीस पक्षों में और उत्कृष्टतः तीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७२२. उवरिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा णं केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एक्कतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७२२ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२२ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः तीस पक्षों में और उत्कृष्टतः इकतीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७२३. विजय-वेजयंत-जयंताऽपराजितविमाणेसु णं भंते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

[७२३ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यतः इकतीस पक्षों में और उत्कृष्टतः तेतीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ।

७२४. सव्वट्ठसिद्धगदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा ।

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तमं उस्सासपयं समत्तं ॥

[७२४ प्र.] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२४ उ] गौतम ! (वे) अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस पक्षों में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

विवेचन· नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के श्वासोच्छ्वास की प्ररूपणा—प्रस्तुत पद के कुल बत्तीस सूत्रों (सू. ६९३ से ७२४ तक) में क्रमशः नैरयिक से लेकर वैमानिक देवों तक चौवीस दण्डकवर्ती संसारी जीवों की अन्तःस्फुरित एवं बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया जघन्य एवं उत्कृष्ट कितने काल के अन्तर से होती है ? इसकी प्ररूपणा की गई है।

प्रश्न का तात्पर्य—जो प्राणी नारक आदि पर्यायों में उत्पन्न हुए हैं और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त हैं, वे कितने काल के बाद उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं ? अर्थात् एक श्वासोच्छ्वास लेने के पश्चात् दूसरा श्वासोच्छ्वास लेने तक में उनके उच्छ्वास-निःश्वास का विरहकाल कितना होता है ?, यही इस पद के प्रत्येक प्रश्न का तात्पर्य है।

आणमंति, पाणमंति, ऊससंति, नीससंति पदों की व्याख्या—'अन् प्राणने' धातु से 'आङ्' उपसर्ग लगने पर 'आनन्ति' और 'प्र' उपसर्ग लगने पर 'प्राणन्ति' रूप बनता है तथा सामान्यतया 'आनन्ति' और 'उच्छ्वसन्ति' का तथा 'प्राणन्ति' और 'निःश्वसन्ति' का एक ही अर्थ है,फिर समानार्थक दो-दो क्रियापदों का प्रयोग यहाँ क्यों किया गया ? ऐसी शंका उपस्थित होती है। इसके दो समाधान यहाँ प्रस्तुत किये गए हैं—एक तो यह है कि भगवान् के पट्टधर शिष्य श्री गौतमस्वामी ने अपने प्रश्न को स्पष्टरूप से प्रस्तुत करने के लिए समानार्थक दो-दो शब्दों का प्रयोग किया है—जैसे कि 'नैरयिक कितने काल से श्वास लेते हैं अथवा यों कहें कि ऊँचा श्वास और नीचा श्वास लेते हैं ?' भगवान् के ऐसे प्रश्न के उत्तर में अपने शिष्य के पुनरुक्त वचन के प्रति आदर प्रदर्शित करने हेतु उन्हीं समानार्थक दो-दो शब्दों का प्रयोग किया है, क्योंकि गुरुओं के द्वारा शिष्यों के वचन को आदर दिये जाने से शिष्यों को सन्तोष होता है, वे पुनः-पुनः अपने प्रश्नों का निर्णयात्मक उत्तर सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं तथा उन शिष्यों के वचन भी जगत् में आदरणीय समझे जाते हैं। दूसरा समाधान यह है कि 'आनन्ति' और 'प्राणन्ति' का अर्थ अन्तर में स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-निःश्वास क्रिया और 'उच्छ्वसन्ति' एवं 'निःश्वसन्ति' का अर्थ बाहर में स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया समझना चाहिए। अतः यहाँ पुनरुक्ति नहीं किन्तु अर्थभेद के कारण पृथक्-पृथक् क्रियापदों का प्रयोग किया गया है।

नारकों की सतत उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया का रहस्य—भगवान् ने नैरयिकों के उच्छ्वास सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में फरमाया कि नैरयिक सदैव निरन्तर अविच्छिन्न रूप से उच्छ्वास-निश्वास लेते रहते हैं, इस कारण उनका श्वासोच्छ्वास लगातार चालू रहता है, एक बार श्वासोच्छ्वास लेने के बाद दूसरी बार के श्वासोच्छ्वास लेने के बीच में व्यवधान (विरह) नहीं रहता।

विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेने का तात्पर्य—पृथ्वीकायिक आदि समस्त एकेन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय एवं मनुष्य, ये विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। इसका अर्थ है—इनके उच्छ्वास के विरह का कोई काल नियत नहीं है;

जो स्वस्थ और सुखी अथवा प्राणायाम करने वाले योगी होते हैं, वे दीर्घकाल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं, किन्तु अस्वस्थ और दु:खी या भोगी-जल्दी जल्दी श्वास लेते हैं।

देवों में उत्तरोत्तर दीर्घकाल के अनन्तर उच्छ्वास-नि:श्वास लेने का रहस्य—देवों में जो देव जितनी अधिक आयु वाला होता है, वह उतना ही अधिक सुखी होता है और जो जितना अधिक सुखी होता है, उसके उच्छ्वास-नि:श्वास का विरहकाल उतना ही अधिक लम्बा होता है, क्योंकि उच्छ्वास-नि:श्वासक्रिया दु:खरूप है। इसलिए देवों में जैसे-जैसे आयु के सागरोपम में वृद्धि होती है, उतने-उतने श्वासोच्छ्वासविरह के पक्षों में वृद्धि होती जाती है।[1]

।। प्रज्ञापनासूत्र : सप्तम उच्छ्वासपद समाप्त ।।

□□

1. प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक २२०-२२१

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद

प्राथमिक

※ प्रज्ञापनासूत्र का यह आठवाँ पद है, इसका नाम है—'संज्ञापद'।

※ 'संज्ञा' शब्द पारिभाषिक शब्द है। संज्ञा की स्पष्ट शास्त्रीय परिभाषा है— वेदनीय तथा मोहनीय कर्म के उदय से एवं ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की अभिलाषारूप, रुचिरूप मनोवृत्ति। यों शब्दशास्त्र के अनुसार संज्ञा के दो अर्थ होते हैं—(१) संज्ञान (अभिलाषा, रुचि, वृत्ति या प्रवृत्ति) अथवा आभोग (झुकाव या रुझान, ग्रहण करने की तमन्ना) और (२) जिससे या जिसके द्वारा 'यह जीव है' ऐसा सम्यक् रूप से जाना-पहिचाना जा सके।

※ वर्तमान में मनोविज्ञानशास्त्र, शिक्षामनोविज्ञान, बालमनोविज्ञान, काममनोविज्ञान (सेक्स साइकोलॉजी) आदि शास्त्रों में प्राणियों की मूल मनोवृत्तियों का विस्तृत वर्णन मिलता है; इन्हीं से मिलती-जुलती ये संज्ञाएँ हैं, जो प्राणी की आन्तरिक मनोवृत्ति और बाह्यप्रवृत्ति को सूचित करती हैं, जिससे प्राणी के जीवन का भलीभांति अध्ययन हो सकता है। इन्हीं संज्ञाओं द्वारा मनुष्य या किसी भी प्राणी की वृत्ति-प्रवृत्तियों का पता लगा कर उसके जीवन में सुधार या परिवर्तन लाया जा सकता है।

※ इस दृष्टि से संज्ञाओं का जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है, स्वयं की वृत्तियों को टटोलने और तदनुसार उनमें संशोधन-परिवर्धन करके आत्मचिकित्सा करने में।

※ प्रस्तुत पद में सर्वप्रथम आहारादि दस संज्ञाओं का नामोल्लेख करके तत्पश्चात् सामान्यरूप से नारकों से लेकर वैमानिकों तक सर्वसंसारी जीवों में इन दसों संज्ञाओं का न्यूनाधिक रूप में एक या दूसरी तरह से सद्भाव बतलाया है। एकेन्द्रिय जीवों में ये संज्ञाएँ अव्यक्तरूप से रहती हैं और उत्तरोत्तर इन्द्रियों के विकास के साथ ये स्पष्टरूप से जीवों में पाई जाती हैं। तत्पश्चात् इन दस संज्ञाओं में से आहारादि मुख्य चार संज्ञाओं का चार गति वाले जीवों की अपेक्षा से विचार किया गया है कि किस गति के जीव में कौन-सी संज्ञा अधिकांश रूप में पाई जाती है? यहाँ यह स्पष्ट बताया गया है कि नैरयिकों में प्रायः भयसंज्ञा का, तिर्यंचों में आहारसंज्ञा का, मनुष्यों में मैथुनसंज्ञा का और देवों में परिग्रहसंज्ञा का प्राबल्य है। यों सामान्य रूप से चारों गतियों के जीवों में ये चारों संज्ञाएँ न्यूनाधिक रूप में पाई जाती हैं। तत्पश्चात् प्रत्येक गति के जीव में इन चारों संज्ञाओं के अल्पबहुत्व का विचार किया गया

है। वृत्तिकार ने प्रत्येक गति के जीव में बाहुल्य से पाई जाने वाली संज्ञा का तथा तथारूप संज्ञासम्पन्न जीव की अल्पता या अधिकता का युक्तिपुर:सर कारण बताया है।[1]

※ कुल मिला कर १३ सूत्रों (सू. ७२५ से ७३७ तक) में जीवतत्त्व से सम्वद्ध संज्ञाओं का प्रस्तुत पद में सांगोपांग विश्लेषण किया है। □□

१. (क) पण्णवणासुत्तं (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा. २, पृ. ७६-७७
(ख) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. १८८-१८९
(ग) जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा पृ. २४२
(घ) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२२

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद

संज्ञाओं के दस प्रकार—

७२५. कति णं भंते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ । तं जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघसण्णा १० ।

[७२५ प्र.] भगवन् ! संज्ञाएँ कितनी कही गई हैं ?

[७२५ उ.] गौतम ! संज्ञाएँ दस कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) आहारसंज्ञा, (२) भयसंज्ञा, (३) मैथुनसंज्ञा, (४) परिग्रहसंज्ञा, (५) क्रोधसंज्ञा, (६) मानसंज्ञा, (७) मायासंज्ञा, (८) लोभसंज्ञा, (९) लोकसंज्ञा और (१०) ओघसंज्ञा ।

विवेचन—संज्ञाओं के दस प्रकार—प्रस्तुत सूत्र (७२५) में आहारसंज्ञा आदि दस प्रकार की संज्ञाओं का निरूपण किया गया है ।

संज्ञा के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ और शास्त्रीय परिभाषा—संज्ञा की व्युत्पत्ति के अनुसार उसके दो अर्थ फलित होते हैं—(१) संज्ञान अर्थात्—आभोग संज्ञा है । (२) जीव जिस-जिसके निमित्त से सम्यक् प्रकार से जाना-पहिचाना जाता है, उसे संज्ञा कहते हैं; किन्तु संज्ञा की शास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है—वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की (अभिलापारूप, रुचिरूप या मनोवृत्तिरूप) क्रिया । यह संज्ञा उपाधिभेद से दस प्रकार की है ।

संज्ञा के दस भेदों की शास्त्रीय परिभाषा—(१) आहारसंज्ञा—क्षुधावेदनीयकर्म के उदय से ग्रासादिरूप आहार के लिए तथाविध पुद्‌गलों की ग्रहणाभिलापारूप क्रिया । **(२) भयसंज्ञा—**भय-मोहनीयकर्म के उदय से भयभीत प्राणी के नेत्र, मुख में विकारोत्पत्ति, शरीर में रोमाञ्च, कम्पन, घबराहट आदि मनोवृत्तिरूप क्रिया । **(३) मैथुनसंज्ञा—**पुरुषवेद (मोहनीयकर्म) के उदय से स्त्री-प्राप्ति की अभिलाषा रूप तथा स्त्रीवेद के उदय से पुरुष-प्राप्ति की अभिलाषारूप एवं नपुंसकवेद के उदय से दोनों की अभिलाषारूप क्रिया । **(४) परिग्रहसंज्ञा—**लोभमोहनीय के उदय से संसार के प्रधानकारणभूत सचित्त-अचित्त पदार्थों के प्रति आसक्तिपूर्वक उन्हें ग्रहण करने की अभिलाषारूप क्रिया । **(५) क्रोधसंज्ञा—**क्रोधमोहनीय के उदय से प्राणी के मुख, शरीर में विकृति होना, नेत्र लाल होना तथा ओठ फड़कना आदि कोपवृत्ति के अनुरूप चेष्टा । **(६) मानसंज्ञा—**मानमोहनीय के उदय से अहंकार, दर्प, गर्व आदि के रूप में जीव की परिणति (परिणामधारा) । **(७) मायासंज्ञा—**मायामोहनीय के उदय से अशुभ-अध्यवसायपूर्वक मिथ्याभाषण आदि रूप क्रिया करने की वृत्ति । **(८) लोभसंज्ञा—**लोभमोहनीय के उदय से सचित्त-अचित्त पदार्थों की लालसा ।

(९) **लोकसंज्ञा**—लोक में रूढ़ किन्तु अन्धविश्वास, हिंसा, असत्य आदि के कारण हेय होने पर भी लोकरूढ़ि का अनुसरण करने की प्रबल वृत्ति या अभिलाषा। अथवा मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से संसार के सुन्दर, रुचिकर पदार्थों को (या लोकप्रचलित शब्दों के अनुरूप पदार्थों) को विशेषरूप से जानने की तीव्र अभिलाषा। (१०) **ओघसंज्ञा**—बिना उपयोग के (बिना सोचे-विचारे) धुन-ही-धुन में किसी कार्य को करने की वृत्ति या प्रवृत्ति अथवा सनक। जैसे— उपयोग या प्रयोजन के बिना ही यों ही किसी वृक्ष पर चढ़ जाना अथवा बैठे-बैठे पैर हिलाना, तिनके तोड़ना आदि। अथवा मति-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से संसार के सुन्दर रुचिकर पदार्थों या लोकप्रचलित शब्दों के अनुरूप पदार्थों (अर्थों) को सामान्यरूप से जानने की अभिलाषा। इन दस ही प्रकार की संज्ञाओं में पूर्वोक्त व्युत्पत्तिलभ्य दोनों अर्थ भी घटित हो जाते हैं। उक्त दसों संज्ञाओं में से प्रारम्भ की चार संज्ञाओं में से जिस प्राणी में जिस संज्ञा का बाहुल्य हो, उस पर से उसे जान-पहिचान लिया जाता है। जैसे—नैरयिकों को भयसंज्ञा की अधिकता के कारण जान लिया जाता है। अथवा जिसमें जिस प्रकार की अभिलाषा, मनोवृत्ति या प्रवृत्ति हो, उसे वह संज्ञा समझ ली जाती है।[1]

नैरयिकों से वैमानिकों तक में संज्ञाओं की प्ररूपणा—

७२६. नेरइयाणं भंते ! कति सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघ-सण्णा १०।

[७२६ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों में कितनी संज्ञाएँ कही गई हैं ?

[७२६ उ.] गौतम ! उनमें दस संज्ञाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) आहारसंज्ञा, (३) भयसंज्ञा, (३) मैथुनसंज्ञा, (४) परिग्रहसंज्ञा, (५) क्रोधसंज्ञा, (६) मानसंज्ञा, (७) मायासंज्ञा (८) लोभसंज्ञा, (९) लोकसंज्ञा और (१०) ओघसंज्ञा।

७२७. असुरकुमाराणं भंते ! कति सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। तं जहा—आहारसण्णा जाव ओघसण्णा।

[७२७ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवों में कितनी संज्ञाएँ कही हैं ?

[७२७ उ.] गौतम ! असुरकुमारों में दसों संज्ञाएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार—आहार-संज्ञा यावत् ओघसंज्ञा।

७२८. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[७२८] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवों तक (में पाई जाने वाली संज्ञाओं के विषय में) कहना चाहिए।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२२
(ख) प्रज्ञापना. प्रमेयबोधिनीटीका भा. ३, पृ-४०-४१

७२९. एवं पुढविकाइयाणं वेमाणियावसाणाणं णेयव्वं ।

[७२९] इसी प्रकार पृथ्वीकायिकों से लेकर वैमानिक-पर्यन्त (में पाई जाने वाली संज्ञाओं के विषय में) समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—नैरयिकों से वैमानिकों तक में संज्ञाओं की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रों में नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक में दसों संज्ञाओं में से पाई जाने वाली संज्ञाओं की प्ररूपणा की गई है। सामान्यरूप से चौवीस दण्डकवर्ती समस्त सांसारिक जीवों में प्रत्येक में दसों ही संज्ञाएँ पाई जाती हैं। एकेन्द्रिय जीवों में ये संज्ञाएँ अव्यक्तरूप से रहती हैं, जवकि पंचेन्द्रियों में ये स्पष्टतः जानी जाती हैं। यहाँ ये संज्ञाएं प्रायः पंचेन्द्रियों को लेकर वताई गई हैं।[1]

नारकों में संज्ञाओं का विचार—

७३०. नेरइया णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता भयसण्णोवउत्ता मेहुणसण्णोवउत्ता परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्णं कारणं पडुच्च भयसण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३० प्र.] भगवन् ! नैरयिक क्या आहारसंज्ञोपयुक्त (आहारसंज्ञा से युक्तसम्पन्न) हैं, भयसंज्ञा से उपयुक्त हैं, मैथुनसंज्ञोपयुक्त हैं अथवा परिग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं ?

[७३० उ.] गौतम ! उत्सन्नकारण (वहुलता से वाह्य कारण की अपेक्षा से वे भयसंज्ञा से उपयुक्त हैं, (किन्तु) संततिभाव (आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव) की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी हैं।

७३१. एतेसि णं भंते ! नेरइयाणं आहारसण्णोवउत्ताणं भयसण्णोवउत्ताणं मेहुणसण्णोवउत्ताणं परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा वहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा नेरइया मेहुणसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

[७३१ प्र.] भगवन् ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त, भयसंज्ञोपयुक्त, मैथुनसंज्ञोपयुक्त एवं परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारकों में से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७३१ उ.] गौतम ! सवसे थोड़े मैथुनसंज्ञोपयुक्त नैरयिक हैं, उनसे संख्यातगुणे आहारसंज्ञोपयुक्त हैं, उनसे परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नैरयिक संख्यातगुणे हैं और उनसे भी संख्यातगुणे अधिक भयसंज्ञोपयुक्त नैरयिक हैं।

विवेचन—नारकों में पाई जाने वाली संज्ञाओं के अल्पवहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३०-७३१) में दो दृष्टियों से आहारादि चार संज्ञाओं में से नारकों में पाई जाने वाली संज्ञाओं तथा उनके अल्पवहुत्व का विचार किया गया है।

---

१. प्रज्ञापना सूत्र मलयवृत्ति, पत्रांक २२३

'ओसन्नकारणं' तथा 'संतइभावं' की व्याख्या—'ओसन्न'—(उत्सन्न) का अर्थ यहाँ 'बाहुल्य अर्थात् प्रायः अधिकांशरूप' से है। 'कारण' शब्द का अर्थ है—बाह्यकारण। इसी प्रकार संतइभाव (संततिभाव) का अर्थ है—सातत्य (प्रवाह) रूप से आन्तरिक अनुभवरूप भाव।

नैरयिकों में भयसंज्ञा की बहुलता का कारण—नैरयिकों में नरकपाल परमाधार्मिक असुरों द्वारा विक्रिया से कृत शूल, शक्ति, भाला आदि भयोत्पादक शास्त्रों का अत्यधिक भय बना रहता है। इसी कारण यहाँ बताया गया है कि बाह्य कारण की अपेक्षा से नैरयिक बहुलता से (प्रायः) भयसंज्ञोपयुक्त होते हैं।

सतत आन्तरिक अनुभवरूप कारण की अपेक्षा से चारों संज्ञाएँ—आन्तरिक अनुभवरूप मनोभाव की अपेक्षा से नैरयिकों में आहारादि चारों संज्ञाएँ पाई जाती हैं।

नैरयिकों में चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार—सबसे थोड़े मैथुनसंज्ञोपयुक्त नारक हैं, क्योंकि नैरयिकों के शरीर रातदिन निरन्तर दुःख की अग्नि में संतप्त रहते हैं, आँख की पलक झपने जितने समय तक उन्हें सुख नहीं मिलता। अहर्निश दुःख की आग में पचने वाले नारकों को मैथुनेच्छा नहीं होती। कदाचित् किन्हीं को मैथुनसंज्ञा होती भी है तो वह भी थोड़े-से समय तक रहती है। इसीलिए यहाँ नैरयिकों में सबसे थोड़े मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं। मैथुनसंज्ञोपयुक्त नारकों की अपेक्षा आहारसंज्ञोपयुक्त नारक संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उन दुःखी नारकों में प्रचुरकाल तक आहार की संज्ञा बनी रहती है। आहारसंज्ञोपयुक्त नारकों की अपेक्षा परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारक संख्यातगुणे अधिक इसलिए होते हैं कि नैरयिकों को आहारसंज्ञा सिर्फ शरीरपोषण के लिए होती है, जबकि परिग्रहसंज्ञा शरीर के अतिरिक्त जीवनरक्षा के लिए शस्त्र आदि में होती है और वह चिरस्थायी होती है और परिग्रहसंज्ञोपयुक्त नारकों की अपेक्षा भयसंज्ञा वाले नारक संख्यातगुणे अधिक इसलिए बताए हैं कि नरक में नारकों में मृत्युपर्यन्त सतत भय की वृत्ति बनी रहती है। इस कारण भयसंज्ञा वाले नारक पूर्वोक्त तीनों संज्ञाओं वालों से अधिक हैं तथा पृच्छा समय में भी नारक अतिप्रभूततम भयसंज्ञोपयुक्त पाये जाते हैं।[1]

तिर्यञ्चों में संज्ञाओं का विचार—

७३२. तिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्णं कारणं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

[७३२ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक जीव क्या आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, यावत् (अथवा) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं ?

[७३२ उ.] गौतम ! बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं, भयसंज्ञोपयुक्त भी यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

७३३. एतेसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया परिग्गहसण्णोवउत्ता, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

[७३३ प्र.] भगवन् ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक जीवों में कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७३३ उ.] गौतम ! सबसे कम परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक होते हैं, (उनसे) मैथुन-संज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे होते हैं, (उनसे) भयसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च संख्यातगुणे होते हैं और उनसे भी आहारसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक संख्यातगुणे अधिक होते हैं ।

विवेचन—तिर्यञ्चों में पाई जाने वाली संज्ञाएँ तथा उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३२-७३३) में से प्रथम सूत्र में तिर्यञ्चों में बहुलता से तथा आन्तरिक अनुभवसातत्य से पाई जाने वाली संज्ञाओं का निरूपण है और द्वितीय सूत्र में उन-उन संज्ञाओं से उपयुक्त तिर्यञ्चों के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

संज्ञाओं की दृष्टि से तिर्यञ्चों का अल्पबहुत्व—परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सबसे कम होते हैं, क्योंकि तिर्यञ्चों में एकेन्द्रियों की संज्ञा बहुत ही अव्यक्त होती है, शेष तिर्यञ्चों में भी परिग्रहसंज्ञा अल्पकालिक होती है, अतः पृच्छासमय में वे थोड़े ही पाए जाते हैं । परिग्रहसंज्ञा वालों की अपेक्षा मैथुनसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च संख्यातगुणे अधिक इसलिए बताए हैं कि उनमें मैथुनसंज्ञा का उपयोग प्रचुरतर काल तक बना रहता है । उनकी अपेक्षा भयसंज्ञा में उपयुक्त तिर्यञ्च संख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि उन्हें सजातीयों (तिर्यञ्चों) और विजातीयों (तिर्यञ्चेतर प्राणियों) से भय बना रहता है और भय का उपयोग प्रचुरतम काल तक रहता है । उनकी अपेक्षा भी आहारसंज्ञा में उपयुक्त तिर्यञ्च संख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि सभी तिर्यञ्चों में प्रायः सतत (हर समय) आहारसंज्ञा का सद्भाव रहता है ।[1]

मनुष्यों में संज्ञाओं का विचार—

७३४. मणुस्सा णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्णकारणं पडुच्च मेहुणसण्णोवउत्ता, संततिभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३४ प्र.] भगवन् ! क्या मनुष्य आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, अथवा यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं ?

[७३४ उ.] गौतम ! बहुलता से (प्रायः) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्यानुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं, यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

७३५. एतेसि णं भंते ! मणुस्साणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणूसा भयसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गह-सण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

[७३५ प्र.] भगवन् ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्यों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं ?

[७३५ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े मनुष्य भयसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (उनसे) आहारसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे होते हैं, (उनसे) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक होते हैं (और उनसे भी) संख्यातगुणे (अधिक मनुष्य) मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं ।

विवेचन—मनुष्यों में पाई जाने वाली संज्ञाओं और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३४-७३५) में क्रमशः मनुष्य में बहुलता से तथा सातत्यानुभवभाव से पाई जाने वाली संज्ञाओं एवं उन संज्ञाओं वाले मनुष्यों का अल्पबहुत्व प्रस्तुत किया गया है ।

चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से मनुष्यों का अल्पबहुत्व—भयसंज्ञोपयुक्त मनुष्य सबसे कम इसलिए बताए हैं कि कुछ ही मनुष्यों में अल्प समय तक ही भयसंज्ञा रहती है । उनकी अपेक्षा आहारसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे हैं, क्योंकि मनुष्यों में आहारसंज्ञा अधिक काल तक रहती है । आहारसंज्ञा वाले मनुष्यों की अपेक्षा परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि आहार की अपेक्षा मनुष्यों को परिग्रह की चिन्ता एवं लालसा अधिक होती है । परिग्रहसंज्ञा वाले मनुष्यों की अपेक्षा भी मैथुनसंज्ञा में उपयुक्त मनुष्य संख्यातगुणे अधिक पाए जाते हैं, क्योंकि मनुष्यों को प्रायः मैथुनसंज्ञा अतिप्रभूत काल तक बनी रहती है ।[1]

देवों में संज्ञाओं का विचार—

७३६. देवा णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! उस्सण्णं कारणं पडुच्च परिग्गहसण्णोवउत्ता, संततिभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३६ प्र.] भगवन् ! क्या देव आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (अथवा) यावत् परिग्रहसंज्ञोप-युक्त होते हैं ?

[७३६ उ.] गौतम ! बाहुल्य से (प्रायः) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं, यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं ।

७३७. एतेसि णं भंते ! देवाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२३

गोयमा ! सव्वत्थोवा देवा आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा ।

।। पण्णवणाए भगवईए अट्ठमं सण्णापयं समत्तं ।।

[७३७ प्र.] भगवन् ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७३७ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े आहारसंज्ञोपयुक्त देव हैं, (उनकी अपेक्षा) भयसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे हैं, (उनकी अपेक्षा) मैथुनसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे हैं और उनसे भी संख्यातगुणे परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देव हैं ।

विवेचन—देवों में पाई जाने वाली संज्ञाओं और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ७३६-७३७) में देवों में बाहुल्य से परिग्रहसंज्ञा का तथा आन्तरिक अनुभव की अपेक्षा से चारों ही संज्ञाओं के निरूपण पूर्वक चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से उनके अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

देवों में बाहुल्य से परिग्रहसंज्ञा क्यों ?—देव अधिकांशतः परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं । क्योंकि परिग्रहसंज्ञा के जनक कनक, मणि, रत्न आदि में उन्हें सदा आसक्ति बनी रहती है ।

देवों का चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम आहारसंज्ञोपयुक्त देव होते हैं, क्योंकि देवों की आहारेच्छा का विरहकाल बहुत लम्बा होता है तथा आहारसंज्ञा के उपयोग का काल बहुत थोड़ा होता है । अतएव पृच्छा के समय वे थोड़े ही पाए जाते हैं । आहारसंज्ञोपयुक्त देवों की अपेक्षा भयसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योंकि भयसंज्ञा बहुत-से देवों को चिरकाल तक रहती है । भयसंज्ञोपयुक्त देवों की अपेक्षा मैथुनसंज्ञा वाले देव संख्यातगुणे अधिक और उनसे भी परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देव संख्यातगुणे कहे गए हैं, कारण पहले बताया जा चुका है ।[1]

।। प्रज्ञापनासूत्र : अष्टम संज्ञापद समाप्त ।।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२४

णवमं जोणिपयं

नौवां योनिपद

प्राथमिक

※ प्रज्ञापना सूत्र का यह नौवां 'योनिपद' है ।

※ एक भव का आयुष्य पूर्ण होने पर जीव अपने साथ तैजस और कार्मण शरीर को लेकर जाता है । फिर जिस स्थान में जाकर वह नये जन्म के योग्य औदारिक आदि शरीर के पुद्गलों को ग्रहण करता है या गर्भरूप में उत्पन्न होता है, अथवा जन्म लेता है, उस उत्पत्तिस्थान को 'योनि' कहते हैं ।

※ योनि का प्रत्येक प्राणी के जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व है, क्योंकि जिस योनि में प्राणी उत्पन्न होता है, वहाँ का वातावरण, प्रकृति, संस्कार, परम्परागत प्रवृत्ति आदि का प्रभाव उस प्राणी पर पड़े बिना नहीं रहता । इसीलिए प्रस्तुत पद में श्री श्यामाचार्य ने योनि के विविध प्रकारों का उल्लेख करके उन-उन योनियों की अपेक्षा से जीवों का विचार प्रस्तुत किया है ।

※ प्रस्तुत पद में योनि का अनेक दृष्टियों से निरूपण किया गया है । सर्वप्रथम शीत, उष्ण और शीतोष्ण, इस प्रकार योनि के तीन भेद करके नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक में किस जीव की कौन-सी योनि है, इसकी प्ररूपणा की गई है, तदनन्तर इन तीनों योनियों वाले और अयोनिक जीवों में कौन किससे कितने अल्पाधिक हैं ? इसका विश्लेषण है । तत्पश्चात् सचित्त, अचित्त और मिश्र, इस प्रकार त्रिविधयोनियों का उल्लेख करके इसी तरह की चर्चा-विचारणा की है । तत्पश्चात् संवृत, विवृत और संवृत-विवृत यों योनि के तीन भेद करके पुन: पहले की तरह विचार किया गया है और अन्त में मनुष्यों की कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियों का उल्लेख करके उनकी अधिकारिणी स्त्रियों का तथा उनमें जन्म लेने वाले मनुष्यों का प्रतिपादन किया है । कुल मिलाकर समस्त जीवों की योनियों के विषय में इस पद में सुन्दर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है ।

※ जो चौरासी लक्ष जीवयोनियां हैं, उनका मुख्य उद्गमस्रोत ये ही ९ प्रकार की सर्व प्राणियों की योनियां हैं । इन्हीं की शाखा-प्रशाखा के रूप में ८४ लक्ष योनियां प्रस्फुटित हुई हैं ।

※ समस्त मनुष्यों के उत्पत्तिस्थान का निर्देश करने वाली तीन विशिष्ट योनियां अन्त में बताई गई हैं—कूर्मोन्नता, शंखावर्ता और वंशीपत्रा । तीर्थंकरादि उत्तमपुरुष कूर्मोन्नता योनि में जन्म धारण करते हैं, स्त्रीरत्न की शंखावर्त्ता योनि में अनेक जीव आते हैं, गर्भरूप में रहते हैं, उनके

शरीर का चयोपचय भी होता है, किन्तु प्रवल कामाग्नि के ताप से वे वहीं नष्ट हो जाते हैं, जन्म धारण नहीं करते, गर्भ से वाहर नहीं आते। इससे विदित होता है कि प्रवल कामभोग से गर्भस्थ जीव पनप नहीं सकता। तीसरी वंशीपत्रा योनि सर्वसाधारण मनुष्यों की होती है।[1]

□□

---

1. (क) पण्णवणासुत्तं मूलपाठ भा. १, पृ. १९० से १९२।
   (ख) पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा. २, पृ. ७७-७८।
   (ग) जैनागम साहित्य: मनन और मीमांसा, पृ. २४३।

णवमं जोणिपयं

नौवाँ योनिपद

शीतादि त्रिविध योनियों की नारकादि में प्ररूपणा—

७३८. कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता । तं जहा—सीता जोणी १ उसिणा जोणी २ सीतोसिणा जोणी ३ ।

[७३८ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७३८ उ.] गौतम ! योनि तीन प्रकार की गई है । वह इस प्रकार—शीत योनि, उष्ण योनि और शीतोष्ण योनि ।

७३९. नेरइयाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, नो सीतोसिणा जोणी ।

[७३९ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७३९ उ.] गौतम ! (नैरयिकों की) शीत योनि भी होती है और उष्ण योनि भी होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि नहीं होती ।

७४०. असुरकुमाराणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता, नो उसिणा, सीतोसिणा जोणी ।

(७४० प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देवों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४० उ.] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि होती है ।

७४१. एवं जाव थणियकुमाराणं ।

[७४१] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक (की योनि के विषय में समझना चाहिए ।)

७४२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी ।

[७४२ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिकों की क्या शीत योनि होती है उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४२ उ.] गौतम ! उनकी शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती है।

७४३. एवं आउ-वाउ-वणस्सति-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाण वि पत्तेयं भाणियव्वं।

[७४३] इसी तरह अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की प्रत्येक की योनि के विषय में कहना चाहिए।

७४४. तेउक्काइयाणं नो सीता, उसिणा, नो सीतोसिणा।

[७४४] तेजस्कायिक जीवों की शीत योनि नहीं होती, उष्ण योनि होती है, शीतोष्ण योनि नहीं होती।

७४५. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

[७४५ प्र.] भगवन् ! पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४५ उ.] गौतम ! (उनकी) योनि शीत भी होती है, उष्ण भी होती है और शीतोष्ण भी होती है।

७४६. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एवं चेव।

[७४६] सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों (की योनि) के विषय में भी इसी तरह (कहना चाहिए।)

७४७. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी।

[७४७ प्र.] भगवन् ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४७ उ.] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

७४८. मणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

[७४८ प्र.] भगवन् ! मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४८ उ.] गौतम ! मनुष्यों की शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती है।

७४९. सम्मुच्छिममणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! तिविहा वि जोणी ।

[७४९ प्र.] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४९ उ.] गौतम ! उनकी तीनों प्रकार की योनि होती है ।

७५०. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७५० प्र.] भगवन् ! गर्भज मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५० उ.] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है ।

७५१. वाणमंतरदेवाणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७५१ प्र.] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५१ उ.] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है ।

७५२. जोइसिय-वेमाणियाण वि एवं चेव ।

[७५२] इसी प्रकार ज्योतिष्कों और वैमानिक देवों की (योनि के विषय में समझना चाहिए) ।

७५३. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सीतजोणियाणं उसिणजोणियाणं सीतोसिणजोणियाणं अजोणियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सीतोसिणजोणिया, उसिणजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सीतजोणिया अणंतगुणा । १ ॥

[७५३ प्र.] भगवन् ! इन शीतयोनिक जीवों, उष्णयोनिक जीवों, शीतोष्णयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवों में से कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७५३ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े जीव शीतोष्णयोनिक हैं, उष्णयोनिक जीव उनसे असंख्यात-गुणे अधिक हैं, उनसे अयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक हैं और उनसे भी शीतयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं ॥१॥

विवचन—नैरयिकादि जीवों का शीतादि त्रिविध योनियों की दृष्टि से विचार—प्रस्तुत सोलह सूत्रों (सू. ७३८ से ७५३ तक) में नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक चौवीस दण्डकवर्ती जीवों का शीत, उष्ण एवं शीतोष्ण, इन त्रिविध योनियों की दृष्टि से विचार किया गया है ।

योनि और उसके प्रकारों की व्याख्या—'योनि' शब्द 'यु मिश्रणे' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका व्युत्पत्त्यर्थ होता है—जिसमें मिश्रण होता है, वह 'योनि' है। इसकी शास्त्रीय परिभाषा है—तैजस और कार्मण शरीर वाले प्राणी, जिसमें औदारिक आदि शरीरों के योग्य पुद्गलस्कन्धों के समुदाय के साथ मिश्रित होते हैं, वह योनि है। योनि से यहाँ तात्पर्य है—जीवों का उत्पत्तिस्थान। **शीत योनि** का अर्थ है—जो योनि शीतस्पर्श-परिणाम वाली हो। **उष्ण योनि** का अर्थ है—जो योनि उष्णस्पर्श-परिणाम वाली हो। **शीतोष्ण योनि** का अर्थ है—जो योनि शीत और उष्ण उभय स्पर्श के परिणाम वाली हो।

सप्त नरकपृथ्वियों की योनि का विचार—यों तो सामान्यतया नैरयिकों की दो ही योनियां वताई हैं—शीत योनि और उष्ण योनि, तीसरी शीतोष्ण योनि उनके नहीं होती। किस नरकपृथ्वी में कौन-सी योनि है? यह वृत्तिकार वताते हैं—**रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा में** नारकों के जो उपपात (उत्पत्ति) क्षेत्र हैं, वे सब शीतस्पर्श परिणाम से परिणत हैं। इन उपपातक्षेत्रों के सिवाय इन तीनों पृथ्वियों में शेष स्थान उष्णस्पर्श-परिणामपरिणत हैं। इस कारण यहाँ के शीत योनि वाले नैरयिक उष्णवेदना का वेदन करते हैं। **पंकप्रभापृथ्वी** में अधिकांश उपपातक्षेत्र शीतस्पर्श-परिणाम से परिणत हैं, थोड़े-से ऐसे क्षेत्र हैं जो उष्णस्पर्श-परिणाम से परिणत हैं। जिन प्रस्तटों (पाथड़ों) और नारकावासों में शीतस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र है, उनमें उन क्षेत्रों के अतिरिक्त शेष समस्त स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले होते हैं तथा जिन प्रस्तटों और नारकावासों में उष्णस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र हैं, उनमें उनके अतिरिक्त अन्य सव स्थान शीतस्पर्शपरिणाम वाले होते हैं। इस कारण वहाँ के वहुत-से शीतयोनिक नैरयिक उष्णवेदना का वेदन करते हैं, जवकि थोड़े-से उष्णयोनिक नैरयिक शीतवेदना का वेदन करते हैं। **धूमप्रभापृथ्वी** में वहुत-से उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्शपरिणाम से परिणत हैं, थोड़े-से क्षेत्र शीतस्पर्शपरिणाम से परिणत होते हैं। जिन प्रस्तटों और जिन नारकावासों में उष्ण-स्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र हैं, उनमें उनके अतिरिक्त अन्य सव स्थान शीतपरिणाम वाले होते हैं। जिन प्रस्तटों या नारकावासों में शीतस्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र हैं, उनमें उनसे अतिरिक्त अन्य सव स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले हैं। इस कारण वहाँ के वहुत-से उष्णयोनिक नैरयिक शीत-वेदना का वेदन करते हैं, थोड़े-से जो शीतयोनिक हैं, वे उष्णवेदना का वेदन करते हैं। **तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा पृथ्वी** में सभी उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्शपरिणाम-परिणत हैं। उनसे अतिरिक्त अन्य सव स्थान वहाँ शीतस्पर्शपरिणाम वाले हैं। इस कारण वहाँ के उष्णयोनिक नारक शीतवेदना का वेदन करते हैं।

भवनवासी देव आदि की योनियां शीतोष्ण क्यों?—सर्व प्रकार के भवनवासी देव, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य तथा व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के उपपातक्षेत्र शीत और उष्ण, दोनों स्पर्शों से परिणत हैं, इस कारण उनकी योनियां शीत और उष्ण दोनों स्वभाव वाली (शीतोष्ण) हैं।

तेजस्कायिकों के सिवाय पृथ्वीकायिकों आदि की तीनों प्रकार की योनि—तेजस्कायिक उष्ण-योनिक ही होते हैं, यह वात प्रत्यक्षसिद्ध है। उनके सिवाय अन्य समस्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के उत्पत्तिस्थान शीतस्पर्श वाले, उष्णस्पर्श वाले और शीतोष्णस्पर्श वाले होते हैं, इस कारण उनकी योनि तीनों प्रकार की वताई गई है।

त्रिविध योनि वालों और अयोनिकों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े जीव शीतोष्ण योनि वाले होते हैं, क्योंकि शीतोष्ण योनि वाले सिर्फ भवनपति देव, गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव ही हैं। उनसे असंख्यातगुणे उष्णयोनिक जीव हैं, क्योंकि सभी सूक्ष्म-बादरभेदयुक्त तेजस्कायिक, अधिकांश नैरयिक, कतिपय पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक उष्णयोनिक होते हैं। उनकी अपेक्षा अयोनिक (योनिरहित—सिद्ध) जीव अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। इनकी अपेक्षा शीतयोनिक अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि सभी अनन्तकायिक जीव शीत योनि वाले होते हैं और वे सिद्धों से भी अनन्तगुणे हैं।[1]

नैरयिकादि में सचित्तादि त्रिविध योनियों की प्ररूपणा—

७५४. कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा—सचित्ता १ अचित्ता २ मीसिया ३।

[७५४ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७५४ उ.] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) सचित्त योनि, (२) अचित्त योनि और (३) मिश्र योनि।

७५५. नेरइयाणं भंते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, णो मीसिया जोणी।

[७५५ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों की क्या सचित्त योनि है, अचित्त योनि है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[७५५ उ.] गौतम ! नारकों की योनि सचित्त नहीं होती, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नहीं होती।

७५६. असुरकुमाराणं भंते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, नो मीसिया जोणी।

[७५६ प्र.] भगवन् ! असुरकुमारों की योनि क्या सचित्त होती है, अचित्त होती है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[७५६ उ.] गौतम ! उनके सचित्त योनि नहीं होती, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नहीं होती।

७५७. एवं जाव थणियकुमाराणं।

[७५७] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक की योनि के विषय में समझना चाहिए।

७५८. पुढविकाइयाणं भंते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! सचित्ता वि जोणी, अचित्ता वि जोणी, मीसिया वि जोणी।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२५-२२६।

[७५८ प्र.] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों की योनि क्या सचित्त होती है, अचित्त होती है अथवा मिश्रयोनि होती है ?

[७५८ उ.] गौतम ! उनकी योनि सचित्त भी होती है, अचित्त भी होती है और मिश्र योनि भी होती है।

७५९. एवं जाव चउरिंदियाणं।

[७५९] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक (की योनि के विषय में समझना चाहिए।)

७६०. सम्मुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिममणुस्साण य एवं चेव।

[७६०] सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि के विषय में इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

७६१. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियमणुस्साण य नो सचित्ता, नो अचित्ता, मीसिया जोणी।

[७६१] गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तथा गर्भज मनुष्यों की योनि न तो सचित्त होती है और न ही अचित्त, किन्तु मिश्र योनि होती है।

७६२. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं।

[७६२] वाणव्यन्तर देवों, ज्योतिष्क देवों एवं वैमानिक देवों (की योनि के विषय में) असुरकुमारों के (योनिविषयक वर्णन के) समान ही (समझना चाहिए।)

७६३. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सचित्तजोणीणं अचित्तजोणीणं मीसजोणीणं अजोणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मीसजोणिया, अचित्तजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सचित्तजोणिया अणंतगुणा। २॥

[७६३ प्र.] भगवन् ! इन सचित्तयोनिक जीवों, अचित्तयोनिक जीवों, मिश्रयोनिक जीवों तथा अयोनिकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७६३ उ.] गौतम ! मिश्रयोनिक जीव सबसे थोड़े होते हैं, (उनसे) अचित्तयोनिक जीव असंख्यातगुणे अधिक होते हैं, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे होते हैं (और उनसे भी) सचित्त-योनिक जीव अनन्तगुणे होते हैं॥ २॥

विवेचन—प्रकारान्तर से सचित्तादि त्रिविधि योनियों की अपेक्षा से सर्व जीवों का विचार— प्रस्तुत दस सूत्रों (सू. ७५४ से ७६३ तक) में योनि के प्रकारान्तर से सचित्तादि तीन भेद बताकर, चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के क्रम से किस जीव के कौन-कौन-सी योनियां होती हैं ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत या विशेषाधिक होते हैं ? इसकी चर्चा की गई है।

सचित्तादि योनियों के अर्थ—सचित्त योनि—जो योनि जीव (आत्म) प्रदेशों से सम्बद्ध हो। **अचित्त योनि**—जो योनि जीव रहित हो। **मिश्र योनि**—जो योनि जीव से मुक्त और अमुक्त उभय-स्वरूप वाली हो, यानी जो सचित्त और अचित्त दोनों प्रकार की हो।

किन जीवों की योनि कैसी और क्यों ?—नारकों के जो उपपात क्षेत्र हैं, वे किसी जीव के द्वारा परिगृहीत न होने से सचित्त (सजीव) नहीं होते, इस कारण उनकी योनि अचित्त ही होती है। यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव समस्त लोक (लोकाकाश) में व्याप्त होते हैं, तथापि उन जीवों के प्रदेशों से उन उपपातक्षेत्रों के पुद्गल परस्परानुगमरूप से सम्बद्ध नहीं होते, अर्थात्—वे उपपातक्षेत्र उन सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के शरीररूप नहीं होते, इस कारण नैरयिकों की योनि अचित्त ही कही गई है। इसी प्रकार असुरकुमारादि दशविध भवनपति देवों, व्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिक देवों की योनियां भी अचित्त ही समझनी चाहिए। पृथ्वीकायिकों से लेकर सम्मूर्च्छिम मनुष्य पर्यन्त सबके उपपातक्षेत्र जीवों से परिगृहीत भी होते हैं, अपरिगृहीत भी और उभयरूप भी होते हैं, इसलिए इनकी योनि तीनों प्रकार की होती है। गर्भज तिर्यञ्चपंचेन्द्रियों और गर्भज मनुष्यों की जहाँ उत्पत्ति होती है, वहाँ अचित्त शुक्र-शोणित आदि पुद्गल भी होते हैं, अतएव वे मिश्र योनि वाले हैं।

सचित्तादि योनियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े जीव मिश्रयोनिक इसलिए बताए गए हैं कि मिश्रयोनिकों में केवल गर्भज तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही हैं। उनसे अचित्तयोनिक जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि समस्त देव, नारक तथा कतिपय पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पतिकायिक, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजीव, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य अचित्त योनि वाले होते हैं। अचित्तयोनिकों की अपेक्षा अयोनिक (सिद्ध) जीव अनन्त हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त हैं और अयोनिकों की अपेक्षा भी सचित्तयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक हैं, क्योंकि निगोद के जीव सचित्तयोनिक होते हैं और वे सिद्धों से भी अनन्तगुणे अधिक होते हैं।[1]

सर्वजीवों में संवृतादि त्रिविधयोनियों की प्ररूपणा—

७६४. कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तं जहा—संवुडा जोणी १ वियडा जोणी २ संवुडवियडा जोणी ३।

[७६४ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७६४ उ.] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) संवृत योनि, विवृत योनि और (३) संवृत-विवृत योनि।

७६५. नेरइयाणं भंते ! किं संवुडा जोणी वियडा जोणी संवुडवियडा जोणी ?

गोयमा ! संवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, नो संवुडवियडा जोणी।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२६-२२७.

[७६५ प्र.] भगवन् ! नैरयिकों की क्या संवृत योनि होती है, विवृत योनि होती है, अथवा संवृत-विवृत योनि होती है ?

[७६५ उ.] गौतम ! नैरयिकों की योनि संवृत होती है, परन्तु विवृत नहीं होती और न ही संवृत-विवृत होती है ।

७६६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं ।

[७६६] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक (की योनि के विषय में कहना चाहिए) ।

७६७. बेइंदियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! नो संवुडा जोणी, वियडा जोणी, णो संवुडवियडा जोणी ।

[७६७ प्र.] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवों की योनि संवृत होती है, विवृत होती या संवृत-विवृत होती है ?

[७६७ उ.] गौतम ! उनकी योनि संवृत नहीं होती, (किन्तु) विवृत होती है, (पर) संवृत-विवृत योनि नहीं होती ।

७६८. एवं जाव चउरिंदियाणं ।

[७६८] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक (की योनि के विषय में समझ लेना चाहिए ।)

७६९. सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिममणुस्साण य एवं चेव ।

[७६९] सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की (योनि के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।)

७७०. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं गब्भवक्कंतियमणुस्साण य नो संवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी ।

[७७०] गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों और गर्भज मनुष्यों की योनि संवृत नहीं होती और न विवृत योनि होती है, किन्तु संवृत-विवृत होती है ।

७७१. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं ।

[७७१] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की (योनि के सम्बन्ध में) नैरयिकों की (योनि की) तरह समझना चाहिए ।

७७२. एतेसि णं भंते ! जीवाणं संवुडजोणियाणं वियडजोणियाणं संवुडवियडजोणियाणं अजोणियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा संवुडवियडजोणिया, वियडजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, संवुडजोणिया अणंतगुणा । ३ ॥

[७७२ प्र.] भगवन् ! इन संवृतयोनिक जीवों, विवृतयोनिक जीवों, संवृत-विवृतयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७७२ उ.] गौतम ! सबसे कम संवृत-विवृतयोनिक जीव हैं, (उनसे) विवृतयोनिक जीव असंख्यातगुणे (अधिक) हैं, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) संवृतयोनिक जीव अनन्तगुणे (अधिक) हैं ।।३।।

विवेचन—तीसरे प्रकार से संवृतादि त्रिविध योनियों की अपेक्षा से जीवों का विचार—प्रस्तुत नौ सूत्रों (सू. ७६४ से ७७२ तक) में शास्त्रकार ने तृतीय प्रकार से योनियों के संवृतादि तीन भेद बता कर किस जीव के कौन-कौन-सी योनि होती है ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? इसका विचार प्रस्तुत किया है ।

संवृतादि योनियों का अर्थ—संवृत योनि=जो योनि आच्छादित (ढंकी हुई) हो । **विवृत-योनि**=जो योनि खुली हुई हो, अथवा बाहर से स्पष्ट प्रतीत होती हो । **संवृत-विवृत योनि**=जो संवृत और विवृत दोनों प्रकार की हो ।

किन जीवों की योनि कौन और क्यों ?—नारकों की योनि संवृत इसलिए बताई है कि नारकों के उत्पत्तिस्थान नरकनिष्कुट होते हैं और वे आच्छादित (संवृत) गवाक्ष (झरोखे) के समान होते हैं । उन स्थानों में उत्पन्न हुए नारक शरीर से वृद्धि को प्राप्त होकर शीत से उष्ण और उष्ण से शीत स्थानों में गिरते हैं । इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की योनि संवृत होती है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति (उपपात) देवशैय्या में देवदूष्य से आच्छान्दित स्थान में होती है । एकेन्द्रिय जीव भी संवृत योनि वाले होते हैं, क्योंकि उनकी उत्पत्तिस्थली (योनि) स्पष्ट उपलक्षित नहीं होती । द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवों तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेंद्रियों एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि विवृत है, क्योंकि इनके जलाशय आदि उत्पत्तिस्थान स्पष्ट प्रतीत होते हैं । गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों और गर्भज मनुष्यों की योनि संवृत-विवृत होती है; क्योंकि इनका गर्भ संवृत और विवृत उभयरूप होता है । अन्दर (उदर में) रहा हुआ गर्भ स्वरूप से प्रतीत नहीं होता, किन्तु उदर के बढ़ने आदि से बाहर से उपलक्षित होता है ।

संवृतादि योनियों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—सबसे थोड़े संवृत-विवृत योनि वाले जीव होते हैं, क्योंकि गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही संवृत-विवृत योनि वाले हैं। उनकी अपेक्षा विवृतयोनिक जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य विवृत योनि वाले हैं । उनसे अयोनिक जीव अनन्त गुणे हैं, क्योंकि सिद्ध अनन्त होते हैं और उनसे भी अनन्तगुणे संवृतयोनिक जीव होते हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव संवृतयोनिक होते हैं और वे सिद्धों से भी अनन्तगुणे होते हैं ।[1]

मनुष्यों की त्रिविध विशिष्ट योनियां—

७७३. [१] कतिविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता । तं जहा—कुम्मुण्णया १ संखावत्ता २ वंसीपत्ता ३ ।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र, मलय. वृत्ति, पत्रांक २२७

[७७३-१ प्र.] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७७३-१ उ.] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) कूर्मोन्नता, (२) शंखावर्त्ता और (३) वंशीपत्रा ।

[२] कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाऊणं । कुम्मुण्णयाए णं जोणीए उत्तमपुरिसा गब्भे वक्कमंति । तं जहा—अरहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा ।

[७७३-२] कूर्मोन्नता योनि उत्तमपुरुषों की माताओं की होती है । कर्मोन्नता योनि में (ये) उत्तमपुरुष गर्भ में उत्पन्न होते हैं । जैसे—अर्हन्त (तीर्थंकर), चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव ।

[३] संखावत्ता णं जोणी इत्थिरयणस्स । संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, नो चेव णं निप्फज्जंति ।

[७७३-३] शंखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है । शंखावर्त्ता योनि में बहुत-से जीव और पुद्गल आते हैं, गर्भरूप में उत्पन्न होते हैं, सामान्य और विशेषरूप से उनकी वृद्धि (चय-उपचय) होती है, किन्तु उनकी निष्पत्ति नहीं होती ।

[४] वंसीपत्ता णं जोणी पिहुजणस्स । वंसीपत्ताए णं जोणीए पिहुजणे गब्भे वक्कमंति ।

।। पण्णवणाए भगवईए णवमं जोणीपयं समत्तं ।।

[७७३-४] वंशीपत्रा योनि पृथक् (सामान्य) जनों की (माताओं की) होती है । वंशीपत्रा योनि में पृथक् (साधारण) जीव गर्भ में आते हैं ।

विवेचन--मनुष्यों की त्रिविध योनिविशेषों की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (७७३/१,२,३,४) में मनुष्यों को कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियों, योनि वाली स्त्रियां एवं उनमें जन्म लेने वाले मनुष्यों का निरूपण किया गया है ।

कूर्मोन्नता आदि योनियों का अर्थ—**कूर्मोन्नता योनि**=जो योनि कछुए की पीठ की तरह उन्नत—ऊँची उठी हुई या उभरी हुई हो । **शंखावर्त्ता योनि**=जिसके आवर्त्त शंख के उतार-चढ़ाव के समान हों, ऐसी योनि । **वंशीपत्रा योनि**—जो योनि दो संयुक्त (जुड़े हुए) वंशीपत्रों के समान आकार वाली हो ।

शंखावर्त्ता योनि का स्वरूप—शंखावर्त्ता स्त्रीरत्न की अर्थात्—चक्रवर्ती की पटरानी की होती है । इस योनि में बहुत-से जीव अवक्रमण करते (आते) हैं, व्युत्क्रमण करते (गर्भ-रूप में उत्पन्न होते) हैं, चित होते (सामान्यरूप से बढ़ते) हैं और उपचित होते (विशेषरूप से बढ़ते) हैं । परन्तु वे निष्पन्न नहीं होते, गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं । इस सम्बन्ध में वृद्ध आचार्यों का मत है कि शंखावर्त्ता योनि में आए हुए जीव अतिप्रबल कामाग्नि के परिताप से वहीं विध्वस्त हो जाते हैं । [१]

प्रज्ञापनासूत्र : नौवाँ योनिपद समाप्त ।।

---

१. (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक २२८

(ख) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा. ३, पृ. ८३-८४

प्रज्ञापनासूत्र : स्थान १-९

गाथानुक्रमसूची

□□

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, तं जहा—अट्ठी, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं। जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उल्कापात-तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. **दिग्दाह**—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. **गर्जित**—बादलों के गरजने पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. **विद्युत**—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो पहर तक अस्वाध्याय काल है।

६ यूपक—शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी, मांस और रुधिर—पंचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५ श्मशान—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

१.	श्रीमान् सेठ मोहनमलजी चोरड़िया	अध्यक्ष	मद्रास
२.	श्रीमान् सेठ रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष	ब्यावर
३.	श्रीमान् कँवरलालजी बैताला	उपाध्यक्ष	गोहाटी
४.	श्रीमान् दौलतराजजी पारख	उपाध्यक्ष	जोधपुर
५.	श्रीमान् रतनचन्दजी चोरड़िया	उपाध्यक्ष	मद्रास
६.	श्रीमान् खूबचन्दजी गादिया	उपाध्यक्ष	ब्यावर
७	श्रीमान् जतनराजजी मेहता	महामन्त्री	मेड़ता सिटी
८.	श्रीमान् चाँदमलजी विनायकिया	मन्त्री	ब्यावर
९.	श्रीमान् ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री	पाली
१०.	श्रीमान् चाँदमलजी चौपड़ा	सहमन्त्री	ब्यावर
११.	श्रीमान् जौहरीलालजी शीशोदिया	कोषाध्यक्ष	ब्यावर
१२.	श्रीमान् गुमानमलजी चोरड़िया	कोषाध्यक्ष	मद्रास
१३.	श्रीमान् मूलचन्दजी सुराणा	सदस्य	नागौर
१४.	श्रीमान् जी. सायरमलजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
१५.	श्रीमान् जेठमलजी चोरड़िया	सदस्य	बैंगलौर
१६.	श्रीमान् मोहनसिंहजी लोढा	सदस्य	ब्यावर
१७.	श्रीमान् बादलचन्दजी मेहता	सदस्य	इन्दौर
१८.	श्रीमान् मांगीलालजी सुराणा	सदस्य	सिकन्दराबाद
१९.	श्रीमान् माणकचन्दजी बैताला	सदस्य	बागलकोट
२०.	श्रीमान् भंवरलालजी गोठी	सदस्य	मद्रास
२१.	श्रीमान् भंवरलालजी श्रीश्रीमाल	सदस्य	दुर्ग
२२.	श्रीमान् सुगनचन्दजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२३.	श्रीमान् दुलीचन्दजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२४.	श्रीमान् खींवराजजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२५.	श्रीमान् प्रकाशचन्दजी जैन	सदस्य	भरतपुर
२६.	श्रीमान् भंवरलालजी मूथा	सदस्य	जयपुर
२७.	श्रीमान् जालमसिंहजी मेड़तवाल	(परामर्शदाता)	ब्यावर

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, बैंगलोर
५. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री कंवरलालजी बैताला, गोहाटी
८. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया, मद्रास
९. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
१०. श्री एस. बादलचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री जे. दुलीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री जे. अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री एस. सायरचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री आर. शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१६. श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
१७. श्री जे. हुक्मीचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१. श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
३. श्री तिलोकचंदजी सागरमलजी संचेती, मद्रास
४. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, कटंगी
५. श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी बोकड़िया, मद्रास
७. श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटंगी
८. श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मांगीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४. श्री शा० जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री मोहनलालजी नेमीचंदजी ललवाणी, चांगाटोला
७. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
९. श्रीमती सिरेकुंवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचन्दजी झामड़, मदुरान्तकम्
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K.G.F.) जाड़न
११. श्री थानचंदजी मेहता, जोधपुर
१२. श्री भैरुदानजी लाभचंदजी सुराणा, नागौर
१३. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५. श्री इन्द्रचंदजी बैद, राजनांदगांव
१६. श्री रावतमलजी भीकमचंदजी पगारिया, बालाघाट
१७. श्री गणेशमलजी धर्मीचंदजी कांकरिया, टंगला
१८. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
१९. श्री हरकचंदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचंदजी लोढ़ा, चांगाटोला
२१. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला

२२. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२३. श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५. श्री रतनचंदजी उत्तमचंदजी मोदी, ब्यावर
२६. श्री धर्मीचंदजी भागचंदजी बोहरा, झूंठा
२७. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
२८. श्री गुणचंदजी दलीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
२९. श्री मूलचंदजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
३०. श्री सी० अमरचंदजी बोथरा, मद्रास
३१. श्री भंवरीलालजी मूलचंदजी सुराणा, मद्रास
३२. श्री बादलचंदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
३५. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३७. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३८. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३९. श्री घेवरचंदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४०. श्री जवरचंदजी गेलड़ा, मद्रास
४१. श्री जड़ावमलजी सुगनचंदजी, मद्रास
४२. श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३. श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढ़ा, मद्रास
४५. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१. श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
२. श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३. श्री पूनमचंदजी नाहटा, जोधपुर
४. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
५. श्री भंवरलालजी चौपड़ा, ब्यावर
६. श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सलेम
८. श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९. श्री के. पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१०. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३. श्री भंवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
१५. श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
१७. श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टांटिया, जोधपुर
१८. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
१९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
२०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री जंवरीलालजी गोठी, जोधपुर
२१. श्री रायचंदजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२. श्री घेवरचंदजी रूपराजजी, जोधपुर
२३. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री जंवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
२६. श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९. श्री नेमीचंदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड कं०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढ़ा, जोधपुर
३३. श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी सांड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५. श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८. श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३९. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचंदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
४२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बैंगलोर
४७. श्री भंवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
४९. श्री भंवरलालजी नवरत्नमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१. श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
५२. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़तासिटी
५४. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचंदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
५९. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
६०. श्री मांगीलालजी प्रकाशचन्दजी रुणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया
६२. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भींवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गुलेच्छा, राजनांदगांव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७०. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२. श्री गंगारामजी इन्द्रचंदजी बोहरा, कुचेरा
७३. श्री फतेहराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४. श्री बालचंदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जंवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, टंगला
८०. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढ़ा, ब्यावर
८१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
८३. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया भैरूंदा
८५. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७. श्री सरदारमलजी एन्ड कम्पनी, जोधपुर
८८. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३. श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भंडारी
९५. श्री कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६. श्री अखेचंदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७. श्री सुगनचन्दजी संचेती, राजनांदगांव

९८. श्री प्रकाशचंदजी जैन, भरतपुर
९९. श्री कुशालचंदजी रिखवचंदजी सुराणा, बोलारम
१००. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराज जी कोठारी, मांगलियावास
१०३. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०४. श्री अमरचंदजी छाजेड़, पादु वड़ी
१०५. श्री जुगराजजी धनराजजी वरमेचा, मद्रास
१०६. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी वेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भंवरलालजी, चोरड़िया भैंरूंदा
१११. श्री माँगीलालजी शांतिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४. श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी वोकड़िया, मेड़ता सिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६. श्रीमती रामकुंवरवाई धर्मपत्नी श्री चांदमलजी लोढ़ा, वम्वई
११७. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी वाफणा, वैंगलोर
११८. श्री सांचालालजी वाफणा, औरंगावाद
११९. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाविया, (कुडालोर), मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुंवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी संघवी, कुचेरा
१२१. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीकमचंदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दरावाद
१२५. श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दरावाद
१२६. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, वगड़ीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, विलाड़ा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरड़िया मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी वोहरा एण्ड कं. वैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़